

अश्विनौ देवता

(मंत्रसंग्रह)

[पद, अन्वय, अर्थ, भावार्थ, मानवधर्म और टिप्पणी]

संपादक

पं० श्रीपाद दामोदर सातवळेकर,

अध्यक्ष, स्वाध्याय-मंडल, औंध (जि सातारा)

संवत् २००५, सन १९४८



मूल्य ५) रु.

अश्विनौ देवताकी भूमिका



अश्विनौ देवताके मंत्रोंका अनुवाद पाठकोंके सामने इस पुस्तकके रूपमें रखा है। इसकी विस्तृत भूमिका बृहदाकार पुस्तकके रूपमें योग्य समयके पश्चात् पाठकोंके पास पहुँच जायगी।

निवेदक
श्री. दा. सातवळेकर
अध्यक्ष, स्वाध्याय-मण्डल, औंध (जि० सातारा)

दि० १५।५।४८

मुद्रक और प्रकाशक
व० श्री० सातवळेकर, बी. ए., भारत मुद्रणालय,
स्वाध्याय-मण्डल, औंध (जि० सातारा)

ॐ

दैवत-संहिता ।

[ऋग्यजुःसाम.अथर्ववेदोंके मन्त्रोंका दैवतानुसार मन्त्रसंग्रह]

५ अश्विनौ देवता ।

[१] (ऋ० १।३।१-३)

(१-३) मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । गायत्री ।

१ अश्विना यज्वरीरिषो द्रवत्पाणी शुभस्पती ।
पुरुभुजा चनस्यतम् १

१ अश्विना । यज्वरीः । इषः । द्रवत्पाणी इति द्रवत्ऽपाणी ।
शुभः । पती इति । पुरुऽभुजा । चनस्यतम् ॥१॥

१ अन्वयः- पुरु-भुजा ! शुभस्पती ! द्रवत्पाणी अश्विना ! यज्वरीः इषः चनस्यतं ॥१॥

१ अर्थ- हे (पुरु-भुजा) विशाल बाहुवाले ! हे (शुभस्पती) शुभ कार्योंके पालनकर्ता ! और हे (द्रवत्-पाणी) अपने हाथों से अतिशीघ्र कार्य करनेवाले या कार्य में शीघ्र जुटजानेवाले (अश्विनौ) अश्वि देवो ! इन हमारे दिये (यज्वरीः इषः) यज्ञ के योग्य अर्थात् पवित्र अन्नोंसे (चनस्यतं) सन्तुष्ट हो जाओ । इस अन्न का सेवन कर के आनन्दित हो जाओ ।

१ भावार्थ- अश्विदेव विशाल भुजावाले, केवल शुभ कार्य ही करनेवाले और आरंभित कार्य अतिशीघ्र समाप्त करनेवाले हैं । वे हमारे यज्ञ में आकर हमारा दिया पवित्र अन्न सेवन करें और हर्षित, प्रसन्न हो जायें ।

१ मानवधर्म- मनुष्य अपनी भुजओंको पुष्ट और बलवान बनावें, सदा शुभ कर्म ही करें, आरंभ किया हुआ कार्य अतिशीघ्र परंतु उत्तम संपन्न करने की कर्म-कुशलता अपने हाथोंमे लावें, पवित्र अन्न खाकर आनन्दित, प्रसन्न रहें ।

१ टिप्पणी- **पुरु+भुजा** = विशाल भुजावाले, बहुतों को भोजन देनेवाले। **द्रवत् पाणी** = शीघ्र कार्य करनेवाले, दान देनेके कारण जिनके हाथ गीले हुए हैं, धर्म करने में कुशल। **अश्विनौ** = बहुत घोडे पास रखनेवाले, घोडोंपर बैठनेवाले, घुडसवार, घोडोंको शिक्षा देनेवाले, अश्विनी कुमार (देवता)। **चनस्यति** = आनंदित होना, सन्तुष्ट होना, प्रसन्न होना। **यज्वरी इषः** = जिससे यज्ञ होता है ऐसा अन्न, पवित्र अन्न, श्रेष्ठ अन्न।

[७]

२ अश्विना पुरुदंससा नरा शवीरया धिया।
धिष्ण्या वनतं गिरः ॥ २

२ अश्विना। पुरुऽदंससा। नरा। शवीरया। धिया।
धिष्ण्या। वनतम्। गिरः ॥२॥

२ अन्वयः- पुरुदंससा! धिष्ण्या! नरा अश्विना! शवीरया धिया गिरः वनतम् ॥ २ ॥

२ अर्थ- हे (पुरु-दंससा) बहुत कार्य करनेवाले। (धिष्ण्या) धैर्य युक्त बुद्धिवान्! तथा (नरा अश्विना) नेता अश्विदेवो! (शवीरया धिया) बहुत तेज बुद्धिसे अर्थात् ध्यान पूर्वक (गिरः वनतं) हमारे भाषणोंका स्वीकार करो, अर्थात् हमारा भाषण प्रेम से सुनो।

२ भावार्थ- अश्विदेव बहुत कार्य करते हैं, बडे बुद्धिमान हैं, नेता बने हैं, वे अपनी सूक्ष्म बुद्धिसे हमारे कथन को सुनें।

२ **मानवधर्म**-मनुष्य बहुत प्रकारके कार्य पूर्णतासे करे, धैर्ययुक्त तथा बुद्धिमान बने, नेता होकर अनुयायियों को योग्य मार्ग से चलावे, बहुत अन्दर घुसनेवाली सूक्ष्म बुद्धि से अपने कार्य करे और अनुयायियों के कथन शान्ति से सुने।

२ टिप्पणी- **पुरुदंसस्** = पुरु = बहुत = **दंसस** = कर्म करनेवाला, अनेक प्रकारके उत्तम कर्म करनेवाला। **धिष्ण्या** = बुद्धि, धैर्ययुक्त। **शवीरा** = गतिमान, सूक्ष्म गति से युक्त। **वन्** = सेवन करना, प्रेम करना, इच्छा करना, प्राप्त करना, स्वीकार करना।

३ दस्रा॑ युवाक॑वः सु॒ता नास॑त्या वृ॒क्तब॑र्हिषः ।
आ या॑तं रुद्रवर्तनी ॥ ३

३ दस्रा॑ । युवाक॑वः । सु॒ताः । नास॑त्या । वृ॒क्तऽब॑र्हिषः ।
आ । या॒त॒म् । रु॒द्र॒व॒र्त॒नी॒ इति॑ रुद्रऽवर्तनी ॥३॥

३ अन्वयः- दस्रा ! नासत्या ! रुद्रवर्तनी ! युवाकवः वृक्त-बर्हिषः, सुताः, आयातं ॥३॥

३ अर्थ- हे (दस्रा) शत्रु के विनाशकर्ता ! और (नासत्या) असत्य से दूर रहनेवाले (रुद्र-वर्तनी !) हे शत्रुओंको रुलानेवाले वीरों के मार्ग से जानेवाले तुम दोनों अश्वि देवो ! (युवाकवः वृक्त-बर्हिषः) ये मिश्रित किये हुए और जिनसे तिनके निकाल लिये हैं ऐसे (सुताः) अभी निचोडे हुए सोमरस को पीने के लिये (आयातं) इधर पधारो ।

३ भावार्थ- अश्वि देव शत्रुओं का वध करने में प्रवीण, वीरभद्रके मार्ग से जानेवाले और कभी असत्य का आश्रय करनेवाले नहीं हैं । उन्हें अपने पास बुलाना और निचोडा सोमरस दूध जल आदि के साथ मिश्रित कर के उनको पीने के लिये देना चाहिये ।

३ मानवधर्म- शूर के मार्ग से जानेवाले, शत्रु का नाश करनेवाले और कभी असन्मार्ग से जो नहीं जाते, वैसे वीरों को बुलाकर उनको उत्तम रस पीनेके लिये दे कर उनका सन्मान करना योग्य है ।

३ टिप्पणी- दस्रा=उत्तम कर्म करनेवाला, अद्भुत सहायता देनेवाला, (शत्रु का) नाश करनेवाला, (रोग) दूर करनेवाला (वैद्य) । नासत्य = जो असत्य का कभी आश्रय नहीं करते, सदा सत्य मार्ग से जानेवाले, (नास-स्थ) नासिका में रहनेवाले श्वास और उच्छ्वास । वृक्त बर्हिषः= जिस रस से छाननेके बाद सब तिनके निकाले हैं, जिन्होंने आसन फैलाये है (और जो देवों को उनपर बैठने के लिये बुलाते हैं,) रुद्र-वर्तनी = भयंकर मार्ग से जानेवाले, शूरवीरों के मार्ग से जाकर वीरता के कार्य करनेवाले ।

[४] (ऋ० १।१५।११)

मेधातिथिः काण्वः । (ऋतुसहितौ) । गायत्री ।

४ अश्विना पिबतं मधु दीद्यग्नी शुचिव्रता ।
ऋतुना यज्ञवाहसा ११

४ अश्विना । पिबतम् । मधु । दीद्यग्नी इति दीदिऽअग्नी ।
शुचिऽव्रता । ऋतुना । यज्ञऽवाहसा ॥११॥

४ अन्वय - शुचि-व्रता ! यज्ञ-वाहसा ! दीद्यग्नी अश्विना ! ऋतुना मधु पिबतम् ॥११॥

४ अर्थ (शुचि-व्रता) हे शुद्ध व्रतों का अनुष्ठान करनेवाले ! (यज्ञ-वाहसा) हे यज्ञों को भली भांति पूर्ण करनेहारे ! और हे (दीद्यग्नी अश्विना) धधकते हुए अग्नि में हवन करनेवाले अश्विदेवो ! (ऋतुना मधु पिबतं) ऋतु के अनुकूल मधुका, मीठे सोमरसका पान करो ।

४ भावार्थ- पवित्र व्रतोंका आचरण करनेहारे, यज्ञोंको चलानेवाले और अग्निहोत्र ठीक प्रकार निभानेवाले अश्विनौ ऋतु के अनुकूल ही मधुर रसों का पान करें ।

४ मानवधर्म- पवित्र व्रतोंका अनुष्ठान करें, शुभ कर्मोंको करें, अग्नि प्रदीप्त कर के यज्ञों को चलावें, ऋतुके अनुसार खानपान करें ।

४ टिप्पणी· शुचिव्रत=पवित्र व्रतका अनुष्ठान करनेवाला, शुभ कर्म करनेवाला । दीद्यग्नि=प्रदप्त अग्नि करनेवाला अर्थात् हवन करनेवाला । मधु= मधुर सोमरस, शहद मधुमिश्रित रस ।

[५] (ऋ० १।२२।१-४)

५ प्रातर्युजा वि बोधयाऽश्विनावेह गच्छताम् ।
अस्य सोमस्य पीतये १

५ प्रातःऽयुजा । वि । बोधय । अश्विना । आ । इह । गच्छताम् ।
अस्य । सोमस्य । पीतये ॥१॥

५ अन्वय प्रातः-युजा अश्विनौ वि बोधय, अस्य सोमस्य पीतये इह आ गच्छताम् ॥ १ ॥

५ अर्थ- (प्रातः युजा) प्रातः कालही काम में जुट जानेवाले या रथ जोडकर जानेवाले (अश्विनौ वि बोधय) अश्वि देवोंको विशेष रूप से जगा दो, स्मरण कर दो कि वे दोनों (अस्य सोमस्य पीतये) इस सोमरस का पान करने के लिए (इह आ गच्छतां) इधर पधारें।

५ भावार्थ- बडे कार्य कर्ता तडके उठकर अपने कार्य में नियुक्त होते हैं। इसलिए ऐसे निरलस कार्यकर्ताओं को स्मरण दिलाकर उनका यथोचित सत्कार करना चाहिए।

५ मानवधर्म- मनुष्य बडे तडके उठे और निजी कार्य में स्वयंही जुट जाय। (अथवा बडे तडके उठकर घोडे पर सवार हो कर अथवा गाडी जोतकर निरीक्षण करने के लिये जाय।) ऐसे कर्मतत्पर मनुष्य को स्मरण दे देकर रसपान के लिये आदर से बुलाना योग्य है।

५ टिप्पणी- प्रातर्युजा=प्रातःकाल में उठकर अपने कर्म में लगनेवाला, सवेरे ही घोडे को जोत कर निरीक्षण के लिये जानेवाला।

[६]

६ या सुरथा रथीतमोभा देवा दिविस्पृशा।
अश्विना ता हवामहे २

६ या। सुऽरथा। रथिऽतमा। उभा। देवा। दिविऽस्पृशा।
अश्विना। ता। हवामहे ॥२॥

६ अन्वयः- या उभा देवा सुरथा रथी-तमा दिवि स्पृशा अश्विना ता हवामहे २

६ अर्थ- (या उभा देवा) जो दोनों देव (सुरथा) अपने पास उत्तम रथ रखते हैं, जो (रथीतमा दिविस्पृशा) रथियों में अत्यन्त उत्तम महारथी और द्युलोकतक जानेवाले हैं (ता अश्विना हवामहे) उन दोनों अश्विदेवों को हम बुलाते हैं।

६ भावार्थ- अश्विदेवों का रथ उत्तम है, वे स्वयं महारथियों में भी श्रेष्ठ महारथी हैं, वे द्युलोक में भी जाते हैं, उन वीरों को हम बुलाते हैं।

६ मानवधर्म- मनुष्य अपने पास उत्तम रथ रखे, बडा प्रभावी महारथी बने, पहाडों के शिखरोंपर चढकर भी शत्रु से लडे। ऐसे वीर का सत्कार सब लोग करें।

६ टिप्पणी- सुरथ= उत्तम रथ अपने पास रखनेवाला। रथीतम = रथियों में उत्तम महारथी, प्रभावी वीर। दिविस्पृश् = द्युलोक को स्पर्श करनेवाला पर्वत शिखरपर भ्रमण करनेवाला, पर्वत शिखरपर रहकर लडनेवाला। (इस मन्त्र से ऐसा प्रतीत होता है कि रथ पास रखना एक साधारण सी बात वैदिक पद्धति के अनुसार थी।)

[७]

७ या वां कशा मधुमत्यश्विना सूनृतावती।
तया यज्ञं मिमिक्षतम् ३

७ या। वाम्। कशा। मधुऽमती। अश्विना। सूनृताऽवती।
तया। यज्ञम्। मिमिक्षतम् ॥३॥

७ अन्वयः अश्विना! वां या कशा मधुमती सूनृतावती, तया यज्ञं मिमिक्षतं ॥ ३ ॥

७ अर्थ- (अश्विना) हे अश्विदेवो! (वां) तुम दोनों की (या कशा) जो वाणी (मधुमती) मिठाससे पूर्ण तथा (सूनृतावती) सचाई से युक्त है, (तया) उस से (यज्ञं मिमिक्षतं) इस यज्ञ का सेवन करो, अर्थात् इस यज्ञ को सब मधुर भावरसों से परिपूर्ण बनाओ।

७ भावार्थ- अश्विदेव अपनी मधुर और सत्ययुक्त वाणी से यज्ञ को रसमय कर दें।

७ मानवधर्म- मनुष्य सत्य बोले और मधुर भी बोले। और अपनी वाणीसे बडे बडे कार्य सफल करे।

७ टिप्पणी- कशा = चाबुक, वाणी (निघ १।११), उत्साह वर्धक भाषण। सूनृतावती (सु ऊन ऋता वती = सुष्ठु ऊनयति अप्रिय सूनृ। तथा प्रिय ऋत यस्यां सा) जो अप्रिय को दूर करता है ऐसा सत्य जिसमें है वह वाणी। मिक्ष् = पानी छिडकाना, गीला करना, रसयुक्त बनाना।

[८]

८ नहि वामस्ति दूरके यत्रा रथेन गच्छथः।
अश्विना सोमिनो गृहम् ४

८ नहि। वाम्। अस्ति। दूरके। यत्र। रथेन। गच्छथः।
अश्विना। सोमिनः। गृहम् ॥४॥

८ अन्वयः- अश्विना ! यत्र सोमिनः गृहं रथेन गच्छथः, वां दूरके नहि अस्ति ॥४।

८ अर्थ- हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (यत्र सोमिनः गृहं) जहाँ पर सोमयाग करनेवाले का घर है, वहां अपने (रथेन गच्छथः) रथपर से तुम दोनों जाते हो, क्योंकि (वां दूरके नहि अस्ति) तुम दोनों के लिए कोई सुदूर स्थान नहीं है।

८ भावार्थ- अश्वि देवों के पास उत्तम रथ है, इसीलिए कोई स्थान उन दोनों के लिए सुदूर नहीं प्रतीत होता है। सोमयाग करनेवाले के पास जाने के लिये ये दोनों अपने रथ पर चढ़कर दूरदूर की यात्रा करते हैं।

८. मानवधर्म- मनुष्य अपने पास उत्तम घोड़े और उत्तम रथ रखें। जहां यज्ञ आदि सत्कर्म हो रहे हों, वहां रथ पर बैठकर शीघ्र ही पहुंचें। जिस के पास शीघ्रगामी रथ है उस के लिये कोई स्थान दूर नहीं है।

८. टिप्पणी- सोमिन् = जिस के पास सोम है, सोमयाग करनेवाला, यज्ञ करनेवाला।

[९](ऋ० १।३०।१७)

(९-११) शुनः शेप आजीगर्तिः स कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरातः।

९ आश्विनावश्वावत्येषा यातं शवीरया।
गोमद्दस्रा हिरण्यवत् १७

९ आ। अश्विनौ। अश्वऽवत्या। इषा। यातम्। शवीरया।
गोऽमत्। दस्रा। हिरण्यऽवत् ॥१७॥

९. अन्वयः- दस्रा अश्विनौ ! शवीरया अश्वावत्या इषा आयातं, गोमत् हिरण्यवत् ॥ १७॥

९ अर्थ- हे (दस्रा) शत्रु विनाशकर्ता (अश्विनौ) अश्विदेवो। (शवीरया अश्वावत्या इषा) गतिमय बल से युक्त, तथा घोड़े रूपी धन से पूर्ण अन्नसामग्री को साथ लिए हुए (आयातं) तुम दोनों आओ। (गोमत् हिरण्यवत्) हमारा घर तुम दोनों की कृपा से गौओं से पूर्ण और सुवर्ण से भरा रहे।

९ भावार्थ- हे अश्विदेवो ! हमें गौवें, धन, घोड़े और अन्न तथा बल दो।

९ मानवधर्म- मनुष्य के पास प्रभावी बल रहे, तथा गायें, घोडे और धन विपुल प्रमाण में रहें।

९ टिप्पणी- दस्रा (मन्त्र ३), शवीर (मं. ९)

[१०]

१० समानयोजनो हि वां रथो दस्रावमर्त्यः।
समुद्रे अश्विनेयते १८

१० समानऽयोजनः। हि। वाम्। रथः। दस्रौ। अमर्त्यः।
समुद्रे। अश्विना। ईयते ॥१८॥

१० अन्वयः दस्रौ अश्विना ! वां अमर्त्यः रथः हि समानयोजनः समुद्रे ईयते ॥ १८ ॥

१० अर्थ- (दस्रौ अश्विना) हे शत्रु को नष्ट करनेवाले अश्वि देवो ! (वां अमर्त्यः रथः हि) तुम दोनों का अविनाशी रथ निश्चयपूर्वक (समान-योजनः) तुम दोनों का एक ही है, वह (समुद्रे ईयते) समुद्र में अथवा अन्तरिक्ष में भी चला जाता है।

१० भावार्थ- अश्वि देवों का रथ न बिगडनेवाला और समुद्र में तथा आकाश में संचार करनेवाला है।

१० मानवधर्म- मनुष्य अपने रथ ऐसे बनावे कि, जो वारंवार न बिगडे और समुद्रमें तथा अन्तरिक्ष में भी गमन कर सके।

१० टिप्पणी- दस्रा (मं० ३)। अमर्त्यः=जो मरण धर्मवाला नहीं, न बिगडनेवाला, अटूट। समान योजनः = जिस में अनेकों के लिये बैठने के आसन हों। समुद्र= समुद्र, जल, अन्तरिक्ष, मेघमण्डल।

[११]

११ न्यघ्न्यस्य मूर्धनि चक्रं रथस्य येमथुः।
परि द्यामन्यदीयते १९

११ नि। अघ्न्यस्य। मूर्धनि। चक्रम्। रथस्य। येमथुः।
परि। द्याम्। अन्यत्। ईयते ॥१९॥

११ अन्वयः- रथस्य चक्रं अघ्न्यस्य मूर्धनि नियेमथुः, अन्यत् द्यां परि ईयते ॥ १९ ॥

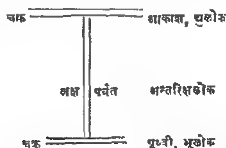
११ अर्थ- (रथस्य चक्रं) अपने रथके एक पहियेको, (अघ्न्यस्य मूर्धनि) अभेद्य पर्वत की तलहटीमें (नियेमथुः) तुम दोनों स्थिर रख चुके हो, (अन्यत्) और उसका दूसरा पहिया (द्यां परि ईयते) द्युलोकके ऊपर घूमता है।

११ भावार्थ- अश्विदेवोंके रथका एक चक्र पर्वत की बुनियाद में और दूसरा आकाश में घूमता है।

११ मानवधर्म- रथ के चक्र पर्वत पर भी चलने योग्य बनने चाहिये। तथा अन्तरिक्षमें संचार करनेकी भी योजना उनमें चाहिये।

११ टिप्पणी- अघ्न्य=अवध्य, अभेद्य, शत्रु से आक्रमण होना जहां असंभव हो ऐसा दुर्गम स्थान। द्यु=स्वर्ग, आकाश, पर्वतके ऊंचे शिखरपर का प्रदेश जैसा तिब्बत देश। मूर्धन्=शिखर, सिर, (Base) तल, बुनियाद, तराई।

इस मन्त्र में (**रथस्य चक्रं अघ्न्यस्य मूर्धनि, अन्यत् द्यां परि-ईयते**) अश्वि देवोंके रथका एक चक्र पर्वतके मूलमें और दूसरा पर्वतके शिखर पर आकाश में घूमता है, ऐसा वर्णन है। रथ के दो चक्र होते हैं। एक चक्र पृथ्वी है और दूसरा चक्र आकाश है और इन दोनों चक्रों का अक्ष पर्वत है। ये दोनों चक्र घूम रहे हैं। यह विश्व ही अश्विदेवों का रथ है।



पृथ्वी और आकाश एक जैसे घूमने का दृश्य उत्तर ध्रुव के पास ही दीखता है। वहां नक्षत्र मनुष्य के सिर पर प्रदक्षिणा की गति से घूमते हैं, यहां के समान प्रतिदिन अस्त उदय नहीं होते। इसलिये यह वर्णन वहां सार्थ हो सकता है।

इस मन्त्र से ऐसा अर्थ समझने के लिये ' मूर्धनि ' पद का प्रसिद्ध अर्थ छोड-कर दूसरा करना पडेगा जो कि ऊपर दिया है। पर्वत की [एक नोक पर पृथ्वीरूपी एक चक्र लगा है और दूसरे (सिरे पर) आकाशरूपी चक्र लगा है और ये दो चक्र (प्रदक्षिणा की गति से) घूम रहे हैं। ' यहां प्रदक्षिणाकी गतिदर्शक

'परि ई ' किया है। केवल 'मूर्धनि' पद का अर्थ (Base) बुनियाद तलभाग, तलहटी ऐसा भूमिति में होनेवाला अर्थ जो कोशों में है वही यहां लेना होगा। पृथ्वी और आकाशको दो चक्रके रूपमें वेदमें अन्यत्र भी बताया है। **यो अक्षेणेव चक्रिया शचीभिः विष्वक्तस्तंभ पृथिवीं उत द्यां।** (ऋ १०।८९।४) जैसे अक्ष से गाडी के दोनों पहिये वैसेही पृथ्वी और आकाश उस प्रभु ने जोड रखे है। यहां भी पृथ्वीको रथका एक चक्र और आकाश को दूसरा चक्र माना है। ये कवि उत्तरध्रुव के स्थानमें विद्यमान होंगे और प्रत्यक्ष दीखनेवाला साक्षात्कृत दृश्य ही वर्णन करते होंगे, क्योंकि यहांके कवि ऐसा वर्णन करने में असमर्थ ही होते।

[११] (ऋ० १।३४।१-१२)

हिरण्यस्तूप आङ्गिरसः। जगती, ९,१२ त्रिष्टुप्।

त्रिश्चि॑न् नो अ॒द्या भ॑वतं नवेदसा वि॒भुर्वां॒ याम॑ उ॒त रा॒तिर॑श्विना।
यु॒वोर्हि य॒न्त्रं हि॒म्येव॒ वास॑सो ऽभ्याय॒ंसेन्या॑ भवतं मनी॒षिभिः॑ ॥

१२ त्रिः। चि॒त्। नः॒। अ॒द्य। भ॒व॒त॒म्। न॒वे॒द॒सा।
वि॒ऽभुः। वा॒म्। यामः॑। उ॒त। रा॒तिः। अ॒श्वि॒ना।
यु॒वोः। हि। य॒न्त्रम्। हि॒म्याऽइ॑व। वास॑सः।
अ॒भि॒ऽआ॒यं॒सेन्या॑। भ॒व॒त॒म्। म॒नी॒षिऽभिः॑ ॥१॥

१२ अन्वय - नवेदसा अश्विना ! अद्य त्रिः चित् नः भवतं, वां यामः उत रातिः विभु, वाससः हिम्या इव युवोः यन्त्रं हि, मनीषिभिः अभ्यायंसेन्या भवतम् ॥१॥

१२ अर्थ- (नवेदसा अश्विना) हे ज्ञानी अश्वि देवो (अद्य) आज तुम दोनों (त्रिः चित् नः भवतं) तीनों बार हमारे ही होकर रहो। (वां याम) तुम दोनों का रथ (उत राति विभुः) और दान बडा होता है; (वाससः हिम्या इव) जैसे कपडे का सर्दी से सम्बन्ध अत्यन्त घनिष्ठ है वैसे ही (युवोः यन्त्रं हि) तुम दोनों का नियंत्रण हम से घनिष्ठ होता रहे, (मनीषिभिः अभ्यायंसेन्या भवतं) मननशील लोगों को तुम दोनों सहज ही से प्राप्त होते रहो।

१२ भावार्थ- अश्विदेव ज्ञानी हैं। वे हमारे यज्ञ में आज तीनों सवनों में आजायँ। उनका रथ भी बडा है और उनके पास दान देने योग्य धन भी उस रथ में बहुत रखा रहता है। सर्दी से कपडे का सम्बन्ध जैसे अटूट रहता है वैसेही अश्वि देवों की निगरानी का सम्बन्ध हम से रहे। अश्वि देवों की सहायता मननशील लोगों को सहज ही से प्राप्त होती रहे।

१२ मानवधर्म- मनुष्य ज्ञान प्राप्त करे। अपने बडे रथमें दूसरों की सहायता करने की पर्याप्त सामग्री रखे। वह दिन में तीन बार अनुयायियों के यज्ञों को देख भाल करे। वह मननशील ज्ञानियों से सहजही से मिलता रहे, उन का कथन सुने और उन से अपना सम्बन्ध अटूट रखे।

१२ टिप्पणी- नवेदस (न-वेदस) = नहीं है अधिक ज्ञान जिस से ऐसा अद्वितीय विद्वान्, जो कभी विपरीत ज्ञान नहीं रखता। यामः = रथ, मार्ग, गति। वासस्ः = कपडा, वस्त्र, ओढने का वस्त्र। वासस् = दिन, दिवस। हिम्याः = सर्दी, शीतलता, हिमकाल की रात्री। यन्त्र = नियन्त्रण नियमन करनेवाला सम्बन्ध। अभ्यायंसेन्या (अभि-आ-यंसेन्या) = चारों ओरसे पूर्णतया नियमोंद्वारा संबंध।

[१३]

त्रयः पवयो मधुवाहने रथे सोमस्य वेनामनु विश्व इद् विदुः।
त्रयः स्कम्भासः स्कभितास आरभे त्रिर्नक्तं याथस्त्रिर्वश्विना दिवा॥

१३ त्रयः। पवयः। मधुऽवाहने। रथे।
सोमस्य। वेनाम्। अनु। विश्वे। इत्। विदुः।
त्रयः। स्कम्भासः। स्कभितासः। आऽरभे।
त्रिः। नक्तम्। याथः। त्रिः। ऊँ इति। अश्विना। दिवा॥ २॥

१३ अन्वयः- मधुवाहने रथे त्रयः पवयः; विश्वे इत् सोमस्य वेनां अनु विदुः; अश्विना! आरभे त्रयः स्कम्भासः स्कभितासः नक्तं त्रिः याथः दिवा च त्रिः॥ २॥

१२ अर्थ- इन के (मधु-वाहने रथे) मधु को ढोनेवाले रथ में (त्रयः पवयः) तीन पहिये लगे हैं, (विश्वे इत्) सभी आप दोनों को (सोमस्य वेनां अनु विदुः) सोम की चाह को जानते हैं। हे (अश्विना) अश्वि देवो

(आरभे अधः स्कम्भासः) तुम दोनों के रथपर आलम्बन के लिए तीन खंभे (स्कभितासः) स्थिर किये हुए हैं, (नक्तं त्रिः याथः) रात्री के समय तुम दोनों तीन बार यात्रा करते हो, (दिवा उ त्रिः) और दिन के समय भी तीन बार घूमते हो।

१३ **भावार्थ**- अश्विदेवों के रथ के तीन पहिये हैं। उसमें बैठ कर वे सोम के स्थानपर जाते हैं क्योंकि वे सोम को चाहनेवाले हैं। इनके रथमें पकडने के लिये तीन खम्भे हैं, ये खम्भे स्थिर है। रात्रीमें तथा दिन में तीन तीन बार ये अश्विदेव इस रथ में बैठकर भ्रमण करते हैं। इनके रथमें पर्याप्त मधु रहता है।

१३ **मानवधर्म**- श्रेष्ठ रथ के तीन पहिये हों (दो पीछे और एक आगे हो) रथ में बैठनेवालों को पकडकर बैठने के लिये इस में तीन खम्भे हों। बैठनेवाले इन खम्भों को पकडकर बैठें। इस रथ पर खाने पीने के मधुर पदार्थ रहें। इस रथ में बैठकर वीर दिन में तथा रात्री में तीन तीन बार भी (यज्ञ के) विविध स्थानोंपर जायँ और याजकों की सहायता करें।

१३ **टिप्पणी**- मधुवाहन=मधुर पदार्थोंको ले जानेवाला वाहन। वेना= इच्छा, चाह, एक स्त्री (चन्द्रमा की पुत्री)। आरभ=आलम्बन, आश्रय, सहारा। स्कम्भ =स्तम्भ।

[१४]

समाने अहन् त्रिरवद्यगोहना त्रिरद्य यज्ञं मधुना मिमिक्षतम्।
त्रिर्वाजवतीरिषो अश्विना युवं दोषा अस्मभ्यमुषसश्च पिन्वतम्॥

१४ समाने। अहन्। त्रिः। अवद्यऽगोहना।
त्रिः। अद्य। यज्ञम्। मधुना। मिमिक्षतम्।
त्रिः। वाजऽवतीः। इषः। अश्विना। युवम्।
दोषाः। अस्मभ्यम्। उषसः। च। पिन्वतम्॥३॥

१४ अन्वयः- अवद्यगोहना अश्विना! समाने अहन् अद्य यज्ञं त्रिः मधुना मिमिक्षतं; युवं अस्मभ्यं उषसः दोषाः च वाजवतीः इषः त्रिः पिन्वतम्। ३।

१४ अर्थ- हे (अवद्य-गोहना अश्विना) अश्वि देवो ! तुम दोनों दोषों को गुप्त रखनेवाले हो । (समाने अहन्) एक ही दिन (अद्य) आज (यज्ञं त्रिः) हमारे यज्ञ को तीन बार (मधुना मिमिक्षतं) मधु से पूर्ण करो; (युवं अस्मभ्यं) तुम दोनों हमें (उषसः दोषाः च) प्रातःकाल तथा सायंकाल (वाजवतीः इषः) बल वर्धक अन्न (त्रिः पिन्वतं) तीन बार भरपूर देदो ।

१४ भावार्थ- अश्विदेव हमारे कर्म में दोष अर्थात् त्रुटि रही तो उसको क्षमा करते हैं । दिन में तीन तीन बार यज्ञ में आते और मधु देते हैं, तथा सवेरे और शाम को बल वर्धक अन्न दिन में तीन बार देते हैं ।

१४ मानवधर्म- नेता अपने अनुयायियों के दोष गुप्त रखे (और एकान्त में उनके दूर करने की विधि समझा दें;) समाज में उन का अपमान हो ऐसी रीतिसे उन दोषों की घोषणा न करें । दिन में तीन तीन बार बलवर्धक मधुर अन्न और मधुर पेय अपने अनुयायियों को देते रहें ।

१४ टिप्पणी- अवद्यगोहना (अ-वद्य-गोहना) निंद्य दोष, त्रुटि को गुप्तता रख कर उसको दूर करना । उषस=उषःकाल, दिन । दोषा=रात्री ।

[१५]

त्रिर्व॒र्तिर्या॑तं॒ त्रिरनु॑व्रते॒ जने॒ त्रिः सु॑प्रा॒व्ये॑ त्रे॒धेव॑ शिक्षतम् ।
त्रिर्ना॒न्द्यं॑ वहतमश्विना यु॒वं त्रिः पृक्षो॑ अ॒स्मे अ॒क्षरे॑व पिन्वतम् ॥

१५ त्रिः । व॒र्तिः । या॒तम् । त्रिः । अनु॑ऽव्रते । जने॑ ।
त्रिः । सु॒प्र॒ऽअ॒व्ये॑ । त्रे॒धाऽइ॑व । शि॒क्ष॒तम् ।
त्रिः । ना॒न्द्य॑म् । व॒ह॒तम् । अ॒श्वि॒ना । यु॒वम् ।
त्रिः । पृक्षः॑ । अ॒स्मे इति॑ । अ॒क्षरा॑ऽइव । पि॒न्व॒तम् ॥४॥

१५ अन्वय:- अश्विनौ ! वर्तिः त्रिः यातं, अनुव्रते जने त्रिः, सुप्राव्ये त्रिः, त्रेधा इव शिक्षतं; युवं नान्द्यं त्रिः वहतं, अस्मे अक्षरा इव पृक्षः त्रिः पिन्वतम् ॥ ४ ॥

१५ अर्थ- हे अश्विनौ ! (वर्तिः त्रिः यातं) हमारे घरपर तुम दोनों तीन बार आओ, (अनुव्रते जने त्रिः) अनुयायी लोगों के मध्य तुम दोनों तीन बार जाओ, (सुप्राव्ये) उत्तम रक्षा करने योग्य मनुष्यों को (त्रिः) तीन बार (त्रेधा इव शिक्षतं) तीन प्रकार के ज्ञान को पढाओ, (युवं) तुम दोनों

(नान्द्यं त्रिः वहतं) अभिनन्दनीय पदार्थों को तीन बार ढोकर इधर पहुँचादो और (अस्मे) हमें (पृक्षः) अन्नों को (अक्षरा इव त्रिः पिन्वतं) स्थायी वस्तुओं के समान तीन बार पर्याप्त मात्रा में देकर पुष्ट करो।

१५ भावार्थ- अश्विदेव अनुयायियों के घरपर तीन बार दिन में जायँ, अपने घर तीन बार आ जायँ। जिस की सुरक्षा करनी हो उस को तीन बार तीन प्रकार का ज्ञान देकर अपनी सुरक्षा करनेकी रीति बतावें। आनन्द देनेवाले पदार्थ तीन बार दिन में ले आवें और अन्न भी तीन बार देकर हमें पुष्ट करें।

१५ मानवधर्म- नेता अनुयायियोंकी पूछताछ दिनमें तीन बार करें। अनुयायियों को अपनी सुरक्षा करने का ज्ञान दिन में तीन बार तीन प्रकारोंसे देवें (अपने तीन शत्रु हैं उन से अपनी रक्षा करने का ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। अपने आन्तरिक, अपने सामाजिक और जागतिक ये तीन शत्रु हैं। इनसे बचने का ज्ञान तीन प्रकार का होता है।) अनुयायियों को दिन में तीन बार खान पान देकर उनको पुष्ट रखा जाय।

१५ टिप्पणी- वर्तिः=घर, स्थान। अनुव्रत= अनुकूल कर्म करनेवाला, अनुयायी। सु-प्र-अव्य=उत्तम रीतिसे विशेष सुरक्षा करने योग्य। नान्द्य=आनन्द देनेवाला। पृक्षः=अन्न, खानपान। अक्षर=अक्षय, अविनाशी, जल, जीवन।

[१६]

त्रिर्नो रयिं वहतमश्विना युवं त्रिर्देवताता त्रिरुतावतं धियः।
त्रिः सौभगत्वं त्रिरुत श्रवांसि नस्त्रिष्ठं वां सूरे दुहिता रुहद् रथम्॥

१६ त्रिः। नः। रयिम्। वहतम्। अश्विना। युवम्।
त्रिः। देवऽताता। त्रिः। उत। अवतम्। धियः।
त्रिः। सौभगऽत्वम्। त्रिः। उत। श्रवांसि। नः।
त्रिऽस्थम्। वाम्। सूरे। दुहिता। आ। रुहत्। रथम्॥५॥

१६ अन्वयः- अश्विना! युवं नः त्रिः रयिं वहतं, देवताता त्रिः उत धियः त्रिः अवतं। सौभगत्वं त्रिः उत श्रवांसि त्रिः, वां त्रिष्ठं रथं सूरे दुहिता आरुहत्॥५॥

१६ अर्थ- हे अश्विनौ ! (युवं नः) तुम दोनों हमारे लिए (त्रिः रयिं वहतं) तीन बार धन पहुँचा दो, (देवताता त्रिः) यज्ञ में तीन बार आओ (उत) और यज्ञों के (धियः त्रिः अवत) कर्मों को तीन बार सुरक्षित रखो, (सौभगत्वं त्रिः) अच्छा ऐश्वर्य तीन बार देदो, (उत श्रवांसि त्रिः) और अन्न समूह तीन बार दो, (वां त्रिः स्थं रथं) तुम दोनों के तीन पहियों के रथपर (सूरेः दुहिता) सूर्य की कन्या (रुहत्) चढ़गयी है।

१६. भावार्थ- अश्विदेव हमारे लिए तीन बार धन देवें, यज्ञ में आकर तीन बार कर्मोंकी देखभाल करें, उत्तम भाग्य तीन बार दें,और तीन बार अन्न दें। इनके तीन पहियोंवाले रथ पर सूर्य की दुहिता चढ़ बैठी है।

१६ मानवधर्म- नेता अपने अनुयायियों को तीन बार धन दे, उन के कर्मों की बारंबार देखभाल करे, ऐश्वर्य और अन्न भी उन को देवे।

१६ टिप्पणी- देवताता=देवोंका यज्ञ जिसमें फैलता है ऐसा कर्म, यज्ञ। धीः=कर्म, बुद्धि। (सूरेः दुहिता रथं रुहत्) सूर्यकी पुत्री प्रभा रथपर चढ़ बैठी है। यहां का रथ यह सारा विश्व है, इस का एक पहिया पृथ्वी और दूसरा आकाश है (मं० ११)। इस रथपर सूर्य की पुत्री प्रभा चढ़ बैठी है अर्थात् सूर्य उदय होकर उस के किरण सब जगत् पर पड़े हैं। सवेरेके प्रकाश का यह वर्णन है। सूरेः दुहिता = सूर्य की पुत्री, सूर्य प्रभा, प्रभातकान्ति।

[१७]

त्रिर्नो अश्विना दिव्यानि भेषजा त्रिः पार्थिवानि त्रिरु दत्तमद्भ्यः।
ओमानं शंयोर्ममकाय सूनवे त्रिधातु शर्म वहतं शुभस्पती ॥६॥

१७ त्रिः। नः। अश्विना। दिव्यानि। भेषजा।
त्रिः। पार्थिवानि। त्रिः। ऊँ इति। दत्तम्। अत्ऽभ्यः।
ओमानम्। शम्ऽयोः। ममकाय। सूनवे।
त्रिऽधातु। शर्म। वहतम्। शुभः। पती इति ॥६॥

१७ अन्वय — शुभस्पती अश्विना ! नः दिव्यानि भेषजा त्रिः, पार्थिवानि त्रिः, अद्भ्यः त्रिः दत्तं। ममकाय सूनवे शंयोः ओमानं त्रिधातु शर्म वहतम् ॥६॥

१७ अर्थ– हे (शुभः पती अश्विना) शुभ कर्मों के पालनकर्ता अश्वि देवो ! (नः) हमें (दिव्यानि भेषजा त्रिः) द्युलोक की दवाइयाँ तीन बार (पार्थिवानि त्रिः) भूमि पर की औषधियाँ तीन बार और (अद्भ्यः त्रिः दत्तं) जलों से तीन बार औषधों का दान करो। (ममकाय सूनवे शंयोः) मेरे पुत्र को सुख की प्राप्ति होने के लिए (ओमानं त्रिधातु शर्म वहतं) संरक्षण तथा तीन धातुओं की सुस्थिति से मिलनेवाला सुख पहुँचा दो।

१७ भावार्थ– अश्विदेव हमारे शुभ कर्मों की रक्षा करें। पर्वत, भूमि और जल से चिकित्सा करें और बाल बच्चों की सुरक्षा के लिये वात पित्त कफ की (विषमता को दूर कर के) समता का सुख दें।

१७ मानवधर्म– सब स्थलों से औषधियां लाकर चिकित्सा का योग्य प्रबंध राष्ट्र में किया जाय। विशेषतः बालबच्चों की सुरक्षा के लिये विशेष ही प्रबन्ध किया जाय। (वात-पित्त-कफ की विषमता का नाम रोग है, इसको दूर करने और उन) तीनों धातुओं की समता से जो सुख मिलना सम्भव हो, वह सब को मिले। विशेषतः बालबच्चों की सुस्थिति स्थायी रखने का प्रयत्न किया जाय।

१७ टिप्पणी- दिव्यं भेषजं=पर्वत की चोटी पर उत्पन्न हुई नेत्र की औषधि, आकाश से प्राप्त औषध। पार्थिवं भेषजं=पृथ्वी पर उत्पन्न होनेवाली वनस्पतियाँ। अद्भ्यः भेषजं=जल से, अन्तरिक्ष से, पर्वत की तराई से, मेघमण्डल से प्राप्त औषध। शं-युः=रोग शमन रूप शान्ति सुख, आनन्द की प्राप्ति। ओमानं=संरक्षण। त्रिधातु शर्म=कफ-पित्त वात नामक तीन धातुओं से मिलनेवाला शान्ति सुख।

[१८]

त्रिर्नो॑ अश्विना यजता दि॒वेदि॑वे॒ परि॑ त्रि॒धातु॑ पृथि॒वीम॑शायतम् ।
ति॒स्रो ना॑सत्या रथ्या परा॒वत॑ आ॒त्मेव॒ वातः॒ स्वस॑राणि गच्छतम् ॥

१८ त्रिः । नः । अ॒श्विना । य॒ज॒ता । दि॒वेऽदि॑वे ।
परि॑ । त्रि॒ऽधातु॑ । पृ॒थि॒वीम् । अ॒शा॒य॒त॒म् ।
ति॒स्रः । ना॒स॒त्या॒ । र॒थ्या॒ । प॒रा॒ऽवतः॑ ।
आ॒त्माऽइ॑व । वात॑ः । स्वस॑राणि । ग॒च्छ॒त॒म् ॥७॥

१८ अन्वयः– यजता अश्विना ! नः दिवेदिवे त्रिः पृथिवीं त्रिधातु परि अशायतं, रथ्या नासत्या ! परावतः, स्वसराणि वातः आत्मा इव तिस्रः गच्छतं ॥७॥

१८ अर्थ- (यजत्रा अश्विना) हे पूजनीय अश्वि देवो ! (नः दिवे दिवे) हमारे प्रतिदिन करने के (त्रिः) तीनों यज्ञों में (पृथिव्यां) पृथ्वी स्थानीय वेदीपर (त्रिः परि यातं) तीन बार आकर बैठो, (रथ्या नासत्या) हे रथारूढ और सत्य पालक देवो ! (परावतः) सुदूरवर्ती स्थान से भी (वातः आत्मा इव) प्राण वायुरूपी आत्मा के समान (स्वसराणि त्रिः गच्छतं) हमारे घरों में तीनों बार आओ।

१८ भावार्थ- पूजनीय अश्वि देव प्रतिदिन के यज्ञ में तीन बार आकर आसनों पर बैठें। जब वे दूर देश में हों तब भी वे रथपर चढ कर, जैसा प्राण शरीर में घुसता है वैसे, वेगसे हमारे यज्ञस्थानमें शीघ्रतासे आ जायँ। अर्थात् जहां कहीं भी हों वहां से वे अवश्य आ जायँ।

१८ मानवधर्म- नेता कहीं भी हों, वहांसे वे अपने अनुयायियोंके कार्यों की निगरानी करने के लिये, प्राण शरीरमें आने की तरह, आ जायें। हो सके तो दिन में तीन बार भी आ जायँ। (नेता अनुयायियों का प्राण होता है। नेता उसका पालन करे और शुद्धाचारी रहे।)

१८ टिप्पणी- स्वसरं=घर, शरीर, इंद्रिय गण।

(१९)

त्रिरश्विना सिन्धुभिः सप्तमातृभि॒स्त्रय आहावास्त्रेधा हविष्कृतम्।
तिस्रः पृथिवीरुपरि प्रवा दिवो नाकं रक्षेथे द्युभिरक्तुभिर्हितम् ॥८॥

१९ त्रिः। अश्विना। सिन्धुऽभिः। सप्तमातृऽभिः।
त्रयः। आऽहावाः। त्रेधा। हविः। कृतम्।
तिस्रः। पृथिवीः। उपरि। प्रवा। दिवः।
नाकम्। रक्षेथे इति। द्युऽभिः। अक्तुऽभिः। हितम् ॥८॥

१९ अन्वयः- अश्विना! सप्तमातृभिः सिन्धुभिः त्रिः, त्रयः आहावाः हविः त्रेधा कृतं, तिस्रः पृथिवीः उपरि प्रवा दिवः हितं नाकं द्युभिः अक्तुभिः रक्षेथे ॥ ८ ॥

१९ अर्थ-- हे अश्वि देवो ! (सप्तमातृभिः सिन्धुभिः) माताओं के समान पवित्र सातों नदियों के जल से (त्रिः) तीन बार, (त्रयः आहावाः) ये तीन पात्र भर दिये हैं, (हविः त्रेधा कृतं) हवि को भी तीन हिस्सों में बांट रखा

है, (तिस्रः पृथिवीः उपरि प्रवा) इन तीनों लोकों में ऊपर जानेवाले तुम दोनों (दिवः हितं नाकं) द्युलोक में प्रस्थापित सुख को (द्युभिः अक्तुभिः) दिनों और रात्रियों में (रक्षेथे) रक्षा करते हो।

१९ भावार्थ- अश्विदेवों का सत्कार करने के लिये सात नदियोंका जल भरकर रखा है जिस से ये तीन पात्र भरे पडे हैं। उन के लिये हवि भी तीन पात्रों में रखा है। ये दोनों देव तीनों लोकों में भ्रमण करते हैं और स्वर्ग में रखे सुख को दिन रात सुरक्षा करते रहते हैं।

१९ मानवधर्म- नेता का सत्कार करने के लिये बडे बडे नदियों का जल लाया जाये, उनके लिये देने योग्य अन्न भी तीन थालियों में रखा जाय, और वह उनको तीन बार परोसा जाये। नेता सर्वत्र गमन कर के दिनरात सभी सुखदायक स्थानों की रक्षा करें।

१९ टिप्पणी- अक्तु=रात्री। आहावः=पात्र।

(२०)

क्व॑ त्री च॒क्रा त्रि॒वृतो॒ रथ॑स्य॒ क्व॑ त्रयो॑ व॒न्धुरो॒ ये सनी॑ळाः।
क॒दा योगो॑ वा॒जिनो॒ रास॑भस्य॒ येन॑ य॒ज्ञं ना॑सत्योप॒याथः ॥९॥

२० क्व॑। त्री। च॒क्रा। त्रि॒ऽवृतः॑। रथ॑स्य।
क्व॑। त्रयः॑। व॒न्धुरः॑। ये। सऽनी॑ळाः।
क॒दा। योगः॑। वा॒जिनः॑। रास॑भस्य।
येन॑। य॒ज्ञम्। ना॒स॒त्या॒। उ॒प॒ऽयाथः ॥९॥

२० अन्वयः- नासत्या! त्रिवृतः रथस्य त्री चक्रा क्व? ये त्रयः सनीळाः वन्धुरः क्व? वाजिनः रासभस्य योगः कदा, येन यज्ञं उपयाथः ॥ ९ ॥

२० अर्थ- (नासत्या) हे सत्य का पालन करनेवाले देवो! (त्रिवृतः रथस्य) तीन ओरवाले रथ के (त्रि चक्रा क्व) तीन पहिये किधर हैं? (ये सनीळाः त्रयः) जो एक ही स्थान में रखे हुए तीनों (वंधुरः क्व) खंभे हैं वे कहाँ हैं? (वाजिनः रासभस्य) बलवान गर्दभ का तुम्हारे (योगः कदा) रथ में जोतना कब होगा? तुम दोनों (येन यज्ञं उपयाथः) जिस रथपर चढकर यज्ञ में आते हो।

२० भावार्थ- रथ को पूर्णतया तैयार करके तथा रथ की सभी वस्तुओंकी भलीभाँति जाँच पड़ताल कर के ही यात्रा करनी चाहिए।

२० टिप्पणी- सनीळ = एक स्थान में रखा हुआ।

(२१)

आ नासत्या गच्छतं हूयते हविर्मध्वः पिबतं मधुपेभिरासभिः।
युवोर्हि पूर्वं सवितोषसो रथमृताय चित्रं घृतवन्तमिष्यति॥१०

२१ आ। नासत्या। गच्छतम्। हूयते। हविः।
मध्वः। पिबतम्। मधुऽपेभिः। आसऽभिः।
युवोः। हि। पूर्वम्। सविता। उषसः। रथम्।
ऋताय। चित्रम्। घृतऽवन्तम्। इष्यति॥१०॥

२१ अन्वयः- नासत्या! हविः हूयते, आगच्छतं, मधुपेभिः आसभिः मध्वः पिबतं। युवः चित्रं घृतवन्तं रथं हि सविता उषसः पूर्वं ऋताय इष्यति॥ १०॥

२१ अर्थ- (नासत्या) हे असत्यसे दूर रहनेवाले देवो! (हविः हूयते) यहाँ हविको अग्नि में डाला जाता है, अतः (आ गच्छतं) यहाँ आओ। (मधुपेभिः आसभिः) मधु पीनेवाले मुखोंसे (मध्वः पिबतं) मीठे सोम रसका पान करो। (युवः चित्रं घृतवन्तं रथं हि) तुम दोनों के विचित्र एवं घीसे युक्त रथ को तो (सविता उषसः पूर्वं) सूर्य उषःकालके पहले ही (ऋताय इष्यति) यज्ञ के लिए प्रेरित करता है।

२१ भावार्थ- प्रातःकाल होते ही रथ को सज्ज कर के यज्ञ स्थान के पास जाना चाहिए। अश्विदेव उषः काल के पहिले ही यज्ञ स्थान पर जाते हैं। क्योंकि सूर्य ही उस समय सब को यज्ञ करने के लिये प्रवृत्त करता है।

(२२)

आ नासत्या त्रिभिरेकादशैरिह देवेभिर्यातं मधुपेयमश्विना।
प्रायुस्तारिष्टं नी रपांसि मृक्षतं सेधतं द्वेषो भवतं सचाभुवा॥११॥

२२ आ । नासत्या । त्रिऽभिः । एकादशैः । इह ।
देवेभिः । यातम् । मधुऽपेयम् । अश्विना ।
प्र । आयुः । तारिष्टम् । निः । रपांसि । मृक्षतम् ।
सेधतम् । द्वेषः । भवतम् । सचाऽभुवा ॥११॥

२२ अन्वयः- नासत्या अश्विना ! त्रिभिः एकादशैः देवैः इह मधुपेयं आयातं, आयुः प्र तारिष्टं, रपांसि निर्मृक्षतं; द्वेष सेधतं, सचाभुवा भवतं ॥ ११ ॥

२२ अर्थ-(नासत्या अश्विना) हे सत्यके पालक अश्विदेवो ! (त्रिभिः एकादशैः देवैः) तीनवार ग्यारह अर्थात् तैंतीस देवोंके साथ (इह मधुपेयं आयातं) इधर मीठे सोमरस के पान करने के लिए यज्ञ में आ जाओ। (आयुः प्र तारिष्टं) हमारे जीवन को सुदीर्घ करो। (रपांसि नि मृक्षतं) दोषोंको पूर्णतया दूर कर के हमारी शुद्धता करो। (द्वेषः सेधतं) वैरभाव को दूर करो। (सचा भुवा भवतं) हमारे साथ रहो।

२२ भावार्थ- अश्विदेव सत्य का पालन करते हैं। तैंतीस देवों के साथ वे हमारे यहां रसपान करने के लिये आवें और हमें दीर्घायु करें। हमारे अन्दर के दोष दूर करें, द्वेषभाव दूर करें, और मित्र जैसे हमारे पास रहें।

२२ मानवधर्म- मनुष्य सत्यका पालन करे। तैंतीस देवोंके साथ परिचय करे, उनसे दीर्घ आयु होनेके उपाय जाने। दोष दूर कर के पवित्र बने, द्वेष न करे। मित्रतासे सब मिलजुल कर रहें।

२२ टिप्पणी- मधुपेयं = मधुर पेय, रसपान, सोमरस का पान। रपस् = दोष, न्यूनता, पाप। सचाभुवा = साथ साथ रहनेवाले ॥ अश्विदेव वैद्य हैं, ये ३३ देवों के साथ आते हैं। ये ३३ देव उनकी सहायता करके चिकित्सा करते हैं। सभी वैद्य ३३ देवताओं की विद्यासे ही चिकित्सा करते हैं। अग्नि, जल, औषधि, मृत्तिका, वायु, सूर्य प्रकाश, विद्युत् आदि देवों का चिकित्सामें कितना उपयोग हो रहा है यह देख कर ३३ देवोंसे होनेवाली चिकित्सा को पाठक जानें। चिकित्सा करके शरीर-मन-बुद्धि के दोष दूर करने हैं, दोष दूर होने से नीरोग होना संभव है। मन बुद्धि से द्वेष भाव दूर करने चाहिये। यह मन बुद्धि की शुद्धता ही है। इस तरह शुद्धता करना ही चिकित्सा है और इससे दीर्घायु मिलती है। इस मन्त्र

में चिकित्सा के तीन साधन बताये हैं (१) दोष (शारीरिक तथा मानसिक) दूर करना, (२) द्वेष भाव दूर करना, और (३) निसर्ग की ३३ शक्तियों की सहायता लेना। इस का फल दीर्घ और नीरोग जीवन मिलना है।

(१२)

आ नो अश्विना त्रिवृता रथेनार्वाञ्चं रयिं वहतं सुवीरम्।
शृण्वन्ता वामवसे जोहवीमि वृधे च नो भवतं वाजसातौ॥१२॥

१२ आ। नः। अश्विना। त्रिऽवृता। रथेन।
अर्वाञ्चम्। रयिम्। वहतम्। सुऽवीरम्।
शृण्वन्ता। वाम्। अवसे। जोहवीमि।
वृधे। च। नः। भवतम्। वाजऽसातौ॥१२॥

१२ अन्वयः- अश्विना! त्रिवृता रथेन सुवीरं रयिं नः अर्वाञ्चं आवहतं, वां शृण्वन्ता अवसे जोहवीमि, वाजसातौ च नः वृधे भवतं॥ १२॥

१२ अर्थ- हे अश्विदेवो! (त्रिवृता रथेन) तीन कोनोंवाले रथसे (सुवीरं रयिं) अच्छे वीरों से युक्त धन को (नः अर्वाञ्चं आवहतं) हमारे समीप पहुंचा दो। (वां शृण्वन्ता) तुम दोनों सुननेवालों को (अवसे जोहवीमि) मैं अपनी रक्षा के लिए बुलाता हूँ। (वाजसातौ च) और युद्ध के मौकेपर (नः वृधे भवतं) हमारी वृद्धिके लिए तुम प्रयत्नशील बनो।

१२ भावार्थ- अश्विदेव अपने त्रिकोणाकृति रथपरसे वीरोंके साथ रहनेवाला धन हमारे पास ले आवें। वे हमारी प्रार्थना सुनते हैं, इसलिये हम उन को बुलाते हैं। युद्ध छिडजानेपर वे हमारी ही सहायता करें।

१२ मानवधर्म- मनुष्य ऐसा धन प्राप्त करें कि जिस के साथ वीर रहते हों और बालबच्चे भी होते हों। नेता अपने अनुयायियों का कथन सुने और उनका निरादर न करे। युद्ध छिडजाने पर अनुयायियों की हर प्रकार से समृद्धि करने का यत्न करना नेता का कर्तव्य है।

१२ टिप्पणी- अवस् = रक्षा। वाजसाति = धन का बँटवारा, युद्धका छिडजाना, युद्ध का समय। वृध् = वृद्धि, उन्नति।

[२४] (ऋ० १।४६।१-१५)
प्रस्कण्वः काण्वः । गायत्री ।

२४ एषो उषा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया दिवः ।
स्तुषे वामश्विना बृहत् ॥१॥

२४ एषोइति । उषाः । अपूर्व्या । वि । उच्छति । प्रिया । दिवः ।
स्तुषे । वाम् । अश्विना । बृहत् ॥१॥

२४ अन्वयः- अश्विना ! एषा प्रिया अपूर्व्या उषाः दिवः व्युच्छति, वां बृहत् स्तुषे ॥१॥

२४ अर्थ- हे अश्वि देवो ! (एषा प्रिया) यह प्रिय (अपूर्व्या उषाः) अपूर्वसी दीखनेवाली उषा (दिवः व्युच्छति) द्युलोकसे आती है । अर्थात् अन्धकार दूर करती है । इस समय (वां बृहत् स्तुषे) तुम दोनों की मैं बहुत स्तुति करता हूँ ।

. २४ भावार्थ- उषा आ कर अन्धकार को दूर करती है । हे अश्वि देवो ! इस समय मैं आप की स्तुति करता हूं ।

२४ मानवधर्म- मनुष्यको अपना अज्ञान दूर करना चाहिये ।

[२५]

२५ या दस्रा सिन्धुमातरा मनोतरा रयीणाम् ।
धिया देवा वसुविदा ॥२॥

२५ या । दस्रा । सिन्धुऽमातरा । मनोतरा । रयीणाम् ।
धिया । देवा । वसुऽविदा ॥२॥

२५ अन्वयः- या देवा, दस्रा, सिन्धुमातरा, रयीणां मनोतरा, धिया वसु विदा ।

२५ अर्थ - (या देवा, दस्रा) जो तुम दोनों देवतारूपी, शत्रुविनाशकर्ता (सिन्धु-मातरा, रयीणां मनो-तरा) नदी को माता समझनेवाले, धनों को मनतोक देनेहारे तथा (धिया वसुविदा) कर्म और बुद्धिके अनुसार धन को देने हारे हो ।

२५ भावार्थ- अभिदेव शत्रु का नाश करनेवाले, धनका दान करनेवाले नदीको माता माननेवाले और कर्म करने की योग्यतानुसार धन देनेवाले हैं ।

२५ मानवधर्म- मनुष्य अपने शत्रु को दूर करे, धन का दान करे, जो जैसा कर्म करेगा वैसा धन उस कर्म की योग्यतानुसार उस को देता रहे, अधिक कर्म कराकर थोडा धन न देवे, अपने देश की नदियों की माता के समान सुरक्षा करें। क्योंकि उनसे धान्य उत्पन्न होकर मानवों का पोषण होता है ।

[२६]

२६ वृच्यन्ते वां ककुहासो जूर्णायामधि विष्टपि ।
यद् वां रथो विभिष्पतात् ॥३॥

२६ वृच्यन्ते । वाम् । ककुहासः । जूर्णायाम् । अधि । विष्टपि ।
यत् । वाम् । रथः । विऽभिः । पतात् ॥३॥

२६ अन्वयः- वां रथ यत् विभिः पतात्, जूर्णायां, अधि विष्टपि, वां ककुहासः वृच्यन्ते ॥ ३ ॥

२६ अर्थ- (वां रथः) तुम दोनों का रथ (यत् विभिः पतात्) जिस समय पक्षि के सदृश उडने लगता है, तब (जूर्णायां) प्रशंसा के योग्य (अधि विष्टपि) द्युलोक में भी (वां ककुहास वृच्यन्ते) तुम दोनों के प्रधान कर्मों का वर्णन किया जाता है ।

२६ भावार्थ- अश्वि देवों का रथ पक्षी के सदृश आकाश में उडने लगता है, तब स्वर्ग में भी उस की प्रशंसा होती है । (यह रथ विमान ही है ।)

२६ मानवधर्म- आकाशमें गमन करने के लिये आकाश गामी रथ (विमान) मनुष्य बनावें । यह कर्म प्रशंसा योग्य है ।

[२७]

२७ हविषा जारो अपां पिपर्ति पपुरिर्नरा ।
पिता कुटस्य चर्षणिः ॥४॥

२७ हविषा । जारः । अपाम् । पिपर्ति । पपुरिः । नरा ।
पिता । कुटस्य । चर्षणिः ॥४॥

२७ अन्वयः– नरा ! अपां जारः, पपुरिः कुटस्य चर्षणिः पिता हविषा पिपर्ति । ३-४ ॥

२७ अर्थ– हे (नरा !) नेताओ ! (अपां जारः) जलों को सुखानेवाला (पपुरिः पिता) पोषणकर्ता पिता (कुटस्य चर्षणिः) किये हुए कार्योंका निरीक्षक सूर्य (हविषा पिपर्ति) हवि से आपको संतुष्ट करता है।

२७ भावार्थ– जल को सुखानेवाला, सब का पोषक, कृत कर्मों को देखने वाला पिता सूर्य अश्विदेवों को अन्न से सन्तुष्ट करता है।

२७ मानवधर्म– मनुष्य अन्न उत्पन्न करे, उस से यज्ञ करे, अनुयायियोंका पोषण करें, अनुयायियों के लिये कर्मों का निरीक्षण करे और योग्यतानुसार उन को धन आदि देवे।

२७ टिप्पणी– कुट = कृत = किया कर्म।

[२८]

२८ आ॒दा॒रो वां॑ म॒ती॒नां नास॑त्या मतवचसा ।
पा॒तं सोम॑स्य धृष्णु॒या ॥५॥

२८ आ॒ऽदा॒रः । वा॒म् । म॒ती॒नाम् । नास॑त्या । म॒त॒ऽव॒च॒सा॒ ।
पा॒तम् । सोम॑स्य । धृ॒ष्णु॒ऽया ॥५॥

२८ अन्वयः– मतवचसा नासत्या ! वां मतीनां आदारः, धृष्णुया सोमस्य पातं ।

२८ अर्थ– (मत-वचसा नासत्या) हे मनन पूर्वक भाषण करनेहारे तथा असत्य से दूर रहनेवाले अश्विदेवो ! यह (वां मतीनां आदारः) तुम दोनों की बुद्धियों को प्रेरणा करनेवाला है, (धृष्णुया सोमस्य पातं) धर्षक शक्ति देनेवाले सोम का पान करो।

२८ भावार्थ- अश्विदेव मनन पूर्वक भाषण करते हैं, वे सोम रस पीते हैं जो धीरत्व के उत्साह को बढाता है।

२८ मानवधर्म- मनुष्य भाषण करने के पूर्व मनन करे और अपना वक्तव्य निश्चित करें और उतना ही बोले। बल वर्धक रसों का पान करें।

२८ टिप्पणी– मतवचस् = मनन पूर्वक किया भाषण। धृष्णु = शत्रु पर हमला करने की शक्ति।

[२९]

२९ या नः पीपरदश्विना ज्योतिष्मती तमस्तिरः ।
तामस्मे रासाथामिषम् ॥६॥

२९ या । नः । पीपरत् । अश्विना । ज्योतिष्मती । तमः । तिरः ।
ताम् । अस्मे इति । रासाथाम् । इषम् ॥६॥

२९ अन्वयः- अश्विना ! या ज्योतिष्मती तमः तिरः नः पीपरत्, तां इषं अस्मे रासाथां ॥६॥

२९ अर्थ- हे अश्विदेवो ! (या ज्योतिष्मती) जो प्रकाश से पूर्ण हो कर (तमः तिरः) अँधियारी को दूर हटाकर (नः पीपरत्) हमें पुष्ट करता है, (तां इषं) उस अन्न को (अस्मे रासाथां) हमें दे दो ।

२९ भावार्थ- अश्विदेव ऐसा अन्न देते हैं, जो हमें प्रकाश देगा, अन्धकार दूर करेगा और हमारा पालन भी करेगा ।

२९ मानवधर्म- मनुष्य अपने अज्ञानान्धकार को दूर करें, ज्ञानके प्रकाश को प्राप्त करें और उत्तम पुष्टि देनेवाला अन्न प्राप्त करें ।

[३०]

३० आ नो नावा मतीनां यातं पाराय गन्तवे ।
युञ्जाथामश्विना रथम् ॥७॥

३० आ । नः । नावा । मतीनाम् । यातम् । पाराय । गन्तवे ।
युञ्जाथाम् । अश्विना । रथम् ॥७॥

३० अन्वयः- अश्विना ! रथं युञ्जाथां, पाराय गन्तवे नः मतीनां नावा आयातं ॥ ७ ॥

३० अर्थ- हे अश्वि देवो ! (रथं युञ्जाथां) तुम दोनों अपना रथ जोतो, (पाराय गन्तवे) पार चले जाने के लिये (नः मतीनां) हमारी बुद्धिपूर्वक रची हुई (नावा आयातं) नौकासे आओ ।

३० भावार्थ- समुद्र को पार करके आना हो तो नौकासे आवें, ये नौकाएं उत्तम बुद्धि से तैयार की हैं । भूमि पर से रथ जोड कर आओ ।

३० मानवधर्म- मनुष्य समुद्र पार करनेके लिये उत्तमसे उत्तम नौकायें तैयार करे और भूमीपर संचार करनेके लिये उत्तम रथ तैयार करे ।

[३१]

३१ अरित्रं वां दिवस्पृथु तीर्थे सिन्धूनां रथः ।
धिया युयुज्र इन्दवः ॥८॥

३१ अरित्रम् । वाम् । दिवः । पृथु । तीर्थे । सिन्धूनाम् । रथः ।
धिया । युयुज्रे । इन्दवः ॥८॥

३१ अन्वय.- सिन्धूनां तीर्थे वां अरित्रं दिवः पृथु रथः, इन्दवः धिया युयुज्रे ॥८॥

३१ अर्थ (सिन्धुना तीर्थे) नदियों की उतराई के स्थानपर (वां अरित्रं) तुम दोनो की चल्ली या नाव खेनेका डंडा (दिवः पृथु) द्युलोक जैसा विस्तीर्ण है, (रथः) तुम दोनों का रथ भी तैयार है, यहां वे (इन्दवः धिया युयुज्रे) सोमरस कुशलता से तैयार किये हैं ।

३१ भावार्थ- नदियों में जहां उतार होता है, वहां अच्छी विस्तीर्ण चल्लियां तैयार हैं, भूमि पर रथ भी तैयार है, यहां सोमरस भी तैयार रखे हैं ।

३१ मानवधर्म- नदियोंके उतारके स्थानपर नौका रखनेके लिये आवश्यक साधन रहें, मनुष्योंके लिये रथ भी वहाँ रहें और खानपानका भी सतत प्रबंध रहे ।

[३२]

३२ दिवस्कण्वास इन्दवो वसु सिन्धूनां पदे ।
स्वं वव्रिं कुह धित्सथः ॥९॥

३२ दिवः । कण्वासः । इन्दवः । वसु । सिन्धूनाम् । पदे ।
स्वम् । वव्रिम् । कुह । धित्सथः ॥९॥

३२ अन्वय — कण्वासः ! दिव इन्दवः, सिन्धूनां पदे वसु, स्वं वव्रिं कुह धित्सथः ॥ ९ ॥

३२ अर्थ- (कण्वासः) हे कण्वपरिवारके लोगो ! (दिवः इन्दवः) द्युलोक से सोमरस लाये हैं। (सिन्धूनां पदे वसु) नदियों के तटपर धन है, अब (स्वं वव्रिं) अपने स्वरूप को (कुह धित्सथः) भला तुम दोनों किधर रखना चाहते हो ?

३२ भावार्थ- पर्वतके शिखर पर से सोम लाकर तयार रखा है, नदीपार होनेपर यहां धन भी बहुत है। हे बुद्धिमानों ! आप अब कहां जायेंगे ?

३२ मानवधर्म- पर्वतपरसे औषधियां ला कर उन के रस पीने के लिये तैयार करो। समुद्र के पार जाकर धन भी कमाओ।

[३३]

३३ अभूदु भा उ अंशवे हिरण्यं प्रति सूर्यः ।
व्यख्यज्जिह्वयासितः ॥१०॥

३३ अभूत् । ऊँ इति । भाः । ऊँ इति । अंशवे ।
हिरण्यम् । प्रति । सूर्यः ।
वि । अख्यत् । जिह्वया । असितः ॥१०॥

३३ अन्वयः- भाः अंशवे अभूत् उ, सूर्यः हिरण्यं प्रति; असितः जिह्वया वि अख्यत् ॥ ९-१० ॥

३३ अर्थ- (भाः अंशवे) यह आभा सोम के लिये ही (अभूत् उ) प्रकट हुई है, (सूर्यः हिरण्यं प्रति) सूर्य सुवर्ण जैसा प्रकाश से युक्त हो रहा है, (अ-सितः) कुछ फीकासा पड़ा हुआ अग्नि (जिह्वया वि अख्यत्) अपनी ज्वाला से विशेषतया प्रकाशमान हो चुका है।

३३ भावार्थ- सोम का रस तैयार करने के लिये ही यह उषा का प्रकाश हुआ है, इसीलिये सूर्य प्रकाशित हुआ है, अग्नि भी इसीलिये प्रदीप्त हुआ है।

३३ मानवधर्म- सोम, सूर्य और अग्नि मनुष्यों की सहायता करने के लिये सिद्ध हैं (अर्थात् मनुष्य पुरुषार्थ करके उनसे सुख प्राप्त करे।)

[३४]

३४ अभूदु पारमेतवे पन्था ऋतस्य साधुया ।
अदर्शि वि स्रुतिर्दिवः ॥११॥

३७ अर्थ- (परिज्मनोः युवोः) चारों ओर घूमनेवालों तुम दोनों की (श्रियं अनु) शोभाके पीछे पीछे (उषा उपाचरत्) उषा प्रकट हो समीप संचार कर रही है; (अक्तुभिः) रात्रियों में (ऋता वनथः) तुम दोनों यज्ञों का सेवन करते हो।

३७ भावार्थ- उषः काल के पूर्व अश्विदेव चारों ओर भ्रमण करते हैं। और रात्री के समय में भी यज्ञों को देखते हैं।

३७ मानवधर्म- नेता लोग अनुयायियों के पूर्व ही उठकर चारों ओर के सब कर्मों की अच्छी तरह देखभाल करें। रात्रीके समयमें भी निरीक्षण करें।

३७ टिप्पणी- परि-ज्मा= चारों ओर भ्रमण करनेवाला। ऋतं=सरलता, यज्ञ, श्रेष्ठ कर्म। अक्तु = रात्री।

[३८]

३८ उभा पिबतमश्विनो॒भा नः शर्म यच्छतम्।
अविद्रियाभिरूतिभिः ॥१५॥

३८ उभा। पिबतम्। अश्विना।
उभा। नः। शर्म। यच्छतम्।
अविद्रियाभिः। ऊतिऽभिः ॥१५॥

३८ अन्वय- अश्विना! उभा पिबतं, अविद्रियाभिः ऊतिभिः उभा नः शर्म यच्छतम् ॥ १५ ॥

३८ अर्थ- हे अश्विदेवो! (उभा पिबतं) तुम दोनों सोमपान करो, (अविद्रियाभिः ऊतिभिः) निरलस रक्षाओं की आयोजनाओं के साथ (उभा) तुम दोनों (नः शर्म यच्छतं) हमें सुख दे दो।

३८ भावार्थ- अश्विदेव सोम पान करें और निरलस रक्षाओं से सब को सुख देवें।

३८ मानवधर्म— नेता लोग आलस्य छोडकर अनुयायियोंकी रक्षा करें और उनको सुखी करें। वनस्पतियों के रसों का पान करें।

३८ टिप्पणी- अ-विद्रिया =विद्रि=निन्दा, अ विद्रिया= अनिंद्य, निरलस वृत्ति।

[३९] (ऋ० १।४७।१-१०)

प्रगाथ:=(विषमा) बृहती, (समा) सतो बृहती।

३९ अयं वां मधुमत्तमः सुतः सोम ऋतावृधा ।
तमश्विना पिबतं तिरोअह्न्यं धत्तं रत्नानि दाशुषे ॥१॥

३९ अयम् । वाम् । मधुमत्ऽतमः । सुतः । सोमः । ऋतऽवृधा ।
तम् । अश्विना । पिबतम् । तिरःऽअह्न्यम् ।
धत्तम् । रत्नानि । दाशुषे ॥१॥

३९ अन्वयः- ऋतावृधा अश्विना ! अयं मधुमत्तमः सोमः वां सुतः; तिरोअह्न्यं तं पिबतं, दाशुषे रत्नानि धत्तम् ॥ १ ॥

३९ अर्थ- हे (ऋतावृधा अश्विना) यज्ञ को बढानेवाले अश्विदेवो ! (अयं मधुमत्तमः) यह अत्यन्त मीठा (सोमः वां सुतः) सोम तुम दोनोंके लिए निचोडा जा चुका है, (तिरोअह्न्यं तं पिबतं) कल निचोडे हुए उस रसको तुम दोनों पी लो और (दाशुषे रत्नानि धत्तं) दाता को अनेक रत्न दे दो।

३९ भावार्थ- यज्ञ की वृद्धि करनेवाले अश्विदेव यहां आवें और हममे गत दिन तैयार कर के रखा हुआ यह अत्यंत मीठा सोमरस पीवें, और दाता को अनेक रत्न देवें।

३९ मानवधर्म- यज्ञ की वृद्धि करो। सोम आदि वनस्पतियोंका रस पीओ और उदार दाताओं को बहुत धन दे दो।

३९ टिप्पणी- ऋतावृधा = सत्यका विस्तार करनेवाले, यज्ञ मार्गका प्रचार करनेवाले, सत्य धर्म के प्रचारक। तिरो-अह्न्यं = गत दिन।

[४०]

४० त्रिवन्धुरेण त्रिवृता सुपेशसा रथेना यातमश्विना ।
कण्वासो वां ब्रह्म कृण्वन्त्यध्वरे तेषां सु शृणुतं हवम् ॥२॥

४० त्रिऽवन्धुरेण । त्रिऽवृता । सुऽपेशसा ।
रथेन । आ । यातम् । अश्विना ।
कण्वासः । वाम् । ब्रह्म । कृण्वन्ति । अध्वरे ।
तेषाम् । सु । शृणुतम् । हवम् ॥२॥

३४ अभूत् । ऊँ इति । पारम् । एतवे ।
पन्थाः । ऋतस्य । साधुऽया ।
अदर्शि । वि । स्रुतिः । दिवः ॥११॥

३४ अन्वयः- ऋतस्य पन्थाः पारं एतवे साधुया अभूत् उ; दिव. विस्रुतिः अदर्शि ॥ ११ ॥

३४ अर्थ- (ऋतस्य पन्था) यज्ञ का मार्ग (पारं एतवे) दु.ख के पार होने के लिए (साधुया अभूत् उ) अच्छा बन चुका है। (दिवः) द्युलोक से (विस्रुतिः अदर्शि) विशेष प्रकाश की प्रभा दीख पडी है।

३४ भावार्थ- दुःख से पार होनेके लिए यह यज्ञ का मार्ग उत्तम रीतिसे बन गया है। मानो यह स्वर्ग से प्रकाश ही आया है।

३४ मानवधर्म- मनुष्यों के दुःख दूर करने के लिये यह यज्ञ का मार्ग बडा ही सरल मार्ग है। इसमें किसी तरहके कष्ट नहीं हैं। यह स्वर्गका ही मार्ग है।

[३५]

३५ तत्तदिदश्विनोरवो जरिता प्रति भूषति ।
मदे सोमस्य पिप्रतोः ॥१२॥

३५ तत्ऽतत् । इत् । अश्विनोः । अवः ।
जरिता । प्रति । भूषति ।
मदे । सोमस्य । पिप्रतोः ॥१२॥

३५ अन्वयः- सोमस्य मदे पिप्रतोः अश्विनोः तत् तत् अव. इत् जरिता प्रति भूषति ॥ १२ ॥

३५ अर्थ- (सोमस्य मदे) सोमरसके सेवन से उत्पन्न हर्षमें (पिप्रतोः अश्विनोः) जनता को सन्तुष्ट रखनेवाले अश्विदेवों के (तत् तत्) उसी (अवः इत्) संरक्षणको (जरिता प्रति भूषति) स्तोता अच्छे ढंगसे वर्णित करता है।

३५ भावार्थ- अश्विदेव सोम पीकर आनन्दित होते और जनताको संतुष्ट करके उन की सुरक्षा करते हैं। इस की स्तुति सभी करते हैं।

३५ मानवधर्म- मनुष्य स्वयं आनन्द प्रसन्न रहें, अन्योंको संतुष्ट करें और जनताकी उत्तम रक्षा करें। यही प्रशंसनीय कार्य है।

[३६]

३६ वावसाना विवस्वति सोमस्य पीत्या गिरा।
मनुष्वच्छंभू आ गतम् ॥१३॥

३६ ववसाना। विवस्वति। सोमस्य। पीत्या। गिरा।
मनुष्वत्। शंभू इति शम्ऽभू। आ। गतम् ॥१३॥

३६ अन्वयः- शंभू! मनुष्वत् विवस्वति वावसाना! गिरा सोमस्य पीत्या आगतम् ॥ १३ ॥

३६ अर्थ- हे (शंभू) सुख देनेवाले और (मनुष्वत् विवस्वति) मनु के समान विशेष सेवा करनेवाले के समीप (वावसाना) रहने की इच्छा करनेवाले अश्विदेवो! (गिरा) हमारे भाषण से आकर्षित होकर (सोमस्य पीत्या) सोमपान करने के निमित्त (आगतं) इधर आओ!

३६ भावार्थ— अश्विदेव सब को सुख देते और अनुयायियों के संघ में रहते हैं। वे सोमपान के लिये यहां आवें।

३६ मानवधर्म- नेता अनुयायियोंको सुख देवे, उनके साथ रहे, उनसे पृथक् न रहे। वनस्पतियों के मधुर रसों का पान करे।

[३७]

३७ युवोरुषा अनु श्रियं परिज्मनोरुपाचरत्।
ऋता वनथो अक्तुभिः ॥१४॥

३७ युवोः। उषाः। अनु। श्रियम्।
परिऽज्मनोः। उपऽआचरत्।
ऋता। वनथः। अक्तुऽभिः ॥१४॥

३७ अन्वयः- परिज्मनोः युवोः श्रियं अनु उषा उपाचरत् अक्तुभिः ऋता व .थः ॥ १४ ॥

४० अन्वयः- अश्विना ! सुपेशसा त्रिवृता त्रिवन्धुरेण रथेन आयातं, अध्वरे वां कण्वासः ब्रह्म कृण्वन्ति, तेषां हवं सु शृणुतम् ॥ २ ॥

४० अर्थ- हे अश्वि देवो ! (सुपेशसा त्रिवृता) सुन्दर आकारवाले, तीन छोरवाले, (त्रिवन्धुरेण रथेन आयातं) तीन शिखरोंसे युक्त रथपर चढकर आओ । (अध्वरे) हिंसा रहित कार्य में (वां) तुम दोनों के लिए (कण्वासः ब्रह्म कृण्वन्ति) कण्व परिवार के लोग काव्य, स्तोत्र, बनाते हैं, करते हैं, (तेषां हवं) उन की पुकार को (सु शृणुतं) भली भाँति सुन लो ।

४० भावार्थ- हे अश्विदेव ! तुम दोनों दीखने में सुन्दर, तीन छोरवाले और तीन शिखरोंवाले अपने रथ में बैठकर यहां आओ और इस हिंसा रहित यज्ञ में जो कण्वों का मन्त्र पाठ हो रहा है उसे सुन लो ।

४० मानवधर्म- सुन्दर रथ तैयार करो, उन रथों में बैठकर यज्ञ के स्थान में जाओ और यहां के पुण्य कर्म का निरीक्षण करो। नेता लोग वहां के काव्य गान को सुनें ।

४० टिप्पणी- सुपेशस् = सुन्दर, सुरूप, जिस पर विशेष चमक है । त्रिवृत = तीन आवरणवाला, तीन बाजूवाला । त्रि वंधुर = तीन शिखरवाला, तीन आसन जिस में हैं, तीन दण्ड जिस में लगें हों । अध्वर = जिस में हिंसा नहीं होती, जो अनिंदित है, जिस में कपट छल आदि नहीं है ।

[४१]

४१ अश्विना मधुमत्तमं पातं सोममृतावृधा ।
अथाद्य दस्रा वसु बिभ्रता रथे दाश्वांसमुप गच्छतम् ॥३॥

४१ अश्विना । मधुमत्ऽतमम् । पातम् । सोमम् । ऋतऽवृधा ।
अथ । अद्य । दस्रा । वसु । बिभ्रता । रथे ।
दाश्वांसम् । उप । गच्छतम् ॥३॥

४१ अन्वयः- ऋतावृधा दस्रा ! अश्विना ! मधुमत्तमं सोमं पातं अथ अद्य रथे वसु बिभ्रता दाश्वांसं उपगच्छतम् ॥ ३ ॥

४१ अर्थ- हे (ऋतावृधा) यज्ञ को बढानेवाले ! (दस्रा अश्विना) शत्रुविनाशकर्ता अश्विदेवो ! (मधुमत्तमं सोमं पातं) अत्यन्त मीठे सोमरसका

तुम दोनों पान करो। (अद्य अद्य) और आज के दिन (रथे वसु बिभ्रता) रथ में धन रखे हुए तुम दोनों (दाश्वांसं उप गच्छतं) दानी के समीप चले जाओ।

४१ भावार्थ– यज्ञ मार्ग के प्रचारक, शत्रु का नाश करनेवाले अश्विदेवो ! मधुर सोमरस पीओ और अपने रथ में बहुत धन रखकर दाताको उस का दान करो।

४१ मानवधर्म– यज्ञ मार्ग [redacted] प्रचार करो। शत्रु का नाश करो। धनका दान करो और रसपान करो।

[४२]

४२ त्रिषधस्थे बर्हिषि विश्ववेदसा मध्वा यज्ञं मिमिक्षतम् ।
कण्वासो वां सुतसोमा अभिद्यवो युवां हवन्ते अश्विना ॥४॥

४२ त्रिऽसधस्थे । बर्हिषि । विश्वऽवेदसा ।
मध्वा । यज्ञम् । मिमिक्षतम् ।
कण्वासः । वाम् । सुतऽसोमाः । अभिऽद्यवः ।
युवाम् । हवन्ते । अश्विना ॥४॥

४२ अन्वयः– विश्ववेदसा अश्विना ! त्रिषधस्थे बर्हिषि यज्ञं मध्वा मिमिक्षतम्। अभिद्यवः कण्वासः वां सुतसोमाः युवां हवन्ते ॥ ४ ॥

४२ अर्थ– हे (विश्ववेदसा अश्विना) सब कुछ जाननेहारे अश्विदेवो ! (त्रिषधस्थे बर्हिषि) तीन स्थानों पर रखे हुए कुशासनपर बैठकर (यज्ञं मध्वा मिमिक्षतं) यज्ञ को मधु से युक्त करो (अभिद्यवः कण्वासः) योतमान कण्वके पुत्र ([redacted] सुतसोमाः) तुम दोनों के लिए सोमरस निचोडकर (युवां हवन्ते) तुम दोनों को बुलाते हैं।

४२ भावार्थ– सर्वज्ञ अश्विदेवो ! तीन कोनोंवाले आसन पर बैठो और यज्ञ को मधुरिमामय करो। सोमरस निचोडकर ये कण्व तुम्हें बुलाते हैं।

४२ मानवधर्म– आसन पर आकर बैठो, सर्वत्र मीठा वायुमण्डल बनाओ।

४२ टिप्पणी– विश्व-वेदस्=सब कुछ जाननेवाले, सब धन जिनके पास है। अभिद्यु= तेजस्वी, जिस के चारों ओर तेज है।

[४३]

४३ याभिः कण्वमभिष्टिभिः प्रावतं युवमश्विना ।
ताभिः ष्व१स्माँ अवतं शुभस्पती पातं सोममृतावृधा ॥५॥

४३ याभिः । कण्वम् । अभिष्टिऽभिः ।
प्र । आवतम् । युवम् । अश्विना ।
ताभिः । सु । अस्मान् । अवतम् । शुभः । पती इति ।
पातम् । सोमम् । ऋतऽवृधा ॥५॥

४३ अन्वयः- ऋतावृधा शुभस्पती अश्विना ! युवं याभिः अभिष्टिभिः कण्वं प्रावतं, ताभिः अस्मान् सु अवतं, सोमं पातम् ॥ ५ ॥

४३ अर्थ- हे (ऋतावृधा) यज्ञ को बढानेवाले (शुभस्पती अश्विना) सज्जनों के पालक अश्विदेवो ! (युवं) तुम दोनों ने (याभिः अभिष्टिभिः) जिन इच्छा योग्य शक्तियोंसे (कण्वं प्र अवत) कण्व की अच्छी रक्षा की थी (ताभिः अस्मान्) उन्हीं से हमारी (सु अवत) भली प्रकार रक्षा करो और (सोमं पातं) सोम का पान करो ।

४३ भावार्थ- अश्विदेव यज्ञ के प्रसारक और शुभ कार्यों के रक्षक हैं । उन्होंने कण्व की जैसी रक्षा की थी, वैसी ही वे हमारी रक्षा करें, क्योंकि हम भी अच्छे कर्म कर रहे हैं ।

४३ मानवधर्म- मनुष्य यज्ञ मार्ग का प्रचार करें और सदा शुभ कर्म करते रहें । तथा शुभ कर्म करनेवालों की रक्षा करें ।

४३ टिप्पणी- अभिष्टि = प्रशंसनीय शक्ति, जो शक्ति हर एक के पास रहने योग्य है ।

[४४]

४४ सुदासे दस्रा वसु बिभ्रता रथे पृक्षो वहतमश्विना ।
रयिं समुद्रादुत वा दिवस्पर्यस्मे धत्तं पुरुस्पृहम् ॥६॥

४४ सुऽदासे॑ । दस्रा । वसु॑ । बिभ्र॑ता । रथे॑ ।
पृक्षः॑ । वहतम् । अश्विना ।
रयिम् । समुद्रात् । उत । वा । दिवः । परि॑ ।
अस्मे इति॑ । धत्तम् । पुरुऽस्पृह॑म् ॥६॥

४४ अन्वयः- दस्रा अश्विना ! रथे वसु बिभ्रता सुदासे पृक्षः वहतं; समुद्रात् उत दिवः परि वा अस्मे पुरुस्पृहं रयिं धत्तम् ॥ ६ ॥

४४ अर्थ- हे (दस्रा अश्विना) शत्रु नाशक अश्विदेवो ! (रथे वसु बिभ्रता) रथ में धन रखकर आनेवाले तुम दोनों (सुदासे पृक्षः वहतं) सुदास को अन्न सामग्री पहुँचाओ; (समुद्रात्) समुन्दरमें से (उत) या (दिवः परि वा) द्युलोक से (अस्मे) हमारे लिए (पुरुस्पृहं रयिं धत्तं) बहुतों द्वारा स्पृहणीय धन दे दो।

४४ भावार्थ- अश्विदेव शत्रु का नाश करते हैं। उन्होंने अपने रथ पर बहुत धन रख कर सुदास को बहुत ही द्रव्य दिया था, उसी तरह समुद्रसे अथवा स्वर्ग से धन लाकर वे हमें दें।

४४ मानवधर्म- मनुष्य शत्रु का नाश करें। अपने रथ पर बहुत धन और धान्य रख कर अपने अनुयायियों को बांटें। वे यह धन समुद्रके पार से, पर्वतके शिखरपर जा कर अथवा किसी अन्य स्थान से ले आवें और उस का प्रदान करें।

४४ टिप्पणी- पृक्षः = अन्न। वसु = धन। पुरु स्पृह = बहुतों द्वारा प्रशंसित।

[४५]

४५ यन्ना॑सत्या परा॒वति॒ यद् वा॒ स्थो अधि॑ तु॒र्वशे॑ ।
अतो॒ रथे॑न सु॒वृता॑ न॒ आ ग॑तं सा॒कं सूर्य॑स्य र॒श्मिभिः॑ ॥७॥

४५ यत् । नासत्या । पराऽवति॑ ।
यत् । वा । स्थः । अधि॑ । तुर्वशे॑ ।
अतः॑ । रथे॑न । सुऽवृता॑ । नः । आ । गतम् ।
साकम् । सूर्य॑स्य । रश्मिऽभिः॑ ॥७॥

४५ अन्वयः— नासत्या ! यत् तुर्वशे अधिस्थः यत् वा परावति अतः सुवृता रथेन सूर्यस्य रश्मिभिः साकं नः आगतं ॥ ७ ॥

४५ अर्थ— (नासत्या !) हे सत्य के पालक अश्विदेवो ! (यत् तुर्वशे अधिस्थः) जो तुम दोनों समीप रहे हो, (यत् वा) अथवा (परावति) सुदूरवर्ती स्थान में रहे हो, (अतः सुवृता रथेन) वहां से, सुन्दर रथ में बैठकर (सूर्यस्य रश्मिभिः साकं) सूरज के किरणों के साथ (नः आगतं) हमारे समीप आओ।

४५ भावार्थ— अश्विदेव सत्य का पालन करते हैं। ये समीप हों या दूर रहें, परन्तु ये अपने रथ पर चढ़ कर सूर्योदय के समय ही हमारे पास आवें।

४५ मानवधर्म- मनुष्य सत्य का पालन करें। असत्य मार्ग से न जाय। नेता लोग कहीं भी हों, वे अपने वाहनोंपर बैठकर जहां कार्यकर्ता कार्य करते हों, वहां तड़के ही पहुंच जाँय और उस कार्य का निरीक्षण करें।

४५ टिप्पणी- तुर्वशः = त्वरासे वश होनेवाला, समीपस्थ। परा-वत् = दूर रहनेवाला।

[४६]

४६ अर्वाञ्चा वां सप्तयोऽध्वरश्रियो वहन्तु सवनेदुप।
इषं पृञ्चन्ता सुकृते सुदानव आ बर्हिः सीदतं नरा ॥८॥

४६ अर्वाञ्चा। वाम्। सप्तयः। अध्वरऽश्रियः।
वहन्तु। सवना। इत्। उप।
इषम्। पृञ्चन्ता। सुऽकृते। सुऽदानवे।
आ। बर्हिः। सीदतम्। नरा ॥८॥

४६ अन्वयः— नरा ! अध्वर श्रियः सप्तयः वां सवना अर्वाञ्चा उप इत् वहन्तु, सुकृते सुदानवे इषं पृञ्चन्ता बर्हिः आसीदतं ॥ ८ ॥

४६ अर्थ— हे (नरा) नेताओ ! (अध्वरश्रियः सप्तयः) यज्ञ की शोभा बढ़ानेवाले तुम्हारे घोड़े (वां सवना) तुम दोनों को सोम सवन के अवसर पर (अर्वाञ्चा) समीप आनेवाले बनाकर (उप इत् वहन्तु) यज्ञ के समीप ही लेकर के आवें, (सुकृते सुदानवे) श्रेष्ठ कार्य करने और दानी पुरुष के लिए (इषं पृञ्चन्ता) अन्न की पूर्ति करते हुए तुम दोनों (बर्हिः आसीदतं) कुशासन पर बैठ जाओ।

४६ भावार्थ- हे नेता अश्विदेवो ! तुम्हारे घोडे यज्ञ भूमि की शोभा बढाते हैं। वे तुम्हें सोमरस निचोडने के समय यज्ञ के पास ले आवें। आने पर तुम दोनों आसनों पर बैठ जाओ।

४६ मानवधर्म- नेता लोग सदा जहाँ शुभ कार्य चलते हों वहाँ जायँ, उस कार्य के कर्ताओं की हर प्रकार की सहायता करें। शुभ कार्यों में जायँ, वहां बैठें, उस का निरीक्षण करें।

४६ टिप्पणी- सुकृत् = उत्तम शुभ कार्य करनेवाला। सुदानु = उत्तम दान देनेवाला, उदार। अध्वरश्री=यज्ञकी शोभा बढानेवाला।

[४७]

४७ तेन॑ नास॒त्या ग॑तं॒ रथे॑न॒ सूर्य॑त्वचा।
येन॒ शश्व॑दू॒हथु॑र्दा॒शुषे॒ वसु॒ मध्वः॒ सोम॑स्य पी॒तये॑ ॥९॥

४७ तेन॑। नास॒त्या। आ। ग॒तम्। रथे॑न। सूर्य॑ऽत्वचा।
येन॑। शश्व॑त्। ऊ॒हथुः॑। दा॒शुषे॑। वसु॑।
मध्वः॑। सोम॑स्य। पी॒तये॑ ॥९॥

४७ अन्वयः- नासत्या! येन सूर्यत्वचा रथेन दाशुषे शश्वत् वसु ऊहथुः तेन मध्वः सोमस्य पीतये आगतं ॥ ९ ॥

४७ अर्थ- (नासत्या) हे असत्य से दूर रहनेवाले! (येन सूर्यत्वचा रथेन) जिस सूर्यसम कान्तिवाले रथ से (दाशुषे शश्वत्) दाता के लिए हमेशा (वसु ऊहथुः) धन ढोकर तुम दोनों पहुँचा देते हो, (तेन) उसी रथ पर बैठकर (मध्वः सोमस्य पीतये) मीठे सोमरस के पान के लिए (आगतं) तुम दोनों आओ।

४७ भावार्थ- अश्विदेव असत्यका आश्रय कभी नहीं करते। अपने सूर्य के समान तेजस्वी रथ पर बैठकर दाता लोगों को धन देने के लिये सदा जाते हैं। उसी रथ पर बैठकर वे मधुर सोमरस पीने के लिये हमारे पास आ जायँ।

४७ मानवधर्म- कभी असत्य का आश्रय न करो। अपने रथ पर चढ कर अपने अनुयायियों को धन का प्रदान करो।

४७ टिप्पणी- सूर्यत्वक् = सूर्य के समान त्वचावाला, तेजस्वी।

[४८]

४८ उक्थेभिरर्वागवसे पुरूवसू अर्कैश्च नि ह्वयामहे ।
शश्वत् कण्वानां सदसि प्रिये हि कं सोमं पपथुरश्विना ॥१०॥

४८ उक्थेभिः । अर्वाक् । अवसे । पुरुवसू इति पुरुऽवसू ।
अर्कैः । च । नि । ह्वयामहे ।
शश्वत् । कण्वानाम् । सदसि । प्रिये । हि । कम् ।
सोमम् । पपथुः । अश्विना ॥१०॥

४८ अन्वयः- पुरुवसू अश्विना ! उक्थेभिः अर्कैः च अवसे अर्वाक् नि ह्वयामहे; कण्वानां प्रिये सदसि हि कं सोमं शश्वत् पपथुः ॥ १० ॥

४८ अर्थ- हे (पुरुवसू अश्विना) बहुत धनवाले अश्विदेवो ! (उक्थेभिः अर्कैः च) स्तोत्रों से और अर्चनों से हम (अवसे) अपनी रक्षा के लिए (अर्वाक् नि ह्वयामहे) हमारे सम्मुख तुम्हें बुला रहे हैं। (कण्वानां प्रिये सदसि हि) कण्वों के प्रिय यज्ञ सभा मंडप में तो (कं सोमं) आनन्ददायी सोमरस को (शश्वत् पपथुः) सदासे तुम दोनों पीते आये हो।

४८ भावार्थ- अश्विदेवों के पास बहुत ही धन रहता है। अपनी रक्षा करने के लिए उन को हम स्तोत्रों द्वारा बुलाते हैं। कण्वों के यज्ञ में ये सोम रस पीने के लिये वारंवार आते हैं।

४८ मानवधर्म- नेता अपने पास बहुत धन रखे। उस से अपने अनुयायियों का हित करे, अनुयायियों को सुरक्षित रखने के लिये प्रयत्न करे।

४८ टिप्पणी- पुरुवसु=बहुत धनी। उक्थ=स्तोत्र, सूक्त। अर्क=पूजा, अर्चना।

[४९] (ऋ० १।९२।१६-१८)
गोतमो राहूगणः। उष्णिक्।

४९ अश्विना वर्तिरस्मदा गोमद् दस्रा हिरण्यवत् ।
अर्वाग्रथं समनसा नि यच्छतम् ॥१६॥

४९ अश्विना । वर्तिः । अस्मत् । आ ।
गोऽमत् । दस्रा । हिरण्यऽवत् ।
अर्वाक् । रथम् । सऽमनसा । नि । यच्छतम् ॥१६॥

४९ अन्वयः- दस्रा समनसा ! गोमत् हिरण्यवत् अस्मत् वर्तिः आ, रथं अर्वाक् नियच्छतम् ॥ १६ ॥

४९ अर्थ- हे (दस्रा समनसा) शत्रुनाशक और समान विचारवाले अश्विदेवो! (गोमत् हिरण्यवत्) गोधन एवं सुवर्णसे युक्त होकर तुम (अस्मत् वर्तिः आ) हमारे घर आ जाओ, (रथं अर्वाक्) रथको हमारी ओर (नि यच्छतं) रोककर रखो।

४९ भावार्थ- अश्विदेव शत्रु का नाश करते और दोनों मिलकर एक मन से कार्य करते हैं। वे गौवें और सुवर्णादि धन हमें देवें। अपने रथमें बैठकर हमारे घर पर आ जावें।

४९ मानवधर्म- मनुष्य अपने शत्रु को दूर करें। सब मिलकर एक विचारसे अपना कर्तव्य करें। गौवें और धन अनुयायियोंको बांट दें। रथ में बैठकर अनुयायियों के घर जाकर उनकी परिस्थितिका निरीक्षण करें।

४९ टिप्पणी- समनसा = एक विचारसे कर्तव्य करनेवाला। वर्तिः = घर।

[५०]

५० यावित्था श्लोकमा दिवो ज्योतिर्जनाय चक्रथुः ।
आ न ऊर्जं वहतमश्विना युवम् ॥१७॥

५० यौ । इत्था । श्लोकम् । आ । दिवः ।
ज्योतिः । जनाय । चक्रथुः ।
आ । नः । ऊर्जम् । वहतम् । अश्विना । युवम् ॥१७॥

५० अन्वयः- अश्विना ! इत्था यौ श्लोकं ज्योतिः दिवः जनाय चक्रथुः युवं नः ऊर्जं आवहतम् ॥ १७ ॥

५० अर्थ- हे अश्विदेवो ! (इत्था यौ) इस भाँति जो तुम दोनों (श्लोकं ज्योतिः) वर्णनीय प्रकाश को (दिवः जनाय चक्रथुः) द्युलोक से जनता के लिए कर चुके हो, ऐसे (युवं नः) तुम दोनों हमारे लिए (ऊर्जं आवहतं) बल प्रद अन्न ढोकर ला दो।

५० भावार्थ- अश्विदेव द्युलोक से उत्तम वर्णनीय प्रकाशको मनुष्यों के लिये यहां लाते हैं। वे हमें बलवर्धक अन्न पहुँचावें।

५० मानवधर्म- नेता अपने अनुयायियों को प्रकाश का मार्ग बतावें। बल-वर्धक अन्न दे कर अपने अनुयायियों को हृष्ट पुष्ट और बलिष्ठ करें।

५० टिप्पणी-- ऊर्ज = बल वर्धक अन्न, बल।

[५१]

५१ एह देवा मयोभुवा दस्रा हिरण्यवर्तनी।
उषर्बुधो वहन्तु सोमपीतये ॥१८॥

५१ आ। इह। देवा। मयःऽभुवा।
दस्रा। हिरण्यवर्तनी इति हिरण्यऽवर्तनी।
उषःऽबुधः। वहन्तु। सोमऽपीतये ॥१८॥

५१ अन्वय- उषर्बुधः इह सोमपीतये दस्रा देवा मयोभुवा हिरण्यवर्तनी आवहन्तु ॥ १८ ॥

५१ अर्थ- (उषर्बुध) हे प्रातःकाल जागनेवालों! (इह सोमपीतये) यहांपर सोमपान करनेके लिए (दस्रा देवा) शत्रु विनाशकर्ता, देवतारूपी (मयोभुवा हिरण्यवर्तनी) आरोग्य देनेवाले और सुवर्णमय रथवाले अश्वि-देवों को (आवहन्तु) पहुँचा दें।

५१ भावार्थ- अश्विदेव शत्रु को दूर करते, प्रकाश देते, आरोग्य देते और अपने सुवर्ण के रथपर से वे आते हैं। प्रातःकाल जागनेवाले उन को यहां पहुंचा दें।

५१ मानवधर्म — शत्रु को दूर करे। अपने अनुयायियों को सरल मार्ग बतावें, उन को नीरोग रखे, और सुखी रखे। प्रातःकाल ही उठकर अनुयायी लोग ऐसे नेता का स्वागत करें।

५१ टिप्पणी- उषर्बुध् = सवेरे उठनेवाले। मयोभु = सुख देनेवाला, आरोग्य देनेवाला।

[५२] (ऋ० १।११२।१-२५)

कुत्स आङ्गिरसः। १ (आद्यपादस्य) द्यावापृथिव्यौ, १ (द्वितीय-पादस्य) अग्निः, १ (उत्तरार्धस्य) अश्विनौ, २-२५ अश्विनौ। जगती, २४-२५ त्रिष्टुप्।

५२ ईळे द्यावापृथिवी पूर्वचित्तयेऽग्निं घर्मं सुरुचं यामन्निष्टये।
याभिर्भरे कारमंशाय जिन्वथस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥१॥

५२ ईळे । द्यावापृथिवी इति । पूर्वऽचित्तये ।
अग्निम् । घर्मम् । सुऽरुचम् । यामन् । इष्टये ।
याभिः । भरे । कारम् । अंशाय । जिन्वथः ।
ताभिः । ऊँ इति । सु । ऊतिऽभिः । अश्विना । आ ।
गतम् ॥१॥

५१ अन्वयः- यामन् इष्टये, पूर्वचित्तये, सुरुचं घर्मं अग्निं द्यावा पृथिवी इळे; अश्विना! याभिः कारं भरे अंशाय जिन्वथः ताभिः ऊतिभिः सु आगतम् उ ॥१

५१ अर्थ- (यामन् इष्टये) पहिले ही समय में यज्ञ करने के लिए और (पूर्वचित्तये) प्रथम ही अपना चित्त लगाने के लिये (सुरुचं घर्मं) अच्छी दीप्तिवाले और घर्म (अग्निं द्यावा-पृथिवी इळे) अग्नि और द्यावापृथिवीकी स्तुति मैं करता हूँ, हे अश्विदेवो ! (याभिः) जिनसे (कारं) कार्य कुशल पुरुष को (भरे अंशाय जिन्वथः) संग्राम में अपना हिस्सा पाने के लिए प्रेरित करते हो, (ताभिः ऊतिभिः) उन रक्षाओं के साथ (सु आगतं) तुम दोनों भली भाँति हमारे पास आओ ।

५१ भावार्थ- मेरा यह यज्ञ सफल हो और इस में मेरा चित्त लग जाय, इस लिये मैं द्युलोक, पृथ्वी लोक तथा उस में रहनेवाले अग्नि की स्तुति सब से प्रथम करता हूँ । अश्विदेवो ! कुशल शूर पुरुषको युद्ध में अपना भाग प्राप्त कर लेने के लिये जिन रक्षक शक्तियों के साथ उसे तुम दोनों प्रेरित करते हो, उन संरक्षक शक्तियों के साथ हमारे पास आओ और हमारी सुरक्षा करो ।

५१ मानवधर्म- अपना सत्कर्म सफल बनाने की इच्छासे मनुष्य देवता की प्रार्थना करें । अपना न्याय्य भाग प्राप्त करने के लिये आवश्यक हुए युद्ध में जाने के लिये कुशलता से युद्ध करनेवाले शूर पुरुष को नेता लोग प्रेरणा करें । नेता उन की हर प्रकार की सुरक्षा और सहायताका प्रबंध करें ।

५२ टिप्पणी- यामन्=गमन, गति, आगमन, चढाई, प्रार्थना, अर्पण । इष्टि=इच्छा, आकांक्षा, त्वरा, यज्ञ, यजन, अर्पण । पूर्वचित्ति=पहिले चित्त को लगाना । कारः=कारीगर, कुशल, कार्यकर्ता । भर=भार, विपुल संख्या, संग्रह, चढाई, युद्ध । जिन्व्=तत्पर रहना, उत्साहित करना, प्रेरणा करना, बढाना, सन्तुष्ट करना ।

अश्विनौ ६

[५३]

५३ युवोर्दानाय सुभरा असश्चतो रथमा तस्थुर्वचसं न मन्तवे ।
याभिर्धियोऽवथः कर्मन्निष्टये ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥

५३ युवोः । दानाय । सुऽभराः । असश्चतः ।
रथम् । आ । तस्थुः । वचसम् । न । मन्तवे ।
याभिः । धियः । अवथः । कर्मन् । इष्टये ।
ताभिः । ऊँ इति । सु । ऊतिऽभिः । अश्विना । आ गतम्॥

५३ अन्वयः— अश्विना ! सुभराः असश्चतः वचसं मन्तवे न, युवोः रथं दानाय आ तस्थुः । कर्मन् इष्टये याभिः धियः अवथः ताभिः ऊतिभिः सु आगतम् उ ॥ २ ॥

५३ अर्थ- हे अश्विदेवो ! (सुभराः असश्चतः) उत्तम ढंग से भरण पोषण करनेके इच्छुक अतएव इधर उधर भ्रमण न करनेवाले लोग (वचसं मन्तवे न) विद्वान के पास उस की सलाह पूछने के लिये जैसे जाते हैं, वैसे (रथं युवोः दानाय आतस्थुः) तुम्हारे रथ के पास तुम्हारा दान प्राप्त करने के लिये खडे रहते हैं, (कर्मन् इष्टये) कर्म करने के लिए और इष्टकी प्राप्ती के लिए (याभिः धियः अवथः) जिन से उनकी बुद्धियोंका संरक्षण तुम दोनों करते हो, (ताभिः ऊतिभिः सु आगतं) उन्हीं रक्षाओं से तुम दोनों ठीक तरह इधर आओ ।

५३ भावार्थ— जो लोग अपना भरण पोषण उत्तम प्रकारसे करना चाहते हैं, वे किसी अन्य के पास इधर उधर भ्रमण नहीं करते, वे सीधे अश्विदेवोंके रथ के पास आते हैं और उनसे दान प्राप्त करते हैं। जिस तरह विद्वान से संमति मांगने के लिए उन के पास लोग जाते हैं । जिन संरक्षक शक्तियोंसे अश्विदेव उनकी बुद्धियों और कर्मों की रक्षा करते हैं, उन शक्तियोंसे वे हमारे पास आवें और हमारी रक्षा करें ।

५३ मानवधर्म- अनुयायी लोग अपने नेता के पास जायँ, उनकी सलाह लें और उन से आवश्यक सहायता मांगें । नेता लोग उनकी हर प्रकारसे सहायता करें । नेता लोग अनुयायियों की बुद्धि विकसित करें और उन के शुभ कर्मों की रक्षा करके उनकी वृद्धि करें ।

५३ टिप्पणी- सश्च=(गतौ) गमन करना, सत्कार करना, संमान करना, व्यापना, जाना, । असश्चत्= अचंचल, इधर उधर न जानेवाला । वचस्= वक्ता, विद्वान् ।

[५४]

५४ युवं तासां दिव्यस्यं प्रशासने विशां क्षयथो अमृतस्य मज्मना ।
याभिर्धेनुमस्वं पिन्वथो नरा ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना
गतम् ॥३॥

५४ युवम् । तासाम् । दिव्यस्यं । प्रऽशासने ।
विशाम् । क्षयथः । अमृतस्य । मज्मना ।
याभिः । धेनुम् । अस्वम् । पिन्वथः । नरा ।
ताभिः । ऊँ इति । सु । ऊतिऽभिः । अश्विना । आ ।
गतम् ॥३॥

५४ अन्वयः- अश्विना नरा ! युवं दिव्यस्य अमृतस्य मज्मना तासां विशां प्रशासने क्षयथः; याभिः अस्वं धेनुं पिन्वथ, ताभिः ऊतिभिः उ सु आगतम् ॥ ३ ॥

५४ अर्थ- हे अश्विदेवो ! (नरा) हे नेताओ ! (युवं दिव्यस्य अमृतस्य मज्मना) तुम दोनों, द्युलोकमें उत्पन्न सोमरस रूपी अमृतके बल से, (तासां विशां प्रशासने क्षयथः) उन प्रजाओं का राज्य शासन चला ने के लिए उनमें निवास करते हो, (याभिः) जिन से (अस्व धेनुं) प्रसूत न हुई गौ को (पिन्वथः) पुष्ट कर के अधिक दुधारू बना दिया, (ताभिः) उन (ऊतिभि.) रक्षाओं से युक्त होकर (उ) निश्चय से हमारे पास ([illegible] आगतं) अच्छी तरह आओ ।

५४ भावार्थ- हे नेता अश्विदेवो ! तुम दोनों सोमरस का पान करने से बलवान बने हो और उस बल के कारण इन सब प्रजाजनों का राज्य शासन चलानेके लिये उन में ही रहते हो। तुम ने जिन चिकित्सा प्रयोगोंसे प्रसूत न होनेवाली गौको भी प्रसूत होने योग्य बनाकर दुधारूभी बना दिया, इन चिकित्साकी शक्तियों से सुसज्ज होकर हमारे पास आओ ।

*

५४ मानवधर्म– नेता लोग औषधि रसों का सेवन करके बलवान बनें। प्रजाजनों का राज्य शासन चलाने के लिये प्रजाओं में ही रहें, कभी प्रजाको छोड कर अन्य देश में जा कर न रहें। गौ को गर्भवती होने योग्य पुष्ट बनाने और दुधारु बनाने के चिकित्सा के प्रयोग करके गौओंके दूधकी वृद्धि करनी चाहिये।

५४ टिप्पणी– दिव्यं अमृतं=पर्वत शिखर पर होनेवाले सोम का रस, वृष्टि का जल। **अस्व=**प्रसूत न होनेवाली। (वायुको गौको प्रसव होने योग्य बना कर दुधारु बनाया ऋ. १।११२।३) **मज्मन=**वीर्य, सत्व, मज्जा। **दिव्य=**द्यु अर्थात शिखरपर उत्पन्न हुआ, आकाश में उत्पन्न, अद्भुत तेजस्वी।

[५५]

५५ याभिः परिज्मा तनयस्य मज्मना द्विमाता तूर्षु तरणिर्विभूषति। याभिस्त्रिमन्तुरभवद् विचक्षणस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥४॥

५५ याभिः। परिऽज्मा। तनयस्य। मज्मना। द्विऽमाता। तूर्षु। तरणिः। विऽभूषति। याभिः। त्रिऽमन्तुः। अभवत्। विऽचक्षणः। ताभिः। ऊँ इति। सु। ऊतिऽभिः। अश्विना। आ। गतम्॥

५५ अन्वयः– परिज्मा द्विमाता तनयस्य मज्मना याभिः तूर्षु तरणिः वि भूषति; त्रिमन्तुः याभिः विचक्षणः अभवत्, ताभिः ऊतिभिः अश्विना, सु उ आगतं ॥ ४ ॥

५५ अर्थ– (परिज्मा द्विमाता) चारों ओर जानेवाला दोनों माताओंसे युक्त (तनयस्य मज्मना) अपने पुत्र के बल से (याभिः) जिन की सहायता से (तूर्षु तरणिः विभूषति) दौडनेवालों में आगे निकलनेवाला हो कर अलंकृत होता है तथा (त्रिमन्तुः याभिः) तीन मनन साधनोंवाला जिनसे (विचक्षणः अभवत्) महा विद्वान हो गया, (ताभिः ऊतिभिः) उन रक्षाओंसे युक्त होकर हे अश्विदेवो। तुम दोनों (सु उ आगतं) ठीक प्रकार से हमारे पास आओ।

५५ भावार्थ– सर्वत्र गमन करनेवाला वायु, दो अरणीरूपी दो माताओंसे उत्पन्न हुए अपने पुत्रस्थानीय अग्नि के बल से युक्त होकर, जिन शक्तियोंसे

गतिमानों में भी विशेष गतिमान होकर सर्वोपरि विराजता है, तथा त्रिमन्तु (कक्षीवान ऋषि) जिन साधनों से बड़ा विद्वान बना, उन संरक्षण की शक्तियोंसे सज्जित बनकर, हे अश्विदेवो ! तुम दोनों यहां हमारे पास आओ (और उनसे हमें लाभ पहुंचाओ)

५५ मानवधर्म- जिस तरह द्विजन्मा अग्नि और वायु परस्पर सहायक होते हैं और परस्पर के बलसे परस्पर की उन्नति करते हैं, इसी तरह द्विजन्मा ब्राह्मण और क्षत्रिय परस्परकी सहायता करके समूची जनता की उन्नति करें । जिस तरह त्रिमन्तु विद्वान हुआ, उसी तरह (व्यक्ति, समाज, जनता इन तीनों की उन्नति का मनन करनेवाले सभी युवक विद्वान बनें । नेता लोग सब प्रकार की संरक्षक शक्तियां अपने अनुयायियों की सहायतार्थ उपयोग में लायें और उस से जनता की उन्नति करें ।

५५ टिप्पणी— द्विमाता=दो माताओंवाला, दो माताओं से जन्मा, द्विज । दो अरणियों से उत्पन्न होने के कारण अग्नि द्विजन्मा अथवा द्विमातुर है । पृथ्वी और द्यौ रूपी दो माताओंसे उत्पन्न होने के कारण वायु भी द्विमाता है। ब्राह्मण और क्षत्रिय तथा वैश्य भी अपनी जन्मदात्री माता, तथा सरस्वती (विद्या) दूसरी माता, इन दो माताओं से उत्पन्न होने के कारण द्विज अथवा द्विजन्मा अत एव द्विमाता कहलाते हैं । यहाँ अग्नि ब्राह्मणों का और वायु क्षत्रियों का सूचक है । इस मंत्र का पद द्विमाता ' परिज्मा ' का तथा ' तनय ' का विशेषण है । तनय का विशेषण मानने में विभक्ति का व्यत्यय करना पड़ता है । **परिज्मा**=वायु, चारों ओर गमन करने वाला । ' वायोः अग्निः । ' (तै. उ.) वायु से अग्नि बना, इस कारण वायु का पुत्र अग्नि माना जाता है । वायु से अग्नि प्रज्वलित किया जाता है । और अग्नि के धधकने से वायु भी बहने लगता है इस तरह ये पिता पुत्र परस्पर के सहायक हैं । वैसे सब पिता पुत्र परस्परों के सहायक बनें । वैसे शरीरमें प्राण और (वाणी) शब्द परस्पर सहायक हों । राष्ट्रमें ब्राह्मण और क्षत्रिय सहायक हों । **परि-ज्मा**=सर्वत्र गतिमान वायु, सर्वत्र प्रगति करनेवाला क्षत्रिय, प्राण । **तरणिः**=सूर्य, तैरकर पार होनेमें समर्थ, कठिनताओं को पार करनेवाला । **त्रिमन्तुः**=तीनोंका मनन करनेवाला, व्यक्तिमें शरीर मन और बुद्धि इन तीनों का मनन पूर्वक विकास करनेवाला, व्यक्ति-समाज और संपूर्ण जनता इन तीनों की उन्नति का विचार करनेवाला । **ऊतिः**=संरक्षक शक्ति ॥

[५६]

५६ यामी रेभं निवृतं सितमद्भ्य उद् वन्दनमैरयतं स्वर्दृशे ।
याभिः कण्वं प्र सिषासन्तमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥५॥

५६ याभिः । रेभम् । निऽवृतम् । सितम् । अत्ऽभ्यः ।
उत् । वन्दनम् । ऐरयतम् । स्वः । दृशे ।
याभिः । कण्वम् । प्र । सिसासन्तम् । आवतम् ।
ताभिः । ऊँ इति । सु । ऊतिऽभिः । अश्विना । आ । गतम् ॥

५६ अन्वयः– अश्विना ! निवृतं सितं रेभं वन्दनं च याभिः अद्भ्यः स्वः दृशे उत् ऐरयतं; सिषासन्तं कण्वं याभिः प्र आवतं, ताभिः ऊतिभिः उ सु आगतं ॥ ५ ॥

५६ अर्थ- हे अश्विदेवो ! (निवृतं) पूर्णरूप से जल में डुबोये हुए और (सितं रेभं वन्दनं च) बँधे हुए रेभ और वन्दन को (याभिः) जिन साधनों से (अद्भ्यः) जलों से (स्वः दृशे उत् ऐरयतं) प्रकाश को दिखाने के लिए तुम दोनों ने ऊपर उठाया तथा (सिषासन्तं कण्वं) भक्ति करने की इच्छा करनेवाले कण्व को (याभिः प्र आवतं) जिन साधनों से तुम दोनोंने भलीभाँति सुरक्षित रखा था, (ताभिः ऊतिभिः उ) उन्हीं रक्षाओं के साधनों से युक्त होकर तुम दोनों (सु आगतं) अच्छे प्रकार से हमारे पास आओ ।

५६ भावार्थ– अश्विदेवोंने जल में डूबनेवाले और बँधे हुए रेभ और वन्दन को जल से ऊपर उठाया और प्रकाश में घूमने योग्य बनाया। इसी तरह उपासक कण्व को सुरक्षित किया । यह सब जिन साधनों से किया उन साधनों के साथ ये देव हमारे पास आवें और उन शक्तियों से हमारी सहायता करें ।

५६ मानवधर्म– कोई अनुयायी जल में डूबता हो, किसी शत्रु ने उसे बंधन में डाला हो अथवा डर बताया हो, तो उनको सुरक्षाके साधनोंसे तत्काल सहायता पहुंचानी चाहिये और अनुयायियों को निर्भय बनाना चाहिये ।

५६ टिप्पणी– निवृत=निवारित, प्रतिबंध में रखा, जल में डुबोया ।

सित=बंधनों से बंधा, रस्सियों से जकड़ा। सिषासन्=सेवा या भक्ति करने के लिये तैयार।

[५७]

५७ याभिरन्तकं जसमानमारणे भुज्युं याभिरव्यथिभिर्जिजिन्वथुः। याभिः कर्कन्धुं वय्यं च जिन्वथस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥६॥

५७ याभिः । अन्तकम् । जसमानम् । आऽअरणे ।
भुज्युम् । याभिः । अव्यथिऽभिः । जिजिन्वथुः ।
याभिः । कर्कन्धुम् । वय्यम् । च । जिन्वथः ।
ताभिः । ऊँ इति । सु । ऊतिऽभिः अश्विना । गतम् ॥६॥

५७ अन्वयः- अश्विना ! आरणे जसमानं अन्तकं याभिः, अव्यथिभिः याभिः भुज्युं जिजिन्वथुः, कर्कन्धुं वय्यं च याभिः जिन्वथः, ताभिः सु ऊतिभिः आगतम् ॥ ६ ॥

५७ अर्थ- हे अश्विदेवो ! (आरणे जसमानं) गड्ढेमें पीड़ित (अन्तकं याभिः) अन्तक को जिनसे तुम ने छुड़ाया था, (अव्यथिभिः याभिः) जिन अथक रक्षाओं से (भुज्युं जिजिन्वथुः) तुम दोनों ने भुज्यु को सुरक्षित किया था, (कर्कन्धुं वय्यं च) और कर्कन्धु तथा वय्य का (याभिः जिन्वथः) जिन रक्षाओं से तुम दोनोंने संभाल किया, (ताभिः सु ऊतिभिः) उन सुन्दर रक्षाओं से (आ गतं) तुम दोनों हमारे पास आओ।

५७ भावार्थ- गड्ढे में पड़े और बहुत पीड़ित हुए अन्तक को अश्विदेवों ने गड्ढे से बाहर निकाला, अथक परिश्रम करके भुज्यु को सुरक्षित करनेके कारण प्रसन्न किया और कर्कन्धु तथा वय्य को संतुष्ट किया। यह जिन साधनों से किया उन साधनों के साथ वे हमारे पास आ जायँ और हमारी सहायता करें।

५७ मानवधर्म- शत्रुने अपने अनुयायियों को खाई में गिरा दिया, अनेक प्रकार की पीड़ा दी, समुद्र में हमला किया अथवा अन्य प्रकार के दुःख दिये, तो नेता त्वरा से अनुयायियों की सहायता करें और उन के कष्ट दूर करे।

५७ टिप्पणी- आरण=अगाध, कूआ, गढा। जसमान=हिंस्यमान, दुःख दिया हुआ पीड़ित। अव्यथि=अथक। अन्तक, कर्कन्धु, वय्य इनको अश्वि-

देवों ने सहायता पहुंचाई थी। भुज्यु- तुग्रराजाका पुत्र। यह देशान्तर में युद्ध के लिये गया था। वहां उस की किश्ती डूबने लगी। अश्विदेवों ने विमानों से उस को सहायता पहुंचाई। (७१,७९-८१; ऋ. १।११६।३-५)

[५८]

५८ याभिः शुचन्तिं धनसां सुषंसदं तप्तं घर्ममोम्यावन्तमत्रये।
याभिः पृश्निगुं पुरुकुत्समावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना
गतम् ॥७॥

५८ याभिः। शुचन्तिम्। धनऽसाम्। सुऽसंसदम्।
तप्तम्। घर्मम्। ओम्याऽवन्तम्। अत्रये।
याभिः। पृश्निऽगुम्। पुरुऽकुत्सम्। आवतम्।
ताभिः। ऊँ इति। सु। ऊतिऽभिः। अश्विना। गतम्॥७॥

५८ अन्वयः- अश्विना! याभिः धनसां शुचन्तिं सुसंसदं तप्तं घर्मं अत्रये ओम्यावन्तं; पृश्निगुं पुरुकुत्सं याभिः आवतं, ताभिः ऊतिभिः सु आगतं उ ॥ ७ ॥

५८ अर्थ- हे अश्विदेवो! (याभिः) जिन साधनोंसे (धनसां शुचन्तिं सुसंसदं) धन बांटनेवाले शुचन्ति को उत्तम रहने योग्य घर दिया और (तप्तं घर्मं) गर्म और तपे हुए कारागृह को (अत्रये ओम्यावन्तं) अत्रि ऋषि के लिए शान्त बना दिया, (पृश्निगुं पुरुकुत्सं) पृश्निगु और पुरुकुत्स को (याभिः आवतं) जिन रक्षाओं से तुम दोनों ने बचाया, (ताभिः ऊतिभिः) उन रक्षाओं से (सु आगतं उ) युक्त होकर तुम दोनों भलीभाँति इधर हमारे पास अवश्यही आओ।

५८ भावार्थ- [अत्रि ऋषि को स्वराज्य का आन्दोलन करने के कारण असुरों ने कारावास में रखा था और वहां अग्नि जला दिया था। अत्रिको उस गर्मी के कारण बडे क्लेश हो रहे थे, अतः] अत्रि को आराम देने के लिए अश्विदेवों ने उस अग्नि को शान्त किया। धन बांटनेवाले शुचन्ति को घर दिया, पृश्निगु और पुरुकुत्स को सुरक्षित किया। यह जिन साधनोंसे किया उन के साथ ये हमारे पास पधारें और हमारी सहायता करें।

५८ मानवधर्म— जनताके हितके लिये हलचल करनेके कारण जो कारावासमें पडे होते हैं, उनको आराम पहुंचानेके लिये नेताका प्रयत्न होना चाहिये। ज्ञानियोंको ज्ञानवृद्धिके कार्यके लिये उनको धन और घर देना चाहिये, तथा गोपालकोंको सुरक्षित रखना चाहिये।

५८ टिप्पणी- **ओम्यावान्** = सुखकारक। **सुसंसद्** = उत्तम बैठनेका स्थान, उत्तम घर। **पृश्निगुः** = जिसके पास चितकबरी गौवें बहुत हैं।

[५९]

५९ याभिः शचीभिर्वृषणा परावृजं प्रान्धं श्रोणं चक्षस एतवे कृथः।
याभिर्वर्तिकां ग्रसिताममुञ्चतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥८

५९ याभिः। शचीभिः। वृषणा। पराऽवृजम्।
प्र। अन्धम्। श्रोणम्। चक्षसे। एतवे। कृथः।
याभिः। वर्तिकाम्। ग्रसिताम्। अमुञ्चतम्।
ताभिः। ऊँ इति। सु। ऊतिऽभिः। अश्विना। आ। गतम्॥८

५९ अन्वयः- वृषणा ! अश्विना ! याभिः शचीभिः परावृजं अन्धं चक्षसे, श्रोणं एतवे प्र कृथः, ग्रसितां वर्तिकां याभिः अमुञ्चतं, ताभिः ऊतिभिः उ सु आ गतम् ॥ ८ ॥

५९ अर्थ- हे (वृषणा अश्विना !) बलवान अश्विदेवो ! (याभिः शचीभिः) जिन शक्तियोंसे तुम दोनोंने (परावृजं) ऋषि परावृक्को (अन्धं) अन्धेको (चक्षसे) दृष्टि संपन्न किया और (श्रोणं एतवे) लंगडे लूलेको चलने फिरने योग्य (प्र कृथः) बना दिया, तथा (ग्रसितां वर्तिकां) भेडियेने मुखमें पकडी हुई चिडियाको (याभिः अमुञ्चतं) जिन शक्तियोंकी सहायतासे तुम दोनों छुडा चुके, (ताभिः ऊतिभिः उ) उन संरक्षणकी आयोजनाओंके साथ अवश्य (सु आगतं) तुम दोनों ठीक तरह हमारे पास आओ।

५९ भावार्थ- हे बलवान अश्विदेवो ! परावृक् ऋषि अन्धा और लूला था, उसको तुम दोनोंने अच्छी दृष्टी दी और घूमने फिरने योग्य बना दिया। भेडियेने चिडियाको मुखमें पकडा था, उसके दांतोंसे वह घायल हुई थी, उसको उसके मुखसे छुडवाया और चिडियाको आरोग्ययुक्त किया। यह सब जिन शक्तियोंसे किया, उन शक्तियोंसे तुम दोनों हमारे पास आओ और हमारी सहायता करो।

५९ मानवधर्म– चिकित्सा शास्त्रकी इतनी उन्नति करनी चाहिये कि, जिससे अन्धोंकी दृष्टी अच्छी होसके, दृष्टी ठीक की जाय, लंगडे लूलोंको पांव अच्छे बनाकर चलने फिरने योग्य बनाया जाय और घायलको ठीक आरोग्य संपन्न बनाया जाय। यह चिकित्सा जैसी मानवोंकी वैसी ही पशुपंछियोंकी भी होवे।

५९ टिप्पणी– श्रोण=लंगडा लूला।

[६०]

६० याभिः सिन्धुं मधुमन्तमसश्चतं वसिष्ठं याभिरजरावजिन्वतम्।
याभिः कुत्सं श्रुतर्यं नर्यमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥९॥

६० याभिः। सिन्धुम्। मधुऽमन्तम्। असश्चतम्।
वसिष्ठम्। याभिः। अजरौ। अजिन्वतम्।
याभिः। कुत्सम्। श्रुतर्यम्। नर्यम्। आवतम्।
ताभिः। ऊँ इति। सु। ऊतिऽभिः। अश्विना। आ। गतम्॥९

६० अन्वय– अजरौ अश्विना! मधुमन्तं सिन्धुं याभिः असश्चतं, याभिः वसिष्ठं अजिन्वतं, याभिः कुत्सं श्रुतर्यं नर्यं आवतं, ताभिः उ ऊतिभिः सु आगतम् ॥ ९ ॥

६० अर्थ– हे (अजरौ अश्विना !) जराहीन अश्विनो! (मधुमन्तं सिन्धुं) मीठे रससे युक्त नदीको (याभिः असश्चतं) जिन शक्तियोंसे तुम दोनोंने प्रवाहित करदिया, (याभिः वसिष्ठं अजिन्वतं) जिनसे वसिष्ठको तृप्त कर दिया, (याभिः कुत्सं, श्रुतर्यं नर्यं आवतं) जिनसे कुत्स, श्रुतर्य तथा नर्य का संरक्षण किया (ताभिः उ ऊतिभिः) उन्हीं संरक्षणकी शक्तियोंसे युक्त होकर (सु आगतं) तुम दोनों ठीक प्रकारसे हमारे पास आओ।

६० भावार्थ– अश्विदेव जराहीन हैं, नित्य तरुण हैं, इन्होंने मीठे जलवाली नदियोंको जलसे भरपूर करके बहा दिया, वसिष्ठ, कुत्स, श्रुतर्य और नर्यको शत्रुओंसे सुरक्षित रखा। जिन शक्तियोंसे यह किया उन शक्तियोंके साथ वे हमारे पास आकर हमारी सहायता करें।

६० मानवधर्म– जरावस्थाको दूर रखना चाहिये, वृद्धावस्थामें भी तारुण्य का उत्साह रहना चाहिये। नदियोंको बन्ध आदि द्वारा ठीक तरह बहादेने।

प्रबन्ध करना चाहिये, जिससे उनका खेती आदिमें उपयोग अधिकसे अधिक हो और प्रजाको किसी तरह क्लेश न पहुंचे। तथा ज्ञान प्रसार करनेवाले ऋषियोंको सुरक्षित रखना चाहिये, जिससे उनके ज्ञान प्रसारके कार्यमें कोई विघ्न न हो सके।

६० *टिप्पणी- अश्विदेव नदियोंसे नहर आदि निकाल देनेकी विद्या अच्छी-तरह जानते थे ऐसा इस मन्त्रसे प्रतीत होता है।*

[६१]

६१ याभि॒र्वि॒श्पलां॑ धन॒साम॑थ॒र्व्यं॑ स॒हस्र॑मीळ्ह आ॒जाव॑जिन्वतम्।
याभि॒र्वश॒मश्व्यं॑ प्रे॒णिमाव॑तं॒ ताभि॑रू॒ षु ऊ॒तिभि॑रश्वि॒ना ग॑तम्॥१०

६१ याभिः। वि॒श्पला॑म्। ध॒न॒ऽसाम्। अ॒थ॒र्व्य॑म्।
स॒ह॒स्र॑ऽमीळ्हे। आ॒जौ। अजि॑न्वतम्।
याभिः। वश॑म्। अ॒श्व्यम्। प्रे॒णिम्। आव॑तम्।
ताभिः। ऊँ इति। सु। ऊ॒तिऽभिः। अ॒श्वि॒ना। आ। ग॒तम्॥

६१ अन्वयः- अश्विना! सहस्रमीळ्हे आजौ याभिः धनसां अथर्व्यं विश्पलां अजिन्वतं; याभिः प्रेणिं अश्व्यं वशं आवतं ताभिः उ ऊतिभिः सु आगतम्॥ १०॥

६१ अर्थ- हे अश्विनौ! (सहस्रमीळ्हे आजौ) सहस्रों लोग मिलकर जहाँ लड़ते हैं ऐसे युद्धमें (याभिः) जिन शक्तियोंसे (धनसां अथर्व्यं विश्पलां) धनका दान करनेहारी और स्थिर रूपसे युद्धमें खड़ी हुई अथवा अथर्व कुलमें उत्पन्न विश्पलाको (अजिन्वतं) तुम दोनोंने सहायता की, (याभिः) जिन शक्तियोंसे (प्रेणिं अश्व्यं वशं) प्रेरणकर्ता तथा अश्वके पुत्र वश नामक ऋषिको (आवतं) तुम दोनोंने सुरक्षित रखा, (ताभिः उ ऊतिभिः) उन्हीं संरक्षण की शक्तियोंके साथ (सु आगतं) तुम दोनों ठीक तरह हमारे पास आओ।

६१ भावार्थ- अश्विदेवोंने युद्धमें जाकर लड़नेवाली विश्पलाको सहायता की और अश्व पुत्र वशको संकटोंसे बचाया। यह जिन शक्तियोंसे उन्होंने किया उन शक्तियोंके साथ वे हमारे पास आ जायँ और हमारी सहायता करें।

६१ मानवधर्म- नेता लोग युद्धमें लड़नेवाले वीर नारियों और पुरुषोंकी सब प्रकारसे सहायता करें। अपने अनुयायियोंको संकटोंसे बचावें।

६१ टिप्पणी– सहस्रमीळ्हा आजिः = सहस्रोंकी संख्यामें जहां सैनिक लडते हैं ऐसे युद्ध। विश्पला = खेल प्रदेशके राजाकी स्त्री या पुत्री। यह अथर्व कुलमें उत्पन्न हुई थी। यह युद्धमें जाकर शत्रुसे लडती थी। युद्धमें इस वीर स्त्रीकी टांग टूट गयी। अश्विदेवोंने लोहेकी टांग लगा दी, पश्चात् इस वीर स्त्रीने युद्धमें विजय प्राप्त किया। (देखो ९१, ऋ. १।११६।१५) । वशा– देखो. ९७, ऋ. १।११६।२१)

[६२]

६२ याभिः सुदानू औशिजाय वणिजे दीर्घश्रवसे मधु कोशो अक्षरत्। कक्षीवन्तं स्तोतारं याभिरावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥११॥

६२ याभिः। सुदानू इति सुऽदानू। औशिजाय। वणिजे। दीर्घऽश्रवसे। मधु। कोशः। अक्षरत्। कक्षीवन्तम्। स्तोतारम्। याभिः। आवतम्। ताभिः। ऊँ इति। सु। ऊतिऽभिः। अश्विना। आ। गतम्॥

६२ अन्वयः– सुदानू अश्विना! औशिजाय दीर्घश्रवसे वणिजे याभिः कोशः मधु अक्षरत्, स्तोतारं कक्षीवन्तं याभिः आवतं, ताभिः ऊतिभिः उ सु आगतम् ॥ ११ ॥

६२ अर्थ– हे (सुदानू अश्विना) अच्छे दान देनेहारे अश्विदेवो! (औशिजाय दीर्घश्रवसे वणिजे) उशिक पुत्र दीर्घश्रवा नामक व्यापारीके लिए (याभिः) जिन शक्तियोंसे तुम दोनोंने (कोशः मधु अक्षरत्) शहदका भाण्डार दिया और (स्तोतारं कक्षीवन्तं) स्तुति करनेहारे कक्षीवान्‌को (याभिः आवतं) जिन शक्तियोंसे तुम दोनोंने सुरक्षित किया (ताभिः ऊतिभिः उ) उन्हीं रक्षाओंके साथ (सु आगतं) तुम दोनों ठीक प्रकार हमारे पास आओ।

६२ भावार्थ– अश्विदेव उत्तम दान देते हैं। इन्होंने उशिक्‌पुत्र दीर्घश्रवाको मधुके भण्डार दानमें दिये और उपासक कक्षीवानको शत्रुसे बचाया। यह जिन शक्तियोंसे इन्होंने किया उन शक्तियोंके साथ ये हमारे पास आ जायँ और हमारी सहायता करें।

६२ मानवधर्म- नेता उदार और दाता होने चाहिये। वे अपने अनुयायियों को मधु जैसा पौष्टिक अन्न देवें और अन्य प्रकारसे अपने अनुयायियोंको सुरक्षित रखें।

[६३]

६३ याभी रसां क्षोदसोद्नः पिपिन्वथुरनश्वं याभी रथमावतं जिषे।
याभिस्त्रिशोक उस्रियो उदाजत ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥१२॥

६३ याभिः। रसाम्। क्षोदसा। उद्नः। पिपिन्वथुः।
अनश्वम्। याभिः। रथम्। आवतम्। जिषे।
याभिः। त्रिऽशोकः। उस्रियाः। उत्ऽआजत।
ताभिः। ऊँ इति। सु। ऊतिऽभिः। अश्विना। आ।
गतम् ॥१२॥

६३ अन्वयः- अश्विना! रसां याभिः क्षोदसः उद्नः पिपिन्वथुः याभिः अनश्वं रथं जिषे आवतं, त्रिशोकः याभिः उस्रियाः उदाजत, ताभिः ऊतिभिः सु आगतम् ॥ १२ ॥

६३ अर्थ- हे अश्विदेवो! तुम दोनोंने (रसां) नदीको (याभिः) जिन शक्तियोंसे (क्षोदसा उद्नः) तटों को कुचलनेवाले जलसमूहसे (पिपिन्वथुः) परिपूर्ण करवाया, (याभिः अनश्वं रथं) जिन शक्तियोंकी सहायतासे घोडे से रहित रथको (जिषे आवतं) जय पानेके लिए तुम दोनोंने सुरक्षितरीतिसे चला दिया और (त्रिशोकः याभिः) त्रिशोक जिन शक्तियोंकी सहायतासे (उस्रियाः उदाजत) गौएँ पा सका, (ताभिः ऊतिभिः) उन्हीं रक्षा शक्तियोंके साथ लेकर (सु आगतं) अच्छी तरह हमारे पास आओ।

६३ भावार्थ- अश्विदेवोंने अपनी शक्तियोंसे रसा नदीको महापूरके जलसे भरपूर भर दिया, बिना घोडेके रथको वेगसे चला कर शत्रुको पराजित करके जय प्राप्त किया और त्रिशोकको दुधारू गौवें दीं। जिन शक्तियोंसे यह हुआ, उन शक्तियोंसे वे हमारेपास आ जायँ और हमारी सहायता करें।

६३ मानवधर्म- राष्ट्रमें नेता लोग जलके प्रवाहोंको इकट्ठा करके भरपूर जलके साथ नदियोंको बहा दें, घोडे आदि प्राणियोंके जोतनेके बिना ही यंत्रकी शक्तिसे ही

रथोंको वेगसे चलावें। तथा गौओंकी दुग्ध देनेकी क्षमता बढा कर वैसी गौवें अपने अनुयायियोंको प्रदान करें।

६३ टिप्पणी- क्षोदसा उद्नः= नदीके दोनों तटोंको घर्षण करनेवाले जलसे, महापूरके वेगसे जानेवाले जलसे। अनश्वः रथः= घोडेके बिना चलनेवाला रथ।

[६४]

६४ याभिः सूर्यं परियाथः परावति मन्धातारं क्षैत्रपत्येष्वावतम्।
याभिर्विप्रं प्र भरद्वाजमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥१३

६४ याभिः। सूर्यम्। परिऽयाथः। पराऽवति।
मन्धातारम्। क्षैत्रऽपत्येषु। आवतम्।
याभिः। विप्रम्। प्र। भरत्ऽवाजम्। आवतम्।
ताभिः। ऊँ इति। सु। ऊतिऽभिः। अश्विना। आ।
गतम्॥१३॥

६४ अन्वयः- अश्विना! परावति सूर्यं याभिः परियाथः, क्षैत्रपत्येषु मन्धातारं आवतं, याभिः विप्रं भरद्वाजं प्र आवतं, ताभिः ऊतिभिः सु आगतम्॥ १३॥

६४ अर्थ- हे अश्विदेवो! (परावति सूर्यं) दूरस्थानमें अवस्थित सूर्यके (याभिः परियाथः) चारों ओर तुम दोनों जिन शक्तियोंसे जाते हो, (क्षैत्रपत्येषु मन्धातारं आवतं) क्षेत्रपतिके सम्बन्धमेंके करने योग्य कर्मोंमें मन्धाताकी रक्षा तुम दोनों कर चुके, और (याभिः) जिन शक्तियोंकी सहायता पाकर (विप्रं भरद्वाजं प्र आवतं) तुम दोनों ज्ञानी भरद्वाजकी उत्कृष्ट रक्षा कर चुके, (ताभिः ऊतिभिः) उन्हीं रक्षाओंको साथ लिए [redacted] तुम दोनों (सु आगतं) अच्छे प्रकारसे हमारे पास आओ।

६४ भावार्थ- अश्विदेव सूर्यके चारों ओर प्रदक्षिणा करते हैं, इन दोनों देवोंने मन्धाताको क्षेत्रपतिके कर्तव्योंको निभानेमें बडी सहायता की, तथा विप्र भरद्वाजकी रक्षा भी की, यह जिन शक्तियोंसे किया गया था, उन शक्तियोंको साथ लेकर वे हमारे पास आ जायँ और हमारी सहायता करें।

६४ मानवधर्म— नेता लोग देश पालन करनेके विषयमें जो जो आवश्यक कर्तव्य होते हैं, उनके निभानेमें सब प्रकारकी सहायता कार्यकर्ताओंको दें

ज्ञानियोंकी रक्षा करें और उनका ज्ञान प्रसारका कार्य चलते रहें। सबको भरपूर सूर्य प्रकाशमें विचरनेका अवसर देदें, क्योंकि सूर्य ही जीवनका आदि स्रोत है, उस के प्रकाशसे जीवन शक्ति मिलती है।

६४ टिप्पणी- परि या=प्रदक्षिणा करना, चारों ओर घूमना। क्षेत्रपत्यं= देशके पालन करनेके सम्बन्धके कर्तव्य।

[६५]

६५ याभि॑र्म॒हाम॑तिथि॒ग्वं क॑शो॒जुवं॒ दिवो॑दासं शम्बर॒हत्य॒ आव॑तम्।
याभि॑: पू॒र्भिद्ये॑ त्र॒सद॑स्यु॒माव॑तं॒ ताभि॑रू॒ षु ऊ॒तिभि॑रश्विना ग॑तम् ॥१४॥

६५ याभि॑: । म॒हाम् । अ॒ति॒थि॒ऽग्वम् । क॒श॒:ऽजुव॑म् ।
दिवः॑ऽदासम् । श॒म्ब॒र॒ऽह॒त्ये । आव॑तम् ।
याभि॑: । पू॒:ऽभिद्ये॑ । त्र॒सद॑स्युम् । आव॑तम् ।
ताभि॑: । ऊँ॒ इति॑ । सु । ऊ॒तिऽभि॑: । अ॒श्वि॒ना । आ । ग॒त॒म् ॥

६५ अन्वयः- अश्विना ! शम्बरहत्ये याभिः अतिथिग्वं, कशोजुवं, महां दिवोदासं आवतं, याभिः त्रसदस्युं पूर्भिद्ये आवतं, ताभिः ऊतिभिः उ सु आगतम् ॥ १४ ॥

६५ अर्थ- हे अश्विदेवो ! (शम्बर-हत्ये) शम्बरका वध करनेके युद्धमें (याभिः) जिन रक्षाओंसे (अतिथिग्वं) अतिथिग्व (कशो-जुवं) कशो-जुव और (महां दिवोदासं) बडे दिवोदासकी (आवतं) तुम दोनोंने रक्षा की थी, (याभिः) जिनसे (त्रसदस्युं) दस्युओंको डरानेवाले नरेशको (पूर्भिद्ये आवतं) शत्रु नगरियोंको तोडनेके युद्धमें तुम दोनोंने सुरक्षित बना दिया था, (ताभिः ऊतिभिः) उन्हीं रक्षाओंसे युक्त बनकर (सु आगतं) तुम दोनों भली प्रकार हमारेपास आओ।

६५ भावार्थ- अश्विदेवोंने शम्बरका वध करनेके लिये किये गये युद्धमें अतिथिग्व, कशोजुव और दिवोदासकी रक्षा की और त्रसदस्युकी भी शत्रुके कीले तोडनेके काममें सहायता की थी। वह जिन शक्तियोंसे किया था, उन शक्तियोंसे वे हमारे पास आ जायँ और हमारी सहायता करें।

६४ मानवधर्म- नेता लोग अपने वीरोंकी उचित सहायता युद्धके समय अवश्य करें। युद्धके समय किसी चीजकी न्यूनता सैनिकोंको न रहें। विजयके लिये इस तरहके प्रबंध करनेकी अत्यंत आवश्यकता है।

६५ **टिप्पणी- अतिथि ग्व**=अतिथि जिसके पास जाते है, जो अतिथिको गौवे देता है। **कशो-जूः**=जलोंके पार जानेवाला। कशस्=जल। **त्रस दस्यु**=दस्युओं दुःख देनेवाला, दुष्टोंको संत्रस्त करनेवाला।

[६६]

६६ याभिर्व॒म्रं वि॑पि॒पान॒मुप॑स्तुतं क॒लिं याभि॑र्वि॒त्तजा॑निं दुव॒स्यथः॑।
या॒भि॒र्व्य॑श्वमु॒त पृ॒थिमाव॑तं॒ ताभि॑रू॒ षु ऊ॒तिभि॑रश्विना गतम्॥१५

६६ याभिः॑ । व॒म्रम् । वि॒ऽवि॒पा॒नम् । उप॑ऽस्तुतम् ।
क॒लिम् । याभिः॑ । वि॒त्तऽजा॑निम् । दु॒व॒स्यथः॑ ।
याभिः॑ । विऽअ॑श्वम् । उ॒त । पृथि॑म् । आव॑तम् ।
ताभिः॑ । ऊँ इति॑ । सु । ऊ॒तिऽभिः॑ । अ॒श्वि॒ना॒ । आ । ग॒त॒म्॥

६६ **अन्वयः-** अश्विना ! याभिः विपिपानं उपस्तुतं वम्रं, याभिः वित्तजानिं कलिं दुवस्यथः; उत याभिः व्यश्वं पृथिं आवतम्, ताभिः ऊतिभिः सु आगतम् ॥ १५ ॥

६६ **अर्थ-** हे अश्विदेवो ! (याभिः) जिन शक्तियोंसे (विपिपानं उपस्तुतं) सोमरसका विशेष पान करनेवाले, समीपस्थों द्वारा प्रशंसित (वम्रं) वम्र नामक ऋषिको तुम दोनों सुरक्षित करचुके, (याभिः वित्तजानिं कलिं दुवस्यथः) जिन शक्तियोंसे विवाहित कलिकी सुरक्षा तुम दोनों करते हो, (उत) और (याभिः) जिनसे (व्यश्वं पृथिं आवतं) घोडेसे बिछुडे हुए पृथिकी रक्षा तुम दोनोंने की थी, (ताभिः ऊतिभिः सु आगतं) उन रक्षाओंसे तुम दोनों ठीक प्रकारसे इधर हमारेपास आओ।

६६ **भावार्थ-** अश्विदेवोंने बहुत सोमरस पीनेवाले, प्रशंसित वम्र नामक ऋषिकी रक्षा की, कलिको उत्तम धर्मपत्नी देकर उसकी रक्षा की, पृथिके घोडे [illegible] होनेपर भी उसकी रक्षा की, वे अपनी सब शक्तियोंसे हमारेपास आ जायँ और हमारी रक्षा करें।

६६ **मानवधर्म-** नेता लोग अपने अनुयायियोंकी सुरक्षा सदा करते रहें, किसीको अन्न पान अधिक लगता हो तो उसे वह दें, किसीको धर्मपत्नी चाहिये तो उसके ब्याहका प्रबंध करें, घोडे बिछुडे जानेपर उसको वे पुनः मिलें ऐसा प्रबंध करें। अर्थात् अपनी शक्तियोंसे अनुयायियोंको असुरक्षित न रहने दें।

६६ टिप्पणी- इस मन्त्रके अप्रस्तुत, वम्र, कलि, व्यश्व, पृथि ये पाँचों पद ऋषिनाम हैं ऐसा कइयोंका मत है, हमने पहिले और चौथेको विशेषण माना है। वित्त-जानि=प्राप्त हुई स्त्री जिसको वह। वि अश्व=बिछुडे अश्व हैं जिसके।

[६७]

६७ याभि॒र्नरा॑ श॒यवे॒ याभि॒रत्र॑ये॒ याभिः॑ पु॒रा मन॑वे गा॒तुमी॒षथुः॑।
याभिः॒ शारी॒राज॑तं॒ स्यूम॑रश्मये॒ ताभि॑रू॒ षु ऊ॒तिभि॑रश्विना॒ ग॑तम् ॥१६॥

६७ याभिः॑। न॒रा॒। श॒यवे॑। याभिः॑। अत्र॑ये।
याभिः॑। पु॒रा। मन॑वे। गा॒तुम्। ई॒षथुः॑।
याभिः॑। शारीः॑। आज॑तम्। स्यूम॑ऽरश्मये।
ताभिः॑। ऊँ॒ इति॑। सु। ऊ॒तिऽभिः॑। अ॒श्वि॒ना॒। आ। ग॒त॒म्॥

६७ अन्वयः- नरा अश्विना! याभिः शयवे, याभिः अत्रये, याभिः मनवे पुरा गातुं ईषथुः; स्यूमरश्मये याभिः शारीः आजतं, ताभिः उ ऊतिभिः सु आगतम् ॥ १६ ॥

६७ अर्थ- हे (नरा अश्विना!) नेता अश्विदेवो! (याभिः शयवे) जिन शक्तियोंसे युक्त होकर शयुको मदद देनेके लिए, (याभिः अत्रये) जिन शक्तियोंसे युक्त होकर अत्रि ऋषिको कारावाससे छुडानेके लिए, (याभिः मनवे) जिन शक्तियोंसे युक्त होकर मनुके लिए (पुरा गातुं ईषथुः) प्राचीन कालमें दुःखसे छूट जानेका मार्ग तुम दोनोंने बतानेकी इच्छा की थी, तथा (स्यूमरश्मये) स्यूमरश्मिको सहायता देनेके लिए (याभिः शारीः आजतं) जिन शक्तियोंसे बाणोंको शत्रुदलपर तुम दोनोंने प्रेरित किया था, (ताभिः उ ऊतिभिः) उन्हीं संरक्षणकी आयोजनाओंको साथ लिए हुए तुम दोनों (सु आगतं) भली भांति इधर हमारे पास आओ।

६७ भावार्थ- जिन शक्तियोंसे अश्विदेवोंने शयु, अत्रि, मनु, और स्यूम, रश्मिकी सहायता की, उन शक्तियोंके साथ वे हमारे पास आ जायँ और हमारी सहायता करें।

६७ मानवधर्म- नेतालोग साधुओंका परित्राण करें और दुर्जनोंका नाश करें और सज्जनोंकी रक्षा करें। (देखो भ० गीता ४।८)

६७ टिप्पणी- शयु=(देखो ९८, ऋ. १।११६।२६।२२)। अत्रि=(५८,६७, ८४,१०४,११२,१४३,१७८,२०६,२१२,२६४,२६८,३४२,३६६,४०८)। मनु.= (६७,६९,१२२,४६६,४०७) । इन नामोंको इन मंत्रोंमें देखो ।

[६८]

६८ यामिः पठर्वा जठरस्य मज्मनाग्निर्नादीदेच्चित इद्धो अज्मन्ना ।
यामिः शर्यातमवथो महाधने तामिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥१७॥

६८ यामिः । पठर्वा । जठरस्य । मज्मना ।
अग्निः । न । अदीदेत् । चितः । इद्धः । अज्मन् । आ ।
यामिः । शर्यातम् । अवथः । महाऽधने ।
तामिः । ऊँ इति । सु । ऊतिऽभिः । अश्विना । आ । गतम् ॥

६८ अन्वय.— अश्विना ! इद्ध चित अग्निः न, पठर्वा यामिः अज्मन् जठरस्य मज्मना आ अदीदेत्, महाधने यामिः शर्यातं अवथः तामिः उ ऊतिभिः सु आगतम् ॥ १७ ॥

६८ अर्थ- हे अश्विदेवो ! (इद्धः चितः) प्रज्वलित और समिधाओंके डालनेसे बढते हुए (अग्निः न) अग्निके तुल्य, (पठर्वा) पठर्वा नरेश (यामिः अज्मन्) जिन रक्षाओंसे मदद पाकर युद्धमें (जठरस्य मज्मना) अपने शारीरिक बलसे (आ अदीदेत्) पूर्णतया प्रदीप्त हो उठा था; (महाधने यामि.) अधिक संपत्ति पानेके लिए किये जानेवाले युद्धमें जिनसे (शर्यातं अवथः) तुम दोनोंने शर्यातकी रक्षा की थी, (तामि. उ ऊतिभिः) उन्हीं रक्षाओंसे सुसज्ज होकर (सु आगतं) तुम दोनों हमारे समीप आओ ।

६८ भावार्थ— अश्विदेवोंकी शक्तियोंकी सहायतासे पठर्वा नरेश अपना सामर्थ्य बढानेके कारण युद्धमें बडा तेजस्वी सिद्ध हुआ, इसी तरह शर्यातको भी अश्विदेवोंने महायुद्धमें रक्षा की, इन शक्तियोंके साथ वे हमारे पास आ जायँ और हमारी रक्षा करें ।

६८ मानवधर्म- नेता लोग अपने वीरोंकी युद्धके समय पूर्ण रूपसे सहायता करें और शत्रुका पराभव होनेतक मदद करते रहें।

६८ टिप्पणी- अज्मन्=युद्धमें । महाधन=महायुद्ध ।

[६९]

६९ याभिरङ्गिरो मनसा निरण्यथोऽग्रं गच्छथो विवरे गोअर्णसः।
याभिर्मनुं शूरमिषा समावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥१८

६९ याभिः । अङ्गिरः । मनसा । निऽरण्यथः ।
अग्रम् । गच्छथः । विऽवरे । गोऽअर्णसः ।
याभिः । मनुम् । शूरम् । इषा । सम्ऽआवतम् ।
ताभिः । ऊँ इति । सु । ऊतिऽभिः । अश्विना । आ । गतम्॥

६९ अन्वयः- अश्विना ! याभिः मनसा अङ्गिरः निरण्यथः गोअर्णसः विवरे अग्रं गच्छथः, शूरं मनुं याभिः इषा सं आवतं, ताभिः उ ऊतिभिः सु आगतं ॥ १८ ॥

६९ अर्थ- हे अश्विदेवो ! तुम दोनों (मनसा) मनःपूर्वक किये (अङ्गिरः) अंगिरसोंके स्तोत्रसे संतुष्ट होकर (याभिः) जिन शक्तियोंसे उनको (निरण्यथः) सन्तुष्ट कर चुके तथा (गोअर्णसः विवरे) बन्द रखे हुए गौओंके झुंडको पानेके लिए गुहाके मुंहमें जानेके लिए (अग्रं गच्छथः) आगे चले जाते हो; और (शूरं मनुं) पराक्रमी मनुको, (याभिः इषा सं आवतं) जिन शक्तियोंसे अन्न प्राप्त कराके तुम दोनों सुरक्षित रख चुके हो, (ताभिः उ ऊतिभिः) उन्हीं रक्षाओंसे युक्त होकर तुम दोनों (सु आगतं) भलीभाँति इधर आओ ।

६९ भावार्थ- अश्विदेवोंकी स्तुति अंगिरसोंने की, उससे प्रसन्न होकर अश्विदेवोंने उनको सन्तुष्ट किया; जब गौओंको ढूंढनेके लिए गुहामें जानेका अवसर आया, उस समय अश्विदेव आगे चले, शूर मनुको युद्धमें पर्याप्त अन्न सामग्री पहुंचाई । यह सब जिन शक्तियोंसे किया उन शक्तियोंसे वे हमारेपास आजायँ और हमें सहायता करें ।

६९ मानवधर्म- नेतालोग अपने अनुयायियों को आवश्यक सामग्री देकर संतुष्ट करें, शूरवीरताके कार्यमें सबसे आगे बढें। [illegible] तरह अपने अनुयायियोंकी सुरक्षाका उत्तम प्रबंध करें ।

६९ टिप्पणी- गो अर्णस्=गौरूप धन । विवर=गुहा ।

*

[७०]

७० याभिः पत्नीर्विमदाय न्यूहथुरा घ वा याभिररुणीरशिक्षतम्।
याभिः सुदास ऊहथुः सुदेव्यं१ ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥१९॥

७० याभिः । पत्नीः । विऽमदाय । निऽऊहथुः ।
आ । घ । वा । याभिः । अरुणीः । अशिक्षतम् ।
याभिः । सुऽदासे । ऊहथुः । सुऽदेव्यम् ।
ताभिः । ऊँ इति । सु । ऊतिऽभिः । अश्विना । आ । गतम्॥

७० अन्वयः- अश्विना विमदाय याभिः पत्नीः नि ऊहथुः, याभिः वा अरुणीः घ आ अशिक्षतं; याभिः सुदासे सुदेव्यं ऊहथुः, ताभिः उ ऊतिभिः सु आगतम् ॥ १९ ॥

७० अर्थ- (अश्विना) हे अश्विदेवो ! (विमदाय) विमदके लिए उसके घर (याभिः) जिन शक्तियोंसे (पत्नीः नि ऊहथुः) उसकी धर्मपत्नीको तुम दोनोंने ठीक तरह पहुँचा दिया था, (याभिः वा) जिन शक्तियोंसे (अरुणीः घ) अरुण रंगकी घोडियोंको (आ अशिक्षतं) पूर्णतया सिखाया था और (याभिः सुदासे) जिनसे सुदासके घरमें (सुदेव्यं ऊहथुः) अच्छा देनेयोग्य धन तुम दोनोंने दिया था, (ताभिः उ ऊतिभिः) उन्हीं रक्षाओंके साथ तुम दोनों (सु आगतं) ठीक प्रकार हमारे पास आओ।

७० भावार्थ- अश्विदेवोंने जिन शक्तियोंसे विमदकी धर्मपत्नीको उसके घर पहुंचाया, लाल रंगकी घोडियोंको अच्छी तरह सिखाया और सुदासको बहुत धन दिया, उन शक्तियोंसे वे यहां हमारे पास आयें और हमारी सहायता करें।

७० मानवधर्म- नेता लोग अपने अनुयायियोंकी पत्नियोंको शत्रुसे सुरक्षित रखें, घोडियोंको शिक्षित करें और दानमें धन दें और सब प्रकारसे जनताको प्रसन्न रखें।

७० टिप्पणी- विमदः=(देखो ३०,७०,१२१,४५८,५८०,५८९) अरुणीः= लाल रंगवाली गौवें, अथवा घोडियां। सुदासः=पिजवनका पुत्र।

[७१]

७१ याभिः शंताती भवथो ददाशुषे भुज्युं याभिरवथो याभिरध्रिगुम् । ओम्यावतीं सुभरामृतस्तुभं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥२०॥

७१ याभिः । शन्ताती इति शम्ऽताती । भवथः । ददाशुषे । भुज्युम् । याभिः । अवथः । याभिः । अध्रिऽगुम् । ओम्याऽवतीम् । सुऽभराम् । ऋतऽस्तुभम् । ताभिः । ऊँ इति । सु । ऊतिऽभिः । अश्विना । आ । गतम् ॥

७१ अन्वयः- अश्विना ! ददाशुषे याभिः शन्ताती भवथः, याभिः भुज्युं, याभिः अध्रिगुं अवथः; सुभरां ओम्यावतीं ऋतस्तुभं, ताभिः उ ऊतिभिः सु आगतं ॥ २० ॥

७१ अर्थ- हे अश्विदेवो ! (ददाशुषे याभिः) दानी पुरुषके लिये जिन शक्तियोंसे तुम दोनों (शन्ताती भवथः) सुखदायक बनते हो, (याभिः भुज्युं) जिनसे भुज्युकी तथा (याभिः अध्रिगुं अवथः) जिनसे अध्रिगुकी रक्षा करते हो, उसी प्रकार जिनसे (सुभरां ओम्यावतीं) अच्छी पुष्टिकारक तथा सुखदायक अन्न सामग्री (ऋतस्तुभं) ऋतस्तुभको दे सकते हो, (ताभिः उ ऊतिभिः) उन्हीं रक्षाओंसे युक्त तुम दोनों (सु आगतं) इधर अच्छी तरह हमारे पास आओ।

७१ भावार्थ- अश्विदेवोंने अपनी शक्तियोंसे दाताको सुख दिया, भुज्यु और अध्रिगुकी रक्षा की और ऋतस्तुभ को पुष्टि कारक और सुखदायक अन्न दिया। जिन शक्तियोंसे उन्होंने यह किया है उन शक्तियोंसे वे यहां हमारे पास आ जायँ और हमारी सहायता करें।

७१ मानवधर्म- नेता लोग उदार दाताओंको सुख देवें, जिनको आवश्यक है उनको पौष्टिक और आरोग्यवर्धक अन्न देवें और अन्य अनुयायियोंकी उत्तम रक्षा करें।

७१ टिप्पणी- भुज्यु=तुग्र राजाका पुत्र (देखो ५७, ७१, ७९-८१, ११५ ११६, १२२, १४१, १४५, १७१, १७९, १९८-२००, ३१६, ३४४, ३५६, ४०५, ५८६, ६०३, ६२१) अध्रिगु-देवोंका शामिता ऋत्विज् ।

[७२]

७२ यार्भिः कृशानुमसने दुवस्यथो जवे याभिर्यूनो अर्वन्तमावतम्।
मधु प्रियं भरथो यत् सरड्भ्यस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना
गतम् ॥२१॥

७२ याभिः। कृशानुम्। असने। दुवस्यथः।
जवे। याभिः। यूनः। अर्वन्तम्। आवतम्।
मधु। प्रियम्। भरथः। यत्। सरट्ऽभ्यः।
ताभिः। ऊँ इति। सु। ऊतिऽभिः। अश्विना। आ। गतम्॥

७२ अन्वयः- अश्विना! असने कृशानुं याभिः दुवस्यथः, याभिः यूनः अर्वन्तं जवे आवतं, यत् सरड्भ्यः प्रियं मधु भरथः ताभिः उ ऊतिभिः सु आगतं ॥ २१ ॥

७२ अर्थ- हे अश्विदेवो! (असने) युद्धमें (कृशानुं) कृशानुकी (याभिः दुवस्यथः) जिन शक्तियोंसे तुम दोनों सहायता करते हो, (याभिः) जिनसे यूनः अर्वन्तं) युवकके घोडेको (जवे आवतं) वेग पूर्वक दौडनेमें तुम दोनों बचाचुके, और (यत् प्रियं मधु) जो प्यारा मधु (सरड्भ्यः भरथः) मधु-मक्षिकाओंके लिए तुम दोनों उत्पन्न करते हो, (ताभिः उ ऊतिभिः सु आगतं) उन्हीं रक्षाओंके साथ तुम दोनों इधर हमारे पास आओ।

७२ भावार्थ- अश्विदेवोंने युद्धमें कृशानुकी रक्षा की, दौडनेवाले घोडेको बचाया और मधुमक्षिकाओंको मधु दिया। यह जिन शक्तियोंसे किया, उन शक्तियोंके साथ वे हमारेपास आ जावें और हमारी रक्षा करें।

७२ मानवधर्म- नेता लोग युद्धमें अपने वीरोंकी सुरक्षाका प्रबंध करें, घोडों को उत्तम शिक्षित करें, जिससे वे बडी दौडमें भी थके रहें। मधुका भी प्रदान करें क्योंकि मधु पुष्टिकारक अन्न है।

७२ टिप्पणी- सरड्=मधुमक्षिका। अर्वान्=घोडा। दुवस्=परिचर्या, सेवा, सहायता करना। असनं=बाण फेंकना, युद्ध।

[७३]

७३ याभि॒र्नरं॑ गोषु॒युधं॑ नृ॒षाह्ये॒ क्षेत्र॑स्य सा॒ता तन॑यस्य॒ जिन्व॑थः।
याभी॒ रथाँ॒ अव॑थो॒ याभि॒रर्व॑त॒स्ताभि॑रू॒ षु ऊ॒तिभि॑रश्विना॒ ग॑तम् ॥२२॥

७३ याभिः॑ । नर॑म् । गो॒षु॒ऽयुध॑म् । नृ॒ऽसह्ये॑ ।
क्षेत्र॑स्य । सा॒ता । तन॑यस्य । जिन्व॑थः ।
याभिः॑ । रथा॑न् । अव॑थः । याभिः॑ । अर्व॑तः ।
ताभिः॑ । ऊँ॒ इति॑ । सु । ऊ॒तिऽभिः॑ । अ॒श्विना॒ । आ । ग॒त॒म्॥

७३ अन्वयः- अश्विना ! याभिः गोषु-युधं नरं नृषाह्ये, क्षेत्रस्य तनयस्य साता जिन्वथः; याभिः रथान्, याभिः अर्वतः अवथः, ताभिः उ ऊतिभिः सु आगतम् ॥ २२ ॥

७३ अर्थ- हे अश्विदेवो ! (याभिः) जिन शक्तियोंसे (गोषुयुधं नरं) गौओंके लिए लडनेवाले नेताको (नृषाह्ये) युद्धमें तथा (क्षेत्रस्य तनयस्य साता) खेतकी उपजका बँटवारा करते समय (जिन्वथः) तुम दोनों सुरक्षित करने द्वारा सन्तुष्ट करते हो, (याभिः रथान्) जिनसे रथोंको, (याभिः अर्वतः अवथः) जिनसे घोडोंको सुरक्षित रखते हो, (ताभिः उ ऊतिभिः) उन्हीं रक्षाओं से युक्त होकर (सु आगतं) सुन्दर प्रकारसे आओ।

७३ भावार्थ- गौओंकी सुरक्षा करनेके लिए होनेवाले युद्धोंमें लडनेवाले वीरोंको अश्विदेव सुरक्षित रखते हैं, खेत की उपजका बँटवारा करनेके समय विरोध होने नहीं देते और रथों और घोडोंकी सुरक्षा करते हैं। ये देव जिन शक्तियोंसे यह करते हैं उन शक्तियोंके साथ वे हमारे पास आ जायँ और हमारी सहायता करें।

७३ मानवधर्म- नेता लोग गौओंको सुरक्षित रखें, गौओंपर हमला करनेवाले शत्रुके साथ लडें, ऐसे युद्धोंमें लडनेवाले वीरोंको सुरक्षित रखनेका प्रबंध करें, खेतकी उपजका बँटवारा करनेके समय अनुयायियोंमें झगडा होने न दें, तथा अपने वीरोंके घोडों और रथोंको सुरक्षित रखें।

७३ टिप्पणी- गो सु युध् = गौकी रक्षा करनेके लिये उत्तम रीतिसे लडनेवाला वीर। नृ साह्य = वीरों द्वारा ही जो सहा जाता है [illegible] युद्ध।

[७४]

७४ याभिः कुत्समार्जुनेयं शतक्रतू प्र तुर्वीतिं प्र च दभीतिमावतम् । याभिर्ध्वसन्तिं पुरुषन्तिमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥२३॥

७४ याभिः । कुत्सम् । आर्जुनेयम् । शतक्रतू इति शतऽक्रतू । प्र । तुर्वीतिम् । प्र । च । दभीतिम् । आवतम् । याभिः । ध्वसन्तिम् । पुरुऽसन्तिम् । आवतम् । ताभिः । ऊँ इति । सु । ऊतिऽभिः । अश्विना । आ । गतम् ॥

७४ अन्वय – शतक्रतू अश्विना ! याभिः आर्जुनेयं कुत्सं, तुर्वीतिं दभीतिं च प्र आवतं, याभिः ध्वसन्तिं पुरुषन्तिं आवतं ताभिः उ ऊतिभिः सु आगतम् ॥ २३ ॥

७४ अर्थ– (शतक्रतू अश्विना) हे सैकड़ो कार्य करनेवाले अश्विदेवो ! (याभिः) जिनसे (आर्जुनेयं कुत्सं) अर्जुनीके पुत्र कुत्स, (तुर्वीतिं दभीतिं च) और तुर्वीति तथा दभीतिको तुम दोनों (प्र आवत) प्रकर्षसे बचा चुके, (याभिः ध्वसन्ति पुरुषन्ति आवतं) जिनसे ध्वसन्ति और पुरुषन्तिको तुम दोनों बचा चुके हो (ताभि. उ ऊतिभिः) उन्हीं रक्षाओंसे युक्त होकर (सु आगतं) तुम दोनों इधर हमारेपास आओ ।

७४ भावार्थ– अश्विदेव सैकड़ों कर्म करनेवाले हैं, उन्होंने अर्जुनीके पुत्र कुत्सकी, तथा तुर्वीति, दभीति, ध्वसन्ति और पुरुषन्तिकी सुरक्षा की । जिन शक्तियोंसे यह किया, उन शक्तियोंके साथ वे हमारे पास आ जांयें और हमारी रक्षा करें ।

७४ मानवधर्म– नेता लोग सैकड़ों कर्म करनेमें कुशल बनें । अपने अनुयायियोंको वे अपनी आयोजनाओंसे बचावें ।

७४ टिप्पणी- शत क्रतु = सैकड़ों शुभ कर्म करनेवाले । आर्जुनेय अर्जुन इन्द्र, आर्जुनेय = इन्द्रका पुत्र । तुर्वीति = शत्रुका नाश करनेवाला । तुर्व् = नाश करना । दभीति = शत्रु को दबानेवाला । ध्वसन्ति = शत्रुका ध्वंसन अर्थात नाश करनेवाला । पुरु–सन्ति = बहुत दान देनेवाला ।

[७५]

७५ अप्नस्वतीमश्विना वाचमस्मे कृतं नो दस्रा वृषणा मनीषाम्।
अद्यूत्येऽवसे नि ह्वये वां वृधे च नो भवतं वाजसातौ॥२४॥

७७ अप्नस्वतीम् । अश्विना । वाचम् । अस्मे इति ।
कृतम् । नः । दस्रा । वृषणा । मनीषाम् ।
अद्यूत्ये । अवसे । नि । ह्वये । वाम् ।
वृधे । च । नः । भवतम् । वाजऽसातौ ॥२४॥

७५ अन्वयः- दस्रा ! वृषणा ! अश्विना ! नः मनीषां, अस्मे अप्नस्वतीं वाचं कृतं; वां अद्यूत्ये अवसे निह्वये, वाजसातौ च नः वृधे भवतम् ॥ २४ ॥

७५ अर्थ- हे (दस्रा) शत्रुविनाशकर्ता ! (वृषणा अश्विना !) बलवान् अश्विदेवो ! (नः मनीषां) हमारी इच्छा को पूर्ण करो, (अस्मे) हमारी (अप्नस्वतीं वाचं कृतं) वाणीको कर्मयुक्त बना दो, (वां) तुम दोनोंको (अद्यूत्ये) अँधेरेमें (अवसे निह्वये) रक्षाके निमित्त बुलाता हूं, (वाजसातौ च) और अन्नका दान करते समय (नः वृधे भवतं) हमारी वृद्धिके लिए प्रयत्नशील बनो।

७५ भावार्थ- हे शत्रुके नाशकर्ता शक्तिमान अश्विदेवो ! हमारी यही एक इच्छा है। वह यह कि हमारे भाषण शुभ कर्मोंको बतानेवाले हों। इस अंधेरी रात्रीमें आपको हमारी रक्षा करनेके लिए बुलाते हैं। तुम दोनों हमारे पास आओ, इस अन्नके दान करनेके कार्यमें हमारी सहायता करो। इससे हमारी वृद्धि होती रहे।

७५ मानवधर्म- मनुष्य शत्रुका नाश करे, सामर्थ्यवान् बने। ऐसे भाषण करे कि जिनसे सत्कर्मोंकी समृद्धि हो जाय। अन्धकारके समय सब अनुयायी सुरक्षित रहें। अनुयायियोंको पर्याप्त अन्न दिया जाय। उनकी वृद्धि होती रहे ऐसा प्रबंध सर्वदा करना योग्य है।

७५ टिप्पणी- अप्नस्वती=कर्म युक्त। अ-द्यूत्य= अ-प्रकाश, अन्धेरा।

[७६]

७६ द्युभिरक्तुभिः परि पातमस्मानरिष्टेभिरश्विना सौभगेभिः ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥२५॥

७६ द्युऽभिः । अक्तुऽभिः । परि । पातम् । अस्मान् ।
अरिष्टेभिः । अश्विना । सौभगेभिः ।
तत् । नः । मित्रः । वरुणः । ममहन्ताम् ।
अदितिः । सिन्धुः । पृथिवी । उत । द्यौः ॥२५॥

७६ अन्वयः- अश्विना ! द्युभिः अक्तुभिः अरिष्टेभिः अस्मान् परि पातं; तद् मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः नः मामहन्ताम् ॥ २५ ॥

७६ अर्थ- हे अश्विदेवो ! (द्युभिः अक्तुभिः) दिन और रात (अरिष्टेभिः सौभगेभिः) अक्षुण्ण अच्छे ऐश्वर्योंसे (अस्मान् परि पातं) हमारी पूर्णतया रक्षा करो, (तत्) इसका मित्र, वरुण, अदिति, सिन्धु, भूलोक तथा द्युलोक (नः मामहन्तां) हमारे लिए अनुमोदन करें । अर्थात् इनकी सहायतासे हमारी यह पूर्वोक्त इच्छा सफल हो ।

७६ भावार्थ- दिन रात हमें अटूट ऐश्वर्य मिलता रहे और उससे हमारी रक्षा होती रहे । सब देव इस हमारी इच्छाकी सफलता होनेमें सहायक बनें।

७६ मानवधर्म- मनुष्य दिन रात ऐसे शुभ कर्म करे कि जिनसे उसको अपरिमित ऐश्वर्य मिले और उसने उसकी सुरक्षा हो जाय । सब उसकी सहायता करें।

७६ टिप्पणी- द्यु=दिन । अक्तु=रात्री । अ रिष्ट=अटूट, अपरिमित, अवि-च्छिन्न । सौभगं=सौभाग्य, ऐश्वर्य, भाग्य ।

[७७] (ऋ० १।११६।१-२५)
कक्षीवान् दैर्घतमस औशिजः त्रिष्टुप् ।

७७ नासत्याभ्यां बर्हिरिव प्र वृञ्जे स्तोमाँ इयर्म्यभ्रियेव वातः ।
यावर्भगाय विमदाय जायां सेनाजुवा न्यूहतू रथेन ॥१॥

७७ नासत्याभ्याम् । बर्हिःऽइव । प्र । वृञ्जे ।
स्तोमान् । इयर्मि । अभ्रियाऽइव । वातः ।
यौ । अर्भगाय । विऽमदाय । जायाम् ।
सेनाऽजुवा । निऽऊहतुः । रथेन ॥१॥

७७ अन्वयः- यौ सेनाजुवा रथेन अर्भगाय विमदाय जायां निऊहतुः नासत्याभ्यां स्तोमान्, वातः अभ्रिया इव इयर्मि, बर्हिः इव प्र वृञ्जे ॥ १ ॥

७७ **अर्थ-** (यौ) जो दोनों अश्विदेव (सेनाजुवा रथेन) सेनाके साथ चलनेवाले रथपरसे, (अर्भगाय विमदाय) नवयुवक विमदके लिए (जायां नि ऊहतुः) पत्नीको पहुँचा आये, उन (नासत्याभ्यां) असत्यसे रहित अश्विदेवोंके लिए मैं (स्तोमान्) स्तोत्रोंको, (वातः आद्रया इव) पवन मेघमण्डलमें स्थित जलोंको जैसे प्रेरित करता है, या आगे फैला देता है, वैसे (इयर्मि) मैं प्रेरित करता हूं, तथा (बर्हिः इव) कुशासनोंकी नाई (प्रवृञ्जे) विस्तारित करता हूं।

७७ **भावार्थ-** दोनों अश्विदेव अपनी सेनाके साथ शत्रुपर हमला करनेवाले रथमें बिठलाकर नवयुवक विमदकी पत्नीको उसके घर पहुंचा आये थे, उनके स्तोत्रोंको मैं फैलाता हूं, जैसे मेघोंको वायु और आसनोंको यज्ञकर्ता फैलाता है।

७७ **मानवधर्म** — जो वीर अपने वीरोंकी और उनके घरवालोंकी सुरक्षा करेंगे, उनकी प्रशंसा करना योग्य है।

७७ टिप्पणी- सेना-जु=सेनाको चलानेवाला । **अर्भग**=अर्भक=तरुण, बाल, छोटी आयुवाला । **अभ्रिय**=मेघोंमें स्थित जल । यहां अर्भक विमदकी पत्नी अश्विदेवोंने उनके घर पहुंचाई ऐसा लिखा है । अर्भगका अर्थ बालक ऐसा प्रसिद्ध है, वेद मंत्रोंमें भी इस अर्थमें ही यह पद आया है । यदि यही अर्थ लिया जाय तो **'बाल विवाह '** का सूचक यह मन्त्र होगा । इसलिये यहां इसका अर्थ ' तरुण ' किया है । परन्तु यह अर्थ विवादास्पद है । ' अर्भग ' का अर्थ वेद ग्रन्थोंमें निःसंदेह क्या है इसका निर्णय करना योग्य है । कथा— ' विमद स्वयंवरको गया था, उसने एक स्त्री स्वयंवरमें प्राप्त की । घर वापस आते समय शत्रुसेनाने उसपर हमला किया । अश्विदेवोंने शत्रुसेनाको भगाकर विमदकी पत्नीको विमदके घरपर पहुंचाया। यह कथा इस मन्त्रसे सूचित होती है ऐसा कहते हैं । इसके प्रमाण वैदिक ग्रन्थोंमें अन्वेषणीय हैं । देखो **' विमद '** ७०; ७५, १२१, २५८, ६८० ॥ **' अर्भ '** पद ऋग्वेदमें १।७।५; ४०।८, ५१।१३, ८३।१, १०२।१०, १२४।६; १४६।५, ६।५०।४, ७।३७।३, ८।४७।८, १०।६९।८ इतने ११ स्थानोंमें है । यहाँ **'अल्प'** ऐसा इसका अर्थ है । ' **अर्भक** ' पद ऋग्वेदमें १।२७।१३, ११४।७, ११६।१, ४।२१।२२, ७।३३।६, ८।३०।१, ६।९।३५ इतने ७ स्थानोंमें है । इनमें इसी १।११६।१ में ' **अर्भग** ' पद है । शेष स्थानोंमें ' **अर्भक** ' है । सर्वत्र **'गुणोंमें कम, बाल, शिशु, अल्पशरीर '** ऐसे अर्थ हैं । इतनेही बार ये पद ऋग्वेदमें हैं ।

[७८]

७८ वीळुपत्मभिराशुहेमभिर्वा देवानां वा जूतिभिः शाशदाना ।
तद् रासभो नासत्या सहस्रमाजा यमस्य प्रधने जिगाय ॥२

७८ वीळुपत्मऽभिः । आशुहेमऽभिः । वा ।
देवानाम् । वा । जूतिऽभिः । शाशदाना ।
तत् । रासभः । नासत्या । सहस्रम् ।
आजा । यमस्य । प्रऽधने । जिगाय ॥२॥

७८ अन्वयः- नासत्या ! वीळुपत्मभिः वा आशुहेमभिः देवानां जूतिभिः वा शाशदाना, रासभः तत् सहस्रं यमस्य प्रधने आजा जिगाय ॥ २ ॥

७८ अर्थ - हे (नासत्या) असत्यसे दूर रहनेवाले अश्विदेवो ! (वीळुपत्मभिः वा) आकाशमें वेगसे उडनेवाले, और (आशु हेमभिः) शीघ्रगतिसे जानेवाले, (देवानां जूतिभिः वा) देवोंकी गतिसे संचालित होनेवाले यानोंसे (शाशदाना) शीघ्र गतिसे जानेवाले तुम दोनों हो। तुम्हारे यानोंको जोता (रासभः) रासभ (तत् सहस्रं) उस सहस्र संख्यावाले शत्रुदलको (यमस्य प्रधने आजा) यमके लिये ही प्रिय होनेवाले युद्धमें शत्रुको (जिगाय) जीत चुका ।

७८ भावार्थ- सत्यका पालन करनेवाले दोनों अश्विदेव अतिवेगसे आकाशमें उडनेवाले, अति शीघ्र गतिसे जानेवाले और (विद्युत् आदि) देवताओंकी गतिसे दौडनेवाले यानोंसे अति शीघ्र गतिसे जाते हैं। इनके यानोंको जोते हुए रासभने यमको ही आनन्द देनेवाले भयंकर युद्धमें सहस्रों की संख्यामें शत्रु सैनिकोंको जीत लिया था ।

७८ मानवधर्म- (जल अग्नि वायु विद्युत् आदि) देवताओंकी शक्तिसे आकाश यान तथा अन्यान्य यान अतिशीघ्र गतिसे चलाना योग्य है। भयानक युद्धमें वीर ऐसा पराक्रम करें कि, जिससे शत्रुके सैनिक सहस्रोंकी संख्यामें मर जावें।

७८ टिप्पणी- वीळु पत्मन्=बलशाली उड्डाण, महावेग। आशु-हेमन्=शीघ्र गति । देवानां जूति = देवताओंकी शक्ति । रासभ=गधा, खचर, गति देनेवाला साधन । यमस्य प्रधने आजौ = यमको प्रिय युद्ध, भयंकर युद्ध ।

[७९]

७९ तुग्रो॑ ह भु॒ज्युम॑श्विनोदमे॒घे र॒यिं न कश्चि॑न्ममृ॒वाँ अवा॑हाः ।
तमू॑हथुर्नौ॒भिरा॑त्म॒न्वती॑भिरन्तरिक्ष॒प्रुद्भि॒रपो॑दकाभिः ॥३॥

७९ तुग्रः । ह॒ । भु॒ज्युम् । अ॒श्विना॒ । उ॒द॒ऽमे॒घे ।
र॒यिम् । न । कः । चि॒त् । म॒मृ॒ऽवान् । अव॑ । अ॒हाः ।
तम् । ऊ॒ह॒थुः॒ । नौ॒भिः । आ॒त्म॒न्ऽवती॑भिः ।
अ॒न्त॒रि॒क्ष॒प्रुत्ऽभिः । अप॑ऽउदकाभिः ॥३॥

७९ अन्वयः- अश्विना कश्चित् ममृवान् रयिं न, उदमेघे तुग्रः भुज्युं ह अवाहाः; आत्मन्वतीभिः, अन्तरिक्षप्रुद्भिः अपोदकाभिः नौभिः तं ऊहथुः ॥ ३ ॥

७९ अर्थ- हे अश्विदेवो ! (कश्चित् ममृवान्) कोई मरनेवाला (रयिं न) जिस प्रकार अपनी धनसंपदाको छोड देता है, उसी प्रकार (उदमेघे) जलोंसे भरे प्रचण्ड समुद्रमें (तुग्रः भुज्युं ह) तुग्र नरेशने अपने पुत्र भुज्युको शत्रुपर हमला करनेके लिए (अवाहाः) छोड दिया; (तं) उसे (आत्मन्वतीभिः) निजशक्तियोंसे युक्त, (अन्तरिक्षप्रुद्भिः) अन्तरिक्षमेंसे जानेवाली तथा (अपोदकाभिः) जलोंको दूर करके जलमें भी जानेवाली (नौभिः ऊहथुः) नौकाओंसे तुम दोनों ऊपरसे झेलकर आगे ले चले ।

७९ भावार्थ- जैसा मरनेवाला मनुष्य अपने धनकी आशा छोड देता है, उसी तरह [अपने पुत्रकी आशा छोडकर] तुग्र नरेशने अपने भुज्यु नामक पुत्र को [शत्रुपर हमला करनेके लिए] बडे गहरे महासागरमें जानेकी आज्ञा दी । [भुज्यु गया और उसका बेडा टूट गया तब] उसे तुम दोनोंने अपनी अद्भुत शक्तिवाली, आकाशमें संचार करनेवाली और जलको चीरकर जलमें भी जानेवाली नौकाओंसे, उठाकर उसको [पिताके पास] पहुंचाया ।

७९ मानवधर्म- राजा अपने सागरके परे रहनेवाले शत्रुका पराभव करनेके लिए अपने वीरों को विशेष तैयारीके साथ भेज दे । उन वीरोंकी सुरक्षा के लिये ऐसे यान रखे कि जो भूमिपर, जलमें तथा आकाशमें भी उत्तम गतिसे चल सकें ।

७९ टिप्पणी– देखो ' भुज्युः ' म० ७१ । उदमेघे=जलसे भरे आत्मन्वती=अपनी विशेष बल शक्तियोंसे युक्त । अन्तरिक्षप्रुत्=अन्तरिक्ष उडनेवाला यान । अपोदक=जलको छोड कर चलनेवाली नौका । उत्-ऊह्=ऊ उठाना, झेलना, ऊपर जलसे उठाना ।

[८०]

८० तिस्रः क्षपस्त्रिरहातिव्रजद्भिर्नासत्या भुज्युमूहथुः पतङ्गैः ।
समुद्रस्य धन्वन्नार्द्रस्य पारे त्रिभी रथैः शतपद्भिः षळश्वैः ॥४

८० तिस्रः । क्षपः । त्रिः । अहा । अतिव्रजत्ऽभिः ।
नासत्या । भुज्युम् । ऊहथुः । पतङ्गैः ।
समुद्रस्य । धन्वन् । आर्द्रस्य । पारे ।
त्रिऽभिः । रथैः । शतपत्ऽभिः । षट्ऽअश्वैः ॥४॥

८० अन्वयः– नासत्या ! आर्द्रस्य समुद्रस्य पारे धन्वन् तिस्रः क्षपः त्रिः अहा अतिव्रजद्भिः शतपद्भिः षळश्वैः पतङ्गैः त्रिभिः रथैः भुज्युं ऊहथुः ॥४॥

८० अर्थ– हे (नासत्या) सत्यके पालक अश्विदेवो ! (आर्द्रस्य समुद्रस्य) जलमय अगाध समुद्रके (पारे धन्वन्) परे रेतीले मरुदेशसे (तिस्रः क्षपः) तीन रातें और (त्रिः अहा) तीन दिन न ठहरते हुए (अतिव्रजद्भिः) बराबर वेगसे जानेवाले, (शतपद्भिः) सौ पहियोंसे युक्त और (षट् अश्वैः) छहः अश्वशक्तिवाले यंत्रोंसे युक्त (पतङ्गैः) पक्षी जैसे उडते हुए जानेवाले (त्रिभिः रथैः) तीन यानोंसे (भुज्युं ऊहथुः) भुज्युको तुम दोनों साथ ले चले ।

८० भावार्थ– अगाध समुद्रके परे जहां रेतीका प्रदेश है, वहांसे तीन दिन और तीन रात बराबर बीचमें किसी जगह न ठहरते हुए अतिवेगसे जानेवाले, सौ पहियोंसे युक्त, छः चालक कला यन्त्रोंसे युक्त पक्षी जैसे उडनेवाले तीन यानोंसे तुम दोनोंने भुज्युको उसके घर पहुंचाया ।

८० मानवधर्म– तीन अहोरात्र न ठहरते हुए चलनेवाले, पक्षी जैसे आकाश में उडनेवाले सौ पहियों और छः चालक यन्त्रोंसे चलाये जानेवाले आकाशयान बनाना योग्य है । इनका उपयोग दूर देशमें गये सैनिकोंकी सहायतार्थ करना उचित है ।

८० टिप्पणी- धन्वन्=रेतीला प्रदेश, मरुदेश। अतिव्रज्=बडे वेगसे जाना। शतपत्=सौ पांववाला। षट्-अश्व=छः संचालक कला यंत्रवाला, छः घोडे जिसको खेंचते हैं ऐसा रथ। 'भुज्यु' देखो ७१।

[८१]

८१ अनारम्भणे तदवीरयेथामनास्थाने अग्रभणे समुद्रे ।
यदश्विना ऊहथुर्भुज्युमस्तं शतारित्रां नावमातस्थिवांसम् ॥५

८१ अनारम्भणे । तत् । अवीरयेथाम् ।
अनास्थाने । अग्रभणे । समुद्रे ।
यत् । अश्विनौ । ऊहथुः । भुज्युम् । अस्तम् ।
शतऽअरित्राम् । नावम् । आतस्थिऽवांसम् ॥५॥

८१ अन्वयः- अश्विना ! अनास्थाने अनारम्भणे अग्रभणे समुद्रे शतारित्रां नावं आतस्थिवांसं भुज्युं यत् अस्तं ऊहथुः, तत् अवीरयेथाम् ॥ ५ ॥

८१ अर्थ- हे अश्विदेवो ! (अनास्थाने) स्थान रहित, (अनारम्भणे) आलम्बनशून्य (अग्रभणे समुद्रे) हाथसे जहां किसीको पकडना असंभव है, ऐसे अथाह समुद्रमें (शतारित्रां नाव) सौ बल्लियोंसे चलायी जानेवाली नौका पर (आतस्थिवांसं भुज्युं) चढे हुए भुज्युको (यत् अस्तं ऊहथुः) जो तुम दोनोंने घर पहुंचाया, (तत्) वह कार्य (अवीरयेथां) सचमुच बडीही वीरतासे पूर्ण ही था।

८१ भावार्थ- जहां ठहरनेके लिये कोई स्थान नहीं है, जहां कोई आश्रय नहीं है और जहां पकडनेके लिये कोई पदार्थ ही नहीं है ऐसे अथाह महासागरमेंसे जो तुम दोनोंने सौ बल्लियोंसे चलायी जानेवाली नौकापर बिठलाकर भुज्युको उसके घर पहुंचाया वह सचमुच बडा ही वीरताका कार्य है।

८१ मानवधर्म- असीम महासागरसे भी अपने वीरोंको बचानेका कार्य शूर पुरुषोंको करना चाहिये। यह कार्य नौकासे किया जाय अथवा आकाश यानसे किया जाय।

८१ टिप्पणी- शतारित्रा = सौ बल्लियोंसे चलायी जानेवाली नौका। अन्-आ स्थान=जहां ठहरनेका स्थान न हो। अन्-आ रम्भण = जिसका प्रारंभ और अन्त दीखता न हो। अ ग्रभण = जहां पकडनेके लिए कुछ भी न हो। वीर = वीरताके कर्म करना, शत्रुको दूर करना।

[८१]

८२ यमश्विना दुदर्थुः श्वेतमश्वमघाश्वाय शश्वदित् स्वस्ति ।
तद् वां दात्रं महि कीर्तेन्यं भूत् पैद्वो वाजी सदमिद्धव्यो अर्यः ॥६॥

८२ यम् । अश्विना । दुदर्थुः । श्वेतम् । अश्वम् ।
अघऽअश्वाय । शश्वत् । इत् । स्वस्ति ।
तत् । वाम् । दात्रम् । महि । कीर्तेन्यम् । भूत् ।
पैद्वः । वाजी । सदम् । इत् । हव्यः । अर्यः ॥६॥

८१ अन्वयः- अश्विना ! अघाश्वाय यं श्वेतं अश्वं ददथुः शश्वत् इत् स्वस्ति; वां तत् दात्रं महि कीर्तेन्यं भूत् । पैद्वः अर्यः वाजी सदमित् हव्यः ॥६॥

८१ अर्थ- हे अश्विदेवो ! (अघाश्वाय) अघाश्व नरेशको (यं श्वेतं अश्वं ददथुः) जिस सफेद घोडेका दान तुम दोनोंने दिया (शश्वत् इत्) वह हमेशा ही (स्वस्ति) कल्याणकारक है, (वां तत् दात्रं) तुम दोनोंका वह दान (महि कीर्तेन्यं भूत्) बडा भारी वर्णन करने योग्य हुआ है (पैद्वः अर्यः वाजी) यह पेदुको दिया, शत्रु सेनापर चढाई करनेवाला घोडा भी (सदमित् हव्यः) सदैव समीप बुलानेयोग्य है ।

८१ भावार्थ- अश्विदेवोंने अघाश्वको श्वेत घोडा दिया, और पेदुको चढाई करनेके कार्यमें निपुण घोडा दिया । ये दान प्रशंसाके योग्य हैं ।

८१ मानवधर्म- घोडोंको विविध कार्योंमें उत्तम शिक्षित करके वीरोंको दानमें देना योग्य है ।

८१ टिप्पणी- दात्रं = दान । कीर्तेन्यं = वर्णनके योग्य । अघाश्व = इस नामका राजा, अहम्मीय अर्थात् पराक्रमी । पैद्व = पेदुको दिया, शीघ्रगामी, दौडने जानेवाला ।

[८२]

८३ युवं नरा स्तुवते पज्रियाय कक्षीवते अरदतं पुरंधिम् ।
कारोतराच्छफादश्वस्य वृष्णः शतं कुम्भाँ असिञ्चतं सुरायाः ॥७

८३ युवम् । नरा । स्तुवते । पज्रियार्य ।
कक्षीवते । अरदतम् । पुरम्ऽधिम् ।
कारोतरात् । शफात् । अश्वस्य । वृष्णः ।
शतम् । कुम्भान् । असिञ्चतम् । सुरायाः ॥७॥

८३ अन्वयः– नरा ! युवं स्तुवते पज्रियाय कक्षीवते पुरंधिं अरदतं; वृष्णस्य अश्वस्य कारोतरात् शफात् सुरायाः शतं कुम्भान् असिञ्चतम् ॥ ७ ॥

८३ अर्थ– हे (नरा) नेतृत्वगुणसे युक्त अश्विदेवो ! (युवं) तुम दोनोंने (स्तुवते) स्तुति करनेवाले (पज्रियाय कक्षीवते) पज्र कुलोत्पन्न कक्षीवानको (पुरंधिं अरदतं) नगरका संरक्षण करनेकी क्षमता बढानेवाली बुद्धिको दे डाला, (वृष्णस्य अश्वस्य) बलिष्ठ घोडेके खुरके समान (कारोतरात् शफात्) विशिष्ट बर्तनसे (सुरायाः शतं कुम्भान्) सुराके सौ घडे (असिञ्चतं) तुम दोनोंने भरकर रखे।

८३ भावार्थ– पज्र नामक कुलमें उत्पन्न कक्षीवानको, उनके द्वारा की तुम्हारी स्तुति समाप्त होते ही, तुम दोनों नेताओंने, नगरके संरक्षण करनेमें समर्थ बुद्धि और शक्तिका प्रदान किया। इसी तरह बलिष्ठ घोडेके खुरके समान आकारवाले विशेष बडे बर्तनसे शुद्ध जलके सौ घडे तुम दोनोंने भरकर रखे।

८३ मानवधर्म– नेता लोग नागरिकोंको ऐसी शिक्षा दें कि जिससे उनको अपने नगरका शत्रुके हमलेसे उत्तम संरक्षण करनेकी बुद्धि तथा शक्ति प्राप्त हो। तथा वे उत्तम शुद्ध वृष्टिजल बडे बडे पात्रोंमें भरकर रखें।

८३ टिप्पणी– पज्रियः=पज्र कुलमें उत्पन्न, पज्राः=आंगिरस कुल। पुरं-धि =नगरका संरक्षण करनेकी बुद्धि और शक्ति, नगर-रक्षा-प्रबन्ध-कारिणी-समिति; स्त्री, विदुषी स्त्री। कारोतर=चमडेका बडा पात्र, बडा पात्र। शफ= घोडेका खुर। सुरा = भापसे बना पानी, वृष्टी जल (क्योंकि यह भापसे ही बनता है) शुण्डा यंत्रसे भापका बनाया जल (Distilled water) सुरा।

[८४]

८४ हिमेनाग्निं घ्रंसमवारयेथां पितुमतीमूर्जमस्मा अधत्तम् ।
ऋबीसे अत्रिमश्विनावनीतमुन्निन्यथुः सर्वगणं स्वस्ति ॥८॥

८४ हिमेन । अग्निम् । घ्रंसम् । अवारयेथाम् ।
पितुऽमतीम् । ऊर्जम् । अस्मै । अधत्तम् ।
ऋबीसे । अत्रिम् । अश्विना । अवऽनीतम् ।
उत् । निन्यथुः । सर्वऽगणम् । स्वस्ति ॥८॥

८४ अन्वयः- अश्विनौ ! घ्रंसं अग्नि हिमेन अवारयेथां, ऋबीसे अव नीतं अत्रिं सर्वगणं स्वस्ति उत् निन्यथुः, अस्मै पितुमतीं ऊर्जं अधत्तम् ॥ ८ ॥

८४ अर्थ- हे अश्विदेवो ! (घ्रंसं अग्निं) धधकते हुए अग्निको (हिमेन अवारयेथां) तुम दोनों बर्फ जैसे जलसे हटा चुके, (ऋबीसे अवनीतं अत्रिं) अँधेरे कारागृहमें औंधे मुँह पडे हुए ऋषि अत्रिको (सर्वगणं) उसके सभी अनुयायियोंके साथ (स्वस्ति उत् निन्यथुः) उत्तम रीतिसे ऊपर उठा चुके और (अस्मै) इसे (पितुमतीं ऊर्जं अधत्तं) पुष्टि कारक तथा बलप्रद अन्न दे चुके ।

८४ भावार्थ- [स्वराज्य प्राप्तिकी हलचल करनेवाले] अत्रि ऋषिको [असुरोंने अन्धेरे कारागारमें अनुयायियोंके साथ बन्द करके रखा था और चारों ओर आग जला दी थी जिससे उनको बडे कष्ट हो रहे थे ।] अश्विदेवोंने जलसे उस अग्निको शान्त किया [और कारागारको तोड कर] अनुयायियों के साथ अत्रिको मुक्त किया, तथा उस [कृश बने] ऋषिको पुष्टिकारक और बलवर्धक अन्न दे (कर हृष्ट पुष्ट कर) दिया ।

८४ मानवधर्म- नेताओंको उचित है कि वे प्रजाहितकी हलचल करनेवाले कार्यकर्ताओंको कारावास आदि कष्ट होनेके समय, अनेक उपायों द्वारा उनको आराम देनेका यत्न करें और कार्यकर्ताओंके अनुयायियोंकी भी हरतरह सहायता करें ।

८४ टिप्पणी- घ्रंस = दिन, प्रज्वलित (अग्नि)। ऋबीस=उष्ण स्थान, दरार, तहखाना, तलगृह अथवा दरार, कारागृह। पितुमती ऊर्क् = पोषण करने वाला अन्न । अत्रि = देखो ६१ । अवनीतं अत्रिं = तलघरमें नीचे रखे अत्रि को, जहां खडा होनेका भी स्थान न हो ऐसे स्थानमें रखे अत्रिको । उन्निन्यथु = ऊपर उठाया, बाहर निकाला । सर्वगणं = अत्रिके साथ सब अनुयायियोंको भी बाहर निकाला ।

[८५]

८५ परावतं नासत्यानुदेथामुच्चाबुध्नं चक्रथुर्जिह्मबारम् ।
क्षरन्नापो न पायनाय राये सहस्राय तृष्यते गोतमस्य ॥९॥

८५ परा । अवतम् । नासत्या । अनु । देथाम् ।
उच्चाऽबुध्नम् । चक्रथुः । जिह्मऽबारम् ।
क्षरन् । आपः । न । पायनाय । राये ।
सहस्राय । तृष्यते । गोतमस्य ॥९॥

८५ अन्वयः- नासत्या ! अवतं परा अनुदेथां, उच्चाबुध्नं जिह्मबारं चक्रथुः, तृष्यते गोतमस्य पायनाय, सहस्राय राये न, आपः क्षरन् ॥९॥

८५ अर्थ- हे (नासत्या) सत्यको न छोडनेवाले अश्विदेवों ! (अवतं परा अनुदेथां) कुएंके जल प्रवाहको तुम दोनोंने बहुत दूरतक लेजाकर उसके (उच्चा बुध्नं जिह्मबारं चक्रथुः) तल भागको ऊंचा कर तथा कुटिलमार्ग द्वारा उस प्रवाहके (तृष्यते गोतमस्य पायनाय) प्यासे गोतमके पीनेके लिए (सहस्राय राये न) और सहस्र संख्याक धान्यरूप धन मिलानेके लिए उससे (आपः क्षरन्) जल धाराएँ बहादीं ।

८५ भावार्थ- सत्यका पालन करनेवाले अश्विदेव एक स्थानसे कुएंका जल बहुत दूरतक (नहरके द्वारा) ले गये, इसके लिये उन्होंने कुएँका तल ऊंचा बनाया और टेढे मार्गसे उससे जल प्रवाह बहा दिये और उस जलको गोतमके आश्रममें पहुंचाया, तब आश्रमवासियोंको पीनेके लिये जल मिला और सहस्रों प्रकारसे धान्यादिकी संपदा भी प्राप्त हुई ।

८५ मानवधर्म- जहां पानी न हो वहां भी दूरसे पानी नहर आदि द्वारा ला कर, उत्तम रमणीय आश्रमस्थान बनाना चाहिये । इस कार्यके लिये नहर टेढे या वक्र मार्गसे लाना आवश्यक हो, तो भी वैसा लाना चाहिये । इससे न केवल आश्रमवासियोंको पीनेके लिये पानी ही मिले, बल्कि खेती, फलोंके वृक्ष तथा उद्यान भी अच्छी तरह बन सकें ।

८५ टिप्पणी- अवतं = कुआ, जल स्थान, हौज । परानुद् = दूर लेजाना उच्चा बुध्न = जिसका तल भाग ऊंचा हो ऐसा हौज । जिह्मबार = कुटिल, टेढे मार्गसे, टेढे द्वारसे, टेढी टेढी नहरसे । देखो मरुद्देवताके मन्त्र १३२-१३३ (ऋ. १।८५।१०-११) इन दो मन्त्रोंमें मरुत्सैनिक गौतम ऋषिके लिये ही ऊपर

*

के जल स्थानसे नहर द्वारा पानी लावे ऐसा वर्णन है। यहां वही कार्य अश्विदेवोंने किया है।

[८६]

८६ जुजुरुषो नासत्योत वव्रिं प्रामुञ्चतं द्रापिमिव च्यवानात् ।
प्रातिरतं जहितस्यायुर्दस्रादित् पतिमकृणुतं कनीनाम् ॥१०॥

८६ जुजुरुषः । नासत्या । उत । वव्रिम् ।
प्र । अमुञ्चतम् । द्रापिम्ऽइव । च्यवानात् ।
प्र । अतिरतम् । जहितस्य । आयुः । दस्रा ।
आत् । इत् । पतिम् । अकृणुतम् । कनीनाम् ॥१०॥

८६ अन्वयः- दस्रा नासत्या ! जुजुरुषः च्यवानात् द्रापिं इव वव्रिं प्र अमुंचतं, उत जहितस्य आयुः प्र अतिरतं, आत् इत् कनीनां पतिं अकृणुतम् ॥ १० ॥

८६ अर्थ- हे (दस्रा नासत्या) शत्रुनाशक तथा असत्यसे रहित अश्विदेवो ! (जुजुरुषः च्यवानात्) जराजीर्ण च्यवानसे (द्रापिं इव) कवचके तुल्य (वव्रिं प्र अमुंचतं) बुढापेकी चमडीको तुम दोनोंने उतार कर दूर किया, (उत) और इस (जहितस्य आयुः) परित्यक्त की आयु (प्र अतिरतं) तुम दोनोंने दीर्घ बना दी, (आत् इत्) तदुपरान्त (कनीनां पतिं अकृणुतं) उसे तुम दोनोंने कमनीय नारियोंका पति भी बना दिया।

८६ भावार्थ- शत्रु नाशक और सत्य पालक अश्विदेवोंने अतिवृद्ध अतएव सब संबंधियोंके द्वारा परित्यक्त च्यवन ऋषिके शरीरसे कवच उतार देनेके समान बुढापेकी चमडी या झुर्री उतार कर उसे तरुण बनाकर और दीर्घायु बनाकर, अनेक सुन्दर स्त्रियोंका पति भी बना दिया।

८६ मानवधर्म- वैद्योंको उचित है कि, वे बूढेके शरीरकी वृद्धावस्थाकी चमडी, कवच उतार देनेके समान, उतारदें और औषधियोंके सेवनसे उस वृद्धको युवक बना दें। दीर्घायु बनाकर उसे विवाहित भी कर दें।

८६ टिप्पणी- जुजुरुष् = वृद्ध, जीर्ण। द्रापि = कवच, चोगा, अंगरखा। वव्रि = आवरण। जहित = त्यक्त, त्याग दिया। कनी = कन्या, कनीनां पतिः ये बहुवचनी पद बहुपत्नियोंके विवाहकी सूचना देते हैं। इस मन्त्रमें वृद्धको तरुण बनानेका वैद्यकीय प्रयोग वर्णन किया है। इस प्रयोगसे शरीरका चर्म, सांपकी

त्वचा उतर जाती है, उस तरह उतार दिया जाता है और मनुष्य सांपकी तरह फुर्तीला तरुण बनता है। च्यवनमें जो प्रयोग हैं उनमें 'च्यवन प्राश' का भी प्रयोग है। कुटिर प्रवेश विधिसे ये प्रयोग किये जाते हैं, चमडी, नाखून केश नये आते हैं और मनुष्य तरुण बनता है। पाठक ये प्रयोग देखें। देखो च्यवन ११४,११२ २५२,२८२,३४३,३६६,५८६।

[८७]

८७ तद् वां नरा शंस्यं राध्यं चाभिष्टिमन्नासत्या वरूथम्।
यद् विद्वांसा निधिमिवापगूळ्हमुद् दर्शतादूपथुर्वन्दनाय ॥११

८७ तत्। वाम्। नरा। शंस्यम्। राध्यम्। च।
अभिष्टिऽमत्। नासत्या। वरूथम्।
यत्। विद्वांसा। निधिम्ऽइव। अपऽगूळ्हम्।
उत्। दर्शतात्। ऊपथुः। वन्दनाय ॥११॥

८७ अन्वयः- नरा नासत्या! वां तत् अभिष्टिमत् वरूथं शंस्यं राध्यं च, विद्वांसा! यत् अपगूळ्हं निधिं इव, दर्शतात् वन्दनाय उत् ऊपथुः ॥११॥

८७ अर्थ- हे (नरा नासत्या) नेता सत्यके पालक अश्विदेवो! (वां तत्) तुम दोनोंका वह (अभिष्टिमत्) वाञ्छनीय (वरूथं) स्वीकार करनेयोग्य कार्य (शंस्यं राध्यं च) प्रशंसनीय और आराधनीय है, (विद्वांसा) हे ज्ञानी अश्विदेवो! (यत्) जो (अपगूळ्हं निधिं इव) छिपाये हुए खजानेके- समान, (दर्शतात्) देखनेयोग्य गर्तसे (वन्दनाय उत् ऊपथुः) वन्दनको तुम दोनोंने ऊपर उठाया।

८७ भावार्थ- वन्दन ऋषि गहरे गर्तमें पडा था, उसको अश्विदेवोंने, गुप्त स्थानसे धनको ऊपर उठानेके समान, ऊपर उठाया, यह अश्विदेवोंका कार्य बहुत ही प्रशंसा करने योग्य है।

८७ मानवधर्म- कोई मनुष्य गर्तमें या कुवेमें पडा हो तो उसे विना कष्ट पहुंचाये ऊपर उठाकर लाना चाहिये [इस कार्यके लिये आवश्यक साधन मनुष्य अपने पास तैयार रखे।]

८७ टिप्पणी- अभिष्टि = सब प्रकारसे इष्ट। वरूथ = श्रेष्ठ कर्म। राध्यं आराधनीय, सिद्ध होने योग्य।

[८८]

८८ तद् वां नरा सनये दंस उग्रमाविष्कृणोमि तन्यतुर्न वृष्टिम्।
दध्यङ् ह यन्मध्वाथर्वणो वामश्वस्य शीर्ष्णा प्र यदीमुवाच॥१२

८८ तत् । वाम् । नरा । सनये । दंसः । उग्रम् ।
आविः । कृणोमि । तन्यतुः । न । वृष्टिम् ।
दध्यङ् । ह । यत् । मधु । आथर्वणः । वाम् ।
अश्वस्य । शीर्ष्णा । प्र । यत् । ईम् । उवाच ॥१२॥

८८ अन्वय – नरा ! यत् आथर्वणः दध्यङ् अश्वस्य शीर्ष्णा ह वां यत् ईं मधु प्र उवाच तत् वां उग्रं दंसः, तन्यतुः वृष्टिं न, सनये आविः कृणोमि ॥ १२ ॥

८८ अर्थ– हे (नरा) नेता अश्विदेवो ! (यत् आथर्वणः दध्यङ्) जो अथर्व कुलोत्पन्न दधीची ऋषिने (अश्वस्य शीर्ष्णा ह) घोडेके सिरसे ही (वां) तुम दोनोंको (यत् ईं मधु) इस मधुविद्याका (प्र उवाच) प्रवचन करके उपदेश किया, (तत् वां उग्रं दंसः) तुम दोनोंके उस भीषण कार्यको, (तन्यतुः वृष्टिं न) गरजनेवाला मेघ जैसे वर्षाका आविष्कार करता है, वैसे ही (सनये आविः कृणोमि) जनसेवा हो जाए इसलिये मैं प्रकट करता हूँ।

८८ भावार्थ– अथर्वकुलमें उत्पन्न दधीची ऋषिने घोडेका सिर धारण कर के तुम दोनोंको मधु विद्या पढायी। इस विषयमें जो तुमने कार्य किया वह सचमुच भयानक ही कार्य था। जिस तरह मेघ गर्जना करके वृष्टीकी सूचना देता है, उस तरह घोषणा करके मैं उस तुम्हारे कर्मका प्रचार करता हूं। इस से मुझसे जनसेवा हो यही मेरी इच्छा है।

८८ मानवधर्म– एकका सिर अथवा अन्य अवयव काटकर दूसरेपर जोड देनेकी विद्या शस्त्र क्रियासे साध्य करनेतक मनुष्योंको आयुर्वेद विद्याकी उन्नति करनी चाहिये।

८८ टिप्पणी– अश्व=घोडा, बलवान मनुष्य जिसका जननेंद्रिय बारह अंगुल, लंबा हो (द्वादशाङ्गुलमेढ्रः)। सनिः = दान, पूजा, सेवा। शतपथब्रा १४।५।५।१९, बृ उ २।५ में ' पृथ्वी, आप्, तेज वायु, आदित्य, दिशा चन्द्रमा, विद्युत, मेघ, आकाश, धर्म, सत्य, मनुष्य, आत्मा (जीव) इनमें जो

तेजीविता है वही अमृत पुरुष है, और वही सब कुछ है ऐसा कहा है। एक ही आत्मतत्व। ज्ञान 'मधुविद्या' नामसे प्रसिद्ध है। दधीची ऋषिने यह विद्य अश्विदेवोंको पढायी, इस विद्याके जाननेसे वैदिक तत्वज्ञान विदित हो सकता है। इस विद्याका साक्षात्कार दधीची ऋषिने स्वयं किया और उस ऋषिने अश्विदेवोंको यह विद्या सिखाई। 'इदं वै तन्मधु दध्यङ्ङाथर्वणोऽश्विभ्यामुवाच। तदेतदृषिः पश्यन्नवोचत्।' यह मधु विद्या दधीची ऋषिने अश्विदेवोंसे कही। ऋषिने स्वयं इसका साक्षात्कार किया और पश्चात् उपदेश किया। यह शतपथका वचन संपूर्ण पाठक वहीं पर अथवा बृ० उ० में देखें। इसी मन्त्रपर शतपथकी यह सब व्याख्या है। कथा- 'इन्द्रने दधीची ऋषिको मधु विद्या कही। और कहा कि यदि तुम किसी दूसरेसे कहोगे तो तुम्हारा सिर काट दूंगा। अश्विदेवोंने दधीचीसे यह विद्या सीखनेकी इच्छा की। दधीचीने इन्द्रका वचन कहा। तब अश्विदेवोंने घोडे का सिर काटकर दधीचीके धडपर लगा दिया और उसका सिर किसी जगह छिपाकर रखा। उससे विद्या प्राप्त की। तब इन्द्रने ऋषिका सिर काट दिया। पश्चात् अश्विदेवोंने उसका असली सिर उस ऋषिके धडपर जमा दिया।' इस मन्त्रमें घोडेके सिरसे विद्या कही ऐसा जो कहा है और भयानक कर्मका वर्णन है, वह यही है। यह कथा आलंकारिक दीखती है।

[८९]

८९ अजोहवीन्नासत्या करा वां महे यामन् पुरुभुजा पुरंधिः।
श्रुतं तच्छासुरिव वध्रिमत्या हिरण्यहस्तमश्विनावदत्तम्॥१३

८९ अजोहवीत्। नासत्या। करा। वाम्।
महे। यामन्। पुरुऽभुजा। पुरम्ऽधिः।
श्रुतम्। तत्। शासुःऽइव। वध्रिऽमत्याः।
हिरण्यऽहस्तम्। अश्विनौ। अदत्तम्॥१३॥

८९ अन्वयः- पुरुभुजा! करा! नासत्या अश्विनौ! महे यामन् वां पुरन्धिः अजोहवीत्, तत् शासुः इव श्रुतं, हिरण्यहस्तं वध्रिमत्यै अदत्तम्॥१३

८९ अर्थ- हे (पुरु भुजा!) बहुतोंको भोजन देनेवालो (करा!) कार्य शील और (नासत्या अश्विनौ!) सत्यसे कभी न बिछुडनेवाले अश्विदेवो! (महे यामन्) बडी भारी यात्रा करते समय (वां) तुम दोनोंको (पुरन्धिः अजोहवीत्) बहुत बुद्धिवाली नारीने बुलाया था; (तत् शासुः इव श्रुतं) उस पुकारको मानों शासकके कथनकी तरह तत्परतासे तुमने सुन लिया और

पश्चात् (हिरण्यहस्तं) हिरण्यहस्त नामक पुत्र उस (वध्रिमत्यै अदत्तं) वध्रीमती नामक नारीको तुम दोनोंने दिया।

८९ भावार्थ- अश्विदेव अपने भिषक्कार्यमें प्रवीण अनेकोंका पालन पोषण करनेवाले और सत्यके पालक हैं। ये बडी यात्रामें गये थे, उस समय एक बुद्धिमती स्त्रीने इनकी प्रार्थना की, वह प्रार्थना इन्होंने राजाकी आज्ञा जैसी मानी और उस वन्ध्या स्त्रीको उत्तम पुत्र होने योग्य गर्भ धारण समर्थ बनाया और उससे उसको उत्तम पुत्र हुआ।

८९ मानवधर्म- आयुर्वेदमें मनुष्य इतनी उन्नति करें कि जिससे नपुंसक पुरुष पुरुषत्व युक्त हो और वंध्या स्त्री गर्भ धारण करनेमें समर्थ हो।

८९ टिप्पणी- **यामन्** = यात्रा, प्रवास, गमन, उड्डाण, प्रार्थना, समर्पण। **पुरन्धि** = बहु बुद्धि युक्त, नगर रक्षणके कार्यमें समर्थ। **वध्रिमती** = वध्रि= नपुंसक, वध्रिमती = नपुंसक पतिकी स्त्री। अश्विदेवोंने औषध प्रयोगसे नपुंसक को वाजीकरण द्वारा पुरुषत्व युक्त किया और स्त्री को गर्भ धारणमें समर्थ बनाया। इस तरह उनको पुत्र मिला।

[९०]

९० आस्नो वृकस्य वर्तिकामभीके युवं नरा नासत्यामुमुक्तम्।
उतो कविं पुरुभुजा युवं ह कृपमाणमकृणुतं विचक्षे ॥१४॥

९० आस्नः। वृकस्य। वर्तिकाम्। अभीके।
युवम्। नरा। नासत्या। अमुमुक्तम्।
उतो इति। कविम्। पुरुऽभुजा। युवम्।
ह। कृपमाणम्। अकृणुतम्। विऽचक्षे ॥१४॥

९० अन्वयः- नासत्या नरा! युवं अभीके वृकस्य आस्नः वर्तिकां अमुमुक्तं, पुरु-भुजा! उत युवं ह कृपमाणं कविं विचक्षे अकृणुतं ॥ १४ ॥

९० अर्थ- हे (नासत्या नरा) सत्यके पालक नेता अश्विदेवो! (युवं) तुम दोनों (अभीके) योग्य समयपर (वृकस्य आस्नः) भेडियेके मुँहसे (वर्तिकां अमुमुक्तं) चिडिया को छुडा चुके, हे (पुरु भुजा) बहुतोंको भोजन देनेवालो! (उत) और (युवं ह) तुम दोनोंने निश्चय पूर्वक (कृपमाणं कविं) कृपा पूर्वक प्रार्थना करते हुए कविको (विचक्षे अकृणुतं) देखनेके लिए दृष्टि युक्त बनाया।

९० भावार्थ- नेता अश्विदेवोंने भेडियेके मुखसे चिडियाको निकालकर बचाया और बहुतोंको भोजन देनेवाले उन देवोंने प्रार्थना करनेवाले एक अन्धे कविको उत्तम देखनेके लिये दृष्टि दी।

९० मानवधर्म- पशु पक्षियोंका उत्तम संरक्षण करना चाहिये तथा आयुर्वेदमें इतनी उन्नति सिद्ध करनी चाहिये कि औषधि प्रयोगसे अथवा शस्त्र कर्मसे अन्धेको भी देखने योग्य दृष्टि दी जा सके।

९० टिप्पणी- वर्तिका = चिडिया, देखो ५९,९०,११७,१३४,४९५। कृपमाणः=कृपाकी इच्छा करनेवाला।

[९१]

९१ चरित्रं हि वेरिवाच्छेदि पर्णमाजा खेलस्य परितक्म्यायाम्।
सद्यो जङ्घामायसीं विश्पलायै धने हिते सर्तवे प्रत्यधत्तम्॥१५

९१ चरित्रम्। हि। वेःऽइव। अच्छेदि। पर्णम्।
आजा। खेलस्य। परिऽतक्म्यायाम्।
सद्यः। जङ्घाम्। आयसीम्। विश्पलायै।
धने। हिते। सर्तवे। । प्रति। अधत्तम् ॥१५॥

९१ अन्वयः- वेः पर्णं इव आजा खेलस्य चरित्रं अच्छेदि हि; परितक्म्यायां विश्पलायै हिते धने सर्तवे आयसीं जङ्घां सद्यः प्रत्यधत्तम् ॥ १५ ॥

९१ अर्थ- (वेः पर्णं इव) पंछीका पर जैसे गिर जाता है वसी प्रकार (आजा) युद्धमें (खेलस्य चरित्रं) खेल नरेशकी संबंधिनी स्त्रीका पैर (अच्छेदि हि) टूट चुका था; तब (परितक्म्यायां) रात्रीके समयमें ही उस (विश्पलायै) विश्पलाके लिए (हिते धने सर्तवे) युद्ध शुरू होनेके बाद चढाई करनेके लिए (आयसीं जङ्घां) लोहेकी टाँग (सद्यः) तुरन्तही (प्रत्यधत्तं) तुम दोनोंने बिठला दी।

९१ भावार्थ- जिस तरह पक्षीका पर गिर जाता है उस तरह खेल राजाकी संबंधिनी विश्पला नामक स्त्रीका पैर युद्धमें कट गया और गिर गया था आप दोनोंने उसको लोहे की जांघ बिठलाई और युद्ध शुरू होनेपर शत्रुपर हमला करनेके लिए उसे चलने फिरने योग्य बना दिया।

९१ मानवधर्म- आयुर्वेदमें वैद्योंको इतनी उन्नति करनी चाहिये कि किसीका पांव कट जानेपर, उस स्थानपर लोहेका पांव लगाकर, उस मनुष्यको चलने फिरने योग्य बना देना संभव हो जाय।

९१ टिप्पणी- खेल=एक राजाका नाम । आज कल ' खेल ' नाम सीमा प्रांतके पठाणोंके देशोंमें प्रचलित हैं उ० ' झाकाखेल, ईसाखेल ' इ० । **परित-क्म्या**=अन्धेरा, रात्री, भयानक स्थिति, असुरक्षितता, गलती । **धन**=संपत्ति, युद्ध । **खतुं**=गमन, हमला । देखो ' **विश्पला** ' ६१,९१,११२,१३४,१९४, ५९० । विश्पला युद्धमें गयी थी । वहां उसका पांव कट गया । उसको लोहेकी टांग लगा कर चलने फिरने योग्य बना दिया ।

[९२]

९२ शतं मेषान् वृक्ये चक्षदानमृज्राश्वं तं पितान्धं चकार ।
तस्मा अक्षी नासत्या विचक्ष आधत्तं दस्रा भिषजावनर्वन् ॥१६॥

९२ शतम् । मेषान् । वृक्ये । चक्षदानम् ।
ऋज्रऽअश्वम् । तम् । पिता । अन्धम् । चकार ।
तस्मै । अक्षी इति । नासत्या । विऽचक्षे ।
आ । अधत्तम् । दस्रा । भिषजौ । अनर्वन् ॥१६॥

९२ अन्वयः- वृक्ये शतं मेषान् चक्षदानं तं ऋज्राश्वं पिता अन्धं चकार । भिषजौ । दस्रा । नासत्या । तस्मै अनर्वन् अक्षी विचक्षे आधत्तं ॥१६॥

९२ अर्थ- (वृक्ये) वृकीको (शतं मेषान्) सौ भेडोंको (चक्षदानं तं ऋज्राश्वं) खानेके लिये देनेके अपराधके कारण उस ऋज्राश्वको (पिता अन्धं चकार) उसके पिताने दृष्टिहीन बनाडाला, हे (भिषजौ) वैद्यो ! हे (दस्रा नासत्या) शत्रु नाशक एवं सत्यको न छोडनेवाले अश्विदेवों ! (तस्मै) उस अंधेको (अनर्वन् अक्षी) प्रतिबंध रहित आंखें (विचक्षे आधत्तं) विशेषरूप से देखनेके लिए तुम दोनों दे चुके ।

९२ भावार्थ- ऋज्राश्वने अपने पिताकी सौ भेडोंको भेडियेके खानेके लिये सौंप दिया, इस अपराधके कारण उसके पिताने उसे अन्धा बनाया । वैद्य अश्विदेवोंने उसे कभी न बिगडनेवाली आंखें लगा दीं और दृष्टिवान् कर दिया ।

९२ मानवधर्म- अन्धेको पुनः दृष्टि देनेतक भिषग्विद्याकी उन्नति मनुष्यों को करनी चाहिये ।

९२ टिप्पणी- अनर्वन्= अर्वन्=गतियुक्त, परिवर्तनशील, अनर्वन्=अप-रिवर्तनशील, न बिगडनेवाली ।

[९३]

९३ आ यां रथं दुहिता सूर्यस्य कार्ष्मेवातिष्ठदर्वता जयन्ती ।
विश्वे देवा अन्वमन्यन्त हृद्भिः समु श्रिया नासत्या सचेथे ॥१७

९३ आ । याम् । रथम् । दुहिता । सूर्यस्य ।
कार्ष्मऽइव । अतिष्ठत् । अर्वता । जयन्ती ।
विश्वे । देवाः । अनु । अमन्यन्त । हृत्ऽभिः ।
सम् । ऊँ इति । श्रिया । नासत्या । सचेथे इति ॥१७॥

९३ अन्वयः- नासत्या ! यां रथं सूर्यस्य दुहिता, अर्वता कार्ष्मं जयन्ती इव आ अतिष्ठत्; विश्वे देवाः हृद्भिः अन्वमन्यन्त, श्रिया सं सचेथे उ ॥१७॥

९३ अर्थ- हे नासत्या) सत्यके पालक अश्विदेवो ! (यां रथं) तुम दोनों के रथपर, (सूर्यस्य दुहिता) सूर्यकी कन्या, (अर्वता कार्ष्मं जयन्ती इव) घोडेकी दौडसे पहुंचनेके लकडीके स्थानको जीतती हुई सी, (आ अतिष्ठत्) खडी रही; (विश्वे देवाः) सभी देव (हृद्भिः अन्वमन्यन्त) अन्तःकरण से उसे अनुमोदित करचुके, पश्चात् (श्रिया सं सचेथे उ) तुम दोनों शोभा से युक्त बन गये ।

९३ भावार्थ— सूर्यकी पुत्री, घुड दौडसे अन्तिम मर्यादाको पहुंचनेके समान, अश्विदेवोंके रथतक पहुंची और रथपर चढ बैठ गई । सब देवोंने इसका अनुमोदन किया । तब सूर्यकी पुत्रीसे अश्विदेव बडे शोभायुक्त दीखने लगे ।

९३ मानवधर्म— घुड दौड आदि वीरोंके स्पर्धाके खेलोंमें जो जीतेगा, उसका सब अन्य वीरोंने अभिनंदन करना योग्य है । (इससे आपस के द्वेष बढने देना योग्य नहीं है ।)

९३ टिप्पणी- कार्ष्म=प्राप्तव्य स्थानपर जो गाडी जाती है वह लकडी । " प्रजापतिर्वै सोमाय राज्ञे दुहितरं प्रायच्छत् । " (ऐ. ब्रा. ४।७) प्रजापति सूर्यने राजा सोमको अपनी पुत्री देनेका संकल्प किया । सब देवोंने कहा कि जो घुड दौडमें पहिला होगा, उसे पुत्रीका प्रदान करना । अश्विदेव पहिले आये अतः उनके रथ पर सूर्यकी कन्या चढकर बैठ गयी । सब देवोंने इनका अभिनंदन किया और अश्विदेव उस कन्याको प्राप्त करनेसे शोभायमान हुए । इस कथा का सूचक यह मन्त्र है । यह आलंकारिक कथा है । सूर्यकी पुत्री उषाका यह रूपक

है। अर्थात् तारकाएं पहिले उगती हैं, पश्चात् उषा आती है। अश्वि उषाका इस तरह सम्बन्ध होता है।

[९४]

९४ यदयातं दिवोदासाय वर्तिर्भरद्वाजायाश्विना हयन्ता।
रेवदुवाह सचनो रथो वां वृषभश्च शिंशुमारश्च युक्ता ॥१८॥

९४ यत्। अयातम्। दिवःऽदासाय। वर्तिः।
भरत्ऽवाजाय। अश्विना। हयन्ता।
रेवत्। उवाह। सचनः। रथः। वाम्।
वृषभः। च। शिंशुमारः। च। युक्ता ॥१८॥

९४ अन्वय.— हयन्ता अश्विना! भरद्वाजाय दिवोदासाय यत् वर्तिः अयातं; सचनः रेवत् रथः वां उवाह, वृषभः च शिंशुमारः च युक्ता ॥१८॥

९४ अर्थ- हे (हयन्ता) बुलाने योग्य अश्विदेवो! (भरद्वाजाय दिवोदासाय) भरद्वाज दिवोदासके (यत्) जब (वर्तिः अयातं) घरपर दोनों चले गये, तब (सचनः) सेवनीय (रेवत् रथः) धनसे भरा हुआ रथ (वां उवाह) तब दोनोंको ढोने लगा था और (वृषभः च शिंशुमारः च) बैल तथा मगर दोनों उस रथमें (युक्ता) जोते थे।

९४ भावार्थ- हे अश्विदेवो, भरद्वाज दिवोदासके घरपर तुम दोनों गये थे, तब तुम्हारे रथमें बहुत ही धन भर कर रखा था और उस समय तुम्हारे रथको एक बैल और एक मगर जोता था। यह तुम्हारा ही विलक्षण सामर्थ्य है।

९४ मानवधर्म- जब बडा नेता किसीके घर जाय, तब उसको देनेके लिये बहुतसा धन वह अपने साथ रखे और वहां पहुंचने पर वह उसको देदे।

९४ टिप्पणी- शिंशुमार=मगर। भरद्वाज=भरत्-वाजः=अन्न पर्याप्त प्रमाणमें देनेवाला, अथवा दाता। रथको बैल और मगर जोतना यह बडेही सामर्थ्यसे सिद्ध होनेवाली बात है।

[९५]

९५ रयिं सुक्षत्रं स्वपत्यमायुः सुवीर्यं नासत्या वहन्ता।
आ जह्नावीं समनसोप वाजैस्त्रिरह्नो भागं दधतीमयातम् ॥१९

९५ रुयिम् । सुऽक्षत्रम् । सुऽअपत्यम् । आयुः ।
सुऽवीर्यम् । नासत्या । वहन्ता ।
आ । जुह्वावीम् । सऽमनसा । उप । वाजैः ।
त्रिः । अह्नः । भागम् । दधतीम् । अयातम् ॥१९॥

९५ अन्वयः- नासत्या ! सुक्षत्रं स्वपत्यं रयिं सुवीर्यं आयुः वहन्ता, वाजैः अह्नः त्रिः भागं आदधतीं जह्नावीं समनसा उप अयातम् ॥ १९ ॥

९५ अर्थ- हे (नासत्या) सत्यके पालक अश्विदेवो ! (सुक्षत्रं) अच्छी क्षत्रियोचित वीरता (स्वपत्यं रयिं) अच्छी सन्तान युक्त धनसंपदा और (सुवीर्यं आयुः) अच्छी वीरतासे पूर्ण जीवनको (वहन्ता तुम दोनों अपने साथ लेकर (वाजैः) अन्नोंसे (अह्नः त्रिः भागं आदधतीं) दिनके तीनों विभागोंमें यजन करनेवाली (जह्नावीं) जन्हुकी प्रजाके समीप (समनसा) तुम दोनों एक विचारसे (उप अयातं) चले गये थे ।

९५ भावार्थ- जन्हुकी प्रजा दिनमें तीन बार अन्नोंका प्रदान करती है, तीनों सवनोंमें हवियें यजन करती है, इसलिए तुम दोनों उस प्रजाको उत्तम क्षात्र बल, उत्तम संतति, उत्तम ऐश्वर्य, और उत्तम पराक्रमयुक्त दीर्घ जीवन उनके पास जाकर एक मतसे देते हैं ।

९५ मानवधर्म- नेता लोग ऐसा प्रबन्ध करें कि जिससे उनके अनुयायियों को उत्तम वीरता, उत्तम संतान, श्रेष्ठ ऐश्वर्य और अनुपम शौर्यके कर्म करनेमें समर्थ दीर्घ जीवन प्राप्त होकर वे विश्व विजयी हों ।

९५ टिप्पणी- जह्नावी= जन्हुके कुलमें उत्पन्न प्रजा ।

[९६]

९६ परिविष्टं जाहुषं विश्वतः सीं सुगेभिर्नक्तमूहथू रजोभिः ।
विभिन्दुना नासत्या रथेन वि पर्वताँ अजरयू अयातम् ॥२०

९६ परिऽविष्टम् । जाहुषम् । विश्वतः । सीम् ।
सुऽगेभिः । नक्तम् । ऊहथुः । रजःऽभिः ।
विऽभिन्दुना । नासत्या । रथेन ।
वि । पर्वतान् । अजरयू इति । अयातम् ॥२०॥

९६ अन्वयः- अजरयू नासत्या ! विश्वतः परिविष्टं जाहुषं सुगेभिः रजोभिः नक्तं ऊहथुः , विभिन्दुना रथेन पर्वतान् वि अयातम् ॥ २० ॥

९६ अर्थ- हे (अजरयू नासत्या) जराहीन तथा सत्यके पालक अश्विदेवो ! (विश्वतः परिविष्टं) सभी ओरसे शत्रुद्वारा घेरे हुए (जाहुषं) जाहुष नरेश को (सुगेभिः रजोभिः) सुगम रीतिसे गमन करने योग्य मार्गोंसे (नक्तं ऊहथुः) रात्रीके अवसरपर तुम दोनों दूरके स्थानपर ले चले; और अपने (विभिन्दुना रथेन) विशेष रीतिसे शत्रुका भेदन करनेवाले रथपर चढकर (पर्वतान् वि अयातं) पर्वतों को भी पार कर तुम दोनों दूर चले गये।

९६ भावार्थ- अश्विदेव सत्यके पालक और तरुणोंके समान कार्य करनेवाले हैं। जहुष राजा शत्रु सेनासे घेरा गया था उस समय अश्विदेवोंने रात्रीके समय उस राजाको उस घेरेमेंसे चुपचाप हटाया और गुप्त परन्तु सुगम मार्गोंसे उसको दूरके स्थान पर पहुंचाया। स्वयं अपने शत्रुके घेरेको तोड देनेवाले रथपर चढ कर, शत्रुका घेरा तोडकर, वेगसे पर्वतोंके भी पार चले गये।

९६ मानवधर्म- शत्रुके द्वारा घेरे जानेके पश्चात् युक्ति विशेष करके, शत्रुका घेरा तोड कर, अथवा रात्रीके समय पूर्णरीतिसे गुप्ततापूर्वक चुपचाप, शत्रुके घेरेसे बाहर निकल पडना योग्य है।

९६ टिप्पणी- परिविष्ट=शत्रुसे चारों ओरसे घेरा हुआ। रजस्=अन्तरिक्ष मार्ग, भूमिका विवर मार्ग। वि-भिन्दु=विशेष रीतिसे भेदन करनेवाला।

[९७]

९७ एकस्या वस्तोरावतं रणाय वशमश्विना सनये सहस्रा ।
निरहतं दुच्छुना इन्द्रवन्ता पृथुश्रवसो वृषणावरातीः ॥२१॥

९७ एकस्याः । वस्तोः । आवतम् । रणाय ।
वशम् । अश्विना । सनये । सहस्रा ।
निः । अहतम् । दुच्छुनाः । इन्द्रऽवन्ता ।
पृथुऽश्रवसः । वृषणौ । अरातीः ॥२१॥

९७ अन्वयः— वृषणौ अश्विना ! सहस्रा सनये वशं रणाय एकस्याः वस्तोः आवतं, पृथुश्रवसः दुच्छुनाः अरातीः इन्द्रवन्ता निः अहतम् ॥ २१ ॥

९७ अर्थ- हे (वृषणी अश्विना) बलवान् अश्विदेवो ! (सहस्रा समये) सहस्रों प्रकारके धनका लाभ करनेके लिए (वशं रणाय) वश नरेशको युद्धके लिए (एकस्या वस्तोः आवतं) एक ही दिनमें तुम दोनोंने सुरक्षित बनाया और (पृथु श्रवसः) पृथुश्रवाके (दुच्छुनाः अरातीः) दुःख देनेवाले शत्रुओंको (इन्द्रवन्ता) तुम दोनोंने इन्द्रकी सहायता पाकर (निः अहतं) पूर्णरूपसे विनष्ट किया।

९७ भावार्थ— बलवान् अश्विदेवोंने वश नामक नरेश को सहस्रों प्रकारके धन प्राप्त हो इसलिए एक ही दिनमें युद्धके लिए योग्य बनाया और युद्धमें सुरक्षित भी किया, तथा पृथुश्रवा नरेशके दुष्ट शत्रुओंको भी इन्द्रकी सहायता पाकर पूर्ण रूपसे नष्ट किया।

९७ मानवधर्म- नरेशोंको शत्रुके साथ युद्ध करनेकी उत्तम तैयारी करनी चाहिये और आवश्यकता होनेपर मित्र राजाओंकी सहायता भी प्राप्त करनी चाहिये। शत्रुका नाश करना ही सदा मुख्य ध्येय रहना चाहिये।

९७ टिप्पणी- वस्तोः=दिन। दुच्छुना=दुःखदायी।

[९८]

९८ शरस्य चिदार्चत्कस्यावतादा नीचादुच्चा चक्रथुः पातवे
वाः। शयवे चिन्नासत्या शचीभिर्जसुरये स्तर्यं पिप्य-
थुर्गाम् ॥२२॥

९८ शरस्य। चित्। आर्चत्ऽकस्य। अवतात्। आ।
नीचात्। उच्चा। चक्रथुः। पातवे। वारिति वाः।
शयवे। चित्। नासत्या। शचीभिः।
जसुरये। स्तर्यम्। पिप्यथुः। गाम् ॥२२॥

९८ अन्वयः- नासत्या! आर्चत्कस्य शरस्य पातवे नीचात् अवतात् चित् वाः उच्चा आचक्रथुः, जसुरये शयवे स्तर्यं गां चित् शचीभिः पिप्यथुः ॥२२॥

९८ अर्थ- हे (नासत्या) सत्य युक्त अश्विदेवो! (आर्चत्कस्य शरस्य) ऋचत्कके पुत्र शर नामवाले उपासकके (पातवे) पीनेके लिए (नीचात् अवतात् चित्) गहरे गढे या कूपमेंसे (वाः) जलको तुम दोनों (उच्चा आचक्रथुः) ऊपर ला चुके और (जसुरये शयवे) थके माँदे शयु ऋषिके लिए (स्तर्यं गां चित्) वन्ध्या गायको भी (शचीभिः पिप्यथुः) अपनी शक्तियोंसे तुम दोनों दुधारु बना चुके।

९८ भावार्थ- सत्यके पालक अश्विदेव ऋषावके पुत्र शरके पीनेके लिये गहरे कुवेसे पानी ऊपर लाये और उसे पीनेके लिये दिया। तथा शयु ऋषि अत्यन्त क्षीण हो गया था, उसको दूध पीनेके लिये मिल जाय इसलिये प्रसूत न होनेवाली गौको प्रसूत होने योग्य बनाया और दुधारूभी बना दिया।

९८ मानवधर्म- गहरे कुवेसे पानी ऊपर निकालनेके लिये विशेष आयोजना करनी चाहिये। क्षीण पुरुषोंको परिपुष्ट करनेके लिये गौका यथेष्ट दूध पीनेके लिये देना चाहिये और गौओंको दुधारू बनाना चाहिये। गौके वंशका सुधार करना चाहिये। तथा जो गौ गर्भ धारण नहीं करती उसको गर्भधारणक्षम बनाना चाहिये।

९८ टिप्पणी- वार्=जल। जसुरिः=क्षीण, दुर्बल। स्तर्य=वन्ध्या, गर्भ धारण न करनेवाली। शची=शक्ति, बुद्धि।

[९९]

९९ अवस्यते स्तुवते कृष्णियाय ऋजूयते नासत्या शचीभिः।
पशुं न नष्टमिव दर्शनाय विष्णाप्वं ददथुर्विश्वकाय ॥२३॥

९९ अवस्यते। स्तुवते। कृष्णियाय।
ऋजुऽयते। नासत्या। शचीभिः।
पशुम्। न। नष्टम्ऽइव। दर्शनाय।
विष्णाप्वम्। ददथुः। विश्वकाय ॥२३॥

९९ अन्वयः- नासत्या! स्तुवते अवस्यते कृष्णियाय ऋजूयते विश्वकाय शचीभिः विष्णाप्वं, नष्टं पशुं इव, दर्शनाय ददथुः ॥ २३ ॥

९९ अर्थ- हे (नासत्या) सत्यके पालक अश्विदेवो! (स्तुवते अवस्यते) स्तुति करनेवाले और अपनी रक्षाकी चाह करनेवाले (कृष्णियाय ऋजूयते विश्वकाय) कृष्णके पुत्र, सरल मार्गपरसे चलनेवाले विश्वकको (शचीभिः) अपनी शक्तियोंसे उसके विनष्ट हुए (विष्णाप्वं) विष्णाप्व नामक पुत्रको (नष्टं पशुं इव) मानों खोये हुए पशुकी भांति (दर्शनाय ददथुः) दर्शनके लिए तुम दोनों दे चुके।

९९ भावार्थ- हे सत्य पालक अश्विदेवो! सरल मार्गसे जानेवाले कृष्ण-पुत्र विश्वकका विष्णाप्व नामवाला पु[illegible] हो गया था, उस पुत्रको ढूंढकर तुमने अपनी [illegible] किया [illegible]

९९ मानवधर्म- राष्ट्रों या नगरोंमें रक्षाका प्रबंध ऐसा उत्तम करना चाहिये कि, किसीका पुत्र या कोई संबंधी खो जाय, तो वहाके विभागके प्रबंध कर्ता को खबर देनेसे वे उसकी खोज करके प्राप्त करें और उसको सुरक्षित घर पहुंचा दें। लापता हुआ पशुभी इस तरह प्राप्त होवे।

९९ टिप्पणी- ऋजूयत्=सरल मार्गसे जानेवाला, यज्ञ कर्ता।

[१००]

१०० दश॒ रात्री॒रशि॑वेना॒ नव॒ द्यूनव॑नद्धं श्नथि॒तम॒प्स्व१॒॑न्तः ।
वि॒प्रु॑तं रे॒भमु॒दनि॒ प्रवृ॑क्त॒मुन्नि॑न्यथुः॒ सोम॑मिव स्रु॒वेण॑ ॥२४॥

१०० दश॑ । रात्रीः॑ । अशि॑वेन । नव॑ । द्यून् ।
अव॑ऽनद्धम् । श्न॒थि॒तम् । अ॒प्ऽसु । अ॒न्तरिति॑ ।
विऽप्रु॑तम् । रे॒भम् । उ॒दनि॑ । प्रऽवृ॑क्तम् ।
उत् । नि॒न्य॒थुः॒ । सोम॑म्ऽइव । स्रु॒वेण॑ ॥२४॥

१०० अन्वयः- अप्सु अन्तः दश रात्रीः नव द्यून् अशिवेन अवनद्धं, श्नथितं, उदनि विप्रुतं प्रवृक्तं रेभं; स्रुवेण सोमं इव उत् निन्यथुः ॥२४॥

१०० अर्थ- (अप्सु अन्तः) जलोंके भीतर (दश रात्रीः) दस रातों और (नव द्यून्) नौ दिनतक (अशिवेन अवनद्धं) अमंगलकारी शत्रुसे जकडे हुए अतएव बडे (श्नथितं) पीडित, हुए (उदनि विप्रुतं) जलसे भीगे हुए, तथा (प्रवृक्तं रेभं) व्यथासे भरे हुए ऋषि रेभको, (स्रुवेण सोमं इव) जैसे स्रुवासे सोमरसको ऊपर उठालेते हैं, उसी प्रकार तुम दोनोंने (उत् निन्यथुः) ऊपर किया था।

१०० भावार्थ- रेभ नामक ऋषिको दुष्ट असुरोंने पाशरज्जूसे बांधकर जलमें फेंक दिया था। दस रात्री और नौ दिन व्यतीत होनेपर अश्विदेवोंको इसका पता लगा, तब उन्होंने तत्कालही उस भीगे, त्रस्त हुए और पीडित बने ऋषिको ऊपर निकाल दिया। (और आरोग्य संपन्न बना दिया।)

१०० मानवधर्म- जलमें डूबनेवालोंको बाहर निकालनेकी विद्यामें लोग प्रवीण बनें। तैरनेमें और तिरानेमें प्रवीण बन जायें।

१०० टिप्पणी- श्नथित=पीडित, त्रस्त। प्रवृक्त =संतप्त, दुःखी।

[१०१]

१०१ प्र वां दंसांस्यश्विनाववोचमस्य पतिः स्यां सुगवः सुवीरः।
उत पश्यन्नश्नुवन् दीर्घमायुरस्तमिवेज्जरिमाणं जगम्याम्॥२५

१०१ प्र । वाम् । दंसांसि । अश्विनौ । अवोचम् ।
अस्य । पतिः । स्याम् । सुऽगवः । सुऽवीरः ।
उत । पश्यन् । अश्नुवन् । दीर्घम् । आयुः ।
अस्तम्ऽइव । इत् । जरिमाणम् । जगम्याम् ॥२५॥

१०१ अश्विनौ ! वां दंसांसि प्र अवोचं, सुगवः सुवीरः अस्य पतिः स्यां, उत दीर्घं आयुः अश्नुवन् पश्यन्, अस्तं इव इत् जरिमाणं जगम्याम् ।

१०१ अर्थ- हे अश्विदेवो ! (वां दंसांसि) तुम दोनोंके कार्योंके बारेमें इस प्रकार मैं (प्र अवोचं) उत्कृष्ट ढंगसे वर्णन कर चुका हूँ इससे (सुगवः सुवीरः) अच्छी गायों एवं सुन्दर वीर पुत्रोंसे युक्त होकर मैं (अस्य पतिः स्यां) इस राष्ट्रका अधिपति बनूँ (उत) और (दीर्घं आयुः अश्नुवन्) दीर्घ जीवनका उपभोग करता हुआ (पश्यन्) दर्शन आदि सभी शक्तियोंसे युक्त बनकर (अस्तं इव इत्) मानों निश्चयपूर्वक अपनेही घरमें मैं प्रवेश करने के समान मैं (जरिमाणं जगम्यां) बुढापे को प्राप्त हो जाऊँ ।

१०१ भावार्थ- हे अश्विदेवो ! आपके किये कर्मोंका मैंने इस तरह वर्णन किया है। इससे मैं उत्तम गायों और शूर पुत्रोंसे युक्त तथा इस राष्ट्रका अधिपति भी बनना चाहता हूं तथा दीर्घायु होकर, जिस तरह अपने निज घरमें प्रवेश करते हैं, उस तरह मैं बुढापेमें प्रवेश करना चाहता हूं अर्थात् अतिदीर्घ आयुतक जीवित रहना चाहता हूं।

१०१ मानवधर्म- शूर वीर और कर्म कुशल पुरुषोंके श्रेष्ठ कर्मोंका इतिहास सुनते हुए, गौ आदि धनों और शूर पुत्रोंको प्राप्त करके, राष्ट्रका शासक बनकर, दीर्घ आयु प्राप्त करना चाहिये ।

[१०२] (ऋ० १।११७।१-२५)

१०२ मध्वः सोमस्याश्विना मदाय प्रत्नो होता विवासते वाम् ।
बर्हिष्मती रातिर्विश्रिता गीरिषा यातं नासत्योप वाजैः॥१॥

१०२ मध्वः । सोमस्य । अश्विना । मदाय ।
प्रत्नः । होता । आ । विवासते । वाम् ।
बर्हिष्मती । रातिः । विऽश्रिता । गीः ।
इषा । यातम् । नासत्या । उप । वाजैः ॥१॥

१०२ अन्वयः- प्रत्नः होता, मध्वः सोमस्य मदाय नासत्या अश्विना! वां आ विवासते; गीः विश्रिता, रातिः बर्हिष्मती, वाजैः इषा उपयातम् ॥१॥

१०२ अर्थ- (प्रत्नः होता) पुराने समयसे दान देनेवाला यह (मैं) पुरुष (मध्वः सोमस्य मदाय) मीठे सोमरसके पीनेसे उत्पन्न हर्षका उपभोग तुम्हें देनेके लिए, हे (नासत्या अश्विना) सत्य के पालक अश्विदेवो ! (वां आविवासते) तुम दोनोंकी पूर्ण सेवा करना चाहता है, (गीः विश्रिता) मेरी स्तुतियां तुम्हारे पास पहुंची हैं और (रातिः बर्हिष्मती) तुम्हें देनेका दान यहाँ कुशासनपर रख दिया है, अतएव (वाजैः इषा उपयातं) अपने बलों तथा अन्नोंके साथ तुम दोनों हमारे समीप आओ।

१०२ भावार्थ- हे सत्यके पालक अश्विदेवो ! मैं पुरातन समयसे तुम्हारी सेवा करनेवाला तुम्हारा भक्त यहां सोमरस तुम्हें देनेके लिए तैयार करके ले आया हूं। मैंने जो स्तुति की वह तुमने सुनी है। इस आसनपर तुम्हें देनेके लिये यह सोमपात्र भरकर रखा है। अतः तुम दोनों अपने बलों और अन्नों के साथ मेरे स्थानपर आओ और मेरी सहायता करो।

१०२ मानवधर्म- अनुयायी नेताकी सेवा करें और नेता अनुयायियोंके बल अन्न तथा धन बढा दें। इस तरह नेता और अनुयायी परस्परकी सहायता करते रहें।

१०२ टिप्पणी- प्रत्नः=पुरातन। विवास् = सेवा करना।

[८४]

१०३ यो वामश्विना मनसो जवीयान् रथः स्वश्वो विश आजिगाति । येन गच्छथः सुकृतो दुरोणं तेन नरा वर्तिरस्मभ्यं यातम् ॥२॥

*

१०३ यः । वाम् । अश्विना । मनसः । जवीयान् ।
रथः । सुऽअश्वः । विशः । आऽजिगाति ।
येन । गच्छथः । सुऽकृतः । दुरोणम् ।
तेन । नरा । वर्तिः । अस्मभ्यम् । यातम् ॥२॥

१०३ अन्वयः- नरा अश्विना ! वां यः रथः स्वश्वः मनसः जवीयान् विशः आजिगाति, येन सुकृतः दुरोणं गच्छथः तेन अस्मभ्यं वर्तिः यातं ॥ २ ॥

१०३ अर्थ- हे (नरा अश्विना) नेता अश्विदेवो ! (वां) तुम दोनोंका (यः रथः स्वश्वः, मनसः जवीयान्) जो रथ अच्छे घोडोंसे युक्त, तथा मन से भी वेगवान् है, और जो (विशः आ जिगाति) प्रजा जनोंके पास तुम्हें ले जाता है, (येन) जिस रथ पर चढकर (सुकृतः दुरोणं गच्छथः) शुभ कार्यकर्ताके घर तुम दोनों चले जाते हो, (तेन) उस रथपर बैठकर (अस्मभ्यं वर्तिः यातम्) हमारे घर आजाओ ।

१०३ भावार्थ- अश्विदेवोंका रथ मनसे भी वेगवान् है उसे उत्तम शिक्षित घोडे जोते रहते है, वह रथ उन्हें प्रजाजनोंके पास ले जाता है और उसमें बैठकर ही वे सत्कर्म कर्ताके घर जाते रहते हैं, उस रथपर चढकर वे हमारे घर आ जायँ ।

१०३ मानवधर्म- नेता लोग अपने पास उत्तम यान रखें और उनमें बैठकर अनुयायियोंके घर शीघ्र जायँ ।

१०३ टिप्पणी- सुकृत्=सत्कर्म कर्ता । दुरोणं=घर । वर्तिः=घर ।

[१०४]

१०४ ऋषिं नरावंहसः पाञ्चजन्यमृबीसादत्रिं मुञ्चथो गणेन ।
मिनन्ता दस्योरशिवस्य माया अनुपूर्वं वृषणा चोदयन्ता ॥३
१०४ ऋषिम् । नरा । अंहसः । पाञ्चऽजन्यम् ।
ऋबीसात् । अत्रिम् । मुञ्चथः । गणेन ।
मिनन्ता । दस्योः । अशिवस्य । मायाः ।
अनुऽपूर्वम् । वृषणा । चोदयन्ता ॥३॥

१०४ अन्वयः- वृषणा नरा ! पाञ्चजन्यं ऋषिं अत्रिं अंहसः ऋबीसात् गणेन मुञ्चथः, मिनन्ता, अशिवस्य दस्योः मायाः अनुपूर्वं चोदयन्ता ॥ ३ ॥

१०४ अर्थ- हे (वृषणा नरौ) बलिष्ठ एवं नेता अश्विदेवो ! (पाञ्चजन्यं ऋषिं अत्रिं) पंचविध मानव समाजके हितकर्ता अत्रि ऋषिको (अंहसः ऋबीसात्) कष्ट दायक अँधेरे कारागृहसे उसके (गणेन मुमुक्थः) अनुयायियोंके समेत तुम दोनोंने छुडाया, तथा (मिनन्ता) तुम दोनों शत्रुका विनाश करने वाले हो और (अशिवस्य दस्योः) अहितकारी शत्रुकी (मायाः) कुटिल चालबाजियोंको (अनुपूर्वं चोदयन्ता) एकके पीछे एक हटाते जाते हो।

१०४ भावार्थ- अश्विदेव बलिष्ठ हैं, नेता हैं और शत्रुका नाश करनेवाले हैं। इन्होंने पंचजनोंके हितके लिये प्रयत्न करनेवाले अत्रि ऋषिको, कष्ट दायक कारागृहसे, उसके अनुयायियोंके समेत, छुडा दिया था और शत्रुकी सब चालबाजियोंको पहिलेसे ही जानकर उनको दूर किया था।

१०४ मानवधर्म- नेता लोग बलवान् हों एवं शत्रुका नाश करते रहें। पञ्चजनोंका हित करनेवाले राष्ट्रसेवकोंको कारावासादि कष्टोंसे छुडाते रहें, अर्थात् उस कष्ट के समय उनको यथोचित सहायता देते रहें। शत्रुके कपटोंको और चालबाजियोंको पहचानलें और उनको युक्तिसे असफल बना दें।

१०४ टिप्पणी- पाञ्चजन्यः=पञ्चजनोंका हितकर्ता। अशिव दस्यु=अशुभ शत्रु। माया=कपट, चालबाजी, छल। देखो 'अत्रि' ५८;६७;८४;१०४,११२; १४२;१५८;२०६।

[१०५]

१०५ अश्वं न गूळ्हमश्विना दुरेवैर्ऋषिं नरा वृषणा रेभमप्सु ।
सं तं रिणीथो विप्रुतं दंसोभिर्न वां जूर्यन्ति पूर्व्या कृतानि॥४

१०५ अश्वम् । न । गूळ्हम् । अश्विना । दुःऽएवैः ।
ऋषिम् । नरा । वृषणा । रेभम् । अप्ऽसु ।
सम् । तम् । रिणीथः । विऽप्रुतम् । दंसःऽभिः ।
न । वाम् । जूर्यन्ति । पूर्व्या । कृतानि ॥४॥

१०५ अन्वयः- वृषणा ! नरा ! अश्विना ! दुरेवैः अप्सु गूळ्हं, तं रेभं ऋषिं विप्रुतं दंसोभिः अश्वं न सं रिणीथः, वां पूर्व्या कृतानि न जूर्यन्ति ॥ ४ ॥

१०५ अर्थ- हे (वृषणा) बलवान (नरा अश्विना) नेता अश्विदेवो ! (दुरेवैः) दुष्ट कर्मकर्ताओंने (अप्सु) जलोंमें (गूळ्हं) फेंके हुए (तं रेभं ऋषिं) उस ऋषि रेभको, जो (विप्रुतं) विशेष शिथिलसा दुर्बल बन चुका था, उसको (दंसोभिः) अपने भैषजके कार्योंसे अच्छीभाँति (अश्वं न)

घोडे जैसा (संरिणीथा) सुदृढ शरीरवाला बना दिया था, (वां) तुम दोनोंके ये (पूर्व्या कृतानि) पहले समयके कार्य (न जूर्यन्ति) कभी जीर्ण नहीं होते हैं। कभी भूले नहीं जाते ।

१०५ भावार्थ- दुष्ट असुरोंने रेभ ऋषिको बांधकर जल प्रवाहमें फेंक दिया था, इस कारण वह अत्यंत दुर्बल बन गया था। उसको औषधादि उपचारोंसे आपने हृष्ट पुष्ट बलिष्ठ बना दिया था। ये जो आपके पूर्व समयके कार्य हैं ये कभी भूले नहीं जाते ।

१०५ मानवधर्म- शत्रुके अत्याचारके कारण जो लोग दुर्बल और रोगी बन चुके हों, उनको उत्तम औषधोपचार द्वारा पुनः सुदृढांग बना देना चाहिये ।

१०५ टिप्पणी- दुरेव=दुष्कर्म करनेवाला । विप्रुत=शिथिल, दुर्बल । दंसस्=कर्म, उपचार ।

[१०६]

१०६ सुषुप्वांसं न निर्ऋतेरुपस्थे सूर्यं न दस्रा तमसि क्षियन्तम् ।
शुभे रुक्मं न दर्शतं निखातमुदूपथुरश्विना वन्दनाय ॥५॥

१०६ सुसुप्वांसम् । न । निःऽऋतेः । उपऽस्थे ।
सूर्यम् । न । दस्रा । तमसि । क्षियन्तम् ।
शुभे । रुक्मम् । न । दर्शतम् । निऽखातम् ।
उत् । ऊपथुः । अश्विना । वन्दनाय ॥५॥

१०६ अन्वयः- दस्रा अश्विना ! तमसि क्षियन्तं सूर्यं न, निर्ऋतेः उपस्थे सुषुप्वांसं न, दर्शतं रुक्मं न निखातं शुभे वन्दनाय उत् ऊपथुः ॥५॥

१०६ अर्थ- हे (दस्रा अश्विना) शत्रु विनाशक अश्विदेवो ! (तमसि क्षियन्तं) अंधेरेमें छिपे पडे हुए (सूर्यं न) सूर्यके तुल्य (निर्ऋतेः उपस्थे) भूमिपर (सुषुप्वांसं न) सोये हुएके समान, (शुभे दर्शतं रुक्मं न) शोभाके लिये दर्शनीय सुवर्ण भूषणके समान (निखातं) जमीनके अन्दर गाडे हुए (वन्दनाय) वन्दनके हितके लिये उसे (उत् ऊपथुः) तुम दोनों ऊपर उठा चुके ।

१०६ भावार्थ- शत्रु विनाशक अश्विदेव कुएमें पडे वन्दनको उसको कल्याण करनेके लिये ऊपर लाये, जिस तरह अन्धेरेमें पडे उदयके पूर्व सूर्य

को ऊपर लाते हैं, भूमि पर सोये पुरुषको ऊपर उठाते है अथवा सुन्दर सुवर्ण के आभूषणको जिस तरह ऊपर धारण करते हैं, इस तरह वन्दनको गढेसे बाहर निकाला।

१०६ मानवधर्म- कोई जलमें डूबता हो, तो उसे बाहर निकालना चाहिये, उसे बचाना चाहिये। जैसा सुंदर आभूषण शरीरपर धारण करते हैं उस तरह उसको उठाना चाहिये, जैसे सोयेको जगाते हैं उस तरह बेसुधको होशपर लाना अथवा जगाना चाहिये और जैसे उगते सूर्य का तेज बढता जाता है, उस तरह इस मनुष्यका तेज बढता जाय ऐसा प्रबंध करना चाहिये।

१०६ टिप्पणी- निखात=गढेमें गाडा हुआ। निर्ऋति=भूमि, संकटमय स्थिति। वन्दन देखो ५८,८७।

[१०७]

१०७ तद् वां नरा शंस्यं पज्रियेण कुक्षीवता नासत्या परिज्मन्।
शफादश्वस्य वाजिनो जनाय शतं कुम्भाँ असिञ्चतं मधूनाम्॥६

१०७ तत्। वाम्। नरा। शंस्यम्। पज्रियेण।
कुक्षीवता। नासत्या। परिऽज्मन्।
शफात्। अश्वस्य। वाजिनः। जनाय।
शतम्। कुम्भान्। असिञ्चतम्। मधूनाम्॥६॥

१०७ अन्वयः- नासत्या! नरा! वां तत् परिज्मन् पज्रियेण कक्षीवता शंस्यं (यत्) वाजिनः अश्वस्य शफात् मधूनां शतं कुम्भान् जनाय असिञ्चतम्॥ ६॥

१०७ अर्थ- हे (नासत्या नरा) सत्यके पालक नेताओ! (वां तत्) तुम दोनोंका वह (परिज्मन्) चारों ओर विख्यात हुआ कार्य है जो (पज्रियेण कक्षीवता) पज्र कुलमें उत्पन्न कक्षीवानको (शंस्यं) प्रशंसित करना चाहिये। (यत् वाजिनः अश्वस्य) जो बलिष्ठ घोडेके (शफात्) खुर जैसे बडे पात्रसे (मधूनां शतं कुम्भान्) शहदके सौ घडोंको (जनाय असिञ्चतं) जनताके हितके लिए तुम दोनों भर चुके थे।

१०७ भावार्थ- औशिज गोत्रमें उत्पन्न पज्र कुलके कक्षीवान ऋषिके लिये यह तुम्हारा कर्म बडा ही प्रशंसा करने योग्य प्रतीत होता है कि जो

घोड़े जैसा (संरिणीथः) सुदृढ शरीरवाला बना दिया था, (वां) तुम दोनों के ये (पूर्व्या कृतानि) पहले समयके कार्य (न जूर्यन्ति) कभी जीर्ण नहीं होते हैं। कभी भूले नहीं जाते ।

१०५ भावार्थ- दुष्ट असुरोंने रेभ ऋषिको बांधकर जल प्रवाहमें फेंक दिया था, इस कारण वह अत्यंत दुर्बल बन गया था। उसको औषधादि उपचारोंसे आपने हृष्ट पुष्ट बलिष्ठ बना दिया था। ये जो आपके पूर्व समयके कार्य हैं वे कभी भूले नहीं जाते ।

१०५ मानवधर्म- शत्रुके अत्याचारके कारण जो लोग दुर्बल और रोगी बन चुके हों, उनको उत्तम औषधोपचार द्वारा पुनः सुदृढ़ बना देना चाहिये ।

१०५ टिप्पणी- दुरेव=दुष्कर्म करनेवाला । विप्रुत=शिथिल, दुर्बल । दंसस्=कर्म, उपचार ।

[१०६]

१०६ सुषुप्वांसं न निर्ऋतेरुपस्थे सूर्यं न दस्रा तमसि क्षियन्तम् ।
शुभे रुक्मं न दर्शतं निखातमुदूपथुरश्विना वन्दनाय ॥५॥

१०६ सुसुप्वांसम् । न । निःऽऋतेः । उपऽस्थे ।
सूर्यम् । न । दुस्रा । तमसि । क्षियन्तम् ।
शुभे । रुक्मम् । न । दर्शतम् । निऽखातम् ।
उत् । ऊपथुः । अश्विना । वन्दनाय ॥५॥

१०६ अन्वयः- दस्रा अश्विना ! तमसि क्षियन्तं सूर्यं न, निर्ऋतेः उपस्थे सुषुप्वांसं न, दर्शतं रुक्मं न निखातं शुभे वन्दनाय उत् ऊपथुः ॥५॥

१०६ अर्थ- हे (दस्रा अश्विना) शत्रु विनाशक अश्विदेवो ! (तमसि क्षियन्तं) अंधेरेमें छिपे पड़े हुए (सूर्यं न) सूर्यके तुल्य (निर्ऋतेः उपस्थे) भूमिपर (सुषुप्वांसं न) सोये हुएके समान, (शुभे दर्शतं रुक्मं न) शोभाके लिये दर्शनीय सुवर्ण भूषणके समान (निखातं) जमीनके अन्दर गाड़े हुए (वन्दनाय) वन्दनके हितके लिये उसे (उत् ऊपथुः) तुम दोनों ऊपर उठा चुके ।

१०६ भावार्थ- शत्रु विनाशक अश्विदेव कुवेमें पड़े वन्दनको उसको कल्याण करनेके लिये ऊपर लाये, जिस तरह अन्धेरेमें पड़े उदयके पूर्व सूर्य

को ऊपर करते हैं, भूमि पर सोये पुरुषको ऊपर उठाते हैं अथवा सुन्दर सुवर्ण के आभूषणको जिस तरह ऊपर धारण करते हैं, इस तरह वन्दनको गढेसे बाहर निकाला ।

१०६ मानवधर्म- कोई जलमें डूबता हो, तो उसे बाहर निकालना चाहिये, उसे बचाना चाहिये । जैसा सुंदर आभूषण शरीरपर धारण करते हैं उस तरह उसको उठाना चाहिये, जैसे सोयेको जगाते हैं उस तरह बेसुधको होशपर लाना अथवा जगाना चाहिये और जैसे उगते सूर्य का तेज बढता जाता है, उस तरह इस मनुष्यका तेज बढता जाय ऐसा प्रबंध करना चाहिये ।

१०६ टिप्पणी- निखात=गढेमें गाडा हुआ । निर्ऋति=भूमि, कष्टमय स्थिति । वन्दन देखो ५८,८७ ।

[१०७]

१०७ तद् वां नरा शंस्यं पज्रियेण कक्षीवता नासत्या परिज्मन् ।
शफादश्वस्य वाजिनो जनाय शतं कुम्भाँ असिञ्चतं मधूनाम् ॥६

१०७ तत् । वाम् । नरा । शंस्यम् । पज्रियेण ।
कक्षीवता । नासत्या । परिऽज्मन् ।
शफात् । अश्वस्य । वाजिनः । जनाय ।
शतम् । कुम्भान् । असिञ्चतम् । मधूनाम् ॥६॥

१०७ अन्वयः- नासत्या ! नरा ! वां तत् परिज्मन् पज्रियेण कक्षीवता शंस्यं (यत्) वाजिनः अश्वस्य शफात् मधूनां शतं कुम्भान् जनाय असिञ्चतम् ॥ ६ ॥

१०७ अर्थ- हे (नासत्या नरा) सत्यके पालक नेताओ ! (वां तत्) तुम दोनोंका यह (परिज्मन्) चारों ओर विख्यात हुआ कार्य है जो (पज्रियेण कक्षीवता) पज्र कुलमें उत्पन्न कक्षीवानको (शंस्यं) प्रशंसित करना चाहिये । (यत् वाजिनः अश्वस्य) जो बलिष्ठ घोडेके (शफात्) खुर जैसे बडे पात्रसे (मधूनां शतं कुम्भान्) शहदके सौ घडोंको (जनाय असिञ्चतं) जनताके हितके लिए तुम दोनों भर चुके थे ।

१०७ भावार्थ- अंगिरस गोत्रमें उत्पन्न पज्र कुलके कक्षीवान ऋषिके लिये यह तुम्हारा कर्म बडा ही प्रशंसा करने योग्य प्रतीत होता है कि जो

तुम दोनों अश्विदेवोंने अपने बलिष्ट घोडेके खुरके आकारके समान बडे आकार के पात्रसे मधुके सौ घडे सब लोगोंके पीनेके लिये भरकर रखे थे ।

१०७ मानवधर्म- मधुर रसके अनेक घडे भरकर रखने चाहिये, जो लोगोंको पीनेके लिये मिलेंगे ।

१०७ टिप्पणी- मधु = शहद, मीठा सोमरस । पज्रिय = देखो ८३ ।

[१०८]

१०८ युवं नरा स्तुवते कृष्णियाय विष्णाप्वं ददथुर्विश्वकाय ।
घोषायै चित् पितृषदे दुरोणे पतिं जूर्यन्त्या अश्विनावदत्तम् ॥७

१०८ युवम् । नरा । स्तुवते । कृष्णियाय ।
विष्णाप्वम् । ददथुः । विश्वकाय ।
घोषायै । चित् । पितृऽसदे । दुरोणे ।
पतिम् । जूर्यन्त्यै । अश्विना । अदत्तम् ॥७॥

१०८ अन्वय – नरा अश्विना ! युवं स्तुवते कृष्णियाय विश्वकाय विष्णाप्वं ददथुः, पितृषदे दुरोणे जूर्यन्त्यै घोषायै चित् पतिं अदत्तं ॥ ७ ॥

१०८ अर्थ- हे (नरा अश्विना) नेता अश्विदेवो ! (युवं) तुम दोनोंने (स्तुवते) स्तुति करनेवाले (कृष्णियाय विश्वकाय) कृष्णके पुत्र विश्वकको (विष्णाप्वं) उनका विष्णाप्व नामक पुत्र (ददथुः) तुम दोनों दे चुके, तथा (पितृषदे) पिताके (दुरोणे जूर्यन्त्यै) घरपरही बूढी होनेवाली (घोषायै चित्) घोषाको भी तुम दोनों (पतिं अदत्तं) पति दे चुके ।

१०८ भावार्थ- कृष्ण पुत्र विश्वक का पुत्र विष्णापू गुम हुआ था, उसकी खोज अश्विदेवोंने की और उस पुत्रको पिताके पास पहुंचाया । तथा पिताके घर रोगी और वृद्ध होनेवाली घोषाको रोग मुक्त करके उसको तरुणी युवती बना-कर उसको सुयोग्य पति भी अश्विदेवोंने दिया ।

१०८ मानवधर्म- राजप्रबंध द्वारा गुम हुए संबंधियोंकी खोज करके जिनका मनुष्य उनको पहुंचा देना चाहिये । इसी तरह आयुर्वेद की इतनी उन्नति करनी चाहिये कि, रोगियोंके रोग दूर हो सकें और वृद्धोंको तरुण बनाना संभव हो जाय ।

१०८ टिप्पणी- विष्णापू देखो १९,५१९ । घोषा देखो १०१

[१०९]

१०९ युवं श्यावाय रुशतीमदत्तं महः क्षोणस्याश्विना कण्वाय ।
प्रवाच्यं तद् वृषणा कृतं वां यन्नार्षदाय श्रवो अध्यधत्तम् ॥८

१०९ युवम् । श्यावाय । रुशतीम् । अदत्तम् ।
महः । क्षोणस्य । अश्विना । कण्वाय ।
प्रऽवाच्यम् । तत् । वृषणा । कृतम् । वाम् ।
यत् । नार्षदाय । श्रवः । अधिऽअधत्तम् ॥८॥

१०९ अन्वयः– वृषणा अश्विना ! श्यावाय युवं रुशतीं अदत्तं, क्षोणस्य कण्वाय महः; यत् नार्षदाय श्रवः अधि अधत्तं, तत् वां कृतं प्रवाच्यम् ॥८॥

१०९ अर्थ– हे (वृषणा अश्विना) बलिष्ठ अश्विदेवो ! (श्यावाय युवं) श्यावको तुम दोनोंने (रुशतीं अदत्तं) तेजस्विनी सुन्दर नारी दी, (क्षोणस्य कण्वाय महः) दृष्टि विहीन कण्वको नेत्र ज्योति का दान किया, (यत्) जो (नार्षदाय श्रवः अधि अधत्तं) नृषद पुत्रको श्रवण शक्तिका दान तुम दोनोंने दिया था (तत् वां) वह तुम दोनोंका (कृतं प्रवाच्यं) कार्य अत्यन्त वर्णन करनेयोग्य है ।

१०९ भावार्थ– अश्विदेवोंने श्याव ऋषिको सुन्दर स्त्री दी, अन्धे कण्वको उत्तम दृष्टि दी और नृषदपुत्र बधिर था उस को श्रवण करनेकी शक्ति दी । ये कार्य बडे प्रशंसा करने योग्य हैं ।

१०९ मानवधर्म– आयुर्वेदकी चिकित्सामें ऐसी उन्नति करनी चाहिये कि जिस से अन्धेको दृष्टि, बधिरको सुननेकी शक्ति और दुर्बल रोगीको पौरुष शक्ति प्राप्त हो सके ।

१०९ टिप्पणी– रुशती=तेजस्विनी सुंदरी । क्षोण=अन्ध । श्रव=श्रवण शक्ति । श्याव रोगी और अत्यन्त कृश था, उसको शक्तिमान बनाया और उसको स्त्री स्वीकार करने योग्य बनाया गया ।

[११०]

११० पुरू वर्पांस्यश्विना दधाना नि पेदव ऊहथुराशुमश्वम् ।
सहस्रसां वाजिनमप्रतीतमहिहनं श्रवस्यं तरुत्रम् ॥९॥

११० पुरु । वपूंसि । अश्विना । दधाना ।
नि । पेदवे । ऊहथुः । आशुम् । अश्वम् ।
सहस्रऽसाम् । वाजिनम् । अप्रतिऽइतम् ।
अहिऽहनम् । श्रवस्यम् । तरुत्रम् ॥९॥

११० अन्वयः– अश्विना ! पुरु वपूंसि दधाना, पेदवे अप्रतीतं, अहिहनं, सहस्रसां, श्रवस्यं, तरुत्रं, वाजिनं आशुं अश्वं नि ऊहथु ॥ ९ ॥

११० अर्थ– हे अश्विदेवो ! तुम दोनों (पुरु वपूंसि दधाना) अनेक रूप धारण करते हो, तुमने (पेदवे) पेदुको (अप्रतीतं) अजेय, (अहिहनं) शत्रुके वधकर्ता, (सहस्रसां श्रवस्यं) हजारों धनोंके दाता और यशस्वी, (तरुत्रं वाजिनं) संरक्षक बलिष्ठ और (आशुं अश्वं) शीघ्रगामी घोडेको (नि ऊहथुः) दिया था ।

११० भावार्थ– अश्विदेव नाना प्रकारके रूप धारण करके भ्रमण करते हैं । इन्होंने पेदुको ऐसा घोडा दिया कि जो कभी युद्धसे पीछे नहीं हटता, शत्रुका वध करता, हजारों धनोंको प्राप्त करता, संरक्षण करता, बलिष्ठ था, तथा शीघ्र गतिसे दौडनेवाला था ।

११० मानवधर्म– नाना प्रकारके रूप धारण करके सब खबरें उचित रीति से प्राप्त करनी चाहिये । घोडोंको उत्तम शिक्षा देनी चाहिये । घोडा युद्धसे डरके मारे पीछे न हटे, शत्रुका वध अपनी लातोंसे करता जाय, युद्धमें विजय प्राप्त कर के धनोंको लूट ले आवे, बलवान् हो, शीघ्रगामी हो ।

११० टिप्पणी– वपस्=रूप, शरीर । अ प्रति इतः = पीछे न हटनेवाला, शत्रुसे डरकर पीछे न आनेवाला । श्रवस्य=वर्णनीय, यशस्वी । तरुत्र=तैरकर पार जा सकनेवाला और इससे स्वामीका बचाव कर सकनेवाला । वाजी = बलवान् पेदु = देखो ८२,११०,१२५,१४०,३३६,५९२ ।

[१११]

१११ एतानि वां श्रवस्या सुदानू ब्रह्माङ्गूषं सदनं रोदस्योः ।
यद् वां पज्रासो अश्विना हवन्ते यातमिषा च विदुषे च वाजम् ॥१०॥

१११ एतानि । वाम् । अश्रव्या । सुदानू इति सुऽदानू ।
ब्रह्म । आङ्गूषम् । सदनम् । रोदस्योः ।
यत् । वाम् । पज्रासः । अश्विना । हवन्ते ।
यातम् । इषा । च । विदुषे । च । वाजम् ॥१०॥

१११ अन्वयः- सुदानू ! वां एतानि अश्रव्या, आङ्गूषं ब्रह्म, रोदस्योः सदनं; अश्विना ! यत् पज्रासः वां हवन्ते, इषा आ यातं च विदुषे वाजं च ॥ १० ॥

१११ अर्थ- हे (सुदानू) अच्छे दान देनेवाले अश्विदेवो ! (वां एतानि) तुम दोनों के ये (अश्रव्या) सुनने योग्य कार्य हैं, जिसका, (आंगूषं ब्रह्म) घोषणीय स्तोत्र बना है, तथा (रोदस्योः सदनं) द्युलोक एवं भूलोकमें दोनों स्थानोंपर रहना, हे अश्विदेवो ! (यत् पज्रासः) चूँकि अंगिरस लोग (वां हवन्ते) तुम दोनोंको बुलाते हैं, अतः (इषा आ यातं च) अन्न साथ लिए हुए आओ और (विदुषे वाजं च) विद्वानको अन्नका दान करो ।

१११ भावार्थ- अश्विदेव दान देनेवाले हैं । उनके इन दानोंका यह बड़ा स्तोत्र बन गया है । वे द्युलोकमें तथा भूलोकमें भी रहते हैं । आंगिरस कुलमें उत्पन्न पज्र लोग अश्विदेवों की उपासना करते हैं । अतः अब वे आपको बुलाँय तब अन्नोंके साथ आना और उनको वह अन्न दे देना ।

१११ मानवधर्म- नेता लोग अनुयायियोंको अन्नादि देकर उचित सहायता करें और अनुयायी उनके कार्यों की योग्य प्रशंसा करें, उनके कृतज्ञ बनें ।

१११ टिप्पणी- आंगूषम् = एक स्तोत्रका नाम । ब्रह्म = स्तोत्र । पज्र = देखो ८३,१०७ ।

[११२]

११२ सूनोर्मानेनाश्विना गृणाना वाजं विप्राय भुरणा रदन्ता ।
अगस्त्ये ब्रह्मणा वावृधाना सं विश्पलां नासत्यारिणीतम् ॥११

११२ सूनोः । मानेन । अश्विना । गृणाना ।
वाजम् । विप्राय । भुरणा । रदन्ता ।
अगस्त्ये । ब्रह्मणा । ववृधाना ।
सम् । विश्पलाम् । नासत्या । अरिणीतम् ॥११॥

*

११२ अन्वयः- भुरणा ! नासत्या अश्विना ! सूनोः मानेन गृणाना, विप्राय वाजं रदन्ता, ब्रह्मणा अगस्त्ये वावृधाना विश्पलां सं अरिणीतम् ॥११॥

११२ अर्थ- हे (भुरणा) सबके पोषणकर्ता ! (नासत्या अश्विना) सत्य के पालक अश्विदेवो (सूनोः मानेन गृणाना) पुत्रकी प्राप्तिके लिए मानसे स्तुति होनेपर उस (विप्राय वाजं रदन्ता) ज्ञानीके लिये तुमने यह बल दिया और (अगस्त्ये) अगस्त्यके (ब्रह्मणा वावृधानाः) स्तोत्रसे प्रशंसित हो कर तुम दोनोंने (विश्पलां सं अरिणीतं) विश्पलाको अच्छी भाँति चंगा बना दिया।

११२ भावार्थ- अश्विदेव सबका पोषण करते और सत्य पर स्थिर रहते है। मानने पुत्र प्राप्तिके लिये उनकी प्रार्थना की, उस ज्ञानीको पुत्र उत्पन्न होने का बल दिया, अगस्तिके प्रार्थना करने पर विश्पला का टूटा पांव ठीक किया।

११२ मानवधर्म- नेता अपने अनुयायियोंका पोषण करें और सत्य मार्ग पर स्थिर रहें। अपने पास ऐसे वैद्य रखे कि जो निर्बल को सबल बनाना और टांग टूटनेपर उसको ठीक करना जानते हों।

११२ टिप्पणी- भुरण=भरण पोषण करनेवाला। गृणान = स्तुति प्रार्थना उपासना करनेवाला।

[११३]

११३ कुह यान्ता सुष्टुतिं काव्यस्य दिवो नपाता वृषणा शयुत्रा।
हिरण्यस्येव कलशं निखातमुदूपथुर्दशमे अश्विनाहन् ॥१२॥

११३ कुह। यान्ता। सुऽस्तुतिम्। काव्यस्य।
दिवः। नपाता। वृषणा। शयुऽत्रा।
हिरण्यस्यऽइव। कलशम्। निऽखातम्।
उत्। ऊपथुः। दशमे। अश्विना। अहन् ॥१२॥

११३ अन्वयः- दिवः नपाता ! वृषणा ! शयुत्रा अश्विना ! काव्यस्य सुष्टुतिं कुह यान्ता ? दशमे अहन्, हिरण्यस्य कलशं निखातं इव उत् ऊपथुः ॥१२॥

११३ अर्थ- (दिवः नपाता) द्युके पुत्रो ! (वृषणा) बलवान ! (शयुत्रा अश्विना) शयुको बचानेवाले अश्विदेवो ! (काव्यस्य सुष्टुतिं) कवि

की स्तुति सुनकर तुम दोनों मला (कुह यान्ता) किधर जाते हो ? (दशमे अहन्) दसवे दिन (हिरण्यस्य कलशं निखातं इव) सुवर्ण कुम्भकी नाईं जो गडा हुआ था, (तत् उद्‌हथुः) उस रेभ को तुम दोनों ऊपर उठा चुके। वह भी कहां रहता था ?

११३ भावार्थ- अश्विदेव द्युके पडपोते हैं। उन्होंने सुभकी की स्तुति कहां रहकर सुन ली और पश्चात् वे कहां गये ? कूवेमें पडे रेभको दसवें दिन ऊपर उठाया और पश्चात् वे कहां गये ?

११३ मानवधर्म- नेता को उचित है कि वह अनुयायियोंकी सहायता करके वे कहां किस अवस्थामें कैसे रहते हैं इसका पता लेते रहे।

११३ टिप्पणी- दिवः नपाता = (दिवः न-पाता) द्युलोकको न गिराने वाले, द्युलोक के आधार (दिवः नपाता) द्युके पडपोते, द्युका पुत्र सूर्य और सूर्यके ये पुत्र। 'हिरण्यस्य कलशं निखातं' सुवर्णका कलश अर्थात् सुवर्णालंकारोंसे भरा घडा जैसा जमीनमें गाडा हुआ रखते हैं। इससे पता चलता है कि सुवर्ण रत्न आभूषण घडेमें बंद करके जमीनमें गाडकर रखने का रिवाज इस समय किसी स्थानमें होगा।

[११४]

११४ युवं च्यवा॑नमश्विना॒ जर॑न्तं॒ पुन॒र्युवा॑नं चक्रथुः॒ शची॑भिः ।
युवो रथं॑ दुहि॒ता सूर्य॑स्य स॒ह श्रि॒या ना॑सत्यावृणीत ॥१३॥

११४ युवम् । च्यवा॑नम् । अ॒श्वि॒ना॒ । जर॑न्तम् ।
पुन॑ः । युवा॑नम् । च॒क्र॒थुः॒ । शची॑भिः ।
यु॒वोः । रथ॑म् । दु॒हि॒ता । सूर्य॑स्य ।
स॒ह । श्रि॒या । ना॒स॒त्या॒ । अ॒वृ॒णी॒त॒ ॥१३॥

११४ अन्वयः- नासत्या अश्विना ! युवं शचीभिः जरन्तं च्यवानं पुनः युवानं चक्रथुः, सूर्यस्य दुहिता श्रिया सह युवोः रथं अवृणीत ॥ १३ ॥

११४ अर्थ- हे (नासत्या अश्विना) सत्य पालक अश्विदेवो ! (युवं शचीभिः) तुम दोनोंने अपनी शक्तियोंसे (जरन्तं च्यवानं) बूढे च्यवानको (पुनः युवानं चक्रथुः) फिरसे तरुण बनाया था। तथा (सूर्यस्य दुहिता) सूर्यकी कन्याने (श्रिया सह) अपनी शोभाके साथ (युवोः रथं अवृणीत) तुम दोनोंके रथको चुन लिया था।

११४ भावार्थ– अश्विदेवोंने अतिवृद्ध च्यवन ऋषिको फिर तरुण बना दिया था और सूर्यकी पुत्री इनके ही रथपर चढ बैठी थी।

११४ मानवधर्म– आयुर्वेदमें इतनी उन्नति करनी चाहिये कि या तो बुढापा ही न आवे और आया तो उसको दूर करके पुनः तरुण बनानेके प्रयोग सिद्ध स्थितिमें रहें। स्त्रियां स्वयंवरमें अपने पतिको चुन लिया करें।

११४ टिप्पणी– देखो 'च्यवान' ८६.११४,१३२,२७२। सूर्यपुत्री = सूर्य पुत्रीने अश्विनौ को पसंद किया था (देखो ९३)।

[११५]

११५ युवं तुग्राय पूर्व्येभिरेवैः पुनर्मन्यावभवतं युवाना।
युवं भुज्युमर्णसो निः समुद्राद् विभिरूहथुर्ऋज्रेभिरश्वैः॥१४॥

११५ युवम्। तुग्राय। पूर्व्येभिः। एवैः।
पुनःऽमन्यौ। अभवतम्। युवाना।
युवम्। भुज्युम्। अर्णसः। निः। समुद्रात्।
विऽभिः। ऊहथुः। ऋज्रेभिः। अश्वैः॥१४॥

११५ अन्वयः– युवाना युवं तुग्राय पूर्व्येभिः एवैः पुनःमन्यौ अभवतं, युवं भुज्युं अर्णसः समुद्रात् विभिः ऋज्रेभिः अश्वैः निः ऊहथुः॥ १४॥

११५ अर्थ– (युवाना युवं) तुम दोनों तरुण (तुग्राय) तुग्रके लिये तो (पूर्व्येभिः एवैः) पहले किये कर्मोंसे मान्य थे ही पर (पुनः मन्यौ अभवतं) फिर एक बार सम्माननीय बन गये, क्योंकि (युवं) तुम दोनोंने उसके पुत्र (भुज्यु) भुज्युको (अर्णसः समुद्रात्) अथाह समुद्रमेंसे, (विभिः) पक्षी जैसे उडनेवाले यानोंसे तथा (ऋज्रेभिः अश्वैः) शीघ्र गामी अश्वोंसे (निः ऊहथुः) पूर्ण रीतिसे उठा कर घर पहुंचाया था।

११५ भावार्थ– अश्विदेव तो तुग्र नरेश को पूर्व समय किये शुभ कर्मोंसे संमान देने योग्य थे ही, परन्तु अब जो उन्होंने उसके पुत्र भुज्यु को अथाह महासागरसे बचा कर पक्षी जैसे उडनेवाले यानोंसे तथा वेगवान् अश्वोंसे उसके पिताके पास पहुंचाया, इससे तुमको ये अधिक संमानके योग्य बन गये।

११५ मानवधर्म– वारंवार शुभ कर्मों द्वारा तथा उपकारों द्वारा लोगोंको सहायता पहुँचानी चाहिये। और मित्रता बढानी चाहिये।

११५ टिप्पणी- 'तुग्रः, भुज्युः ' देखो ५७,७१,७९-८१,११५.११६, इ. । विः = पक्षी, पक्षी जैसे यान ।

[११६]

११६ अजो॑हवीदश्विना तौ॒ग्र्यो वां॒ प्रोळ्हः॑ समु॒द्रम॑व्य॒थिर्ज॑ग॒न्वान् । निष्टमू॑हथुः सु॒युजा॒ रथे॑न॒ मनो॑जवसा वृषणा स्व॒स्ति ॥१५॥

११६ अजो॑हवीत् । अ॒श्वि॒ना॒ । तौ॒ग्र्यः । वा॒म् ।
प्रऽऊ॑ळ्हः । स॒मु॒द्रम् । अ॒व्य॒थिः । ज॒ग॒न्वान् ।
निः । तम् । ऊ॒ह॒थुः॒ । सु॒ऽयुजा॑ । रथे॑न ।
मनः॑ऽजवसा । वृ॒ष॒णा॒ । स्व॒स्ति ॥१५॥

११६ अन्वय - वृषणा अश्विना ! समुद्रं प्रोळ्हः तौग्र्यः अव्यथिः जगन्वान् वां अजोहवीत्; तं मनोजवसा सुयुजा रथेन स्वस्ति निः ऊहथु ॥१५॥

११६ अर्थ- हे (वृषणा !) बलवान अश्विदेवो ! (समुद्रं प्रोळ्ह तौग्र्य.) समुद्र यात्रा करनेके लिए भेजा हुआ तुग्रका पुत्र (अव्यथिः जगन्वान्) किसी) प्रकार की पीडाको न प्राप्त होकर चला गया, (वां अजोहवीत्) जब उसने तुम दोनोंको सहायतार्थ बुलाया, तब (तं) उसे (मनो जवसा सुयुजा रथेन) मनके तुल्य वेगवान् तथा अच्छी तरह जोते हुए रथसे (स्वस्ति निः ऊहथुः) सकुशल तुम दोनोंने पिताके घर पहुंचा दिया।

११६ भावार्थ— तुग्र नरेशके पुत्र भुज्युको [समुद्र पारके रेतीले प्रदेशमें रहनेवाले शत्रुपर हमला करनेके लिये] भेजा था। वह वहां बिना कष्ट पहुंच गया, [परन्तु वहां पहुंचने पर] उसका बेडा टूट गया, उसने अश्विदेवोंको संदेश भेजा। वे मनके समान वेगवाले उत्तम यानोंसे वहां पहुंचे और उस भुज्युको वहांसे उठा कर उसके पिताके घर पहुंचा दिया।

११६ मानवधर्म- यान ऐसे तैयार करने चाहिये कि, जो अन्तरिक्षमें, पानीमें तथा भूमि पर भी अतिवेगसे चल सकें। जो अनुयायी जहां कहीं कष्टमें पडे हों, वहां इन यानोंसे जाकर उनको सहायता देनी चाहिये।

११६ टिप्पणी-प्रोळ्हः = यात्रामें भेजा गया। तौग्र्यः = तुग्र पुत्र भुज्यु, देखो ५७,७१,७९-८१,११५ इ० ।

११९ शुनम् । अन्धार्य । भरम् । अह्वयत् । सा ।
वृकीः । अश्विना । वृषणा । नरा । इति ।
जारः । कनीनःऽइव । चक्षदानः ।
ऋज्रऽअश्वः । शतम् । एकम् । च । मेषान् ॥१८॥

११९ अन्वयः- सा वृकी, अन्धाय शुनं भरं इति अह्वयत्; वृषणा ! नरा ! अश्विना ! ऋज्राश्वः, कनीन जारः इव, शतं एकं च मेषान् चक्षदानः ॥ १८ ॥

११९ अर्थ- (सा वृकीः) वह वृकी इस (अन्धाय शुनं भरं) अन्धेको सुख मिले इसलिए (इति अह्वयत्) ऐसा पुकारने लगी कि, (वृषणा नरा अश्विना !) हे बलिष्ठ नेता अश्विदेवो ! (कनीनः जारः इव) तरुण जार जिस तरह सर्वस्व देता है उस तरह ऋज्राश्वने (शतं एकं च मेषान् चक्षदानः) एकसौ एक भेडें मुझे खाने के लिये दी हैं ।

११९ भावार्थ- [जब ऋज्राश्व अन्धा हुआ, तब] वह वृकी प्रार्थना करने लगी कि हे बलिष्ठ अश्विदेवो ! जिस तरह तरुण कामुक जार [किसी स्त्री को अपना सब धन देता है उस तरह] इसने एक सौ एक भेडें मुझे खानेके लिये दीं [जिससे यह अब अन्धा हो कर पडा है ।]

११९ मानवधर्म- पशुओंकी सहायता करने पर वे भी कृतज्ञ रहते हैं ।

११९ टिप्पणी- कनीनः=तरुण । ' वृकी ' देखो । ९२,११९

[१२०]

१२० मही वामूतिरश्विना मयोभूरुत स्रामं धिष्ण्या सं रिणीथः ।
अथा युवामिदह्वयत् पुरंधिरागच्छतं सीं वृषणाववोभिः ॥१९

१२० मही । वाम् । ऊतिः । अश्विना । मयःऽभूः ।
उत । स्रामम् । धिष्ण्या । सम् । रिणीथः ।
अथ । युवाम् । इत् । अह्वयत् । पुरम्ऽधिः ।
आ । अगच्छतम् । सीम् । वृषणौ । अवःऽभिः ॥१९॥

१२० अन्वयः- धिष्ण्या ! वृषणौ अश्विना ! वां ऊतिः मही मयोभूः उत स्रामं सं रिणीथः, अथ युवां इत् पुरन्धिः अह्वयत्, अवोभिः आगच्छतम् ॥१९

१२० अर्थ- हे (धिष्ण्या !) बुद्धिमान और (वृषणौ अश्विना) बलवान अश्विदेवो ! (वां ऊतिः) तुम दोनोंकी संरक्षण योजना (मही मयोभू.) बडी सुखकारक है, (उत) और (स्राम संरिणीथः) लंगडे लूलेको तुम दोनों भली भाँति ठीक कर देते हो, (अथ युवां इत्) अब तुम दोनोंको ही (पुरन्धिः अह्वयत्) एक बुद्धिमती महिलाने पुकारा था कि (अवोभिः आ गच्छतं) अपनी संरक्षण शक्तियोंके साथ तुम दोनों आओ।

१२० भावार्थ- अश्विदेव बडे बुद्धिमान और बलवान हैं, उनकी संरक्षक शक्ति बडी सुखदायिनी है। वे लंगडे लूलेको भी ठीक कर देते हैं। रोगग्रस्ता स्त्री भी उनके उपचारोंसे नीरोग होती है।

१२० मानवधर्म- मनुष्य बुद्धिमान और बलवान् बनें। अपना उत्तम संरक्षण करके अपना सुख बढावें। लंगडे लूलोंको ठीक करने और स्त्रियोंके रोगोंसे उनकी मुक्तता करनेकी विद्यामें वैद्य अपनी अधिकसे अधिक क्षमता प्राप्त करें।

१२० टिप्पणी मयोभूः = सुख दायक। स्राम = व्याधि ग्रस्त, शिथिल अंग, लंगडा लूला।

[१२१]

१२१ अधेनुं दस्रा स्तर्यं१ विषक्तामपिन्वतं शयवे अश्विना गाम्।
युवं शचीभिर्विमदाय जायां न्यूहथुः पुरुमित्रस्य योषाम् ॥२०

१२१ अधेनुम्। दस्रा। स्तर्यम्। विऽसक्ताम्।
अपिन्वतम्। शयवे। अश्विना। गाम्।
युवम्। शचीभिः। विऽमदाय। जायाम्।
नि। ऊहथुः। पुरुऽमित्रस्य। योषाम् ॥२०॥

१२१ अन्वयः- दस्रा अश्विना! स्तर्यं, विषक्तां, अधेनुं गां शयवे अपिन्वतं, शचीभिः पुरुमित्रस्य योषां विमदाय जायां नि ऊहथुः ॥२०॥

१२१ अर्थ- हे (दस्रा) शत्रुविनाशक अश्विदेवो ! (स्तर्यं) गर्भवती न होनेवाली (विषक्तां अधेनुं गां) दुबली, दूध न देनेवाली गायको (शयवे) शयुका हित करनेके लिए (अपिन्वत) तुम दोनोंने पुष्ट बना दिया, (युवं) तुम दोनोंने (शचीभिः) अपनी शक्तियोंसे (पुरुमित्रस्य योषां) पुरुमित्र की कन्याको (विमदाय जायां) विमदके लिए पत्नीके रूपमें (नि ऊहथुः) पहुंचा दिया।

[११७]

११७ अजोहवीदश्विना वर्तिका वामास्नो यत् सीममुञ्चतं वृकस्य ।
वि जयुषा ययथुः सान्वद्रेर्जातं विष्वाचो अहतं विषेण ॥१६

११७ अजोहवीत् । अश्विना । वर्तिका । वाम् ।
आस्नः । यत् । सीम् । अमुञ्चतम् । वृकस्य ।
वि । जयुषा । ययथुः । सानु । अद्रेः ।
जातम् । विष्वाचः । अहतम् । विषेण ॥१६॥

११७ अन्वयः- अश्विना ! वर्तिका वां अजोहवीत्, यत् सीं वृकस्य आस्नः अमुञ्चतं, अद्रेः सानु जयुषा वि ययथुः, विषेण विष्वाचः जातं अहतं ॥ १६ ॥

११७ अर्थ - हे अश्विदेवो ! (वर्तिका वां अजोहवीत्) वर्तिकाने तुम दोनों को बुलाया, (यत्) जब (सीं) उसे (वृकस्य आस्नः) भेडियाके मुँहसेंसे (अमुञ्चत) तुम दोनोंने छुडाया, (अद्रेः सानु) पहाडके शिखर को (जयुषा वि ययथुः) विजयी रथसे तुम दोनों लाँघ कर आगे निकल चुके और (विषेण) विषकी सहायतासे (विष्वाच. जातं अहत) सभी ओर सचार करने वाले शत्रुके सैनिकोंको तुम दोनोंने मारडाला।

११७ भावार्थ- अश्विदेव भेडियेके मुखसे बटेरको छुडा चुके। वे अपने विजयी रथपर बैठकर पर्वतके शिखरको लांघ कर परे पहुंचे, और उसको घेरनेवाले शत्रुके सैनिकोंको विषदिग्ध बाणोंसे मार चुके।

११७ मानवधर्म- राज प्रबन्ध द्वारा केवल मानवों की ही नहीं अपितु पशु पक्षियोंकी भी सुरक्षा करनी चाहिये। रथ ऐसे बनाने चाहिये कि जो पर्वतके शिखरोंको भी लांघ कर परे जा सकें। शस्त्र विषसे भरे हों, जो शत्रुपर घाव होनेसे, शत्रु यदि घावसे न मरे, तो विषसे तो अवश्य ही मर जाय।

११७ टिप्पणी- वर्तिका = बटेर, एक जातका पक्षी। वर्तिका और वृक=उषा और सूर्य (निरुक्त ५ । सायन भाष्य इसी मन्त्रपर देखो) देखो 'वर्तिका' ५१,९०,११०,१२४,१९५। जयुष् = विजयशील। विष्वाच् = चारों ओरसे घेरनेवाला शत्रु। विष = विष लगाया शस्त्र।

[११८]

११८ शतं मेषान् वृक्ये मामहानं तमः प्रणीतमशिवेन पित्रा ।
आक्षी ऋज्राश्वे अश्विनावधत्तं ज्योतिरन्धाय चक्रथुर्विचक्षे ॥१७

११८ शतम् । मेषान् । वृक्यै । मुमहानम् ।
तमः । प्रऽनीतम् । अशिवेन । पित्रा ।
आ । अक्षी इति । ऋज्रऽअश्वे । अश्विनौ । अधत्तम् ।
ज्योतिः । अन्धाय । चक्रथुः । विऽचक्षे ॥१७॥

११८ अन्वयः– वृक्ये शतं मेषान् मामहानं, अशिवेन पित्रा तमः प्रणीतं, अश्विनौ ! तस्मै ऋज्राश्वे अक्षी आ अधत्तं, अन्धाय विचक्षे ज्योतिः चक्रथुः ॥१७॥

११८ अर्थ- (वृक्ये शतं मेषान्) वृकी को सौ भेडे (मामहानं) प्रदान करनेवाले पुत्रको (अशिवेन पित्रा) अहितकारी पिताने (तमः प्रणीतं) अन्धा बना दिया, हे (अश्विना) अश्विदेवो ! उस (तस्मै ऋज्राश्वे अक्षी) ऋज्राश्वमें दोनों आँखोंको तुम दोनोंने (आ अधत्तं) धर दिया, अर्थात् उस (अन्धाय विचक्षे) अँधेको विशेष दृष्टि मिल जाये इसलिए तुम दोनोंने (ज्योतिः चक्रथुः) उसके आंख का निर्माण किया।

११८ भावार्थ– ऋज्राश्वने वृकीको सौ भेडें खानेके लिये दीं, इसलिये क्रुद्ध होकर पिताने उसको अन्धा बना दिया। अश्विदेवोंने उसकी दोनों आंखें ठीक कीं और उनमें अच्छी दृष्टि रख दी।

११८ मानवधर्म- अन्धेकी आंखें ठीक बनानेकी विद्या उन्नत अवस्थातक पहुंचानी चाहिये।

११८ टिप्पणी– अशिव = अशुभ, अहितकारी। तमः = अन्धेरा, अन्धकारी. अन्धता। 'ऋज्राश्व' देखो ९२।

[९८]

११९ शुनमन्धाय भरमह्वयत् सा वृकीरश्विना वृषणा नरेति ।
जारः कनीन इव चक्षदान ऋज्राश्वः शतमेकं च मेषान् ॥१८

१२१ भावार्थ- अश्विदेवोंने गर्भ धारण करनेमें असमर्थ दुर्बल, दूध न देनेवाली गौको, शयुको पुष्ट करनेके लिए, दुधारू बना दिया। पुरुमित्रकी कुमारिकाको विमदके लिये पत्नी रूपसे दिलवा दिया।

१२१ मानवधर्म- दुर्बल गौको पुष्ट करने और दुधारू बनानेकी विद्या सिद्ध करनी चाहिये। उत्तम कुमारीका उत्तम पतिके साथ विवाह होवे। पुत्र और पुत्रीमें कुछ दोष हो तो उनको दूर करना योग्य है। निर्दोष स्त्री पुरुषोंका ही समागम होवे।

[१२२]

१२२ यवं॒ वृकें॒णाश्विना॒ वप॒न्तेषं॑ दु॒हन्ता॒ मनु॑षाय दस्रा ।
अ॒भि दस्युं॒ बकु॑रेणा॒ धम॑न्तो॒रु ज्योति॑श्चक्रथु॒रार्या॑य ॥२१॥

१२२ यव॑म् । वृकें॑ण । अ॒श्वि॒ना॒ । वप॑न्ता ।
इष॑म् । दु॒हन्ता॑ । मनु॑षाय । द॒स्रा॒ ।
अ॒भि । दस्यु॑म् । बकु॑रेण । धम॑न्ता ।
उ॒रु । ज्योतिः॑ । च॒क्र॒थुः॒ । आर्या॑य ॥२१॥

१२२ अन्वयः- दस्रा अश्विना ! यवं वृकेण वपन्ता, मनुषाय इषं दुहन्ता दस्युं बकुरेण अभि धमन्ता आर्याय उरु ज्योतिः चक्रथुः ॥२१॥

१२२ अर्थ- हे (दस्रा) शत्रु विनाशकर्ता अश्विदेवो ! (यवं वृकेण वपन्ता) जौको हलसे बोते हुए, (मनुषाय इषं दुहन्ता) मानवके लिए अन्न रसका दोहन करते हुए और (दस्युं बकुरेण धमन्ता) शत्रुको तीक्ष्ण हथियार से विनष्ट करते हुए (आर्याय उरु ज्योतिः चक्रथु) तुम दोनों आर्योंके लिये विशाल प्रकाशका स्थान बनाते आये हो।

१२२ भावार्थ- अश्विदेव जौ आदि धान को हलसे बोते हैं, मनुष्योंके लिए अन्नरस देते हैं, शत्रुका तीक्ष्ण शस्त्रसे वध करते हैं और आर्योंके लिए विस्तृत प्रकाश दिखाते हैं।

१२२ मानवधर्म- नेता लोग भूमिपर अच्छी तरह हल चलाकर सब प्रकारका धान्य बो दें, जल तथा अन्न रस पर्याप्त प्रमाणमें मिलें ऐसा करें, शत्रुका नाश करनेके लिये तीक्ष्ण शस्त्र के प्रयोग करें और आर्योंको उत्थानका मार्ग बतानेके लिये विस्तृत प्रकाश बतावें।

१२२ टिप्पणी– धृक=हल, भेडिया, पशु । यकुर=शत्रु, तीक्ष्ण चमकदार शस्त्र ।

[१२३]

१२३ आथर्वणायाश्विना दधीचेऽश्व्यं शिरः प्रत्यैरयतम् ।
स वां मधु प्र वोचदृतायन् त्वाष्ट्रं यद् दस्रावपिकक्ष्यं वाम् ॥२२

१२३ आथर्वणाय । अश्विना । दधीचे ।
अश्व्यम् । शिरः । प्रति । ऐरयतम् ।
सः । वाम् । मधु । प्र । वोचत् । ऋतऽयन् ।
त्वाष्ट्रम् । यत् । दस्रौ । अपिऽकक्ष्यम् । वाम् ॥२२॥

१२३ अन्वयः– दस्रौ ! अश्विना ! आथर्वणाय दधीचे अश्व्यं शिरः प्रति ऐरयतं, सः ऋतायन् वां मधु प्रवोचत् यत् वां अपिकक्ष्यं त्वाष्ट्रम् ॥२२॥

१२३ अर्थ– हे (दस्रौ) शत्रु विनाशकर्ता अश्विदेवो ! (आथर्वणाय दधीचे) अथर्व वंशोत्पन्न दधीची ऋषिके लिए (अश्व्यं शिरः) घोडेका सिर (प्रति ऐरयतं) तुम दोनोंने लगा दिया था, तब (सः ऋतायन्) वह ऋषि यज्ञ मार्गका प्रचार करता हुआ (वां मधु प्रवोचत्) तुम दोनोंको इस मधु विद्या का उपदेश करता था, (यत्) और वैसी ही (वां) तुम दोनोंको (अपि कक्ष्यं त्वाष्ट्रं) अवयवोंको जोडनेकी विद्या, जो कि इन्द्रसे प्राप्त हुई थी वह भी, उसने तुमसे कहदाली ।

१२३ भावार्थ– अश्विदेवोंने अथर्व कुलमें उत्पन्न दधीची ऋषिको घोडे का सिर लगा दिया, तब उसने उनको, यज्ञ मार्गके प्रचारके उद्देश्यसे, मधु विद्याका उपदेश किया और टूटे अवयवोंको जोड देनेकी विद्या भी कही ।

१२३ मानवधर्म– जिस विद्यामें मधुर आनन्द भरा है, इसको तथा उत्तम ज्ञानकी मधुविद्याको आथर्वण दधीचीने अश्विदेवताओंको पढाया और उनको टूटे अवयवोंको ठीक तरह जोडनेकी विद्या भी पढाई ।

१२३ टिप्पणी– अपिकक्ष्यं=कक्षादि प्रदेशको जोडनेका ज्ञान । त्वाष्ट्रं= त्वष्टासे प्राप्त, त्वष्टासे प्राप्त । दधीची=देखो ८८,१२२,१४६ ।

[१२४]

१२४ सदा कवी सुमतिमा चके वां विश्वा धियो अश्विना प्रावतं मे । अस्मे रयिं नासत्या बृहन्तमपत्यसाचं श्रुत्यं रराथाम् ॥२३

१२४ सदा । कवी इति । सुऽमतिम् । आ । चके । वाम् ।
विश्वाः । धियः । अश्विना । प्र । अवतम् । मे ।
अस्मे इति । रयिम् । नासत्या । बृहन्तम् ।
अपत्यऽसाचम् । श्रुत्यम् । रराथाम् ॥२३॥

१२४ अन्वयः- नासत्या ! कवी अश्विना ! सदा वां सुमतिं आचके, मे विश्वाः धियः प्र अवतं, बृहन्तं अपत्यसाचं श्रुत्यं रयिं अस्मे रराथाम् ॥२३॥

१२४ अर्थ- हे (नासत्या कवी अश्विना) सत्य पालक कवी अश्विदेवो ! (सदा) हमेशा (वां) तुम दोनोंसे (सुमतिं आचके) अच्छी बुद्धिकी प्राप्ति की कामना करता हूँ, (मे) मेरी (विश्वाः धियः) सारी क्रियाओं तथा बुद्धियोंको (प्र अवतं) अच्छी तरह सुरक्षित रखो, (बृहन्तं) बडे भारी (अपत्यसाचं) सन्तान युक्त तथा (श्रुत्यं रयिं) वर्णनीय धनसंपदाको तुम (अस्मे रराथां) हमें दे डालो।

१२४ भावार्थ- हे सत्यके रक्षक कवी अश्विदेवो ! हमें उत्तम बुद्धि तथा उत्तम कर्म करनेकी शक्ति प्रदान करो, हमें उत्तम संतान और श्रेष्ठ प्रकारका धन मिलता रहे।

१२४ मानवधर्म- मनुष्यको उत्तम बुद्धि उत्तम कर्म उत्तम रीतिसे निभाने की शक्ति, उत्तम संतति तथा श्रेष्ठ धन संपदा प्राप्त करनी चाहिये।

[१२५]

१२५ हिरण्यहस्तमश्विना रराणा पुत्रं नरा वध्रिमत्या अदत्तम् ।
त्रिधा ह श्यावमश्विना विकस्तमुज्जीवस ऐरयतं सुदानू ॥२४॥

१२५ हिरण्यऽहस्तम् । अश्विना । रराणा ।
पुत्रम् । नरा । वध्रिऽमत्याः । अदत्तम् ।
त्रिधा । ह । श्यावम् । अश्विना । विऽकस्तम् ।
उत् । जीवसे । ऐरयतम् । सुदानू इति सुऽदानू ॥२४॥

१२५ अन्वयः- सुदानू ! रराणा ! नरा अश्विना ! वध्रिमत्यै हिरण्यहस्तं पुत्रं अदत्त, श्यावं त्रिधा विकस्तं ह जीवसे उत् ऐरयतम् ॥ २४ ॥

१२५ अर्थ- (सुदानू) हे अच्छे दानी (रराणा) बहुत उदार (नरा अश्विना) नेता अश्विदेवो ! (वध्रिमत्यै हिरण्यहस्तं पुत्रं अदत्तं) वध्रिमतीको हाथमें सुवर्ण धारण करनेवाले पुत्रका दान तुम दोनोंने किया, (श्यावं त्रिधा विकस्तं) श्याव, जो तीन स्थानोंमें खण्डित हो चुका था, उसे (जीवसे) जीवित रहनेके लिए (उत् ऐरयतं) तुम दोनोंने उत्तम रीतिसे ऊपर उठाया।

१२५ भावार्थ- अश्विदेव उत्तम दान देनेवाले और उत्तम नेता हैं। उन्हों ने गर्भवती होनेवाली स्त्रीको गर्भधारणक्षम बनाया, पश्चात् उसको उत्तम पुत्र हुआ और उस पुत्रके हाथमें सुवर्णालंकार धारण करने योग्य संपदा भी दी। श्याव तीन स्थान पर जखमी होकर पड़ा था, उसको ठीक किया और उसे दीर्घायु भी बना दिया।

१२५ मानवधर्म- वैद्यक शास्त्र को इतनी उन्नती करनी चाहिये कि जिससे वन्ध्या स्त्री को गर्भ धारण करनेमें समर्थ, नपुंसकको वाजीकरण द्वारा पुरुषत्व शक्ति से युक्त, और उनको सुसंतान प्राप्त करने तथा किसीके घायल होने और अवयवों के टूटनेपर उनको ठीक करनेमें उत्तम सिद्धि प्राप्त हो जाय।

१२५ टिप्पणी- वध्रिमती देखो ८९। विकस्त = टूटा, घायल।

[१२६]

१२६ एतानि वामश्विना वीर्याणि प्र पूर्व्याण्यायवोऽवोचन्।
ब्रह्म कृण्वन्तो वृषणा युवभ्यां सुवीरासो विदथमा वदेम॥२५

१२६ एतानि। वाम्। अश्विना। वीर्याणि।
प्र। पूर्व्याणि। आयवः। अवोचन्।
ब्रह्म। कृण्वन्तः। वृषणा। युवऽभ्याम्।
सुऽवीरासः। विदथम्। आ। वदेम॥२५॥

१२६ अन्वय - वृषणा अश्विना! वां एतानि पूर्व्याणि वीर्याणि आयवः प्र अवोचन्, युवभ्यां ब्रह्म कृण्वन्तः सुवीरासः विदथं आ वदेम॥ २५॥

१२६ अर्थ- हे (वृषणा अश्विना) बलिष्ठ अश्विदेवो! (वां एतानि) तुम दोनोंके ये (पूर्व्याणि वीर्याणि) पूर्व कालमें किये हुए पराक्रमके कार्य (आयवः प्र अवोचन्) सब मानव वर्णन करते आये हैं, (युवभ्यां ब्रह्म कृण्वन्तः) तुम दोनोंके लिए इस स्तोत्र की रचना करते हुए (सुवीरासः) अच्छे वीर बनकर हम (विदथं आ वदेम) सभाओंमें उसका खूब प्रवचन करेंगे।

१२६ भावार्थ- अश्विदेव बलवान हैं। इस सूक्तमें वर्णन किये ये सब उनके पराक्रमके कार्य प्राचीन कालसे सब मानव वर्णन करते आते हैं। हमने यह स्तोत्र उनकी प्रसन्नताके लिये किया है। इससे हम उत्तम वीर बनें, हमें उत्तम वीर संतानें हों और हम युद्धोंमें यशस्वी और सभाओंमें उत्तम प्रभावी वक्ता बनें।

१२६ टिप्पणी- आयवः = मनुष्य विदथ=युद्ध, सभा।

[११७] (ऋ० १।११८।१-११)

१२७ आ वां रथो अश्विना श्येनपत्वा सुमृळीकः स्ववाँ यात्वर्वाङ्। यो मर्त्यस्य मनसो जवीयान् त्रिवन्धुरो वृषणा वातरंहाः ॥१॥

१२७ आ। वाम्। रथः। अश्विना। श्येनऽपत्वा।
सुऽमृळीकः। स्वऽवान्। यातु। अर्वाङ्।
यः। मर्त्यस्य। मनसः। जवीयान्।
त्रिऽवन्धुरः। वृषणा। वातऽरंहाः ॥१॥

१२७ अन्वयः- वृषणा अश्विना! वां यः सुमृळीकः, स्ववान्, मर्त्यस्य मनसः जवीयान्, वातरंहाः श्येनपत्वा त्रिवन्धुरः रथः अर्वाङ् आयातु ॥१॥

१२७ अर्थ- हे (वृषणा अश्विना) बलिष्ठ अश्विदेवो! (वां यः) तुम दोनोंका जो (सुमृळीकः) बहुत सुख देनेवाला (स्ववान्) अपनी शक्तिसे युक्त (मर्त्यस्य मनसः जवीयान्) मानवके मनसेभी अतिवेगवान् (वातरंहाः) वायुके तुल्य वेगवाला (श्येनपत्वा) बाज पंछीके समान वेगसे उडनेवाला (त्रिवन्धुरः रथः) तीन स्थानोंमें सुदृढबन्ध लगा हुआ रथ है, वह (अर्वाङ् आयातु) हमारे अभिमुख आ जाए।

१२७ भावार्थ- बलवान् अश्विदेवोंका रथ बैठनेके लिए सुख कारक, अपनी बनावटके कारण सुदृढ, मनसे और वायुसे भी वेगवान्, पक्षीके समान आकाशमें उडनेवाला, तीन स्थलोंमें बंधा हुआ है, वह हमारे समीप आजाय अर्थात् उस रथमें बैठकर वे हमारे पास आ जावें।

१२७ मानवधर्म- सारीगर ऐसे यान बनावें कि जो अन्दर बैठनेके लिए सुख दें, सुदृढ हों अर्थात न टूटनेवाले हों, अतिवेगसे चलनेवाले हों, उनमें

तीन आसन हों, वे पक्षीके समान आकाशमें भी उड सकते हों। ऐसे यानोंमें बैठ कर लोग भ्रमण करें।

११७ टिप्पणी– रघु-यान्=रथ शक्तिसे युक्त। श्येन पत्वा=श्येन पक्षीके समान आकाशमें उडनेवाला, जो श्येन पक्षियोंकी शक्तिसे उडता है, जिसको श्येन पक्षी जोते जाते हैं। त्रिवन्धुर=तीन स्थानोंमें बंधा, तीन आसनोंसे युक्त, तीन विभागोंमें विभक्त, तीन जगह सजावट किया हुआ।

[११८]

११८ त्रिवन्धुरेण त्रिवृता रथेन त्रिचक्रेण सुवृता यातमर्वाक्।
पिन्वतं गा जिन्वतमर्वतो नो वर्धयतमश्विना वीरमस्मे ॥२॥

११८ त्रिऽवन्धुरेण। त्रिऽवृता। रथेन।
त्रिऽचक्रेण। सुऽवृता। आ। यातम्। अर्वाक्।
पिन्वतम्। गाः। जिन्वतम्। अर्वतः। नः।
वर्धयतम्। अश्विना। वीरम्। अस्मे इति ॥२॥

११८ अन्वयः— अश्विना! त्रिचक्रेण त्रिवन्धुरेण त्रिवृता सुवृता रथेन अर्वाक् आयातम्। नः गाः पिन्वत, अर्वतः जिन्वत अस्मे वीरं वर्धयतम् ॥२॥

११८ अर्थ– हे अश्विदेवो! (त्रिचक्रेण) तीन पहियोंसे युक्त, (त्रिवंधुरेण) तीन बंधनोंसे युक्त, (त्रिवृता सुवृता रथेन) तीन बाजूवाले उत्तम रीतिसे जानेवाले रथपर चढकर (अर्वाक् आयात) हमारे पास आओ। (नः गाः पिन्वत) हमारी गौएँ दुधारू बनाओ, हमारे (अर्वतः जिन्वत) घोडोंको गतिमान करो, तथा (अस्मे वीरं वर्धयत) हमारे लिए वीर संतानकी वृद्धि करो।

११८ भावार्थ हे अश्विदेवो! अपने तीन पहियोंवाले तीन आसनोंवाले त्रिकोणाकृति उत्तम गतिवाले रथपर चढकर हमारे पास आओ, और हमारी गौओंको दुधारू बनानेकी तथा हमारे घोडोंको सुशिक्षासे शिक्षित करके उत्तम ढगसे चलनेवाले बनानेकी आयोजना को बताओ तथा हमें वीर सन्तान हो ऐसा भी मार्ग हमें बताओ।

११८ मानवधर्म– विद्वान नेता अपने अनुयायियोंके घरपर जायँ, उनकी गौओंको विशेष दुधारू बनानेके तथा घोडोंको उत्तम शिक्षित करके उत्तम गतिसे चलनेमें समर्थ बनानेके उपाय बतावें, तथा घर के बाल बच्चोंको उत्तम वीर बनाने

को सुशिक्षा दें। (राज प्रबंध द्वारा ही यह सब होना चाहिये ।)

११८ टिप्पणी- पिन्व्=पुष्ट करना, अधिक रस युक्त करना। जिन्व्=गति-मान करना, फुर्तिला बनाना, वेगवान बनाना, गुणोंकी वृद्धि करना।

[११९]

११९ प्रवद्यामना सुवृता रथेन दस्राविमं शृणुतं श्लोकमद्रेः ।
किमङ्ग वां प्रत्यवर्तिं गमिष्ठाहुर्विप्रासो अश्विना पुराजाः ॥२

११९ प्रवत्ऽयामना । सुऽवृता । रथेन ।
दस्रौ । इमम् । शृणुतम् । श्लोकम् । अद्रेः ।
किम् । अङ्ग । वाम् । प्रति । अवर्तिम् । गमिष्ठा ।
आहुः । विप्रासः । अश्विना । पुराऽजाः ॥२॥

११९ अन्वयः- दस्रौ अश्विना ! सुवृता प्रवत्-यामना रथेन, अद्रेः इमं श्लोकं शृणुतम्। अंग किं पुरा-जाः विप्रासः वां अवर्तिं प्रति गमिष्ठा आहुः? [illegible]

११९ अर्थ- हे (दस्रौ) शत्रु विनाशकर्ता अश्विदेवो ! (सुवृता) सुन्दर ढंगसे बनाये हुए (प्रवत् यामना रथेन) बहुत वेगसे जानेवाले रथसे आ-कर यहाँ (अद्रेः इमं श्लोकं शृणुतं) सोम कूटनेके पत्थरोंके इस काव्यको तुम दोनों सुनलो; (अंग ! [illegible]) भला ! क्या (पुरा-जाः विप्राः) पूर्वकालके ब्राह्मण (वां) तुम दोनोंको (अवर्ति प्रति) दरिद्रताके मिटानेके लिये (गमिष्ठा आहुः) जानेवाले ही कहते थे न ?

११९ भावार्थ- शत्रुका नाश करनेवाले अश्विदेव अपने सुन्दर रथमें बैठकर यज्ञके स्थान पर जाते हैं और वहां सोमरस निकालनेके समयके मन्त्र गान सुनते हैं। ये वही अश्विदेव हैं कि, जिनके विषयमें प्राचीनकालके ज्ञानी बार बार कहते आये हैं कि, ' ये दारिद्र्य और दुःखका नाश करनेके लिये ही भ्रमण करते हैं।'

११९ मानवधर्म- नेता शत्रुओंका नाश करें। शुभ कर्मोंके स्थानोंमें जायँ और उन कर्मोंके करनेवालों को सहायता दें। अनुयायियोंके दारिद्र, दुःख, कष्ट, रोग, तथा न्यूनताको दूर करनेका उचित प्रबंध करें।

११९ टिप्पणी- प्रवत्-यामन्=विशेष गतिसे चलनेवाला। अद्रेः श्लोकः= पत्थरोंकी स्तुति, सोम कूटनेके पत्थरोंकी प्रशंसा, कूटनेकी प्रशंसा। अवर्तिः=दुःख, कष्ट, रोग, न्यूनता, हानि, दारिद्र।

[१३०]

१३० आ वां श्येनासो अश्विना वहन्तु रथे युक्तास आशवः पतङ्गाः । ये अप्तुरो दिव्यासो न गृध्रा अभि प्रयो नासत्या वहन्ति ॥४॥

१३० आ । वाम् । श्येनासः । अश्विना । वहन्तु ।
रथे । युक्तासः । आशवः । पतङ्गाः ।
ये । अप्ऽतुरः । दिव्यासः । न । गृध्राः ।
अभि । प्रयः । नासत्या । वहन्ति ॥४॥

१३० अन्वयः- नासत्या अश्विना । रथे युक्तासः आशवः, पतङ्गाः श्येनासः वां आवहन्तु; ये गृध्राः न दिव्यासः अप्तुरः प्रयः अभि वहन्ति ॥ ४ ॥

१३० अर्थ- हे सत्यके पालक अश्विदेवो ! (रथे युक्तासः) यानमें जोते हुए (आशवः) शीघ्रगामी, (श्येनासः पतङ्गाः वां) श्येन पंछी तुम दोनोंको इधर (आवहन्तु) ले आवें, (ये) जो (गृध्राः न) गिद्धोंकी नाईं (दिव्यासः) आकाशमें संचार करनेवाले (अप्तुरः) वेगसे जानेहारे पक्षी (प्रयः अभि) यज्ञ स्थानके प्रति तुम दोनोंको (वहन्ति) उठाते हैं पहुंचाते हैं ।

१३० भावार्थ— अश्विदेवोंके यान को अतिवेगसे जानेवाले श्येन पक्षी जोते थे । ये त्वरासे जानेवाले, गीधके समान पक्षी इनको यज्ञ स्थानमें ले जाते थे ।

१३० मानवधर्म- यानोंको- आकाशयानोंको अतिवेगसे उडनेवाले पक्षी जोते जायँ । श्येन, गीध, गरुड, आदि पक्षी इस कार्यके लिये उपयोगी हैं । (कई पक्षी घण्टेमें २५ से लेकर १०० कोसतकके वेगसे उडते हैं ।)

१३० टिप्पणी- इस मन्त्रमें कहा है कि 'आशवः श्येनासः पतंगाः रथे युक्तासः वां आवहन्ति '=शीघ्रगामी श्येन पक्षी अश्विदेवोंके रथको चलाते हैं । अर्थात् आकाशयान पक्षियोंसे चलाये जाते थे । ये पक्षी प्रति घण्टे १।२ सौ मीलके वेगसे भी जाते हैं । उदानवायुसे यह आकाशयान ऊपर जाता था और पक्षियोंसे चलाया जाता था । (तंत्र ग्रंथ)

*

[१३१]

१३१ आ वां रथं युवतिस्तिष्ठदत्रं जुष्ट्वी नरा दुहिता सूर्यस्य ।
परि वामश्वा वपुषः पतङ्गा वयो वहन्त्वरुषा अभीके ॥५॥

१३१ आ । वाम् । रथम् । युवतिः । तिष्ठत् । अत्रं ।
जुष्ट्वी । नरा । दुहिता । सूर्यस्य ।
परि । वाम् । अश्वाः । वपुषः । पतङ्गाः ।
वयः । वहन्तु । अरुषाः । अभीके ॥५॥

१३१ अन्वयः— नरा ! जुष्ट्वी युवतिः सूर्यस्य दुहिता वां अत्र रथं आतिष्ठत्; अश्वाः वपुषः अरुषाः वयः पतङ्गाः अभीके वां परिवहन्तु ॥५॥

१३१ अर्थ- हे (नरा) नेताओ ! (जुष्ट्वी युवतिः) आनन्दित हुई युवती (सूर्यस्य दुहिता) सूर्यकी कन्या (वां अत्र रथं) तुम दोनोंके इस रथपर (आतिष्ठत्) चढचुकी, इस रथको जोते (अश्वाः) घोडे (अरुषाः) लाल रंगवाले (वपुषः) शरीरके आकारसे (वयः पतङ्गाः) पक्षी जैसे उडनेवाले थे वे (वां अभीके परिवहन्तु) तुम दोनोंको यज्ञ स्थानके समीप ले आयें ।

१३१ भावार्थ- अश्विदेव धर्मके नेता हैं, उनपर प्रीति करनेवाली सूर्यकी तरुणी कन्या उनके रथपर चढकर बैठी है । इस रथको जो घोडे जोते हैं, वे शरीरके आकारसे पक्षी जैसे आकाशमें उडनेवाले हैं, वे उस रथको इस यज्ञके समीप ले आयें ।

१३१ मानवधर्म- आकाशयानोंको पक्षी जोते हुए ले चलें और उनसे वे यान वेगसे चलाये जायँ । नेता उनमें बैठकर जहां जाना हो वहां जायँ ।

१३१ टिप्पणी- इस मन्त्रमें भी आकाशयानोंको पक्षी जोतनेकी बात कही है । " अश्वाः अरुषाः वपुषः वयः पतङ्गाः वां परि वहन्तु । "=घोडे जो शरीरके आकारसे लाल पक्षी जैसे दीखते हैं वे तुम्हारे यानको चारों ओर ले जायँ । यहां ' अश्व ' पद वेगका ही भाव बताता है। अश्वः = अश्नुते अध्वानं (निरुक्त)=जो मार्गको खा जाता है अर्थात् जो अतिवेगवान् हैं ।

[१३२]

१३२ उद् वन्दनमैरतं दंसनाभिरुद्रेभं दस्रा वृषणा शचीभिः ।
निष्टौग्र्यं पारयथः समुद्रात् पुनश्च्यवानं चक्रथुर्युवानम् ॥६॥

१३२ उत् । वन्दनम् । ऐरतम् । दंसनाभिः ।
उत् । रेभम् । दस्रा । वृषणा । शचीभिः ।
निः । तौग्र्यम् । पारयथः । समुद्रात् ।
पुनरिति । च्यवानम् । चक्रथुः । युवानम् ॥६॥

१३२ अन्वयः— वृषणा दस्रा ! दंसनाभिः वन्दनं उत् ऐरतं, रेभं शचीभिः उत्, तौग्र्यं समुद्रात् निः पारयथः, च्यवानं पुनः युवानं चक्रथुः ॥६॥

१३२ अर्थ– हे (वृषणा दस्रा) बलिष्ठ तथा शत्रुविनाशकर्ता अश्विदेवो ! (दंसनाभिः) अपने कौशल्य पूर्ण कर्मोंसे (वन्दनं उत् ऐरतं) वन्दनको तुम दोनोंने ऊपर उठा लिया था, (रेभं शचीभिः उत्) रेभको अपनी शक्तियोंसे तुमने ऊपर उठा लिया था; (तौग्र्यं) तुग्रके पुत्रको (समुद्रात् निः पारयथः) समुद्रमेंसे ठीक प्रकारसे पार किया था, तथा (च्यवानं पुनः) च्यवानको फिरसे (युवानं चक्रथुः) युवा बना डाला था ।

१३२ भावार्थ– अश्विदेव बलिष्ठ हैं और शत्रुका नाश करनेवाले हैं। इन्होंने अपने अद्भुत सामर्थ्यसे वन्दनको तथा रेभ को कुवेसे निकाला, तुग्र के पुत्र भुज्युको समुद्रमेंसे उठाकर घर पहुंचाया था और वृद्ध च्यवानको पुन तरुण बनाया था ।

१३२ मानवधर्म– कुवेमें पडेको ऊपर निकालो, समुद्रमें डूबनेवालेको बाहर निकालकर घर पहुंचाओ, और वृद्धको औषधि प्रयोगसे तरुण बनाओ ।

१३२ टिप्पणी- देखो ‘ वन्दनः ’ ५१,८७ ६० । ‘ रेभः ’ ५६,१००, १०५ ६० । ‘ तौग्र्यः भुज्यु ’ ५७, ७१, ७९ ८१ ६० । ‘च्यवान ’ ८६, ११४ ६० ।

[१३३]

१३३ युवमत्रयेऽवनीताय तप्तमूर्जमोमानमश्विनावधत्तम् ।
युवं कण्वायापिरिप्ताय चक्षुः प्रत्यधत्तं सुष्टुतिं जुजुषाणा ॥७

१३३ युवम् । अत्रये । अवऽनीताय । तप्तम् ।
ऊर्जम् । ओमानम् । अश्विना । अधत्तम् ।
युवम् । कण्वाय । अपिऽरिप्ताय । चक्षुः ।
प्रति । अधत्तम् । सुऽस्तुतिम् । जुजुषाणा ॥७॥

१३३ अन्वयः- अश्विनौ ! अवनीताय अत्रये युवं घ्रंसं ओमानं ऊर्जं अधत्तम्; सुष्टुतिं जुजुषाणा युवं कण्वाय अपिरिप्ताय चक्षुः प्रति अधत्तम् ॥७॥

१३३ अर्थ- हे अश्विदेवो ! (अवनीताय अत्रये) कारावासमें नीचे रख दिये अत्रिके लिए (युवं घ्रंसं) तुम दोनोंने गर्म कारागृहको शान्त किया और उसको (ओमानं ऊर्जं अधत्तं) सुखदायक बलवर्धक अन्न दिया। (सुष्टुतिं जुजुषाणा) अच्छी स्तुतिको आदरपूर्वक ग्रहण करते हुए (युवं) तुम दोनोंने (कण्वाय अपिरिप्ताय) कण्वके लिए जो देखनेमें असमर्थ हो गया था उस की (चक्षुः प्रति अधत्तं) आँखोंके लिए प्रकाश बताया ।

१३३ भावार्थ- अश्विदेवोंने कारागृहके तलघरमें रखे अत्रि ऋषिको सुख देनेके लिए जलसे आगको शान्त किया, और उसको पुष्टिकारक तथा शक्ति वर्धक अन्न दिया, इसी तरह अन्धेरेमें रखे कण्वकी आंखोंको मार्ग बतानेके लिये उन्होंने प्रकाश दिखाया । इस कारण अश्विदेवोंकी सब प्रकारसे प्रशंसा होती है ।

१३३ मानवधर्म— जनताके हित करनेके लिये जो लोग कारावासादि कष्ट भोगते हैं उनको सुख देनेका यत्न करना चाहिये । अन्धेरेमें पडे हुओं को प्रकाश दिखाकर योग्य मार्ग बताना चाहिये ।

१३३ टिप्पणी- देखो ' अत्रिः ' ५८,६७,८४,१०७ इ० । ' कण्वः ' ४३, ५६,१०९ इ० । ओमन्=सुखदायक, संरक्षक । अपिरिप्त=चारों ओरसे लिप्त किये, बन्द किये, जिस तरह आंखोंपर कपडा बांधकर आंखे बन्द करते हैं, उस तरह आंख बन्द किया हुआ ।

[१३४]

१३४ युवं धेनुं शयवे नाधितायापिन्वतमश्विना पूर्व्याय ।
अमुञ्चतं वर्तिकामंहसो निः प्रति जङ्घां विश्पलाया अधत्तम् ॥८॥

१३४ युवम् । धेनुम् । शयवे । नाधिताय ।
अपिन्वतम् । अश्विना । पूर्व्याय ।
अमुञ्चतम् । वर्तिकाम् । अंहसः । निः ।
प्रति । जङ्घाम् । विश्पलायाः । अधत्तम् ॥८॥

१३४ अन्वयः- अश्विना ! युवं पूर्व्याय गाधिताय शयवे धेनुं अपिन्वतम्; वर्तिकां अंहसः निः अमुञ्चतं, विश्पलाया जङ्घां प्रति अधत्तम् ॥८॥

१३४ अर्थ - हे अश्विदेवो ! (युवं) तुम दोनोंने (पूर्व्याय गाधिताय शयवे) पूर्व समयमें याचना करनेवाले शयुके लिए (धेनुं अपिन्वतं) गायको पुष्ट कर दिया; (वर्तिकां अंहसः) बटेर को कष्टसे (निः अमुञ्चतं) पूर्णतया छुडाया और (विश्पलाया जङ्घां प्रति अधत्तं) विश्पलाको टांग ठीक प्रकारसे बिठला दी ।

१३४ भावार्थ- अश्विदेवोंने प्रार्थना करनेवाले शयुके लिये गौको दुधारू बना दिया, बटेरको भेडियेके मुखसे छुडाया और विश्पलाकी [टूटी टांगके स्थान पर लोहे की] टांग लगा दी ।

१३४ मानवधर्म- गौको दुधारू बनाओ, पशुपक्षियोंको सुरक्षित रखो, टूटे टांगके स्थानपर बनावटी लोहेकी टांग लगा दो ।

१३४ टिप्पणी- देखो ' शयु ' १०,९८,१२१ ह० । ' वर्तिका ' ५९,९०, ११७ ह० । ' विश्पला ' ६१,९१,११२ ह० ।

[१३५]

१३५ युवं श्वेतं पेदव इन्द्रजूतमहिहनमश्विनादत्तमश्वम् ।
जोहूत्रमर्यो अभिभूतिमुग्रं सहस्रसां वृषणं वीड्वङ्गम् ॥९॥

१३५ युवम् । श्वेतम् । पेदवे । इन्द्रऽजूतम् ।
अहिऽहनम् । अश्विना । अदत्तम् । अश्वम् ।
जोहूत्रम् । अर्यः । अभिऽभूतिम् । उग्रम् ।
सहस्रऽसाम् । वृषणम् । वीळुऽअङ्गम् ॥९॥

१३५ अन्वयः- अश्विना ! युवं अहिहनं, श्वेतं, इन्द्रजूतं, वीड्वङ्गं, उग्रं, अर्यः अभिभूतिं जोहूत्रं, सहस्रसां वृषणं अश्वं पेदवे अदत्तम् ॥९॥

१३५ अर्थ- हे अश्विदेवो ! (युवं) तुम दोनोंने (अहिहनं) अहिका नाश करनेहारे, (श्वेतं इन्द्रजूतं) सफेद रंगवाले, इन्द्रके द्वारा प्रेरित, (वीडु अंग उग्रं) दृढ एवं बलिष्ठ अंगवाले, (अर्यः अभिभूतिं) शत्रुके पराभवकर्ता (जोहूत्रं) बार बार संग्राममें बुलाने योग्य (सहस्रसां) हजार प्रकारका दान देनेवाले (वृषणं अश्वं) बलवान घोडेको (पेदवे अदत्तं) पेदुके लिये दिया था ।

१३५ भावार्थ— अश्विदेवोंने पेदुके लिए एक सफेद घोडा दिया था, जो शत्रुका वध करता था, इन्द्रने उसको सिखाया था, बडा सुदृढ अंगवाला था, देखनेमें उग्र था, शत्रुका पराभव करता था, युद्धमें बडा उपयोगी था और सहस्रों प्रकारके धन जीतता था।

१३५ मानवधर्म- घोडेको उत्तम रीतिसे सिखाकर तैयार करना चाहिये जिससे वह युद्धमें बडा उपयोगी सिद्ध हो सके। (उक्त मन्त्रमें कहे गुण उसमें रहें ऐसी उसे शिक्षा देनी चाहिये।)

१३५ टिप्पणी- अहि-हनः=शत्रुका वध करनेवाला, अर्यः-अर्यः=शत्रुका। देखो ' पेदुः ' ८२, ११०,१४७ इ० ।

[१३६]

१३६ ता वां नरा स्ववसे सुजाता हवामहे अश्विना नाधमानाः।
आ न उप वसुमता रथेन गिरो जुषाणा सुविताय यातम्॥१०

१३६ ता । वाम् । नरा । सु । अवसे । सुऽजाता ।
हवामहे । अश्विना । नाधमानाः ।
आ । नः । उप । वसुऽमता । रथेन । गिरः ।
जुषाणा । सुविताय । यातम् ॥१०॥

१३६ अन्वयः- नरा अश्विना ! सुजाता ता वां नाधमानाः सु-अवसे हवामहे; गिरः जुषाणा वसुमता रथेन नः उप सुविताय आयातम् ॥ १० ॥

१३६ अर्थ- हे (नरा अश्विना) नेता अश्विदेवो ! (सुजाता ता वां) अच्छे कुलमें उत्पन्न विख्यात तुम दोनोंकी (नाधमानाः) सहायतार्थ प्रार्थना करते हुए हम (सु-अवसे हवामहे) अच्छी रक्षाके लिये तुम्हे बुलाते हैं, (गिरः जुषाणा) हमारे भाषणोंको आदर पूर्वक सुनते हुए तुम दोनों (वसु-मता रथेन) धन दौलत रखे हुए अपने रथपरसे (नः) हमारे समीप हमारी (सुविताय उप आयातं) भलाईके लिए आओ।

१३६ भावार्थ- अश्विदेव उत्तम कुलमें उत्पन्न हुए हैं। वे हमारी सहायता करें, इसलिये हम उनकी प्रार्थना करते हैं, हमारा भाषण सुनते ही वे अपने रथमें उत्तम धन रखकर हमारे पास आ जायें, और हमारी सहायता तथा सुरक्षा करें।

१३६ मानवधर्म- कुलकी पवित्रता रखो। दिव्य वीरोंकी प्रशंसा करो और उनकी सहायता प्राप्त करो। नेता लोग अपने पास बहुत धन लेकर आजायँ और वे अपने अनुयायियोंकी सब प्रकारसे सहायता करें।

१३६ टिप्पणी- सुजात=उत्तम कुलमें उत्पन्न, कुलीन। नाधमान=प्रार्थना या याचना करनेवाला। स्ववस्= सु-अवस्= उत्तम सुरक्षा। सुवित=उत्तम प्राप्तव्य, धन, सुख, कल्याण।

[१३७]

१३७ आ श्येनस्य जवसा नूतनेनास्मे यातं नासत्या सजोषाः।
हवे हि वामश्विना रातहव्यः शश्वत्तमाया उषसो व्युष्टौ॥११

१३७ आ। श्येनस्य। जवसा। नूतनेन।
अस्मे इति। यातम्। नासत्या। सऽजोषाः।
हवे। हि। वाम्। अश्विना। रातऽहव्यः।
शश्वत्ऽतमायाः। उषसः। विऽउष्टौ॥११॥

१३७ अन्वयः- नासत्या! सजोषाः श्येनस्य नूतनेन जवसा अस्मे आयातं अश्विना! शश्वत्तमाया उषसः व्युष्टौ रातहव्य. वां हवे हि॥११॥

१३७ अर्थ- हे (नासत्या) सत्यके पालक देवो! (सजोषाः) एक साथ कार्य करनेवाले तुम दोनों (श्येनस्य नूतनेन जवसा) श्येन पक्षीके नये वेग से (अस्मे आयातं) हमारे पास आओ, [illegible] अश्विदेवो! (शश्वत्तमायाः उषसः व्युष्टौ) शाश्वत रहनेवाली उषाके प्रादुर्भाव हो चुकनेपर (रातहव्यः) हविर्भाग को देकर मैं (वां हवे हि) तुम दोनोंको बुला रहा हूँ।

१३७ भावार्थ- हे सत्यके पालनकर्ता अश्विदेवो! तुम दोनों एक विचारसे अपने श्येन पक्षी को अधिक वेगसे दौडाते हुए मेरे पास आओ। बहुत देरतक टिकनेवाली उषाका उदय होते ही मैं हवि तैयार करके तुम दोनोंको बुला रहा हूं। (तुम आओ और हवि ले लो।)

१३७ मानवधर्म- यानोंको जोते श्येन पक्षियोंको वेगसे चलाया जावे। उषःकालमें उठकर अन्नादि आदरातिथ्य की वस्तुओंकी सिद्धता करके नेताओंके आगमनकी प्रतीक्षा अनुयायी करें।

१३७ टिप्पणी- शश्वत्तमा उषा=चिरकाल, बहुत ही दिन, टिकनेवाली उषा। उत्तरीय ध्रुव के पास उषा एक मास रहती है इस लिये यह शाश्वत उषा

कहलाती है । 'श्येनस्य नूतनेन जवसा आयातं'=श्येन पक्षीके नवीन अर्थात अधिक वेगसे आओ । अश्विदेवोंके यानोंको श्येन पक्षी जोते जाते थे । देखो १२०, १३०,१३१,१३७ ।

[१३८] (ऋ० १।११९।१-१०) जगती ।

१३८ आ वां रथं पुरुमायं मनोजुवं जीराश्वं यज्ञियं जीवसे हुवे ।
सहस्रकेतुं वनिनं शतद्वसुं श्रुष्टीवानं वरिवोधामभि प्रयः ॥१॥

१३८ आ । वाम् । रथम् । पुरुऽमायम् । मनःऽजुवम् ।
जीरऽअश्वम् । यज्ञियम् । जीवसे । हुवे ।
सहस्रऽकेतुम् । वनिनम् । शतत्ऽवसुम् ।
श्रुष्टीऽवानम् । वरिवःऽधाम् । अभि । प्रयः ॥१॥

१३८ अन्वयः- वां पुरुमायं, मनोजुवं, यज्ञियं, जीराश्वं, सहस्रकेतुं, वरिवोधां, शतद्वसुं, श्रुष्टीवानं रथं प्रयः अभि जीवसे आ हुवे ॥१॥

१३८ अर्थ- (वां) तुम दोनोंके (पुरुमायं मनोजुवं) अनेक कुशल कारीगरोंसे पूर्ण, मनके तुल्य वेगवान, (यज्ञियं जीराश्वं) पूजनीय तथा वेगवान घोडोंसे युक्त, (सहस्र-केतुं) अनेक झंडेवाले (वरिवोधां) धनका धारण करनेवाले (शतद्वसु) सौ ढंगके धन रखनेवाले, (श्रुष्टीवानं रथं) शीघ्र गतिसे युक्त रथको (प्रयः अभि) हविष्यान्नके प्रति (जीवसे आहुवे) जीवनको दीर्घ बनानेके लिए मैं बुलाता हूं ।

१३८ भावार्थ- अश्विदेवोंके कौशल्य युक्त विविध कर्मोंसे निर्माण हुए, वेगवान, पवित्र, चपल घोडोंसे युक्त, अनेक ध्वजवाले, सुख देनेवाले, धनका धारण करनेवाले शीघ्रगामी रथको मेरे यज्ञके प्रति मैं बुलाता हूं। वे यहां आवें और हमें दीर्घआयु देवें ।

१३८ मानवधर्म- मनुष्य पूर्व उक्त गुणोंसे युक्त रथ निर्माण करें । दीर्घ आयु बनानेके उपाय अपनावें ।

१३८ टिप्पणी- पुरु माय =अनेक कुशलताओंसे निर्माणकी आयोजनासे युक्त। सहस्र केतु =अनेक ध्वज जिसपर लहरा रहे हैं । वरिवः-धा=सुख साधनोंसे युक्त । शतद्वसु=अनेक धन संपदावाला, सुखदायी । श्रुष्टीवान=गतिमान, बैठनेवालोंको आराम देनेवाला ।

[१३९]

१३९ ऊर्ध्वा धीतिः प्रत्यस्य प्रयामन्यधायि शस्मन्त्समयन्त
आ दिशः। स्वदामि घर्मं प्रति यन्त्यूतय आ वामूर्जानी
रथमश्विनारुहत् ॥२॥

१३९ ऊर्ध्वा। धीतिः। प्रति। अस्य। प्रऽयामनि।
अधायि। शस्मन्। सम्। अयन्त। आ। दिशः।
स्वदामि। घर्मम्। प्रति। यन्ति। ऊतयः।
आ। वाम्। ऊर्जानी। रथम्। अश्विना। अरुहत् ॥२॥

१३९ अन्वयः- अश्विना! अस्य प्रयामनि धीतिः ऊर्ध्वा शस्मन् अधायि, दिशः आ समयन्त; घर्मं स्वदामि, ऊतयः प्रतियन्ति, वां रथं ऊर्जानी आरुहत् ॥२॥

१३९ अर्थ- हे अश्विदेवो! (अस्य प्रयामनि) इस रथके आगे चलनेपर (धीतिः ऊर्ध्वा शस्मन् अधायि) हमारी बुद्धि स्तुति कार्यके उच्चपदपर अधिष्ठित हो चुकी है, स्तुति करने लगी है (दिशः आ समयन्त) चारों दिशाओंके लोग इकट्ठे होते हैं, (घर्मं स्वदामि) घृत आदि हविको स्वादु बना देता हूँ, (ऊतयः प्रतियन्ति) रक्षाकी आयोजनाएँ फैलरही हैं, (वां रथं) तुम दोनोंके रथपर (ऊर्जानी आरुहत्) सूर्यकी तेजस्वी कन्या चढकर बैठी है।

१३९ भावार्थ- प्रभात होते ही हमारी बुद्धि अश्विदेवोंकी प्रशंसा करने लगी है, सब दिशाओंके लोग इसमें शामिल हुए हैं। अब मैं घृतादि पदार्थ स्वादु बनाकर यज्ञके लिए तैयार रखता हूं। यज्ञसे होनेवाली सब प्रकारकी संरक्षण शक्तियाँ चारों ओर अपना प्रभाव दिखा रही हैं। अश्विदेवोंके रथपर सूर्य की पुत्री चढकर बैठी है।

१३९ मानवधर्म- प्रभात समयमें सब लोग तैयार रहें। चारों ओरके लोग भी आकर शामिल हों। घृतादि पदार्थ तैयार किये जायँ। सब लोग शुभ कर्ममें दत्तचित्त हों। हरएक सबकी सुरक्षा करनेके लिये कटिबद्ध हो। सब सुरक्षित रहें।

१३९ टिप्पणी- शस्मन्=प्रशंसाके कार्यमें मन लगाना। ऊर्जानी बल देनेवाली प्रभा।

[१४०]

१४० सं यन्मिथः पस्पृधानासो अग्मत शुभे मखा अमिता जायवो रणे। युवोरह प्रवणे चेकिते रथो यदश्विना वहथः सूरिमा वरम् ॥३॥

१४० सम्। यत्। मिथः। पस्पृधानासः। अग्मत। शुभे। मखाः। अमिताः। जायवः। रणे। युवोः। अह। प्रवणे। चेकिते। रथः। यत्। अश्विना। वहथः। सूरिम्। आ। वरम् ॥३॥

१४० अन्वयः- अश्विना! यत् शुभे रणे अमिताः जायवः मखाः मिथः पस्पृधानासः सं अग्मत; युवोः रथः अह प्रवणे चेकिते यत् वरं सूरिं आ वहथः॥३॥

१४० अर्थ- हे अश्विदेवो! (यत् शुभे रणे) जब लोककल्याण के लिए किये जानेवाले युद्धमें (अमिताः जायवः) असंख्य जयिष्णु (मखाः) महनीय वीरलोग (मिथः पस्पृधानासः) परस्पर स्पर्धा करते हुए (सं अग्मत) इकट्ठे हो जाते हैं, तब (युवोः रथः अह) तुम दोनोंका रथभी (प्रवणे चेकिते) निम्नभागसे उतरता हुआ दीखता है, (यत्) जिसमें तुम (वरं सूरिं आवहथः) श्रेष्ठ धन ज्ञानीके पास ले आते हो।

१४० भावार्थ- जनताका हित करनेके लिये आवश्यक हुए युद्धमें जब अनेक जयिष्णु वीर परस्पर स्पर्धा करते हुए इकट्ठे हो जाते हैं और लडने लगते हैं, तब अश्विदेवोंका रथ शनैः शनैः नीचे आता हुआ दीखता है। इस रथमें वे विद्वान याजकोंको देनेके लिये उत्तम प्रकारके धन अपने साथ ले आते हैं।

१४० मानवधर्म- जनताका हित करनेके लिये आवश्यक हुए युद्धमें अनेक जयिष्णु वीर शामिल हों और धर्मयुद्ध करें। इस युद्धके युध्यमान वीरोंकी सहायता करनेके लिये [स्वयंसेवक] रथसे आजाएँ और वे आवश्यक सहायता पहुँचा दें।

१४० टिप्पणी- जायु=विजयकी इच्छावाले। प्रवण=ढलती जगह। सूरिः=विद्वान, ज्ञानी।

[१४१]

१४१ युवं भुज्युं भुरमाणं विभिर्गतं स्वयुक्तिभिर्निवहन्ता पितृभ्य आ। यासिष्टं वर्तिर्वृषणा विजेन्यं दिवोदासाय महि चेति वामवः ॥४॥

१३६ मानवधर्म– कुलकी पवित्रता रखो। दिव्य वीरोंकी प्रशंसा करो और उनकी सहायता प्राप्त करो। नेता लोग अपने पास बहुत धन लेकर आजायँ और वे अपने अनुयायियोंकी सब प्रकारसे सहायता करें।

१३६ टिप्पणी– सुजात=उत्तम कुलमें उत्पन्न, कुलीन। नाधमान=प्रार्थना या याचना करनेवाला। स्ववस्= सु-अवस्= उत्तम सुरक्षा। सुवित=उत्तम प्राप्तव्य, धन, सुख, कल्याण।

[१३७]

१३७ आ श्येनस्य जवसा नूतनेनास्मे यातं नासत्या सजोषाः।
हवे हि वामश्विना रातहव्यः शश्वत्तमाया उषसो व्युष्टौ॥११

१३७ आ। श्येनस्य। जवसा। नूतनेन।
अस्मे इति। यातम्। नासत्या। सऽजोषाः।
हवे। हि। वाम्। अश्विना। रातऽहव्यः।
शश्वत्ऽतमायाः। उषसः। विऽउष्टौ॥११॥

१३७ अन्वयः– नासत्या! सजोषाः श्येनस्य नूतनेन जवसा अस्मे आयातं अश्विना! शश्वत्तमायाः उषसः व्युष्टौ रातहव्यः वां हवे हि॥११॥

१३७ अर्थ- हे (नासत्या) सत्यके पालक देवो! (सजोषाः) एक साथ कार्य करनेवाले तुम दोनों (श्येनस्य नूतनेन जवसा) श्येन पंछीके नये वेगसे (अस्मे आयातं) हमारे पास आओ, हे अश्विदेवो! (शश्वत्तमायाः उषसः व्युष्टौ) शाश्वत रहनेवाली उषाके प्रादुर्भाव हो चुकनेपर (रातहव्यः) हविर्भाग को देकर मैं (वां हवे हि) तुम दोनोंको बुला रहा हूँ।

१३७ भावार्थ- हे सत्यके पालनकर्ता अश्विदेवो! तुम दोनों एक विचारसे अपने श्येन पक्षी को अधिक वेगसे दौडाते हुए मेरे पास आओ। बहुत देरतक टिकनेवाली उषाका उदय होते ही मैं हवि तैयार करके तुम दोनोंको बुला रहा हूं। (तुम आओ और हवि ले लो।)

१३७ मानवधर्म– यानोंको जोते श्येन पक्षियोंको वेगसे चलाया जावे। उषःकालमें उठकर अन्नादि आदरातिथ्य की वस्तुओंकी सिद्धता करके नेताओंके आगमनकी प्रतीक्षा अनुयायी करें।

१३७ टिप्पणी– शश्वत्तमा उषा=चिरकाल, बहुत ही दिन, टिकनेवाली उषा। उत्तरीय ध्रुव के पास उषा एक मास रहती है इस लिये वह शाश्वत उषा

१४२ युवोः । अश्विना । वपुषे । युवाऽयुजम् ।
रथम् । वाणी इति । येमतुः । अस्य । शर्ध्यम् ।
आ । वाम् । पतिऽत्वम् । सख्याय । जग्मुषी ।
योषा । अवृणीत । जेन्या । युवाम् । पती इति ॥५॥

१४२ अन्वयः- अश्विना ! युवोः वपुषे युवायुजं रथं, अस्य शर्ध्यं वाणी येमतुः सख्याय जग्मुषी जेन्या योषा वां पतित्वं आ; युवां पती अवृणीत ॥५॥

१४२ अर्थ- हे अश्विदेवो ! (युवोः वपुषे) तुम दोनोंकी शोभा बढानेके लिए (युवा युजं रथं) तुम दोनोंके द्वारा जोते हुए रथको तथा, (अस्य शर्ध्यं) इसके बलको तुम्हारी (वाणी येमतुः) वाणी नियंत्रित करचुकी (सख्याय जग्मुषी) मित्रताकी इच्छा करनेवाली (जेन्या योषा) विजयसे प्राप्त करनेयोग्य स्त्री (वां पतित्वं आ) तुम दोनोंसे पतित्वकी कामना करने वाली (युवां पती अवृणीत) तुम दोनोंको पतिके रूपमें स्वीकार कर चुकी।

१४२ भावार्थ- अश्विदेवोंने स्वयं अपना रथ जोता था, उस पर उनके चढकर बैठनेसे वे बडे सुशोभित दीखने लगे, केवल शब्दोंके इशारेसे ही वे रथको चलाने लगे। [पहुंचनेके स्थान पर सब देवोंसे पहिले वे पहुंचे।] इसलिये सूर्य की पुत्रीने [स्वयंवरमें] उनको पति रूपसे स्वीकार किया। (पश्चात् वह सूर्य पुत्री उनके रथ पर चढकर बैठ गयी।)

१४२ मानवधर्म- वीर अपने रथको स्वयं जोतें, उसपर चढकर बैठ जायँ, घोडे ऐसे शिक्षित करें कि केवल इशारेके शब्दोंसे ही वे चलने लगें। स्वयंवर की शर्तें पूर्ण करके स्त्रीको पत्नीरूपसे प्राप्त करें और इसकी बरात घरमें ले आवें।

[१४३]

१४३ युवं रेभं परिषूतेरुरुष्यथो हिमेन घर्मं परितप्तमत्रये ।
युवं शयोरवसं पिप्यथुर्गवि प्र दीर्घेण वन्दनस्तार्यायुषा॥६॥

१४३ युवम् । रेभम् । परिऽसूतेः । उरुष्यथः ।
हिमेन । घर्मम् । परिऽतप्तम् । अत्रये ।
युवम् । शयोः । अवसम् । पिप्यथुः । गवि ।
प्र । दीर्घेण । वन्दनः । तारि । आयुषा ॥६॥

१४३ अन्वयः- युवं परिषूतेः रेभं उरुष्यथः, अत्रये परितप्तं घर्मं हिमेन; शयोः गवि युवं अवसं पिप्यथुः, दीर्घेण आयुषा वन्दनः तारि ॥६॥

१४३ अर्थ- (युवं) तुम दोनोंने (परिषूतेः) संकटसे (रेभं उरुष्यथः) रेभको बचाया, (अत्रये) अत्रिके लिए (परितप्तं घर्मं) अत्यन्त गर्म स्थान को (हिमेन) बर्फसे ठंडा बनाया, (शयोः गवि) शयुकी गौमें (युवं अवसं पिप्यथुः) तुम दोनोंने संरक्षणोपयोगी दूध पर्याप्त मात्रामें बढाया और (दीर्घेण आयुषा) दीर्घ जीवन देकर (वन्दनः तारि) वन्दनका तुमने तारण किया।

१४३ भावार्थ- अश्विदेवोंने रेभको संकटसे बचाया, अत्रिके कारावासकी गर्मीको हिम वृष्टीसे शान्त किया, शयुके लिये उसकी गौको दुधारू बना दिया और वन्दनको दीर्घायु किया।

१४३ मानवधर्म- संकटमें पडे हुओंकी सहायता करो, गौको दुधारू बनाओ, दीर्घ आयुवाले बनो।

१४३ टिप्पणी- देखो 'रेभ' ५९,१००,१०५ इ०। 'अत्रिः' ५८,६७, १०४ इ०। 'शयु' ६७,९८,१२१ इ०। 'वन्दन' ५९,८०,१०६ इ०।

[१४४]

१४४ युवं वन्दनं निर्ऋतं जरण्यया रथं न दस्रा करणा समिन्वथः। क्षेत्रादा विप्रं जनथो विपन्यया प्र वामत्र विधते दंसना भुवत् ॥७॥

१४४ युवम् । वन्दनम् । निःऽऋतम् । जरण्यया ।
रथम् । न । दस्रा । करणा । सम् । इन्वथः ।
क्षेत्रात् । आ । विप्रम् । जनथः । विपन्यया ।
प्र । वाम् । अत्र । विधते । दंसना । भुवत् ॥७॥

१४४ अन्वयः- दस्रा करणा ! जरण्यया निर्ऋतं वन्दनं युवं रथं न समिन्वथः, विपन्यया विप्रं क्षेत्रात् आ जनथः, वां दंसना अत्र विधते प्र भुवत् ॥७॥

१४४ अर्थ- हे (दस्रा करणा) शत्रुविनाशकर्ता एवं कार्य कुशल अश्विदेवो ! (जरण्यया निर्ऋतं वन्दनं) बुढापेसे पूर्णतया ग्रस्त वन्दनको (युवं)

तुम दोनोंने (इमं न, समिन्वथः) पुराना रथ दुरुस्त करके नयासा बना देते हैं, उस तरह, तरुण बना दिया। (विपन्यया) स्तुतिसे प्रसन्न होकर (विप्रं क्षेत्रात् आ जनथः) ज्ञानीको क्षेत्रसे उत्पन्न किया, अतः (वां दंसना) तुम दोनोंके ये कार्य (अत्र विधते) यहांके कार्यकर्ताके लिए (प्र भुवत्) बडे प्रभावशाली बने हैं।

१४४ भावार्थ-- शत्रुका नाश करनेवाले अश्विदेवोंने, जिस तरह बढई पुराना रथ दुरुस्त करके नया सा बना देता है, उस तरह अत्यंत जीर्ण वन्दनको तरुण बनाया, स्तुतिसे प्रसन्न होकर उस विप्रको, भूमिसे वृक्ष नया उगता है वैसा, तरुण सा बना दिया। ये उनके कार्य यहांके कार्यकर्ताओंको बडे प्रभाव शाली प्रतीत हुए हैं।

१४४ मानवधर्म- वृद्धोंको तरुण बनाओ और नवजीवन प्राप्त करो। [आयुर्वेद की यह सिद्धि प्राप्त करो।]

१४४ टिप्पणी- देखो 'वन्दन' ५६ ८७,१०६ इ.।

[१४५]

१४५ अग॑च्छतं॒ कृप॑माणं परा॒वति॑ पि॒तुः स्वस्य॒ त्यज॑सा॒ निबा॑धितम् । स्व॑र्वतीरि॒त ऊ॒तीर्यु॒वोरह॑ चि॒त्रा अ॒भीके॑ अभवन्न॒भिष्ट॑यः ॥८॥

१४५ अग॑च्छतम् । कृप॑माणम् । प॒रा॒ऽवति॑ ।
पि॒तुः । स्वस्य॑ । त्यज॑सा । निऽबा॑धितम् ।
स्वः॑ऽवतीः । इ॒तः । ऊ॒तीः । यु॒वोः । अह॑ ।
चि॒त्राः । अ॒भीके॑ । अ॒भ॒व॒न् । अ॒भिष्ट॑यः ॥८॥

१४५ अन्वयः- स्वस्य पितुः त्यजसा नि-बाधितं कृपमाणं परावति अगच्छतं, युवोः अह ऊतीः इतः स्वर्वतीः, अभीके चित्राः अभिष्टयः अभवन् ॥८॥

१४५ अर्थ- (स्वस्य पितुः त्यजसः) अपने ही तुम नामक पिताके त्याग देनेसे (नि बाधितं) पीडित हुए अतः (कृपमाणं) प्रार्थना करनेवाले भुज्यु के समीप (परावति अगच्छतं) दूरवर्ती देशमें भी तुम दोनों चलेगये थे (युवोः अह) तुम दोनोंकी ही ये (ऊतीः) संरक्षण योजनाएँ (इतः स्वर्वतीः) इस तरह तेजसे युक्त और (अभीके) तुरन्त (चित्राः अभिष्टयः अभवन्) अद्भुत अभिलषणीय हो चुकी हैं।

१४५ भावार्थ- [तुग्र नोकाने] अपने पुत्र [भुज्यु] को [समुद्रमें नौकाओंमें बिठलाकर दूर देशमें] भेज दिया था। वहां उसको कष्ट होने लगे, तब उसने प्रार्थना की, (उसे सुनकर दोनों अश्विदेव) वहां गये (और उस को बचाया।) ऐसी तुम्हारी संरक्षणकी आयोजनाएँ बडी अद्भुत तेजस्वी और सबकेलिए वाञ्छनीय हैं।

१४५ मानवधर्म- डूबते हुओंको बचाओ।

१४५ टिप्पणी- देखो 'तुग्र और भुज्यु' ५७,७१,७९-८१ इ.

[१४६]

१४६ उत स्या वां मधुमन्मक्षिकारपन्मदे सोमस्यौशिजो हुवन्यति। युवं दधीचो मन आ विवासथोऽथा शिरः प्रति वामश्व्यं वदत् ॥९॥

१४६ उत। स्या। वाम्। मधुऽमत्। मक्षिका। अरपत्। मदे। सोमस्य। औशिजः। हुवन्यति। युवम्। दधीचः। मनः। आ। विवासथः। अथ। शिरः। प्रति। वाम्। अश्व्यम्। वदत् ॥९॥

१४६ अन्वयः- स्या मक्षिका वां मधुमत् अरपत्, उत सोमस्य मदे औशिजः हुवन्यति, दधीचः मनः युवं आ विवासथः, अथ- अश्व्यं शिरः वां प्रति अवदत् ॥९॥

१४६ अर्थ- जिस तरह (स्या मक्षिका) वह मधुमक्खी (वां मधुमत् अरपत्) तुम दोनोंके लिए मधुरस्वरसे कूजन करने लगी, (उत) उस तरह (सोमस्य मदे) सोमके आनन्दमें (औशिजः हुवन्यति) उशिक्‌का पुत्र कक्षीवान तुम्हें बुलाता है, (दधीचः मनः) दध्यङ्‌का मन (युवं आ विवासथः) तुम दोनों सेवासे अपनी ओर आकर्षित कर लेते हो (अथ) पश्चात् ही (अश्व्यं शिरः वां प्रति अवदत) घोडेका बनाया हुआ सर तुम दोनोंसे उपदेश कर चुका।

१४६ भावार्थ- मधुमक्षिका जैसी मीठे स्वरसे गुंजन करती है, उस तरह, सोमपानके आनन्दमें उशिक्‌का पुत्र कक्षीवान मधुर स्वरसे तुम्हें अपनी सुरक्षा के लिये बुलाता है। दधीची ऋषिका मन तुमने अपनी सेवासे अपनी

और आकर्षित किया था, पश्चात् तुमने उसको घोडेका सिर लगाया और उस के बाद उन्होंने तुम्हें मधु विद्या का उपदेश किया।

१४६ मानवधर्म– मधुर स्वरमें भाषण करो, सेवा करके गुरुको प्रसन्न करो और उससे गुप्त विद्याको प्राप्त करो।

१४६ टिप्पणी– दधीची, दध्यङ् देखो ८८,१२१,१४९ 'मक्षिका' ७२,१४६। मधुविद्या पृ० उ० २।५।

[१४७]

१४७ युवं पेदवे पुरुवारमश्विना स्पृधां श्वेतं तरुतारं दुवस्यथः।
शर्यैरभिद्युं पृतनासु दुष्टरं चर्कृत्यमिन्द्रमिव चर्षणीसहम् ॥१०॥

१४७ युवम्। पेदवे। पुरुऽवारम्। अश्विना।
स्पृधाम्। श्वेतम्। तरुतारम्। दुवस्यथः।
शर्यैः। अभिऽद्युम्। पृतनासु। दुस्तरम्।
चर्कृत्यम्। इन्द्रम्ऽइव। चर्षणिऽसहम् ॥१०॥

१४७ अन्वयः- अश्विना! युवं पुरुवारं, अभिद्युं स्पृधां तरुतारं, शर्यैः पृतनासु दुस्तरं, इन्द्रं इव चर्षणीसहं, चर्कृत्यं श्वेतं पेदवे दुवस्यथः ॥१०॥

१४७ अर्थ- हे अश्विदेवो! (युवं) तुम दोनों (पुरुवारं अभिद्युं) बहुतों द्वारा स्वीकार करने योग्य, दीप्तिमान, (स्पृधां तरुतारं) स्पर्धा करनेवालोंको पार ले चलनेवाले, (शर्यैः पृतनासु दुस्तरं) योद्धाओंसे लडाइयोंमें अजेय, (इन्द्रं इव चर्षणीसहं) इन्द्रके समान शत्रुओंके पराभवकर्ता, (चर्कृत्यं श्वेतं) अत्यंत कार्यशील और सफेद रंगवाले घोडेको (पेदवे दुवस्यथः) पेदु नरेशके लिए समर्पित करते हो।

१४७ भावार्थ- अश्विदेवोंने प्रशंसनीय, तेजस्वी, युद्धमें विजयी, शत्रु वीरोंसे अजेय, इन्द्र जैसा युद्धोंमें शत्रुका पराभव करनेवाला, चपल श्वेत घोडा पेदु नरेश को दिया था।

१४७ मानवधर्म- घोडेको ऐसा शिक्षित करना चाहिये कि जो सुशिक्षा प्राप्त करके पूर्वोक्त गुणोंसे युक्त बने।

१४७ टिप्पणी- देखो 'पेदु' ८२,११०,१२५ इ०।

[१४८] (ऋ० १।१२०।१-१२)

(१२ दुःस्वप्ननाशनम्)। १ गायत्री, २ ककुप्, ३ का-विराट्, ४ नष्टरूपी, ५ तनुशिरा, ६ उष्णिक्, ७ विष्टार-बृहती, ८ कृतिः, ९ विराट्, १०-१२ गायत्री।

१४८ का राधद्धोत्राश्विना वां को वां जोष उभयोः।
कथा विधात्यप्रचेताः ॥१॥

१४८ का। राधत्। होत्रा। अश्विना। वाम्।
कः। वाम्। जोषे। उभयोः।
कथा। विधाति। अप्रऽचेताः ॥१॥

१४८ अन्वयः- अश्विना! वां का होत्रा राधत्? उभयोः वां जोषे कः? अप्रचेताः कथा विधाति? ॥१॥

१४८ अर्थ- हे अश्विदेवो! (वां) तुम दोनोंको (का होत्रा राधत्) किस तरह की स्तुति प्रसन्न कर सकती है? (उभयोः वां जोषे कः) तुम दोनोंका संतोष करनेमें कौन सफल होगा? (अप्रचेताः कथा विधाति] अज्ञानी तुम्हारी उपासना किस तरह करे?

१४८ टिप्पणी- ये साधारण प्रश्न ही हैं इसलिये इनके भावार्थ आदिकी कोई आवश्यकता नहीं है।

[१४९]

१४९ विद्वांसाविद् दुरः पृच्छेदविद्वानित्थापरो अचेताः।
नू चिन्नु मर्ते अक्रौ ॥२॥

१४९ विद्वांसौ। इत्। दुरः। पृच्छेत्।
अविद्वान्। इत्था। अपरः। अचेताः।
नु। चित्। नु। मर्ते। अक्रौ ॥२॥

१४९ अन्वय- अविद्वान् अपरः अचेताः इत्था विद्वांसौ इत् दुरः पृच्छेत्, मर्ते अक्रौ नु चित् नु ॥२॥

१४९ अर्थ- (अविद्वान्) अज्ञानी और (अपरः अप्रचेताः) दूसरा अल्पबुद्ध ये दोनों (इत्था) इस तरह (विद्वांसौ इत्) विद्वान् अश्विदेवोंसे ही (दुरः पृच्छेत्) मार्ग पूछ लिया करें। क्या कभी (मर्ते) मानवके विषयमें (अ-क्रौ) न करनेकी बात (नु चित् नु) वे कभी करेंगे? [कभी नहीं।]

१४९ भावार्थ– अज्ञानी अथवा अप्रबुद्ध ये दोनों अश्विदेवोंसे अपनी उन्नतिका मार्ग पूछलिया करें, क्योंकि वे मनुष्यके लिये कुछ नहीं करेंगे ऐसा कुछ भी नहीं है।

१४९ मानवधर्म– जनताका हित करनेके लिये जो हो सकता है वह सब करना चाहिये।

१४९ टिप्पणी– दुर्=द्वार, मार्ग। अ-मा=न करना, शत्रुसे आक्रान्त न होना।

[१५०]

१५० ता विद्वांसा हवामहे वां ता नो विद्वांसा मन्म वोचेत-
मद्य। प्रार्चद् दयमानो युवाकुः ॥३॥

१५० ता। विद्वांसा। हवामहे। वाम्।
ता। नः। विद्वांसा। मन्म। वोचेतम्। अद्य।
प्र। आर्चत्। दयमानः। युवाकुः ॥३॥

१५० अन्वय– ता वां विद्वांसा हवामहे, अद्य नः ता विद्वांसा मन्म वोचेतम्; युवाकुः दयमानः प्र अर्चत् ॥३॥

१५० अर्थ– (ता वां) उन विख्यात तुम दोनों (विद्वांसा हवामहे) विद्वानोंको हम बुलाते हैं, (अद्य नः) आज हमें (ता विद्वांसा) ये दोनों विद्वान अश्विदेव (मन्म वोचेतं) मननके योग्य उपदेश सुनावें, (युवाकुः) तुम दोनोंके संपर्ककी इच्छा करता हुआ यह मानव (दयमानः प्र अर्चत्) हवि अर्पण करता हुआ तुम्हारी पूजा करता है।

१५० भावार्थ– हम सहायतार्थ विद्वान अश्विदेवोंको बुलाते हैं। वे आकर हमें योग्य उपदेश दें। उनकी मित्रताकी इच्छा करनेवाला, अन्नका प्रदान करता हुआ, मैं उनकी पूजा करता हूँ।

१५० मानवधर्म– मनुष्य विद्वानोंकी सहायता लेवे। वे उनको योग्य मार्गका उपदेश करें। उसके बदले मनुष्य उन विद्वानोंका बडा आदर करे। इस तरह दोनों परस्परकी सहायता करके उन्नति को प्राप्त करें।

१५० टिप्पणी– मन्म = मनन करने योग्य उपदेश, स्तोत्र, मननीय विचार। दयमानः = दान देनेवाला, समर्पण करनेवाला। 'परस्परं भावयन्तः' (गीता ३।११) देखो।

[१५१]

१५१ वि पृच्छामि पाक्या३ न देवान् वषट्कृतस्याद्भुतस्य दस्रा।
पातं च सह्यसो युवं च रभ्यसो नः ॥४॥

१५१ वि। पृच्छामि। पाक्या। न। देवान्।
वषट्ऽकृतस्य। अद्भुतस्य। दस्रा।
पातम्। च। सह्यसः। युवम्। च। रभ्यसः। नः ॥४॥

१५१ अन्वयः- दस्रा! वि पृच्छामि, पाक्या देवान् न, अद्भुतस्य वषट्कृतस्य सह्यसः च युवं पातं, नः रभ्यसः च ॥४॥

१५१ अर्थ- हे (दस्रा) शत्रुके विनाशकर्ता अश्विदेवो! तुमदोनोंसे (वि पृच्छामि) मैं विशेष रूपसे पूछता हूँ, (पाक्या देवान् न) अन्य अपरिपक्व बुद्धिवाले देवोंसे नहीं पूछना चाहता। (अद्भुतस्य वषट्कृतस्य सह्यसः च) विचित्र बल देनेहारे, वषट्कार पूर्वक दिये हुए तथा बलके उत्पादक इस सोमरसका (युवं पातं) तुम दोनों सेवन करो, (नः रभ्यसः च) और हमें बडे कार्य करनेमें समर्थ बनाओ।

१५१ भावार्थ- हे शत्रुका नाश करनेवाले अश्विदेवो! मेरी प्रार्थना तुमसे ही है, किसी अन्यसे नहीं। आपही इस मेरे तैयार किये सोमरसका स्वीकार कीजिये और मुझे बडे कार्य करनेमें समर्थ बनाइये।

१५१ मानवधर्म- [राष्ट्रमें] शिक्षाका ऐसा प्रबंध करो कि जिससे बडे बडे कार्य करनेवाले महापुरुष निर्माण हों।

१५१ टिप्पणी- पाक्य = परिपक्व होनेवाला, जो आज अपूर्ण है। दस्र = शूरवीरताके बडे कर्म करनेवाला।

[१५२]

१५२ प्र या घोषे भृगवाणे न शोभे यया वाचा यजति पज्रियो
वाम्। प्रैषयुर्न विद्वान् ॥५॥

१५२ प्र। या। घोषे। भृगवाणे। न। शोभे।
यया। वाचा। यजति। पज्रियः। वाम्।
प्र। इषऽयुः। न। विद्वान् ॥५॥

१५२ अन्वय– या घोषे भृगवाणे न प्र शोभे, विद्वान् इषयुः पज्रियः न यया वाचा वां यजति ॥५॥

१५२ अर्थ– (या) जो वाणी (घोषे भृगवाणे न) घोषाके पुत्र तथा भृगवाणऋषिमें (प्र शोभे) अत्यन्त सुशोभित हो रही है, और (विद्वान् इषयुः) ज्ञानी और अन्नको चाहनेवाले (पज्रियः न) अंगिरस कुलमें उत्पन्न ऋषिके समान (यया वाचा) जिस वाणीसे यह (वां यजति) तुमदोनोंकी पूजा करता है, वह वाणी मुझमें रहे।

१५२ भावार्थ– घोषा ऋषिका पुत्र, भृगु ऋषि और पज्र कुलमें उत्पन्न अंगिरा ऋषि जिस तरह की स्तुति करते रहे, उस तरह की वर्णन शैली मेरी वाणीमें हो।

१५२ मानवधर्म– प्राचीनकालके श्रेष्ठ विद्वानोंके समान प्रभावशाली वक्तृत्व मनुष्य अपनेमें बढावे।

१५२ टिप्पणी– घोषा = एक ऋषिका, विदुषी। भृगवाणः = भृगु ऋषि। पज्रियः = पज्र कुलमें उत्पन्न अंगिरस ऋषि, उनके कुलमें उत्पन्न कक्षीवान् ऋषि।

[१५३]

१५३ श्रुतं गायत्रं तकवानस्याहं चिद्धि रिरेभाश्विना वाम्।
आक्षी शुभस्पती दन् ॥६॥

१५३ श्रुतम्। गायत्रम्। तकवानस्य। अहम्।
चित्। हि। रिरेभ। अश्विना। वाम्।
आ। अक्षी इति। शुभः। पती इति। दन् ॥६॥

१५३ अन्वयः— शुभस्पती अश्विना! तकवानस्य गायत्रं श्रुतं, अक्षी आदन् अहं वां चित् हि रिरेभ ॥ ६ ॥

१५३ अर्थ– हे (शुभस्पती) शुभके अधिपति अश्विदेवो! (तकवानस्य गायत्रं श्रुत) प्रगति करनेवाले ऋषि का स्तोत्र तुम दोनोंने सुनलिया, (अक्षी आदन्) तुम दोनों की दी हुई नेत्र शक्ति का ग्रहण करता हुआ (अहं) मैं ही (वां चित् हि) तुम दोनोंकी यह (रिरेभ) प्रशंसा कर रहा हू।

१५३ भावार्थ– हे शुभकारी अश्विदेवो! प्रगति करनेकी इच्छा करनेवाले ऋषिने यह गायत्र छन्दका सामगान किया था, वह आपने सुन लिया है। तुमने उसको दृष्टी दी, इसी तरह मैं भी तुम्हारा गुणगान करता हू, मुझे भी शक्ति संपन्न करो।

१५३ टिप्पणी– तकवानः=तक्-गतौ, तक=गति, प्रगति, शीघ्र गति। तकवान=गतिमान्, शीघ्रगामी, प्रगतिशील।

[१५४]

१५४ युवं ह्यास्तं महो रन् युवं वा यन्निरततंसतम्।
ता नो वसू सुगोपा स्यातं पातं नो वृकादघायोः ॥७॥

१५४ युवम्। हि। आस्तम्। महः। रन्।
युवम्। वा। यत्। निःऽअततंसतम्।
ता। नः। वसू इति। सुऽगोपा। स्यातम्।
पातम्। नः। वृकात्। अघऽयोः ॥७॥

१५४ अन्वय.— वसू! युवं हि महः रन् आस्तं, यत् युवं वा निः अततंसतम्; ता नः सुगोपा स्यातं, नः अघायोः वृकात् पातम् ॥७॥

१५४ अर्थ–हे (वसू) सबको बसानेवाले अश्विदेवो! (युवं हि) तुम दोनों सचमुच (महः रन् आस्तं) बड़ा भारी दान देते रहते हो और (यत्) जिसे (युवं) तुम दोनों (निः अततंसतं वा) चाहे जब पूर्णतया हटा भी लेते हो; (ता) ऐसे प्रसिद्ध तुम दोनों (नः सुगोपा स्यातं) हमारी अच्छी रक्षा करनेवाले बनो, (नः अघायोः वृकात् पातं) हमें पापी और भेड़ियेके तुल्य क्रोधीसे बचाओ।

१५४ भावार्थ— हे अश्विदेवो! तुम दोनों किसीको बड़ा दान देते भी हो और किसीसे धन हटा भी लेते हो। ऐसे आप दोनों हमारे रक्षक बनो और पापी तथा क्रोधी से हमें बचाओ।

१५४ मानवधर्म– योग्य मनुष्योंको दान देना चाहिये, तथा दुष्टोंको दण्ड भी देना चाहिये। लोगोंकी सुरक्षा करनी चाहिये। पापी और क्रोधियोंसे जनताको बचाना चाहिये।

१५४ टिप्पणी– रन् (रा दाने)=दान देना। अघायुः=पापी आयुवाला, पापी जीवनवाला। वृक=भेड़िया, लालची, क्रूर हिंसक।

[१५५]

१५५ मा कस्मै धातमभ्यमित्रिणे नो माकुत्रा नो गृहेभ्यो धेनवो
गुः। स्तनाभुजो अशिश्वीः ॥८॥

१५५ मा । कस्मैं । धातम् । अभि । अमित्रिणें । नः ।
मा । अकुत्रं । नः । गृहेभ्यः । धेनवंः । गुः ।
स्तनऽभुजंः । अशिंश्वीः ॥८॥

१५५ अन्वयः- कस्मै अभ्यमित्रिणे नः मा धातं, नः स्तनाभुजः धेनवः अशिश्वी गृहेभ्यः मा कुत्र गुः ॥ ८ ॥

१५५ अर्थ- (कस्मै अमित्रिणे) किसी भी शत्रुके (अभि नः मा धातं) सम्मुख हमें न रखदो, (नः) हमारी (स्तना भुजः धेनवः) स्तनके दूधसे भरण पोषण करने हारी गौएँ (अशिश्वीः) बछडोंसे वियुक्त होकर (गृहेभ्यः मा कुत्र गु) घरोंसे कहीं न निकल जायँ ।

१५५ भावार्थ- किसी भी प्रकारके शत्रुके सामने हमें न रखो । गौएँ हमारा पोषण अपने दूधसे करती हैं, अतः वे हमारे घरोंसे दूर न जायँ । सदा हमारे घरमें ही रहें ।

१५५ मानवधर्म- अपने किसी मनुष्यको शत्रुके सामने छोडकर स्वयं दूर जाना उचित नहीं है। गौओंको सदा अपने घरमें अपनी निगरानीमें रखना उचित है।

१५५ टिप्पणी- स्तनाभुज =स्तनोंसे दूध देकर पोषण करनेवाली। अ-शि-श्वी.= छडोंसे वियुक्त।

[१५६]

१५६ दुहीयन् मित्रधितये युवाकु राये च नो मिमीतं वाजवत्यै ।
इषे च नो मिमीतं धेनुमत्यै ॥९॥

१५६ दुहीयन् । मित्रऽधितये । युवाकु ।
राये । च । नः । मिमीतम् । वाजंऽवत्यै ।
इषे । च । नः । मिमीतम् । धेनुऽमत्यै ॥९॥

१५६ अन्वय युवाकु मित्रधितये दुहीयन्, वाजवत्यै राये च धेनुमत्यै इषे च नः मिमीतम् ॥ ९ ॥

१५६ अर्थ (युवाकु) तुमसे संपर्क रखनेकी इच्छा करनेवाले लोग (मित्र धितये दुहीयन्) मित्रोंके भरण पोषणार्थ तुम दोनोंसे पर्याप्त संपत्तिका दोहन करते हैं, इसलिए (वाजवत्यै राये च धेनुमत्यै इषे च) बल युक्त धन और गोधन युक्त अन्न (नः मिमीत) हमें दे डालनेका निर्धार करो ।

१५६ **भावार्थ-** हम तुम्हारे साथ अनुयायी होकर रहनेकी इच्छा करते हैं, अत: जिस तरह मित्रकी सहायता करते हैं, उस तरह हमें बलवर्धक धन और गौओंसे प्राप्त होनेवाला दूध पर्याप्त परिमाणमें मिलता रहे ऐसा प्रबन्ध करो।

१५६ **मानवधर्म-** अनुयायियोंको उत्तम धन और बल वर्धक और पोषक अन्न अर्थात् गायका दूध मिलता रहे ऐसा प्रबंध करना चाहिये।

१५६ **टिप्पणी-** **युवाकु**=संमिश्रित होनेवाला, साथ रहनेवाला। **मित्र-धीति:**=मित्रोंका पालन, मित्रोंका पोषण।

[१५७]

१५७ अश्विनोरसनं रथमनश्वं वाजिनीवतोः।
तेनाहं भूरि चाकन ॥१०॥

१५७ अश्विनोः। असनम्। रथम्।
अनश्वम्। वाजिनीऽवतोः।
तेन। अहम्। भूरि। चाकन ॥१०॥

१५७ अन्वयः- वाजिनीवतोः अनश्वं रथं असनं, अहं तेन भूरि चाकन॥१०

१५७ **अर्थ-** (वाजिनीवतोः) सेनासे युक्त अश्विदेवोंके (अनश्वं रथं) घोडोंके विना चलनेवाले रथको (असनं) मैं प्राप्त कर चुका हूं, (अहं) मैं (तेन भूरि चाकन) उससे बहुतसा यश मिलनेकी इच्छा करता हूं।

१५७ **भावार्थ-** अश्विदेवोंसे घोडोंके विना चलनेवाला रथ मुझे मिला है, इससे बहुतसा यश मिलनेकी मुझे आशा है।

१५७ **मानवधर्म-** घोडोंके विना चलनेवाला रथ बनाओ, और उससे बडा यश कमाओ।

१५७ **टिप्पणी-** **वाजिनीवत्**=सेनासे युक्त, अन्नयुक्त, बलयुक्त। **अन्-अश्व:**=घोडेके विना चलनेवाला।

[१५८]

१५८ अयं समह मा तनूह्याते जनाँ अनु।
सोमपेयं सुखो रथः ॥११॥
अश्विनौ १८

१५८ अयम् । सुमहः । मा । तनु ।
ऊह्याते । जनान् । अनु ।
सोम्ऽपेयम् । सुऽखः । रथः ॥११॥

१५८ अन्वयः- अयं सुखः रथः समहः, सोमपेयं जनान् अनु ऊह्याते; मा तनु ॥ ११ ॥

१५८ अर्थ - (अयं सुखः रथः) यह सुखप्रद रथ (समहः) धनसे युक्त है, (सोमपेयं) सोम पीनेके स्थानको (जनान् अनु ऊह्याते) याजक लोगों के पास अश्विदेव इसपर बैठकर जाते हैं, (मा तनु) वह मेरी वृद्धि करे। वह मेरा यश फैलावे।

१५८ भावार्थ— अश्विदेव सोमपानके स्थानके पास अपने सुखदायी रथ में बैठकर जाते है। उस रथमें बडा धन रहता है। यह रथ मेरा यश बढानेवाला हो।

१५८ मानवधर्म- रथ ऐसा बनाओं कि जिसमें बैठनेसे बैठनेवालोंको सुख हो। लोगोंकी सहायतार्थ बहुत धन उसमें रखा जाय और जनताकी सहायतार्थ वह दिया जाय। इस तरह यह रथ लोगोंका सुख बढावे।

[१५९]

१५९ अध स्वप्नस्य निर्विदे ऽभुञ्जतश्च रेवतः ।
उभा ता बस्रि नश्यतः ॥१२॥

१५९ अध । स्वप्नस्य । निः । विदे ।
अभुञ्जतः । च । रेवतः ।
उभा । ता । बस्रि । नश्यतः ॥१२॥

१५९ अन्वयः- स्वप्नस्य अध अभुञ्जतः रेवतः च निर्विदे। ता उभा बस्रि नश्यतः ॥ १२ ॥

१५९ अर्थ- (स्वप्नस्य) स्वप्नशील को (अध) और (अभुञ्जतः रेवतः च) भोजन न देनेवाले धनिक को देखकर (निर्विदे) मुझे खिन्नता होती है। क्योंकि (ता उभा) ये दोनों ही (बस्रि नश्यतः) शीघ्र नष्ट होते हैं।

१५९ भावार्थ- गरीबोंको भोजन न देनेवाले धनिकोंको देख कर तथा सुस्तीसे पडे रहनेवालों को देख कर मुझे बडा खेद होता है, क्योंकि ये निःसन्देह शीघ्र नाशको प्राप्त होनेवाले हैं।

१३९ मानवधर्म– सुस्तीसे नाश होता है, अतः मनुष्य उद्यमी बने। धनका उपयोग गरीबोंकी सहायतार्थ करना चाहिये, जो वैसा नहीं करते वे नष्ट होते हैं। अतः मनुष्य अपने पासके धनसे असहायोंकी सहायता करें।

१५९ टिप्पणी– स्वप्न=सुस्त, आलसी, सदा सोनेवाला। अभुञ्जत्=(अभोजयत्)= दूसरोंको भोजन न देनेवाला, दूसरे गरीबोंकी सहायता न करनेवाला, स्वयं न भोगकर दूसरोंको भी, जो सहायता नहीं करता। मक्षु=शीघ्र।

[१६०] (ऋ० १।१३९।३-५)

परुच्छेपो दैवोदासिः। अत्यष्टिः, ५ बृहती।

१६० युवां स्तोमेभिर्देवयन्तो अश्विना ऽऽश्रावयन्त इव श्लोकमायवो युवां हव्याभ्या३ऽयवः। युवोर्विश्वा अधि श्रियः पृक्षश्च विश्ववेदसा। प्रुषायन्ते वां पवयो हिरण्यये रथे दस्रा हिरण्यये ॥३॥

१६० युवाम्। स्तोमेभिः। देवऽयन्तः। अश्विना।
आश्रवयन्तःऽइव। श्लोकम्। आयवः।
युवाम्। हव्या। अभि। आयवः।
युवोः। विश्वाः। अधि। श्रियः।
पृक्षः। च। विश्वऽवेदसा।
प्रुषायन्ते। वाम्। पवयः। हिरण्यये।
रथे। दस्रा। हिरण्यये ॥३॥

१६० अन्वयः– दस्रा विश्ववेदसा अश्विना! स्तोमेभिः युवां देवयन्तः आयवः श्लोकं आ श्रावयन्तः इव हव्या युवां अभि आयवः; युवोः अधि विश्वा श्रियः पृक्षः च, वां हिरण्यये रथे पवयः प्रुषायन्ते ॥ ३॥

१६० अर्थ– हे (दस्रा) शत्रुविनाशक! (विश्ववेदसा) सर्वज्ञ अश्विदेव (स्तोमेभिः) स्तोत्रोंसे (युवां देवयन्त) तुम दोनों देवोंको अपनी ओर खींचनेवाले (आयव) मानव (श्लोकं आश्रावयन्त इव) मानों काव्यका उच्चस्वरसे गान करते हुए (हव्या) हवनीय पदार्थोंको साथ लेकर (युवां

अभि आयवः) तुम दोनोंके समीप आते हैं, (युवोः अधि) तुम दोनोंसे ही (विश्वाः श्रियः) सभी संपत्तियाँ (पृक्षः च) और अन्नसामग्रियाँ प्राप्त होती हैं, (वां हिरण्यये रथे) तुम दोनोंके सुवर्णमयरथमें स्थित (पवयः प्रुषायन्ते) पहिये जलसे भीगे हैं।

१६० भावार्थ– हे शत्रु नाशक सर्वज्ञ अश्विदेवो ! कई भक्त लोग तुम दोनों को अपने पास लानेकी इच्छासे तुम्हारे वर्णन परक गान गाते हैं, कई हवन सामग्री से हवन करते हैं। तुम दोनों उनको यथेष्ट धन तथा अन्न देते हो। तुम्हारे रथके पहिये जल स्थानमें से आने से भीगे हैं।

१६० मानवधर्म– भक्त देवताके वर्णनके गान गावे, यजन करे और देवताकी प्रीति होने योग्य आचरण करे।

१६१ टिप्पणी– आयु=मनुष्य। -

[१६१]

१६१ अचेति दस्रा व्यु१ नाकमृण्वथो युञ्जते वां रथयुजो दिविष्टिष्वध्वस्मानो दिविष्टिषु। अधि वां स्थाम वन्धुरे रथे दस्रा हिरण्यये। पथेव यन्तावनुशासता रजोऽञ्जसा शासता रजः ॥४॥

१६१ अचेति। दस्रा। वि। ऊँ इति। नाकम्। ऋण्वथः। युञ्जते। वाम्। रथऽयुजः। दिविष्टिषु। अध्वस्मानः। दिविष्टिषु। अधि। वाम्। स्थाम। वन्धुरे। रथे। दस्रा। हिरण्यये। पथाऽइव। यन्तौ। अनुऽशासता। रजः। अञ्जसा। शासता। रजः ॥४॥

१६१ अन्वयः— दस्रा ! नाकं वि ऋण्वथः, अचेति, दिविष्टिषु अध्वस्मानः रथयुजः वां दिविष्टिषु युञ्जते, वां हिरण्यये वन्धुरे रथे अधि स्थाम, अञ्जसा रजः शासता अनुशासता रजः पथा इव यन्तौ ॥४॥

१६१ अर्थ– हे (दस्रा) शत्रु विनाशक अश्विदेवो ! (नाकं वि ऋण्वथः) स्वर्ग को तुम दोनों खोल देते हो, सो बात (अचेति) सबको विदित है, (दिविष्टिषु) धुलोकको प्राप्त करनेके यज्ञों में आनेके लिए (अध्वस्मानः)

विनाश न होनेवाले (रथयुजः) तथा रथके साथ जोडे जानेवाले घोडे (वां) तुम दोनों के रथको (दिविष्टिषु युञ्जते) यज्ञोंमें जानेके लिए जोते जाते हैं, (वां हिरण्यये वन्धुरे रथे अधि स्थाम) तुम दोनोंके सुनहले, सुन्दर रथ पर हम आपको स्थापन करते हैं; (अञ्जसा रजः शासता) प्रमुखतया अन्तरिक्ष पर शासन करते हुए और (अनु शासता) शत्रुओंका दमन करते हुए (रजः पथा इव यन्तौ) अन्तरिक्षके मार्ग परसे जानेके समान तुम दोनों जाते हो ।

१६१ भावार्थ- तुम दोनों स्वर्ग का द्वार खोलते हो, सुलोकमें जानेके लिये अपने रथको अविनाशी घोडे जोतते हैं, अपने सुवर्णके रथमें बैठकर शत्रुओंका दमन करके सबका शासन करते हैं ।

१६१ मानवधर्म- स्वर्गका द्वार खुलने योग्य शुभ कर्म करो, शत्रु का दमन करो और जनताका उत्तम शासन करो ।

[१६१]

१६२ शचीभिर्नः शचीवसू दिवा नक्तं दशस्यतम् ।
मा वां रातिरुप दसत् कदा चनास्मद् रातिः कदा चन ॥५

१६२ शचीभिः । नः । शचीवसू इति शचीऽवसू ।
दिवा । नक्तम् । दशस्यतम् ।
मा । वाम् । रातिः । उप । दसत् । कदा । चन ।
अस्मत् । रातिः । कदा । चन ॥५॥

१६२ अन्वयः- शचीवसू ! नः दिवानक्तं शचीभिः दशस्यतम्, वां रातिः कदाचन मा उपदसत् कदा च न अस्मत् रातिः ॥५॥

१६२ अर्थ- हे (शची-वसू) शक्तियोंसे धन प्राप्त करनेवाले अश्विदेवो ! (नः दिवानक्तं) हमें रातदिन (शचीभिः दशस्यतं) अपनी शक्तियोंसे दान देते रहो, (वां रातिः) तुम दोनोंका दान (कदाचन) कभी (मा उपदसत्) क्षीण न होने पाय, (कदा चन अस्मत् रातिः) और कभी हमारा दान भी न घटजाय ।

१६२ भावार्थ- अपनी शक्तिसे धन प्राप्त करनेवाले हे अश्विदेवो ! अपनी शक्तियोंसे हमें सदा धन देते रहो, आपका दान कभी कम न हो और हमारा दान भी कभी कम न हो ।

१६१ मानवधर्म— अपना सामर्थ्य बढाओ, अपनी शक्तिसे कमाये धनका दान करो, दान करनेमें कंजूसी न करो, कभी दान कम न करो।

[१६३] (ऋ० १।१५७।१-६)

दीर्घतमा औचथ्य । जगती । ५-६ त्रिष्टुप्।

१६३ अबो॑ध्य॒ग्निर्ज्म उदे॑ति॒ सूर्यो॒ व्यु१॒षाश्च॒न्द्रा म॒ह्यावो॑ अ॒र्चिषा॑।
आयु॑क्षाताम॒श्विना॒ यात॑वे॒ रथं॒ प्रासा॑वीद् दे॒वः स॑वि॒ता जग॒त् पृथ॑क् ॥१॥

१६३ अबो॑धि । अ॒ग्निः । ज्मः । उत् । ए॒ति॒ । सूर्यः॑ ।
वि । उ॒षाः । च॒न्द्रा । म॒ही । आ॒वः॒ । अ॒र्चिषा॑ ।
अयु॑क्षाताम् । अ॒श्विना॑ । यात॑वे । रथ॑म् ।
प्र । अ॒सा॒वी॒त् । दे॒वः । स॒वि॒ता । जग॑त् । पृथ॑क् ॥१॥

१६३ अन्वय – अग्नि ज्म अबोधि मही उषा अर्चिषा चन्द्रा वि आव, अश्विना यातवे रथ आयुक्षातां, सविता देव जगत् पृथक् प्र असावीत् ॥१॥

१६३ अर्थ (अग्नि ज्म अबोधि) अग्नि भूमिपर जागृत हो चुका है, (मही उषा) बडी उषा (अर्चिषा चन्द्रा वि आव) अपने तेजसे लोगोंको आल्हाद देनेवाली होकर फैल चुकी है इस समय अश्विदेवोंने (यातवे) यात्रा करनेके लिए अपने (रथ आयुक्षाता) रथ को तैयार किया है तब (सविता देव.) सूर्य देवने (जगत् पृथक) संसारको अलग अलग ढगसे (प्र असावीत्) उत्पन्न किया है। अर्थात् सब संसारको जाग्रत करके कर्मोंमें लगाया है।

१६३ भावार्थ अग्नि प्रज्वलित हुआ है उषा अपने तेजके साथ फैल गयी है, अश्विदेवोंने अपना रथ तैयार किया है. सूर्य उदय होकर उसने सब लोगोंको अपने अपने कार्योंमें लगा दिया है।

१६३ मानवधर्म प्रातःकाल समय अग्निको प्रज्वलित रखो, उष काल में उजाला होगा, अश्विदेव उदित होंगे, पश्चात सूर्य उदय होगा तब सभी लोगोंको अपने कार्योंमें लगना चाहिए। इस लिये सूर्योदयके पूर्व ही अपना अपना कार्य निपटाकर तैयार हो जाओ।

[१६४]

१६४ यद् युञ्जाथे वृषणमश्विना रथं घृतेन नो मधुना क्षत्रमुक्षतम् । अस्माकं ब्रह्म पृतनासु जिन्वतं वयं धना शूरसाता भजेमहि ॥२॥

१६४ यत् । युञ्जाथे इति । वृषणम् । अश्विना । रथम् ।
घृतेन । नः । मधुना । क्षत्रम् । उक्षतम् ।
अस्माकम् । ब्रह्म । पृतनासु । जिन्वतम् ।
वयम् । धना । शूरऽसाता । भजेमहि ॥२॥

१६४ अन्वयः- अश्विना ! यत् वृषणं रथं युञ्जाथे, मधुना घृतेन नः क्षत्रं उक्षतं, पृतनासु अस्माकं ब्रह्म जिन्वतं, शूरसाता वयं धना भजेमहि ॥२॥

१६४ अर्थ- हे अश्विदेवो ! (यत् वृषणं रथं युञ्जाथे) चूँकि तुम दोनों अपने बलवान रथको तैयार कर रहे हो, इसलिए हम आपसे विनति करते हैं कि, (मधुना घृतेन) मीठे शहदसे तथा घीसे (नः क्षत्रं उक्षतं) हमारी क्षात्र सेना को पुष्ट करो, तथा (पृतनासु अस्माकं ब्रह्म जिन्वतं) युद्धोंमें हमारे ज्ञानको यशसे युक्त करो (शूरसाता वयं) जहां शूर लोग धनके लिए युद्ध करते हैं उस युद्धमें हम (धना भजेमहि) धनोंको प्राप्त करें ।

१६४ भावार्थ- हे अश्विदेवो ! आपने बाहर आनेके लिये अपना बलवान रथ जोड कर रखा है, इसलिए हमारी प्रार्थना है कि शहद और घीसे हमारे क्षत्रियोंको बलवान बनाओ, युद्धोंमें हमारा ज्ञान यशस्वी हो और जहां शूर ही लडते हैं, उस युद्धमें हमें विजय प्राप्त हो ।

१६४ मानवधर्म— क्षत्रियों को शहद और घी पर्याप्त मात्रामें मिले, उसके सेवनसे वे पुष्ट और बलिष्ठ बनें, वे युद्धोंमें विजयी हों और बहुत धन प्राप्त करें ।

[१६५]

१६५ अर्वाङ् त्रिचक्रो मधुवाहनो रथो जीराश्वो अश्विनोर्यातु सुष्टुतः । त्रिवन्धुरो मघवा विश्वसौभगः शं न आ वक्षद् द्विपदे चतुष्पदे ॥३॥

१६५ अर्वाङ् । त्रिऽचक्रः । मधुऽवाहनः । रथः ।
जीरऽअश्वः । अश्विनोः । यातु । सुऽस्तुतः ।
त्रिऽवन्धुरः । मघऽवा । विश्वऽसौभगः ।
शम् । नः । आ । वक्षत् । द्विऽपदे । चतुःऽपदे ॥३॥

१६५ अन्वय.- त्रिचक्रः जीराश्वः सुष्टुतः अश्विनोः रथ, मधुवाहनः अर्वाङ् यातु । त्रिवन्धुरः विश्वसौभगः मघवा न द्विपदे चतुष्पदे शं आवक्षत् ३

१६५ अर्थ- (त्रिचक्र) तीन पहियोंसे युक्त (जीराश्वः सुष्टुत) वेगवान घोडोंसे युक्त, भली भाँति प्रशंसित (अश्विनो. रथः) अश्विदेवोंका रथ (मधुवाहनः अर्वाङ् यातु) मिठाससे पूर्ण अन्नको ढोता हुआ हमारे पास आ जाय, (त्रिवन्धुरः विश्वसौभगः) वह तीन बैठकोंसे युक्त और सभी सौंदर्यों से युक्त (मघवा) ऐश्वर्य संपन्न रथ (नः द्विपदे चतुष्पदे) हमारे मानवों तथा चौपायोंको (शं आवक्षत्) सुख पहुँचाये ।

१६५ भावार्थ- तीन पहियोंसे युक्त, वेगवान घोडोंसे जोता हुआ, अश्विदेवोंका रथ शहद लेकर हमारे पास आ जाय, तीन आसनोंवाला अतिसुन्दर तथा ऐश्वर्यवान रथ हमारे द्विपाद और चतुष्पादोंको सुख देदे ।

१६५ मानवधर्म— रथको वेगवान घोडे जोतदो, शहद प्राप्त करो, रथको सुन्दर बनाओ और मानवों तथा पशुओंका सुख बढाओ ।

[१६६]

१६६ आ न ऊर्जं वहतमश्विना युवं मधुमत्या नः कशया मिमिक्षतम् । प्रायुस्तारिष्टं नी रपांसि मृक्षतं सेधतं द्वेषो भवतं सचाभुवा ॥४॥

१६६ आ । नः । ऊर्जम् । वहतम् । अश्विना । युवम् ।
मधुऽमत्या । नः । कशया । मिमिक्षतम् ।
प्र । आयुः । तारिष्टम् । निः । रपांसि । मृक्षतम् ।
सेधतम् । द्वेषः । भवतम् । सचाऽभुवा ॥४॥

६६१ अन्वय- अश्विना ! युवं न ऊर्जं आवहतं, नः मधुमत्या कशया मिमिक्षतं, आयुः प्रतारिष्टं, रपांसि निः मृक्षतं, द्वेषः सेधतं, सचाभुवा भवतम् ॥ ४ ॥

१६६ अर्थ- हे अश्विदेवो ! (युवं नः ऊर्जं आवहतं) तुम दोनों हमारे लिए अन्न ले आओ, (नः मधुमत्या कशया मिमिक्षतं) हमें शहदसे पूर्ण पात्रसे संयुक्त करो; (आयुः प्रतारिष्ट) हमारी आयुको सुदीर्घ बनाओ, (रपांसि नि मृक्षतं) दोषोंको पूर्णतया मिटादो, (द्वेषः सेधतं) द्वेषको हटा दो और (सचाभुवा भवतं) हमारे सहायक बनो।

१६६ भावार्थ- हे अश्विदेवो ! हमें विपुल अन्न दो, शहदसे भरे पात्र हमें दे दो, हमारी आयु दीर्घ करो, हमारे दोष दूर करो, द्वेषभावको दूर करो और सदा हमारे सहायक बनो।

१६६ मानवधर्म- विपुल अन्न तथा शहदका सेवन करो, आयुको बढाओ, दोषोंको दूर करो, द्वेषभावको मिटा दो, परस्परकी सहायता करो।

१६६ टिप्पणी- मधुमत्या कशया मिमिक्षतं= शहदसे भरे चाबूकसे हमें सिंचित करो। शहदसे भरे पात्रसे हमें युक्त करो, हमें विपुल शहद दो और कर्ममें प्रेरित करो। यहांका 'कशा' (चाबूक) पद 'चलाने, या प्रेरणा करने' का सूचक है। जैसा चाबूक घोडोंको चलाता है वैसा तुम्हारा शब्द हमें चलावे।

[१६७]

१६७ युवं ह गर्भं जगतीषु धत्थो युवं विश्वेषु भुवनेष्वन्तः।
युवमग्निं च वृषणावपश्च वनस्पतींरश्विनावैरयेथाम् ॥५॥

१६७ युवम् । ह । गर्भम् । जगतीषु । धत्थः ।
युवम् । विश्वेषु । भुवनेषु । अन्तरिति ।
युवम् । अग्निम् । च । वृषणौ । अपः । च ।
वनस्पतीन् । अश्विनौ । ऐरयेथाम् ॥५॥

१६७ अन्वयः- वृषणौ अश्विनौ ! जगतीषु युवं ह गर्भं धत्थः, विश्वेषु भुवनेषु अन्तः युवं, अग्निं च अपः च वनस्पतीन् युवं प्रेरयेथां ॥५॥

१६७ अर्थ- हे (वृषणौ) बलवान् अश्विदेवो ! (जगतीषु युवं ह) जगतियोंमें, या गौओंमें तुम दोनोंही (गर्भं धत्थः) गर्भको रखदेते हो तथा (विश्वेषु भुवनेषु अन्तः) सारे प्राणियोंके भीतर (युवं) तुम दोनों गर्भ धारण करते हो, (अग्निं च अपः च) अग्निको तथा जलोंको और (वनस्पतीन्) वनस्पतियों को (युवं प्रेरयेथां) तुम दोनों प्रेरित करते हो।

१६७ भावार्थ- गौओंमें तथा सब प्राणियोंकी स्त्रियोंमें गर्भका पालन पोषण करना अश्विदेवोंका कार्य है। अग्नि, जल और वनस्पतियोंको मनुष्योंके लियेही अश्विदेव प्रेरित करते हैं।

१६७ मानवधर्म- गर्भकी विद्याका ज्ञान प्राप्त करो, गर्भकी स्थापना, धारणा और पोषण करनेका ज्ञान प्राप्त करो, और उनका पोषण करो। अग्निसे उष्णता, जलसे तृषा शमन और वनस्पतियोंसे अन्न प्राप्त करके अपनी उन्नतिका साधन करो।

[१६८]

१६८ युवं ह स्थो भिषजा भेषजेभिरथो ह स्थो रथ्या॒ राथ्येभिः। अथो ह क्षत्रमधि धत्थ उग्रा यो वां हविष्मान् मनसा ददाश ॥६॥

१६८ युवम्। ह। स्थः। भिषजा। भेषजेभिः। अथो इति। ह। स्थः। रथ्या। रथ्येभिरिति रथ्येभिः। अथो इति। ह। क्षत्रम्। अधि। धत्थः। उग्रा। यः। वाम्। हविष्मान्। मनसा। ददाश ॥६॥

१६८ अन्वयः- भेषजेभिः युवं भिषजा ह स्थः, अथ रथ्येभिः रथ्या ह स्थः, अथ हे उग्रा! क्षत्रं अधि धत्थः, यः हविष्मान् मनसा वां ददाश ॥६॥

१६८ अर्थ-(भेषजेभिः युवं) औषधियोंको साथ रखनेके कारण तुम दोनों ही (भिषजा ह स्थः) निश्चय पूर्वक वैद्य हो, (अथ) उसी प्रकार (रथ्येभिः) रथको जोतनेयोग्य घोडोंके कारण (रथ्या ह स्थः) रथी भी हो, (अथ) और तुम स्वयं हे (उग्रा) उग्रस्वरूपवाले अश्विदेवो! (क्षत्र अधि धत्थः) क्षत्रियोचित वीरता उसे देडालते हो, (यः) जो (हविष्मान्) हवि आदि चीजें (मनसा वां ददाश) मन.पूर्वक तुम दोनोंको अर्पण करता है।

१६८ भावार्थ- हे अश्विदेवो! तुम दोनों अपने पास उत्तम औषधियां रखनेके कारण उत्तम वैद्य हो, उत्तम घोडे अपने रथको जोतनेके कारण उत्तम रथी हो, तुम स्वयं शमवीर हो, अतः क्षत्रियोचित सहायता करते हो। जो तुम्हें मनःपूर्वक हवि अर्पण करता है उसकी तुम सहायता करते हो।

१६८ मानवधर्म- अपने पास उत्तम औषधियाँ रखकर वैद्य रोगियोंकी उत्तम

चिकित्सा करें। अपने पास घोडे रखे और रथको वे जोते जावें और उनको उत्तम रीतिसे चलावें। वीरता प्राप्त करो और अन्योंकी रक्षा करो। अपने अनुयायियोंकी सहायता करो।

[१६९] (ऋ० १।१८०।१-१०) त्रिष्टुप्, ६ अनुष्टुप्।

१६९ वसू॑ रुद्रा पु॑रुमन्तू॑ वृधन्ता॑ दशस्यतं॑ नो वृषणाव॒भिष्टौ॑।
दस्रा॑ ह॒ यद् रेक्ण॑ औच॒थ्यो वां॒ प्र यत् स॒स्राथे॒ अक॑वा-
भिरू॒ती ॥१॥

१६९ वसू॒ इति॑। रु॒द्रा। पु॒रु॒मन्तू॒ इति॑ पु॒रु॒ऽमन्तू॑। वृ॒धन्ता॑।
द॒श॒स्यत॑म्। नः॒। वृ॒ष॒णौ॒। अ॒भिष्टौ॑।
दस्रा॑। ह॒। यत्। रेक्ण॑ः। औच॒थ्यः। वा॒म्।
प्र। यत्। स॒स्राथे॒ इति॑। अक॑वाभिः। ऊ॒ती ॥१॥

१६९ अन्वयः- वृषणौ दस्रा! वसू, रुद्रा, पुरुमन्तू वृधन्ता अभिष्टौ नः दशस्यतं, यत् औचथ्यः वां रेक्णः, यत् अकवाभिः ऊती प्रसस्राथे ह ॥१॥

१६९ अर्थ- हे (वृषणौ दस्रा) बलवान् शत्रुविनाशक अश्विदेवो! (वसू रुद्रा) तुम दोनों बसाने वाले, शत्रुओंको रुलानेहारे, (पुरुमन्तू वृधन्ता) बहुत ज्ञान वाले, बढते हुए और (अभिष्टौ) वाञ्छनीय दान (नः दशस्यतं) हमें देदो, (यत्) क्योंकि (औचथ्यः रेक्णः वां) उचथ्यका पुत्र धनके लिए तुम दोनोंसे जब प्रार्थना करता है, (यत्) तब (अकवाभिः ऊती) अनिन्दनीय संरक्षणकी आयोजनाओंके साथ (प्र सस्राथे ह) तुम दोनों दौडते हुए आते हो।

१६९ भावार्थ- अश्विदेव बलवान्, शत्रुका नाश करनेवाले, सबको यथा-योग्य बसानेवाले, दुष्टोंको रुलानेवाले, ज्ञानी, और बडे हैं। वे हमें यथेष्ट दान देदें। उचथ्यके पुत्र दीर्घतमाने जब धनके लिये उनसे प्रार्थना की तब वे दौडते हुए आये थे।

१६९ मानवधर्म- बलिष्ठ, शूर, उदार, ज्ञानी महान बनो। अनुयायियोंकी यथेष्ट सहायता करो, जो कोई सहायता मांगे उसकी उचित सहायता करो।

[१७०]

१७० को वां दाशत् सुमतयें चिदस्यै वसू यद् धेथे नमसा पदे गोः । जिगृतमस्मे रेवतीः पुरंधीः कामप्रेणेव मनसा चरन्ता ॥२॥

१७० कः । वाम् । दाशत् । सुऽमतये । चित् । अस्यै । वसू इति । यत् । धेथे इति । नमसा । पदे । गोः । जिगृतम् । अस्मे इति । रेवतीः । पुरम्ऽधीः । कामप्रेणऽइव । मनसा । चरन्ता ॥२॥

१७० अन्वयः-हे वसू ! यत् गोःपदे नमसा, धेथे, अस्यै वां सुमतये चित् कः दाशत्? कामप्रेण इव मनसा चरन्ता अस्मे रेवतीः पुरंधीः जिगृतं ॥२॥

१७० अर्थ-हे (वसू) बसानेहारे अश्विदेवो (यत्) चूँकि (गोःपदे) इस भूमिपर (नमसा) नमस्कार करनेपर (धेथे) तुम दोनों दान देते हो, (अस्यै वां सुमतये चित्) इस तुम्हारी अच्छी बुद्धिको प्रसन्न करनेके लिए (कः दाशत्) कौन और क्या देनेमें समर्थ होगा ? (कामप्रेण इव मनसा चरन्ता) इच्छा पूर्ण करनेकी अभिलाषा मनमें रख कर संचार करनेवाले तुम दोनों (अस्मे) हमें (रेवतीः पुरंधीः) धनके साथ गौवें (जिगृतं) दे दो।

१७० भावार्थ—हे सबको ठीक तरह बसाने वाले अश्विदेवो ! इस भूमिपर जो तुम्हें नमन करता है उसको तुम दान देते हो, ऐसी तुम्हारी उत्तम बुद्धि है। इस तुम्हारी सुबुद्धिको और अधिक प्रसन्न करने के लिये भला कौन और अधिक क्या कर सकता है ? तुम तो सबकी इच्छा पूर्ण करनेके लिए ही सर्वत्र संचार करते हो, इस लिए हमें धन के साथ पोषक दुधारू गौवें देदो।

१७० मानवधर्म-अनुयायियोंको सहायता पहुंचाओ, सबकी सहायता करनेकी सुबुद्धि अपने मनमें रखो। सर्वत्र संचार करके जो जिसको सहायता चाहिए वह उसे देदो। धन और गौवें देदो।

१७० टिप्पणी-गोः पदं =भूमि, वेदी, जहां गौवें संचार करती है वह स्थान पुरंधिः-बहुत पोषण करने वाली दुधारु गौ, स्त्री, विदुषी स्त्री।

[१७१]

१७१ युक्तो ह यद् वां तौग्र्याय पेरुर्वि मध्ये अर्णसो धायि पज्रः। उप वामवः शरणं गमेयं शूरो नाज्म पतयद्भिरेवैः॥३

१७१ युक्तः । ह । यत् । वाम् । तौग्र्याय । पेरुः ।
वि । मध्ये । अर्णसः । धायि । पज्रः ।
उप । वाम् । अवः । शरणम् । गमेयम् ।
शूरः । न । अज्म । पतयत्ऽभिः । एवैः ॥३॥

१७१ अन्वयः—वां पेरुः यत् तौग्र्याय युक्तः ह, अर्णसः मध्ये पज्रः वि धायि; पतयद्भिः एवैः शूरः अज्म न, वां उप अवः शरणं गमेयम् ॥३॥

१७१ अर्थ- (वां पेरुः) तुम दोनोंका वह पार ले जानेवाला रथ (यत्) जब (तौग्र्याय युक्तः ह) तुग्रके पुत्रको बचानेके लिए तैयार होचुका तब उसे (अर्णसः मध्ये) समुद्रके मध्य (पज्रः वि धायि) बलसे तुमने रखा, (पतयद्भिः एवैः) वेगपूर्वक जाने वाले गति साधनोंसे (शूरः अज्म न) वीर पुरुष जैसे युद्धमें प्रवेश करता है उसी प्रकार, (वां उप) तुम दोनोंके समीप (अवः शरणं गमेयं) संरक्षण तथा आश्रयके लिए मैं भी जाऊं।

१७१ भावार्थ—तुम्हारा रथ संकटोंसे बचानेवाला है। तुग्रके पुत्र भुज्युको बचानेके लिए तुमने उस रथको समुद्रमें वेगवान गतिसाधनोंसे, शूर जैसा युद्धमें जाता है, वैसे चलाया था। अब मैं भी तुम्हारे पास अपनी सुरक्षाके लिए आता हूं।

१७१ मानवधर्म—संकटोंसे अपने अनुयायियोंको बचाओ। समुद्रमें भी जाकर उनको बचाओ।

१७१ टिप्पणी-तौग्र्यः= तुग्रः ५७; ७१, ७९—८१; ११५ ८० पेरुः= पार करने वाला।

[१७२]

१७२ उपस्तुतिरौचथ्यमुरुष्येन्मा मामिमे पतत्रिणी वि दुग्धाम्। मा मामेधो दशतयश्चितो धाक् प्र यद् वां बद्धस्त्मनि खादति क्षाम् ॥४॥

१७२ उपऽस्तुतिः । औचथ्यम् । उरुष्येत् ।
मा । माम् । इमे इति । पतत्रिणी इति । वि । दुग्धाम् ।
मा । माम् । एधः । दशऽतयः । चितः । धाक् ।
प्र । यत् । वाम् । बद्धः । त्मनि । खादति । क्षाम् ॥४॥

१७२ अन्वयः-औचथ्यं उपस्तुतिः उरुष्येत्, इमे पतत्रिणी मां मा वि दुग्धां, दशतयः चितः एधः मां मा धाक्, यत् वां बद्धः त्मनि क्षां खादति ॥४॥

१७२ अर्थ- (औचथ्यं) उचथ्यके पुत्रको अर्थात् मुझको (उपस्तुतिः उरुष्येत्) तुम दोनोंके समीप जाकर की स्तुति सुरक्षित रखे, (इमें पतत्रिणी) ये सूर्यसे बने दिन तथा रात (मां) मुझको (मा वि दुग्धां) निस्सार न बना डाले, (दशतय. चितः एधः) दस गुनी समिधाएँ डालकर प्रदीप्त किया हुआ यह अग्नि (मां मा धाक्) मुझे न जला डाले. (यत्) जिसने (वां बद्धः) तुम दोनोंके भक्तको बँधा था (त्मनि क्षां खादति) वही अब भूमिपर धूल खाता पड़ा है ।

१७२ भावार्थ-उचथ्यका पुत्र दीर्घतमा कहता है कि—हे अश्विदेवो ! तुम्हारी स्तुति मेरी रक्षा करे, आकाशमें पक्षीके समान आनेवाले सूर्यसे निर्माण हुए दिन रात मुझे निःसार न बनावें, दसगुनी लकडियाँ डाल कर प्रदीप्त हुआ यह अग्नि मुझे न जला दे । जिसने तुम्हारे इस भक्तको, मुझ उचथ्यको, बांध कर जलमें फेंक दिया था, वही अब यहां भूमिपर पड़ा धूल खाता है, यह आपके सामर्थ्यका प्रभाव है ।

१७५ मानवधर्म- ईश्वरके भक्तको ईश्वर सुरक्षित रखता है, उसको अग्निसे या जलसे भी बाधा नहीं पहुंचती । जो उसे सताता है वही दुःख भोगता है ।

[१७३]

१७३ न मा गरन् नद्यो मातृतमा दासा यदीं सुसमुब्धमवाधुः ।
शिरो यदस्य त्रैतनो वितक्षत् स्वयं दास उरो अंसावपि ग्ध ॥५॥

१७३ न । मा । गारन् । नद्यः । मातृऽतमाः ।
दासाः । यत् । ईम् । सुऽसमुब्धम् । अवऽअधुः ।
शिरः । यत् । अस्य । त्रैतनः । विऽतक्षत् ।
स्वयम् । दासः । उरः । अंसौ । अपि । ग्धेति ग्ध ॥५॥

१७३ अन्वयः—यत् ईं सुसमुब्धं दासाः अव अधुः मातृतमा नद्यः मा न गारन्। यत् अस्य शिरः त्रैतनः दासः स्वयं वितक्षत्, उरः अंसौ अपि ग्ध ॥५॥

१७३ अर्थ—(यत् ईं) जब इस मुझ उचथ्य पुत्र दीर्घतमाको (सुसमुब्धं) भली भाँति जकडकर और बांध कर (दासाः अव अधुः) दासोंने नीचे मुख करके फेंक दिया तबभी (मातृ तमाः) मातृतुल्य उन नदियोंने (मा) मुझे (न गारन्) नहीं डुबोया (यत् अस्य शिरः) जब इसका मेरा सर (त्रैतनः दासः) त्रैतन नामक दास (स्वयं वि तक्षत्) स्वयं काटने लगा और (उरः अंसौ अपि ग्ध) छाती तथा कंधोंको तोडने लगा। तबभी आपकी कृपासे बच गया।

१७३ भावार्थ— उचथ्य पुत्र दीर्घतमाको दासोंने बांधकर नदीमें फेंक दिया और त्रैतन नामक दासने तो उसका सिर छाती और कंधे काटनेका यत्न किया, (पर ऐसा हुआ कि ऋषि तो बचा और दासकेही अवयव कटगये! यह अश्विदेवोंकीही कृपा है।)

१७३ मानवधर्म— दूसरेको नदीमें डुबा देना, उसका सिर तथा कंधोंको काटना आदि करनेका परिणाम यही हुआ कि अपकार कर्ताका ही नाश हुआ। दूसरेका नाश करनेके लिये यत्न किया तो अपनाही नाश होता है।

१७३ टिप्पणी— उचथ्य पुत्र दीर्घतमा बडा वृद्ध और अन्धा था। असुरोंने उसको अग्निमें डाल दिया, पानीमें डुबाया, सिर तथा कंधोंको काटनेका यत्न किया, पर उसका नाश नहीं हुआ, असुरही परास्त हुए, यह आत्म शक्तिका प्रभाव है। इस कथाके साथ प्रल्हादकी कथाकी तुलना करना योग्य है।

[१७४]

१७४ दीर्घतमा मामतेयो जुजुर्वान् दशमे युगे ।
अपामर्थं यतीनां ब्रह्मा भवति सारथिः ॥६॥

१७४ दीर्घऽतमाः । मामतेयः । जुजुर्वान् । दशमे । युगे ।
अपाम् । अर्थम् । यतीनाम् ।
ब्रह्मा । भवति । सारथिः ॥६॥

१७४ अन्वयः-मामतेयः दीर्घतमाः दशमे युगे जुजुर्वान्, यतीनां अपां, अर्थं ब्रह्मा सारथिः भवति ॥६॥

१७४ अर्थ-(मामतेयः दीर्घतमाः) ममताका पुत्र दीर्घतमा नामक ऋषि (दशमे युगे) दसवे युगमें (जुजुर्वान्) वृद्ध होनेलगा, (यतीनां अपां अर्थं) संयमसे किये जानेवाले कर्मोंसे प्राप्तव्य अर्थके लिए वह (ब्रह्मा सारथिः भवति ब्रह्मा ज्ञानी पुरुष बनकर सबको चलानेवाला सारथि बनता है ।

१७४ भावार्थ—ममताका पुत्र [उचथ्यका पुत्र] दीर्घ तमा ऋषि दशम युगमें [अर्थात् १११ वे वर्षके अनंतर] वृद्ध होने लगा । उसने जो संयम पूर्वक उत्तम कर्म किये थे, उनसे प्राप्त होने वाले धर्म-अर्थ-काम मोक्षरूपी पुरुषार्थको प्राप्त करके, वह ब्रह्मज्ञानी हुआ, सबका संचालन करनेवाला सारथी जैसाभी सुयोग्य संचालक वह बन गया ।

१७४ मानवधर्म- १२० वर्षोंकी पूर्ण आयुतक मनुष्य जीवित रहे, ११० वर्षोंके पश्चात् वृद्ध बने, इस तरह अपना जीवन व्यतीत करे, अकालमें अपमृत्युसे न मरे संयम पूर्वक सब कर्म करे, उनके फल प्राप्त करे, ज्ञानी बने और सारथीके समान सबको उत्तम रीतिसे चलावे । अर्थात् स्वयं समर्थ बने और दूसरोंका मार्ग दर्शक बने ।

१७४ टिप्पणी- युग= (ज्योतिषमें १२ वर्षकी अवधि) १२ की संख्या दशमे युगे = १११ से १२० वर्षपर्यंतकी आयु । ८ वर्ष तक बाल्य, १६ वर्ष तक कुमार, ७० वर्ष तक तरुण, १०० वे वर्षतक परिहाणी, ११० वे वर्षतक वृद्ध और १११ से १२० तक जीर्ण पश्चात् मृत्युका समय। वैदिक प्रमाणोंके अनुसार यह सर्व साधारण आयुर्मर्यादा है । छांदोग्य उ० में २४+३६+४८=११२ वर्षोंकी आयु मानी है । इसमें ८ वर्षकी बाल्य आयुकी गणना करनेसे १२० वर्ष होते हैं । यतीनां अपां अर्थ-यती=संयम पूर्वक किया कर्म; अपः=कर्म, जलधारा जैसा जो सतत कर्म किया जाता है । यती' अपः=संयमपूर्वक सतत निरलस वृत्तिसे किया जाने वाला कर्म । अर्थः=उक्त कर्मोंसे प्राप्तव्य धर्म-अर्थ—काम.

गोद रूप अर्थ। ब्रह्मा=ब्रह्मज्ञानी, यज्ञका प्रमुख, मुख्य ज्ञानी। **सारथि**=रथका चलानेवाला, मानवोंको योग्य मार्गसे चलानेवाला नेता। मनुष्य १२० वर्षतक जीवित रहकर उत्तम कार्य करे, ज्ञानी और नेता बने।

[१७५-२१३] (ऋ० १।१८०।१—१०)
अगस्त्यो मैत्रावरुणिः। त्रिष्टुप्।

१७५ युवो रजांसि सुयमासो अश्वा रथो यद् वां पर्यर्णांसि
दीयत्। हिरण्यया वां पवयः प्रुषायन् मध्वः पिबन्ता उषसः
सचेथे ॥१॥

१७५ युवोः। रजांसि। सुऽयमासः। अश्वाः।
रथः। यत्। वाम्। परि। अर्णांसि। दीयत्।
हिरण्ययाः। वाम्। पवयः। प्रुषायन्।
मध्वः। पिबन्ता। उषसः। सचेथे इति ॥१॥

१७५ अन्वयः—यत् वां रथः अर्णांसि परि दीयत्, युवोः अश्वाः रजांसि सुयमासः, वां हिरण्ययाः पवयः प्रुषायन्, उषसः मध्वः पिबन्ता सचेथे ॥१॥

१७५ अर्थ— (यत् वां रथः) जब तुम दोनोंका रथ (अर्णांसि परि दीयत्) समुद्रमें या अन्तरिक्षमें संचार करने लगता है तब (युवोः अश्वाः) तुम दोनोंके घोडे (रजांसि सुयमासः) अन्तरिक्षमें नियमपूर्वक चलते हैं तब (वां हिरण्ययाः पवयः) तुम्हारे सुवर्णमय पहियोंके अरे (प्रुषायन्) गीले होने लगते हैं, (उषसः) उषःकालमें (मध्वः पिबन्ता सचेथे) मीठे सोमरसको पीते हुए तुम दोनों इकट्ठे हो कर जाते हो।

१७५ भावार्थ—हे अश्वि देवो! जब तुम्हारा रथ समुद्रसे अथवा अन्तरिक्षमें संचार करने लगता है, तब उस रथको चलानेवाले अश्व संज्ञक गति साधन भी अन्तरिक्षमें अपने नियमानुसार चलने लगते हैं। तुम्हारे रथके सुवर्ण जैसे चमकनेवाले पहिये भी अन्तरिक्षस्थ मेघमण्डलके जलसे भीगने लगते हैं तथा समुद्रमें जलसे भीगते हैं। तुम तो मधुरसोमरस पीकर उषःकालमें ही संचार करने लगते हो।

१७५ मानवधर्म—रथ ऐसे बनाओ जो भूमिपर, समुद्रमें तथा अन्तरिक्षमें वेगसे चलें। तुम उषःकालमें उठकर सोमरस पीकर संचार करने लग जाओ।

[१७६]

१७६ यु॒वमत्य॑स्या॒व॑ नक्षथो॒ यद् विप॑त्मनो॒ नर्य॑स्य॒ प्रय॑ज्योः ।
स्वसा॒ यद् वां॑ विश्वगूर्ती॒ भरा॑ति॒ वाजा॒येट्टे॑ मधुपावि॒षे च॑॥२

१७६ यु॒वम् । अत्य॑स्य । अव॑ । न॒क्ष॒थः ।
यत् । विऽप॑त्मनः । नर्य॑स्य । प्रऽय॑ज्योः ।
स्वसा॑ । यत् । वा॒म् । वि॒श्व॒गू॒र्ती॒ इति॑ विश्वऽगूर्ती । भरा॑ति ।
वाजा॑य । ईट्टे॑ । म॒धु॒ऽपौ॒ । इ॒षे । च॒ ॥२॥

१७६ अन्वयः—विश्व गूर्ती ! मधुपौ यत् युवं अत्यस्य विपत्मनः नर्यस्य प्रयज्योः अव नक्षथः यत् वां स्वसा भराति; वाजाय इषे च ईट्टे ॥२॥

१७६ अर्थ—हे (विश्व-गूर्ती) सबसे प्रशंसनीय । तथा (मधुपौ) मधु पीनेवाले अश्विदेवो । (युवं) तुम दोनों (यत् अत्यस्य) जब गतिशील (विपत्मनः) आकाशमें संचार करने वाले (नर्यस्य प्रयज्योः) मानवोंके हितकारी और अत्यन्त पूजनीय सूर्यके (अव नक्षथः) पूर्वही पहुंचते हो (यत् वां स्वसा) तब तुम्हारी बहन उषा (भराति) तुम्हारा पोषण करती है और (वाजाय इषे च) बल तथा अन्न पानेके लिए तुम्हाराही (ईट्टे) स्तवन मानव करता है ।

१७६ भावार्थ-सर्वदा प्रशंसनीय तथा मधुर सोमरसका पान करनेवाले अश्विदेवो ! सतत गतिमान, आकाश संचारी, मानवोंका हितकारी पूजायोग्य सूर्य आनेके पूर्वही तुम दोनों आते हो । तब उषा तुम्हारी सहायता करती है और यज्ञमें यजमान बल बढाने और अन्न मिलनेके लिए तुम दोनोंकी प्रशंसा करते हैं ।

१७६ मानवधर्म-सूर्य मनुष्योंका हित करता है। उसके आनेके पूर्व उठो, उषः कालमें तैयार रहो। अपना बल बढानेके लिए तथा पर्याप्त अन्न पानेके लिए यत्न वान् हो जाओ ।

[१७७]

१७७ यु॒वं पय॑ उ॒स्रिया॑याम॒धत्तं॑ प॒क्वमा॒माया॒मव॒ पूर्व्यं॒ गोः ।
अ॒न्तर्यद् व॒निनो॑ वामृतप्सू ह्वा॒रो न॒ शुचि॒र्यज॑ते ह॒विष्मा॑न्॥३

१७७ युवम् । पयः । उस्रियायाम् । अधत्तम् ।
पक्वम् । आमायाम् । अव । पूर्व्यम् । गोः ।
अन्तः । यत् । वनिनः । वाम् । ऋतप्सू इति ऋतऽप्सू ।
ह्वारः । न । शुचिः । यजते । हविष्मान् ॥३॥

१७७ अन्वयः- ऋतप्सू ! युवं उस्रियायां पयः अधत्तं, गोः आमायां पक्वं पूर्व्यं अव अधत्तम् । यत् वां वनिनः अन्तः ह्वारः न हविष्मान् शुचिः यजते ॥३॥

१७७ अर्थ- हे (ऋतप्सू) सत्यस्वरूप अश्वि देवो ! (युवं) तुम दोनोंने (उस्रियायां पयः) गौमें दूध (अधत्तं) रखा है तथा (गोः आमायां) अपरिपक्व गौमें भी (पक्वं पूर्व्यं अव) परिपक्व दूध पहिलेसेही रखा है । (यत् वां) तुम दोनोंके लिए, (वनिनः अन्तः) जंगलोंके भीतर (ह्वारः न) सांपके तुल्य अत्यन्त सावधान रहकर, (हविष्मान् शुचिः यजते) हविर्द्रव्य साथ रखने वाला पवित्र यजमान उस दूधका यज्ञ करता है ।

१७७ भावार्थ- सत्य पालक अश्विदेवो । तुमने गौमें दूध उत्पन्न किया है । अपक्व गायसे भी उत्तम परिपक्व दूध उत्पन्न किया है । इसी दूधसे, जंगलके अन्दर सांप जैसा सावधान रहता है, वैसा सावधान रहकर, शुचि होकर यजमान अश्विदेवोंके उद्देश्यसेही यज्ञ करता है । (अश्विदेवोंने निर्माण किया दूध उन्हींके लिए अर्पण करता है ।)

१७७ मानवधर्म- गौका दूध बढाना चाहिये । सावधान रहकर उस दूधका यज्ञ करना चाहिये ।

१७७ टिप्पणी- ऋत-प्सु=सत्यका पालन करनेवाले, वनिन्=जंगलका वृक्ष समिधा । ह्वारः=चोर, कपटी, सांप ।

[१७८]

१७८ युवं ह घर्मं मधुमन्तमत्रयेऽपो न क्षोदोऽवृणीतमेषे ।
तद् वां नरावश्विना पश्वइष्टी रथ्येव चक्रा प्रति यन्ति मध्वः ॥४॥

१७८ युवम् । ह । घर्मम् । मधुंऽमन्तम् । अत्रंये ।
अपः । न । क्षोदंः । अवृणीतम् । एषे ।
तत् । वाम् । नरा । अश्विना । पश्वंःऽइष्टिः ।
रथ्यांऽइव । चक्रा । प्रति । यन्ति । मध्वंः ॥४॥

१७८ अन्वयः-नरा अश्विना । एषे अत्रये युवं ह घर्मं मधुमन्तं अपः क्षोदः न अवृणीतं; तत् वां पश्व इष्टिः मध्वः रथ्या चक्रा इव प्रति यन्ति ।।४।।

१७८ अर्थ-हे (नरा) नेता अश्विदेवो ! (एषे अत्रये) सुख चाहनेवाले अत्रिके लिए (युवं ह) तुम दोनोंने निश्चय पूर्वक (घर्मं) गर्मीको (मधुमन्तं अवृणीतं) और मिठास युक्त कर दिया । गर्मीका निवारण करके शीत बनाया । (तत्) इसलिये (वां) तुम दोनोंके समीप (पश्व इष्टिः मध्वः) यज्ञ और मधुसंभार (रथ्या चक्रा इव) रथके पहियोंके समान (प्रति यन्ति) चले जाते हैं ।

१७८ भावार्थ-हे नेता अश्विदेवो ! अत्रि ऋषिको सुख देनेके लिए तुम दोनोंने गर्मीको जलके समान शीतल और मिठासके समान सुख कारक बना दिया । तब तुम्हारे लिये यह यज्ञ किया जाता है । (चक्रके समान वारंवार चलकर यज्ञ तुम्हारे पास आता है ।)

१७८ मानवधर्म-अनुयायियोंको सुख देनेके लिये नेता यत्न करे, और अनुयायी भी नेताका हित करें ।

१७८ टिप्पणी- घर्मं = गर्मी, उष्णता । पश्वःइष्टि = पशुके दूध आदिसे होनेवाला यज्ञ ।

[१७९]

१७९ आ वां दानाय ववृतीय दस्रा गोरोहेण तौग्र्यो न जिव्रिः।
अपः क्षोणी सचते माहिना वां जूर्णो वामक्षुरंहसो यजत्रा॥५

१७९ आ । वाम् । दानाय । ववृतीय । दस्रा ।
गोः । ओहेन । तौग्र्यः । न । जिव्रिः ।
अपः । क्षोणी इति । सचते । माहिना । वाम् ।
जूर्णः । वाम् । अक्षुः । अंहसः । यजत्रा ॥५॥

१७९ अन्वयः-दस्रा ! यजत्रा ! जिग्रिः तौग्र्यः न गोः ओहेन वां दानाय आ ववृतीय । वां महिना अपः क्षोणी सचते, जूर्णः, वां अंहसः अक्षुः ॥५॥

१७९ अर्थ-हे (दस्रा) शत्रुविनाशक तथा (यजत्रा) पूजनीय अश्विदेवो ! (जिग्रिः) विजयका इच्छुक (तौग्र्यः न) तुग्रका पुत्रजैसे (गोः ओहेन) वाणी से प्रशंसा द्वारा (वां दानाय) तुम दोनोंसे दान लेलेनेके लिए प्रवृत्त हुआ वैसा (आ ववृतीय) मैं तुम्हारी ओरसे दान लेनेके लिए प्रवृत्त होजाऊं; (वां महिना) तुम दोनोंकी महिमासे जो (अपः क्षोणी सचते) अन्तरिक्ष और भूलोक व्याप्त हुए हैं, मैं इसकारण (जूर्णः) वृद्ध होता हुआ भी (वां) तुम दोनोंकी कृपासे (अंहसः) जरारूपी कष्टसे मुक्त हो (अक्षुः) दीर्घ-जीवी बनूं । इसलिये तुम्हारी प्रार्थना करता हूं ।

१७९ भावार्थ-हे शत्रुविनाशक पूजायोग्य अश्विदेवो! जिस तरह विजयकी इच्छा करनेवाला तुग्रका पुत्र भुज्यु तुम्हारी स्तुति करनेसे मृत्युसे बच गया, ऐसी तुम्हारी महिमा तो सब धावा पृथिवीमें प्रसिद्ध है । इसलिए अति वृद्ध हुआ मैं तुम्हारी कृपासे बुढापेको दूर करके दीर्घायु बनाना चाहता हूं ।

१७९ मानवधर्म — विजय की इच्छा करनेवालोंकी सहायता करो । चिकित्सा द्वारा वृद्धोंको भी तरुण बना दो । ऐसे प्रयत्न करो कि संपूर्ण विश्वमें महायश फैल जाय ।

१७९ टिप्पणी - जिग्रि := शूर, वीर्य, विजयका इच्छुक । तौग्र्यः = भुज्युः देखो ५७,७०,७१-८१,११५ इ०

[१८०]

१८० नि यद् युवेथे नियुतः सुदानू उप स्वधाभिः सृजथः पुरंधिम् । प्रेषद् वेषद् वातो न सूरिरा महे ददे सुव्रतो न वाजम् ॥६॥

१८० नि । यत् । युवेथे इति । निऽयुतः । सुदानू इति सुऽदानू । उप । स्वधाभिः । सृजथः । पुरम्ऽधिम् । प्रेषत् । वेषत् । वातः । न । सूरिः । आ । महे । ददे । सुऽव्रतः । न । वाजम् ॥६॥

१८० अन्वयः-सुदानू ! यत् नियुतः नि युवेथे पुरन्धिं स्वधाभिः स सृजथः, सुव्रतः न, सूरिः महे वाजं आ दद्दे, प्रेषत्, वातः न वेषत् ॥६॥

१८० अर्थ-हे (सुदानू) अच्छे दान देनेवाले अश्वि देवो! (यत्) जब (नियुत नि युवेथे) घोडोंको रथमें जोतते हो, तब (पुरन्धिं) बहुतोंका धारण कर वाली बुद्धिको (स्वधाभिः सं सृजथः) अन्नोंसे संयुक्त करडालते हो; (सुव्रतः न) अच्छे कार्य करने हारोंके समान (सूरिः) विद्वानपुरुष (महे) महत्वके लि (वाजं आ ददे) अन्नका ग्रहण करता है, (प्रेषत्) तुम्हें तृप्त करता है औ (वातः न) वायुके समान (वेषत्) तुम्हें शीघ्र प्राप्त हो जाता है।

१८० भावार्थ- अच्छा दान देने वाले हे अश्विदेवो! तुम दोनों जब घोडोंको अपने रथमें जोतते हो तब बहुतोंका पालन पोषण करनेकी बुद्धि विपुल अन्नोंके साथ अपने भक्तोंमें उत्पन्न करते हो। सत्कर्म करनेवाला विद्वान इस महत्व पूर्ण कार्यकेलिए जब अन्न प्राप्त करता है, तब उसके दानसे वह तुम्हें तृप्त करता है और वायुके गतिसे वह तुम्हें प्राप्त होता है।

१८० मानवधर्म — नेता स्वयं बहुत दान करे, और अपने अनुयायियोंके पर्याप्त अन्न देकर उनमें बहुतोंका पालन पोषण करनेकी उदार बुद्धि उत्पन्न करे। विद्वान लोग इस तरह बहुतोंके पालन पोषण करनेके शुभ कर्म करें और अपनी उदारतासे देवत्वको प्राप्त हों।

१८० टिप्पणी — पुरं-धिः= बहुतोंका पोषण करनेकी बुद्धि, नगरकी विदुषी स्त्री।

[१८१]

१८१ व॒यं चि॒द्धि वां॑ जरि॒तारः॑ स॒त्या वि॑प॒न्याम॑हे॒ वि प॒णिर्हि॒ता- वा॑न्। अधा॑ चि॒द्धि ष्मा॑श्विनावनिन्द्या पा॒थो हि ष्मा॑ वृषणा॒वन्ति॑देवम् ॥७॥

१८१ व॒यम्। चि॒त्। हि। वा॒म्। ज॒रि॒तारः॑। स॒त्याः। वि॒प॒न्याम॑हे। वि। प॒णिः। हि॒तऽवा॑न्। अध॑। चि॒त्। हि। स्म॒। अ॒श्वि॒नौ॒। अ॒नि॒न्द्या॒। पा॒थः। हि। स्म॒। वृ॒ष॒णौ॒। अन्ति॑ऽदेवम् ॥७॥

१८१ अन्वयः वृषणौ अनिन्द्या अश्विनौ ! वयं सत्या वां चित् हि जरितारः विपन्यामहे, हितवान् पणिः वि, अधा चित् अन्तिदेवं पाथः हि स्म ॥७।

१८१ अर्थ-हे (वृषणौ) बलवान् (अनेन्द्या) अनिन्दनीय अश्विदेवो ! (वयं) हम (सत्याः) सच्चे होकर (वां चित् हि जरितारः) तुम दोनोंकीही प्रशंसा करनेकी इच्छासे (वि पन्यामहे) बहुत स्तुति करते हैं परन्तु (हित-वान् पणिः वि) धनसंग्रह करनेवाला व्यापारी यज्ञसे विरुद्ध हो रहा है । (अधा चित्) अब आप तो (अन्ति देवं) देवताके देने योग्य सोम (पाथः हि स्म) कोही तुम दोनों पीते हो ।

१८१ भावार्थ-हे बलवान् अनिन्दनीय अश्विदेवो ! हम तुम्हारे सत्य भक्त हैं अतः तुम्हारे गुणोंका वर्णन करते हैं । परन्तु यह पूंजीपति धनका केवल संग्रह करता है, परन्तु यज्ञ करताही नहीं ! आप तो यज्ञ कर्ताके पास जाते हैं और देवोंके ही पीने योग्य सोमरसका पान करते हैं । (अर्थात् उस अयाजक धनाढ्यके पास तुम जातेभी नहीं !

१८१ मानवधर्म-बलवान् बनो, अनिन्दनीय कर्म करते रहो । ऐसे कार्य करो कि जिससे तुम्हारी सब प्रशंसा करें । जो यज्ञ नहीं करता, उस धनाढ्य के धनका कोई उपयोग नहीं है अतः जो धन अपने पास हो उसको यज्ञमें समर्पण करना चाहिये ।

१८१ टिप्पणी-हित-वान्=धनका धरोहर रखनेवाला, स्थान स्थानपर रखनेवाला । पणि=व्यापारी, वैश्य, लेनदेन करने वाला ।

[१८२]

१८२ युवां चिद्धि ष्माश्विनावनु द्यून् विरुद्रस्य प्रस्रवणस्य सातौ।
अगस्त्यो नरां नृषु प्रशस्तः काराधुनीव चितयत् सहस्रैः ॥८॥

१८२ युवाम् । चित् । हि । स्म । अश्विनौ । अनु । द्यून् ।
विऽरुद्रस्य । प्रऽस्रवणस्य । सातौ ।
अगस्त्यः । नराम् । नृषु । प्रऽशस्तः ।
काराधुनीऽइव । चितयत् । सहस्रैः ॥८॥

१८२ अन्वयः-अश्विनौ ! नृषु नरां प्रशस्तः अगस्त्यः अनु द्यून् विरुद्रस्य प्रस्रवणस्य सातौ युवां चित् हि काराधुनी इव सहस्रैः चितयत् ॥८॥

१८२ अर्थ-हे अश्विदेवो ! (नृषु नरां) मानवों और नेताओंमें (प्रशस्तः अगस्त्यः) प्रशंसनीय अगस्त्य ऋषि (अनु द्यून्) प्रति दिन (वि-रुद्रस्य प्रस्रवणस्य

स्रवणस्य सार्ता) विशेष गर्जना करनेवाले जलप्रवाहको पानेके लिए (युवां चित् हि) तुम दोनोंकी ही (काराधुनीइव) बड़ा ध्वनि करनेवाले वाद्यके समान (सहस्रैः चितयत्) सहस्रों श्लोकोंसे स्तुति करता है।

१८२ भावार्थ—मनुष्यों और नेताओंमें सुप्रसिद्ध अगस्त्य ऋषि प्रति दिन विशेष वेगवान् जल प्रवाहको प्राप्त करनेके लिए, बांसुरी कारीगरीसे बजाने वालेके समान, कोमल ध्वनिसे सहस्रों आलापोंसे तुम्हारी ही स्तुति गाता है।

१८२ मानवधर्म-सब मानवों और नेताओंमें प्रसिद्ध नेता बनो। ऐसा मधुर गायन करो कि जिसको सुनकर सब प्रसन्न हो जायें। जल प्रवाहोंको काममें लाओ।

१८२ टिप्पणी-वि-रुद्रः प्रस्रवणः=विशेष शब्द करने वाला वेगवान् जलका झरना, स्रोत। काराधुनी=कारा=बांसुरी 'धुनी=ध्वनी, काराधुनी=बांसुरी का ध्वनि।

[१८३]

१८३ प्र यद्व॒हेथे॑ महि॒ना रथ॑स्य॒ प्र स्प॑न्द्रा या॒थो॒ मनु॑षो॒ न होता॑। ध॒त्तं सू॒रिभ्य॑ उ॒त वा॒ स्वश्व्यं॒ नास॑त्या रयि॒षाचः॑ स्याम ॥९॥

१८३ प्र। यत्। वहेथे॒ इति॑। म॒हि॒ना। रथ॑स्य। प्र। स्प॒न्द्रा॒। या॒थः॒। मनु॑षः। न। होता॑। ध॒त्तम्। सू॒रिऽभ्यः॑। उ॒त। वा॒। सु॒ऽअ॒श्व्य॑म्। नास॑त्या। र॒यि॒ऽसाचः॑। स्या॒म ॥९॥

१८३ अन्वयः-नासत्या! स्पन्द्रा! यत् रथस्य महिना प्र वहेथे, मनुषः होता न प्रयाथः, सूरिभ्यः वा सु अश्व्यं धत्तं उत रयि-साचः स्याम ॥९॥

१८३ अर्थ-हे (नासत्या! स्पन्द्रा) सत्यपालक और गतिशील अश्विदेवो! (यत्) जो (रथस्य महिना) रथकी महनीयताके कारण (प्र वहेथे) तुम दोनों उत्कृष्ट ढंगसे आगे बढ़ते हो, (मनुषः होता न) मानवोंमें हवनकर्ता के समान तुम दोनों (प्रयाथः) यात्रा करते हो ऐसे तुम (सूरिभ्यः वा) विद्वानोंकोभी (सु अश्व्यं धत्तं) सुन्दर घोड़ोंसे पूर्ण धन देदो (उत रयि-साचः स्याम) और हम भी धनसे युक्त हों।

१८३ भावार्थ— हे सत्यके पालनकर्ता और सर्वत्र संचार करनेवाले अश्विदेवो ! तुम दोनों अपने उत्तम रथके वेगसे यज्ञकर्ताके पास मनुष्य-लोकमें गमन करते हो, अतः जो उत्तम विद्वान् है, उसको उत्तम घोडे और धन दो और हमें भी धन दो ।

१८३ मानवधर्म— सत्यका पालन करो, अपने देशमें सर्वत्र संचार करके देख लो कि कहां क्या है । अपने उत्तम रथमें बैठकर सत्कर्मकर्ताके पास जाओ और उसका उत्साह बढानेके लिये उसे घोडे और धन दो ।

[१८४]

१८४ तं वां रथं वयमद्या हुवेम स्तोमैरश्विना सुविताय नव्यम् ।
अरिष्टनेमिं परि द्यामियानं विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥१०

१८४ तम् । वाम् । रथम् । वयम् । अद्य । हुवेम ।
स्तोमैः । अश्विना । सुवितायं । नव्यम् ।
अरिष्टऽनेमिम् । परि । द्याम् । इयानम् ।
विद्यामं । इषम् । वृजनम् । जीरऽदानुम् ॥१०॥

१८४ अन्वयः— अश्विना ! अद्य सुविताय वां तं नव्यं, द्यां परि इयानं, अरिष्टनेमिं रथं स्तोमैः वयं हुवेम, जीरदानुं इषं वृजनं विद्याम ॥ १० ॥

१८४ अर्थ— हे अश्विनो ! (अद्य सुविताय) आज सुविधाके लिये (वां तं नव्यं) तुम दोनोंके उस नये, [द्यां परि इयानं] द्युलोकके चारों ओर जानेवाले [अरिष्टनेमिं रथं] न बिगडनेवाली नेमिसे युक्त रथको [स्तोमैः] स्तोत्रोंकी सहायतासे [वयं हुवेम] हम इधर बुलाते हैं, [जीर-दानुं] शीघ्र दानको [इषं वृजनं] अन्न तथा बलको [विद्याम] हम प्राप्त करें ।

१८४ भावार्थ— अश्विदेवो ! आजही हमें तुमको प्राप्ति हो, इसलिये तुम्हारी प्रार्थना करते हैं, कि तुम्हारा कभी न बिगडनेवाला रथ हमारे पास आ जाय और हमें अन्न, बल तथा धन प्राप्त हो ।

[१८५] (ऋ० १।१८१।१-९)

१८५ कदु प्रेष्ठाविषां रयीणामध्वर्यन्ता यदुन्निनीथो अपाम् । अयं
वां यज्ञो अकृत प्रशस्तिं वसुधिती अवितारा जनानाम् ॥ १

१८५ कत् । ॐ इति॑ । प्रेष्ठा॑ । इ॒षाम् । र॒यी॒णाम् ।
अ॒ध्व॒र्यन्ता॑ । यत् । उ॒त्ऽनि॒नी॒थः । अ॒पाम् ।
अ॒यम् । वा॒म् । य॒ज्ञः । अ॒कृ॒त॒ । प्रऽश॑स्तिम् ।
वसु॑धिती॒ इति॒ वसु॑ऽधिती । अवि॑तारा । ज॒ना॒नाम् ॥१॥

१८५ अन्वयः— जनानां अवितारा ! वसुधिती ! अयं यज्ञः वां प्रशस्तिं अकृत, अध्वर्यन्ता प्रेष्ठौ ! यत् अपां रयीणां इषां उन्निनीथः कत् उ ॥ १ ॥

१८५ अर्थ— हे [जनानां अवितारा] जनोंके रक्षक तथा [वसुधिती] धनोंको देनेहारे अश्विदेवो ! [अयं यज्ञः] यह यज्ञ [वां प्रशस्तिं अकृत] तुम दोनोंकी सराहना कर चुका है; [अध्वर्यन्ता प्रेष्ठौ] हे अध्वरमें जानेहारे अत्यन्त प्यारे अश्विदेवो ! [यत्] जो [अपां रयीणां इषां] जलोंको, धन संपदाओंको और अन्नोंको [उत् निनीथः] तुम दोनों ले चलते हो, [कत् उ] वह कार्य अब किस समय शुरू होनेवाला है ?

१८५ भावार्थ— हे जनोंके संरक्षक और उनको धन देनेहारे देवो ! यह यज्ञ हम तुम्हारे लियेही करते हैं। हे यज्ञमें जानेवाले और प्रेमसे उसकी पूर्णता करनेवाले देवो ! जो तुम जल, धन और अन्नका दान करते हो वह कार्य तुम कब करोगे ? [हम उससे लाभ प्राप्त करना चाहते हैं ।]

१८५ मानवधर्म— जनताका संरक्षण करो, धनका दान करो, यज्ञमें जाओ, यज्ञोंकी सहायता करो ।

[१८६]

१८६ आ वा॒मश्वा॑सः॒ शुच॑यः पय॒स्पा वात॑रंहसो दि॒व्यासो॒ अत्याः॑। म॒नो॒जुवो॒ वृष॑णो वी॒तपृ॑ष्ठा एह स्व॒राजो॑ अ॒श्विना॑ वहन्तु ॥२॥

१८६ आ । वा॒म् । अश्वा॑सः । शुच॑यः । प॒यः॒ऽपाः ।
वात॑ऽरंहसः । दि॒व्यासः॑ । अत्याः॑ ।
म॒नः॒ऽजुवः॑ । वृष॑णः । वी॒तऽपृ॑ष्ठाः ।
आ । इ॒ह । स्व॒ऽराजः॑ । अ॒श्विना॑ । व॒ह॒न्तु॒ ॥२॥

१८६ अन्वयः—हे अश्विना ! शुचयः दिव्यासः, अत्याः वात-रंहसः पयस्पाः मनोजुवः, वृषणः, वीतपृष्ठाः स्व-राजः अश्वासः वां इह आ वहन्तु । २ ॥

१८६ अर्थ— हे अश्विदेवों ! [शुचयः] विशुद्ध, [दिव्यासः,] दिव्य, श्रेष्ठ, [अरयाः] गमनशील, [वात–रंहसः] वायुके तुल्य वेगवाले [पयः-पाः] दूध पीनेवाले, [मनो-जुवः] मनके समान वेगयुक्त, [वृषणः] बलिष्ठ, [वीत-पृष्ठाः] चमकीले पीठवाले [स्व–राजः अश्वासः] और स्वयं तेजस्वी घोडे [वां] तुम दोनोंको [इह आ वहन्तु] इधर ले आयँ ।

१८६ भावार्थ— उक्त प्रकारके घोडे अश्विदेवोंके होते हैं। वे उनको हमारे यज्ञमें ले आवें ।

[१८७]

१८७ आ वां रथोऽवनिर्न प्रवत्वान्त्सृप्रवन्धुरः सुवितायं गम्याः।
वृष्णः स्थातारा मनसो जवीयानहंपूर्वो यजतो धिष्ण्या
यः ॥३॥

१८७ आ । वाम् । रथः । अवनिः । न । प्रवत्वान् ।
सृप्रऽवन्धुरः । सुवितायं । गम्याः ।
वृष्णः । स्थातारा । मनसः । जवीयान् ।
अहम्ऽपूर्वः । यजतः । धिष्ण्या । यः ॥३॥

१८७ अन्वयः— धिष्ण्या ! स्थातारा ! वां यः वृष्णः मनसः जवीयान्, यजतः, सृप्रवन्धुरः, अवनिः न प्रवत्वान् अहं-पूर्वः रथः, सुविताय आ गम्याः॥३॥

१८७ अर्थ– हे [धिष्ण्या !] ऊँचे स्थानपर रहनेयोग्य [स्थातारा] अपने पदपर स्थिर रहनेवाले अश्विदेवों ! [वां यः] तुम दोनोंका जो [वृष्णः मनसः जवीयान्] प्रबल और मनसे भी अधिक वेगवान् [यजतः] पूजनीय, (सृप्रवन्धुरः) सुन्दर अग्रभागवाला, (अवनिः न) भूमिके तुल्य [प्रवत्वान्] अति विस्तृत, (अहं पूर्वः रथः) अहमहमिकासे आगे बढनेवाला रथ है, वह (सुविताय आ गम्याः) भलाईके लिए हमारे पास आ जाय ।

१८७ भावार्थ– अश्विदेवोंका उक्त प्रकारका रथ हमारे यज्ञके समीप आजाय ।

१८९ प्र । वाम् । निऽचेरुः । ककुहः । वशान् । अनु ।
पिशङ्गऽरूपः । सदनानि । गम्याः ।
हरी इति । अन्यस्य । पीपयन्त । वाजैः ।
मथा । रजांसि । अश्विना । वि । घोषैः ॥५॥

१८९ अन्वयः– अश्विना ! वां पिशङ्गरूपः निचेरुः वशान् ककुहः अनु सदनानि प्र गम्याः । अन्यस्य हरी मथा वाजैः घोषैः रजांसि वि पीपयन्त ॥५॥

१८९ अर्थ– हे अश्विदेवो ! (वां) तुम दोनोंमेंसे एकका (पिशङ्गरूपः) पीतवर्णवाला अर्थात् सुनहरा और (निचेरुः) सभी जगह जानेवाला रथ (वशान् ककुह अनु) वशीभूत दिशाओंमें स्थित (सदनानि प्र गम्याः) यज्ञस्थानोंमें चला जावे, (अन्यस्य हरी) दूसरेके घोडे (मथा) बिलोडनेसे उत्पन्न (वाजैः) अन्नोंसे तथा (घोषैः) घोषणाओंसे (रजांसि वि पीपयन्त) लोकोंको विशेष ढगसे पुष्ट करते हैं ।

१८९ भावार्थ– अश्विदेव दो हैं । उनमेंसे एकका रथ सुनहरा है जो दिशाउपदिशाओंके यज्ञस्थानोंमें जाता है । दूसरेके घोडे बिलोडनेसे उत्पन्न घृतादि अन्नोंको साथ लेकर सबको पुष्ट करते हुए चलते हैं ।

[१९०]

१९० प्र वां शरद्वान् वृषभो न निष्षाट् पूर्वीरिषश्चरति मध्व इष्णन् । एवैरन्यस्य पीपयन्त वाजैर्वेषन्तीरूर्ध्वा नद्यो न आगुः ॥६॥

१९० प्र । वाम् । शरत्ऽवान् । वृषभः । न । निष्षाट् ।
पूर्वीः । इषः । चरति । मध्वः । इष्णन् ।
एवैः । अन्यस्य । पीपयन्त । वाजैः ।
वेषन्तीः । ऊर्ध्वाः । नद्यः । नः । आ । अगुः ॥६॥

१९० अन्वय – वां शरद्वान् वृषभ न निष्षाट् मध्व इष्णन् पूर्वी इष प्र चरति, अन्यस्य एवैः वाजैः वेषन्ती ऊर्ध्वा, पीपयन्त नद्य न आ अगु ॥६॥

१९० अर्थ- (वां) तुम दोनोंमेंसे एक (शश्वान् वृषभः न) पुरातन, बलवान्, जैसा वीर (निष्षाट्) शत्रुदलको हटानेवाला है और (मध्वः इष्णन्) मीठे सोमको चाहता हुआ (पूर्वीः इषः प्रचरति) बहुतसी अन्न सामग्रियोंको साथ लेकर संचार करता है। (अन्यस्य) दूसरेके (एवैः) गमनशील (वाजैः) अन्नोंके साथ (वेपन्तीः) फैलती हुईं (ऊर्ध्वाः) ऊपरकी ओर बढनेवाली (नद्यः) नदियाँ सबको (पोपयन्त) पुष्ट करती हैं वे (नः आ अगुः) हमारे समीप आ जायँ।

१९० भावार्थ- अश्विदेवोंमेंसे एक पुरातन वीर शत्रुको परास्त करता है और मीठा अन्नरस अपने साथ लेकर सर्वत्र संचार करता है। दूसरा अन्नोंको बढानेवाली नदीयोंको वेगसे बहाता है। (एक अन्नमें मीठे रसकी उत्पत्ति करता है और दूसरा नदियोंको महापूरसे भरपूर कर देता है।)

[१९१]

१९१ असर्जि वां स्थविरा वेधसा गीर्बाळ्हे अश्विना त्रेधा क्षरन्ती। उपस्तुताववतं नाधमानं यामन्नयामञ्छृणुतं हवं मे ॥७॥

१९१ असर्जि। वाम्। स्थविरा। वेधसा। गीः। बाळ्हे। अश्विना। त्रेधा। क्षरन्ती। उपऽस्तुतौ। अवतम्। नाधमानम्। यामन्। अयामन्। शृणुतम्। हवम्। मे ॥७॥

१९१ अन्वयः- वेधसा अश्विना! वां स्थविरा गीः त्रेधा क्षरन्ती बाळ्हे असर्जि; मे हवं यामन् अयामन् शृणुतं, उपस्तुतौ नाधमानं अवतम् ॥ ७ ॥

१९१ अर्थ- हे (वेधसा) कार्यकर्ता अश्विदेवो! (वां) तुम दोनोंके लिए (स्थविरा गीः) प्राचीन वाणी-स्तुति-(त्रेधा क्षरन्ती) तीन प्रकारसे तुम्हें प्राप्त होती हुई (बाळ्हे असर्जि) बल बढानेके लिए उत्पन्न हुई है। (मे हवं) मेरी प्रार्थनाको (यामन् अयामन्) गमनके समय या गमन न करनेके समय तुम (शृणुतं) सुन लो। और (उपस्तुतौ) प्रशंसित होनेपर इस (नाधमानं अवत) भक्तकी रक्षा करो।

१९१ भावार्थ- हे रचनाकार्यमें कुशल अश्विदेवो! यह प्राचीनकालसे चली आयी स्तुति तीन प्रकारोंसे बल प्राप्त करनेके लिये तुम्हारे पास पहुंचती है। मेरी की हुई इस प्रार्थनाको तुम सुन लो और प्रसन्नचित्त होकर मेरी रक्षा करो।

१९१ टिप्पणी- स्थविरा = वृद्धा, नित्य, स्थायी, प्राचीन, पुरातन। स्थविरा गीः = प्राचीनकालसे चली आयी स्तुति। प्रार्थनाका गीत। यज्ञके वर्णनका स्तोत्र।

[१९२]

१९२ उत स्या वां रुशतो वप्ससो गीस्त्रिबर्हिषि सदसि पिन्वते नॄन्। वृषा वां मेघो वृषणा पीपाय गोर्न सेके मनुषो दशस्यन् ॥८॥

१९२ उत। स्या। वाम्। रुशतः। वप्ससः। गीः।
त्रिऽबर्हिषि। सदसि। पिन्वते। नॄन्।
वृषा। वाम्। मेघः। वृषणा। पीपाय।
गोः। न। सेके। मनुषः। दशस्यन् ॥८॥

१९२ अन्वयः- उत वां रुशतः वप्ससः स्या गीः नॄन् त्रिबर्हिषि सदसि पिन्वते; वृषणा! वां वृषा मेघः मनुषः दशस्यन् गोः सेके न पीपाय ॥ १८ ॥

१९२ अर्थ- (उत वां) और तुम दोनोंके (रुशतः वप्ससः) चमकवाले स्वरूपका वर्णन करनेवाली (स्या गीः) वह वाणी (नॄन्) मानवोंको (त्रिबर्हिषि सदसि) तीन कुशासनोंसे युक्त यज्ञस्थानमें (पिन्वते) पुष्ट करती है। हे (वृषणा) बलशाली अश्विदेवो! (वां वृषा मेघः) तुम दोनोंके लिये वृष्टि करनेवाला मेघ (मनुषः दशस्यन्) मानवोंको जल देता हुआ (गोः सेके न) गौके दूधके सेचन करनेके समानही (पीपाय) पोषण करता है।

१९२ भावार्थ- अश्विदेवोंका वर्णन करनेवाली यह स्तुति यज्ञस्थानमें मनुष्योंकी शक्ति बढाती है। तुम्हारी प्रेरणासे वृष्टि करनेवाला यह मेघ मनुष्योंके लिये जल देकर, गौ दूध देकर पुष्ट करनेके समान, पोषण करता है।

[१९३]

१९३ युवां पूषेवांश्विना पुरंधिरग्निमुषां न जंरते हुविष्मान् । हुवे यद्वां वरिवस्या गृणानो विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥१॥

१९३ युवाम् । पूषाऽइंव । अश्विना । पुरंम्ऽधिः ।
अग्निम् । उषाम् । न । जरते । हुविष्मान् ।
हुवे । यत् । वाम् । वरिवस्या । गृणानः ।
विद्याम । इषम् । वृजनम् । जीरऽदानुम् ॥१॥

१९३ अन्वयः- अश्विना ! पुरन्धि. पूषा इव हविष्मान् युवां उपां अग्निं न जरते, यत् वां वरिवस्या गृणानः हुवे जीरदानु वृजन इषं विद्याम ॥१॥

१९३ अर्थ- हे अश्विदेवो ! (पुरन्धिः पूषा इव) बहुतोंका धारण करनेवाला पूषा जिस प्रकार पोषण करता है वैसेही (हविष्मान्) हवि साथ रखनेवाला यजमान (युवां) तुम दोनोंको (उपां अग्निं न) उषा तथा अग्निके समान (जरते) स्तुति करता है, (यत् वां वरिवस्या) जो मैं तुम दोनोंकी सेवा करता हुआ (गृणानः हुवे) स्तुतिपूर्वक प्रार्थना करता हूँ, वह इसलिए कि हम लोग (जीरदानुं वृजन इषं) शीघ्र दानद्वारा बल तथा अन्नको (विद्याम) प्राप्त करें ।

१९३ भावार्थ- हे अश्विदेवो ! हविष्यान्न साथ लेकर यजमान यज्ञ करता हुआ तुम्हारी प्रार्थना करता है । इससे हमें अतिशीघ्र अन्न, बल और धन प्राप्त हो ।

[१९४] (ऋ. १।१८२।१-८) जगती; ६,८ त्रिष्टुप् ।

१९४ अभूदिदं वयुनमो षु भूषता रथो वृषण्वान् मदंता मनीषिणः । धियंजिन्वा धिष्ण्यां विश्पलांवसू दिवो नपांता सुकृते शुचिंव्रता ॥१॥

१९४ अभूत् । इदम् । वयुनंम् । ओ इति । सु । भूषत ।
रथः । वृषण्ऽवान् । मदंत । मनीषिणः ।
धियम्ऽजिन्वा । धिष्ण्यां । विश्पलांवसू इति ।
दिवः । नपांता । सुऽकृते । शुचिंऽव्रता ॥१॥

१९४ *अन्वयः*- मनीषिणः! इदं वपुनं अभूत, वृषण्वान् रथः, मदत, सु भूषत; शुचिव्रता, दिवः न-पाता, धिष्ण्या, विश्पलावसू सुकृते धियं जिन्वा॥१॥

१९४ अर्थ- हे (मनीषिणः) मननशील विद्वानो! (इदं वपुनं अभूत) यह ज्ञान हमें हुआ है कि अश्विदेवोंका (वृषण्वान् रथः) बलवान् रथ हमारे पास आ पहुंचा है, इसलिए (मदत) आनन्दित होओ (सु-भूषत) भली-भाँति अलंकृत होओ, क्योंकि ये दोनों अश्विदेव (शुचिव्रता) निर्दोष व्रतका अनुष्ठान करनेवाले (दिवः न-पाता) द्युलोकका पतन न होने देनेवाले, (धिष्ण्या) प्रशंसनीय (विश्पलावसू) विश्पलाको धन देनेवाले, (सुकृते धियं जिन्वा) अच्छे कर्म करनेवालेको सुबुद्धि देनेवाले हैं।

१९४ भावार्थ- हे मननशील विद्वानों! हमें पता लगा है कि, अश्विदेवों-का सुदृढ रथ हमारे यज्ञस्थानके पास आ पहुंचा है, उसे देखकर आनन्दित होवो, अच्छी तरह अलंकृत बनो। वे दोनों अश्विदेव शुद्ध कर्म करनेवाले, द्युलोकको आधार देनेवाले, विश्पलाको सहायता करनेवाले, अच्छे कार्यकर्ताको शुभमति देनेवाले, एवं प्रशंसनीय हैं।

१९४ मानवधर्म- अपने घर कोई बडे वीर आवें तो उत्तम वेष-भूषा धारण करके उसका स्वागत करना योग्य है। बडा उसको कहते हैं कि जो उत्तम कर्म करता है, अनाथकी सहायता करता है, सद्बुद्धि देता है और सबको आधार देता है।

[१९५]

१९५ इन्द्र॑तमा हि धिष्ण्या॑ म॒रुत्त॑मा द॒स्रा दंसि॑ष्ठा र॒थ्या॑ र॒थीत॑मा। पू॒र्णं रथं॑ वहेथे॒ मध्व॒ आचि॑तं॒ तेन॑ दा॒श्वांस॒मुप॑ याथो अश्विना ॥२॥

१९५ इन्द्र॑ऽतमा। हि। धिष्ण्या॑। म॒रुत्ऽत॑मा। द॒स्रा। दंसि॑ष्ठा। र॒थ्या॑। र॒थिऽत॑मा। पू॒र्णम्। रथ॑म्। व॒हेथे॒ इति॑। मध्वः॑। आऽचि॑तम्। तेन॑। दा॒श्वांस॑म्। उप॑। या॒थः॒। अ॒श्वि॒ना ॥२॥

१९५ अन्वयः- दस्रा अश्विना! धिष्ण्या इन्द्रतमा मरुत्तमा दंसिष्ठा रथ्या रथीतमा हि; मध्वः आचितं पूर्णं रथं वहेथे दाश्वांसं तेन उप याथः॥२॥

१९५ अर्थ- हे (दस्रा) शत्रुविनाशक अश्विदेवो ! तुम दोनों (धिष्ण्या) स्तुतिके योग्य, (इन्द्रतमा मरुत्तमा) इन्द्र एवं मरुतोंके अत्यंत शुभ गुणोंको धारण करनेवाले, (दसिष्ठा) अत्यन्त कार्यशील, (रथ्या रथीतमा हि) रथमें बैठनेवाले और अतीव श्रेष्ठ रथी हो, इसमें संशय नहीं; (मध्व आचित) मधुसे भरे हुए (पूर्ण रथं वहेथे) परिपूर्ण रथको लिए हुए तुम दोनों आगे बढते हो और (दाश्वांस) दानीके प्रति (तेन उपयाथः) उसी रथके साथ जाते हो ।

१९५ भावार्थ— शत्रुविनाशकर्ता अश्विदेवो ! तुम दोनों प्रशंसायोग्य तथा इन्द्र और मरुतोंके सब शुभगुणोंका धारण करते हो। तुम सदा शुभ कार्यमें तत्पर, रथ चलानेमें तत्पर, उत्तम रथियोंमें श्रेष्ठ हो । तुम रथपर शहदके घडे भरकर रखते हो और यज्ञकर्ताके समीप उनके साथ पहुंचकर उसका दान करते हो ।

१९५ मानवधर्म— शत्रुका नाश करो । शुभगुणोंको धारण करो, रथ चलानेमें प्रवीण बनो । श्रेष्ठ महारथी बनो । शहद अपने पास रखो और अपने अनुयायियोंको दे दो ।

[१९६]

१९६ किमत्र॑ दस्रा कृणुथः॒ किमा॑साथे॒ जनो॒ यः कश्चि॒दह॑वि-र्म॒हीय॑ते। अति॑ क्रमिष्टं जु॒रतं॑ प॒णेर॑सुं ज्योति॒र्विप्रा॑य कृणुतं वच॒स्यवे॑ ॥३॥

१९६ किम् । अत्र॑ । द॒स्रा॒ । कृ॒णु॒थः॒ । किम् । आ॒सा॒थे॒ इति॑ । जनः॑ । यः । कः । चि॒त् । अह॑विः । म॒हीय॑ते । अति॑ । क्र॒मि॒ष्ट॒म् । जु॒रत॑म् । प॒णेः । असु॑म् । ज्योतिः॑ । विप्रा॑य । कृ॒णु॒त॒म् । व॒च॒स्यवे॑ ॥३॥

१९६ अन्वय — दस्रा ! अत्र किं कृणुथः ? किं आसाथे ? यः कश्चित् जनः अहविः महीयते, अति क्रमिष्टं, पणेः असुं जुरतं, वचस्यवे विप्राय ज्योतिः कृणुतम् ॥ ३ ॥

१९६ अर्थ- हे (दस्रा) शत्रुका नाश करनेवाले अश्विदेवो ! (अत्र किं कृणुथः) इधर भला क्या करते हो ? (किं आसाथे) क्यों यहां बैठे हो ? (यः कश्चित्)जो कोई (जनः अहविः महीयते) पुरुष यज्ञ न करता हुआ बड़ा बन बैठा है, उसे (अति क्रमिष्टं) छोडकर आगे बढो और (पणेः असुं जुरतं) कृपण, लोभी व्यापारीके प्राणोंको नष्ट करो, तथा (वचस्यवे विप्राय) स्तुति करनेके इच्छुक ज्ञानी पुरुषके लिए (ज्योतिः कृणुतं) प्रकाश करो ।

१९६ भावार्थ— हे शत्रुका नाश करनेवाले अश्विदेवो ! तुम इधर उधर न जाओ, विशेषतः यज्ञ न करनेवालेके पास न जाओ, उस लोभीके प्राण जाने दो। तुम सदा यज्ञकर्ताको प्रकाशका मार्ग बताओ।

१९६ मानवधर्म— जो सहायता पहुंचानी हो वह श्रेष्ठ सज्जनकोही प्रथम देनी योग्य है। धर्मशील सन्मार्गवर्तियोंकोही प्रकाशका सरल मार्ग बताना योग्य है।

[१९७]

१९७ जम्भयतमभितो रायतः शुनो हतं मृधो विदथुस्तान्यश्विना। वाचंवाचं जरितू रत्निनीं कृतमुभा शंसं नासत्यावतं मम ॥४॥

१९७ जम्भयतम्। अभितः। रायतः। शुनः। हतम्। मृधः। विदथुः। तानि। अश्विना। वाचम्ऽवाचम्। जरितुः। रत्निनीम्। कृतम्। उभा। शंसम्। नासत्या। अवतम्। मम ॥४॥

१९७ अन्वयः— नासत्या अश्विना ! शुनः रायतः अभितः जम्भयतं, मृधः हतं, तानि विदथुः, जरितुः वाचं वाचं रत्निनीं कृतं, उभा मम शंसं अवतम् ॥ ४ ॥

१९७. अर्थ— हे (नासत्या) सत्यके पालक अश्विदेवो ! (शुनः रायतः) कुत्तेके सदृश काटनेको आनेवालोंको (अभितः जम्भयतं) चारों ओरसे विनष्ट करो, (मृधः हतं) लडनेवालोंको मार डालो, (तानि विदथुः) उन्हें तुम दोनों जानते हो, (जरितुः) स्तुतिकर्ताके (वाचं वाचं) प्रत्येक भाषणको (रत्निनीं कृतं) धनयुक्त करो और (उभा) दोनों (मम शंसं अवतं) मेरे प्रशंसाके भाषणकी रक्षा करो।

१९७ भावार्थ— हे सत्यनिष्ठ अश्विदेवो ! कुत्तेके समान हिंसकोंको नष्ट करो, जो हमपर हमला करते हैं उनको मार डालो, इन सबको तुम जानते हो। तुम्हारी स्तुति करनेवालेकी प्रत्येक स्तुतिके लिये उसे धन प्राप्त होता रहे, तथा मुझ भक्तकी भी सुरक्षा करो।

१९७. मानवधर्म— सत्यका पालन करो, हिंसकोंको और घातकोंको नष्ट करो। सन्मार्गवर्तियोंको सुरक्षित रखो।

[१९८]

१९८ युवमे॒तं च॑क्रथुः सिन्धु॑षु प्ल॒वमा॑त्म॒न्वन्तं॑ प॒क्षिण॑ं तौ॒ग्र्याय॒ कम् । येन॑ देव॒त्रा मन॑सा निरू॒हथुः॑ सुपप्त॒नी पे॑तथुः क्षोद॑सो म॒हः ॥५॥

१९८ यु॒वम् । ए॒तम् । च॒क्र॒थुः॒ । सिन्धु॑षु । प्ल॒वम् ।
आ॒त्म॒न्ऽवन्त॑म् । प॒क्षिण॑म् । तौ॒ग्र्याय॑ । कम् ।
येन॑ । दे॒व॒ऽत्रा । मन॑सा । निः॒ऽऊ॒हथुः॑ ।
सु॒ऽप॒प्त॒नि । पे॒त॒थुः॒ । क्षोद॑सः । म॒हः ॥५॥

१९८. अन्वयः— एतं आत्मन्वन्तं पक्षिणं प्लवं सिन्धुषु तौग्र्याय कं चक्रथुः येन सुपप्तनी मनसा देवत्रा निः ऊहथुः महः क्षोदसः पेतथुः ॥ ५ ॥

१९८. अर्थ— (एतं आत्मन्वन्तं) इस निजी शक्तिसे युक्त, (पक्षिणं), पंछीके तुल्य उडनेवाले, (प्लवं) नौकाको (सिन्धुषु) समुद्रमें (तौग्र्याय) तुग्रपुत्रके, लिए (कं चक्रथुः) सुखकारक ढंगसे बना चुके, (येन) जिससे (सुपप्तनी) अच्छे ढंगसे उडनेवाले तुम दोनों (मनसा) मनःपूर्वक (देवत्रा) देवोंके मध्य (निः ऊहथुः) ऊपर ऊपर [illegible] चले और (महः क्षोदसः पेतथुः) बडे भारी जलसमूहके बीच आ गये।

१९८ भावार्थ— तुग्रके पुत्र भुज्युकी रक्षा करनेके लिये तुमने निजशक्तिसे चलनेवाले, पक्षीके समान उडनेवाले नौका जैसे वाहनोंको बनाया और मनके वेगसे महासागरके मध्यमें आ पहुंचे (और भुज्युको बचाया)।

१९८ टिप्पणी— देखो भुज्यु, मंत्र ५७, ७१, ७९-८१ ११५ इ०

[१९९]

१९९ अव॑विद्धं तौ॒ग्र्यम॒प्स्व१॒॑न्तर॑नारम्भ॒णे तम॑सि॒ प्रवि॑द्धम् । चत॑स्रो॒ नावो॒ जठ॑लस्य॒ जुष्टा॒ उद॒श्विभ्या॑मिषि॒ताः पा॑रयन्ति ॥६॥

१९९ अव॑ऽविद्धम् । तौ॒ग्र्यम् । अ॒प्ऽसु । अ॒न्तः ।
अ॒ना॒र॒म्भ॒णे । तम॑सि । प्रऽवि॑द्धम् ।
चत॑स्रः । नाव॑ः । जठ॑लस्य । जुष्टाः॑ ।
उत । अ॒श्विऽभ्या॑म् । इ॒षि॒ताः । पा॒र॒य॒न्ति॒ ॥६॥

१९९ अन्वयः— अप्सु अन्तः अवविद्धं, अनारम्भणे तमसि प्रविद्धं तौग्र्यं जठलस्य जुष्टाः अश्विभ्यां इषिताः चतस्रः नावः उत्पारयन्ति ॥ ६ ॥

१९९ अर्थ– (अप्सु अन्तः) जलोंके मध्य (अवविद्धं) गिराये हुए (अनारम्भणे तमसि) आश्रयरहित अँधेरेमें (प्रविद्धं तौग्र्यं) पीडित हुए तुग्रके पुत्रको (जठलस्य जुष्टाः) समुद्रके मध्यतक पहुंची हुई और (अश्विभ्यां इषिताः) अश्विदेवोंसे प्रेरित हुई (चतस्रः नावः) चार नौकाएँ (उत् पारयन्ति) ऊपर उठाकर पार पहुँचा देती हैं ।

१९९ भावार्थ– समुद्रके बीचमें आश्रयरहित और अंधेरे जलस्थानमें पडे तुग्रपुत्र भुज्युको छुडानेके लिये अश्विदेवोंने चार नौकाएँ चलाईं और उसको समुद्रके पार पहुंचा दिया ।

१९९ टिप्पणी– देखो तुग्र, भुज्यु,– ५७, ७१, ७९–८१, ११५ इ.

[२००]

२०० कः स्विद्वृक्षो निष्ठितो मध्ये अर्णसो यं तौग्र्यो नाधितः पर्यषस्वजत् । पर्णा मृगस्य पतरोरिवारभ उदश्विना ऊहथुः श्रोमताय कम् ॥७॥

२०० कः । स्वित् । वृक्षः । निःऽस्थितः । मध्ये । अर्णसः । यम् । तौग्र्यः । नाधितः । परिऽअसस्वजत । पर्णा । मृगस्य । पतरोःऽइव । आऽरभे । उत् । अश्विना । ऊहथुः । श्रोमताय । कम् ॥७॥

२०० अन्वयः— अर्णसः मध्ये कः स्वित् वृक्षः निष्ठितः यं नाधितः तौग्र्यः पर्यषस्वजत्, पतरोः मृगस्य आरभे पर्णा इव अश्विनौ श्रोमताय कं उत् ऊहथुः ॥७॥

२०० अर्थ– (अर्णसः मध्ये) जलके बीच (कः स्वित् वृक्षः निष्ठितः) भला कौनसा वृक्ष अर्थात् वृक्षसे निर्मित रथ स्थिर रहा है (यं) जिसे (नाधितः तौग्र्यः) प्रार्थना करता हुआ तुग्रका पुत्र भुज्यु (पर्यषस्वजत्) लिपटने लगा, आश्रित होने लगा; (पतरोः मृगस्य आरभे) पतनशील मृगके आलंबनके लिए (पर्णा इव) पत्तों या पंखोंके समान (अश्विनौ श्रोमताय) अश्विदेव कीर्ति पानेके लिए (कं) सुखकारक ढंगसे उसको (उत् ऊहथुः) ऊपर उठा चुके ।

२०० भावार्थ- अश्विदेवोंका सुदृढ रथ समुद्रके बीचमें खडा रहा, इसपर तुग्रका पुत्र भुज्यु चढने लगा। जिस तरह गिरनेवाले पशुको पंखोंका सहारा मिल जाय, उस तरह भुज्युको उस रथका आश्रय मिला और उसी समय अश्विदेवोंने भुज्युको अच्छी तरह ऊपर उठाया और रथमें बिठाया। इससे अश्विदेवोंकी कीर्ति बहुत हुई।

२०० टिप्पणी- देखो भुज्यु, तुग्र ५७, ७१; ७९–८६; ११५; ११६, १३९, १४१, १४५, १७१, १७९, १९०-२००, ३११, ३४४; ३५३; ४०५; ५८६; ६०३; ६३१।

[२०१]

२०१ तद् वां नरा नासत्यावनु ष्याद्यद्वां मानास उचथमवोचन्।
अस्मादृद्य सदसः सोम्यादा विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥८॥

२०१ तत्। वाम्। नरा। नासत्यौ। अनु। स्यात्।
यत्। वाम्। मानासः। उचथम्। अवोचन्।
अस्मात्। अद्य। सदसः। सोम्यात्। आ।
विद्याम। इषम्। वृजनम्। जीरऽदानुम् ॥८॥

२०१ अन्वय — नासत्यौ नरा! यत् मानासः वां उचथं अवोचन्, तत् वां अनु स्यात्, अद्य अस्मात् सोम्यात् सदसः जीरदानुं वृजनं इषं विद्याम ॥ ८ ॥

२०१ अर्थ— हे (नासत्यौ नरा) सत्यके पालक, नेता अश्विदेवो! (यत् मानासः) जो सम्माननीय लोग (वां) तुम दोनोंके लिए (उचथं अवोचन्) स्तोत्र कह चुके, (तत् वां अनु स्यात्) वह तुम्हें अनुकूल हो, (अद्य) आज (अस्मात् सोम्यात् सदस) इस सोमयागके यज्ञस्थानसे (जीरदानु वृजन) विजयी, दान, बल, और (इष विद्याम) अन्नको हम प्राप्त करें।

२०१ भावार्थ— हे सत्यके पालक अश्विदेवो! स्तोता लोगोंने जो तुम्हारे स्तोत्र गाये हैं उनसे तुम प्रसन्न हो जाओ और इस यज्ञसे विजय देनेवाला धन, बल और अन्न हमें प्राप्त हो।

[२०२] (ऋ० १।१८३।१-६)

२०२ तं युञ्जाथां मनसो यो जवीयान्त्रिवन्धुरो वृषणा यस्त्रिचक्रः । येनोपयाथः सुकृतो दुरोणं त्रिधातुना पतथो विर्न पर्णैः ॥१॥

२०२ तम् । युञ्जाथाम् । मनसः । यः । जवीयान् ।
त्रिऽवन्धुरः । वृषणा । यः । त्रिऽचक्रः ।
येन । उपऽयाथः । सुऽकृतः । दुरोणम् ।
त्रिऽधातुना । पतथः । विः । न । पर्णैः ॥१॥

२०२ अन्वयः— वृषणा ! यः त्रिचक्रः त्रिवन्धुरः, यः मनसः जवीयान् तं युञ्जाथाम्, येन त्रिधातुना सुकृतः दुरोणं उपयाथः, विः पर्णैः न पतथः ॥१॥

२०२ अर्थ- हे (वृषणा !) बलवान् अश्विदेवो ! (यः त्रिचक्रः) जो तीन पहियोंवाला (त्रिवन्धुरः) तीन बैठनेके स्थानोंसे युक्त रथ है, (यः) जो (मनसः जवीयान्) मनसे भी अधिक वेगवान् है, (तं युञ्जाथां) उसे जोडकर तैयार करो; (येन त्रिधातुना) जिस तीन धातुओंसे बनाये रथपरसे (सुकृतः दुरोणं उपयाथः) शुभ कार्यकर्ताके घर तुम दोनों चले जाते हो, और (विः पर्णैः न) पंछी डैनोंसे जिस प्रकार उडता है , वैसेही (पतथः) तुम अन्तरालमें उडने लगते हो ।

२०२ भावार्थ- हे बलवान् अश्विदेवो ! तुम्हारा तीन पहियोंवाला, तीन बैठकोंके स्थानोंवाला, अत्यंत वेगवान् रथ जोड कर तैयार करो । इस तीन धारक शक्तियोंसे युक्त रथपर बैठकर यज्ञकर्ताके घरपर जाओ । तुम तो पक्षियोंके समानही आकाशसे उडकर जाते हो ।

२०२ मानवधर्म- अपने रथको अतिवेगसे चलानेयोग्य सज्ज करो । आकाशमें भी पक्षी जैसे उडनेवाले आकाशयान बनाओ ।

२०२ टिप्पणी-त्रिधातु = तीन धारक शक्तियोंसे युक्त, तीन धातुओं-द्वारा सुशोभित ।

[२०३]

२०३ सुवृद्रथो वर्तते यन्नभि क्षां यत्तिष्ठथः क्रतुमन्तानु पृक्षे ।
वपुर्वपुष्या सचतामियं गीर्दिवो दुहित्रोषसा सचेथे ॥२॥

२०३ सुऽवृत् । रथः । वर्तते । यन् । अभि । क्षाम् ।
यत् । तिष्ठथः । क्रतुंऽमन्ता । अनु । पृक्षे ।
वपुंः । वपुष्या । सचताम् । इयम् । गीः ।
दिवः । दुहित्रा । उषसा । सचेथे इति ॥२॥

२०३ अन्वयः- क्रतुमन्ता पृक्षे अनु यत् तिष्ठथः, क्षां यन् सुवृत् रथः अभि वर्तते; वपुष्या इयं गीः वपुः सचतां दिवः दुहित्रा उषसा सचेथे ॥ २ ॥

२०३ अर्थ- (क्रतुमन्ता) कार्यसे युक्त हुए तुम दोनों (पृक्षे अनु) हविष्य अन्नके पीछे जानेके लिए (यत् तिष्ठथः) जहां ठहरते हो, वह (क्षां यन्) पृथ्वीपर घूमनेवाला तुम्हारा (सुवृत् रथः) सुन्दर रथ (अभि वर्तते) यज्ञभूमिके पास जाता है, (वपुष्या इयं गीः) यह सुंदर रसमयी स्तुतिरूपी वाणी (वपुः सचतां) तुम्हारी रसमयी वृत्तिको प्राप्त हो जाए तुम्हें आनंद देवे (दिवः दुहित्रा उषसा) द्युलोककी कन्या उषासे (सचेथे) तुम दोनों युक्त होते हो ।

२०३ भावार्थ- हे अश्विदेवो ! तुम सदा सत्कर्मोंमें तत्पर रहते हो । तुम हवनके यज्ञस्थानपर आनेके लिये अपने सुन्दर रथपर चढते हो और वह रथ यज्ञके स्थानपर चला जाता है । तुम्हारा वर्णन करनेवाली यह स्तुति सुननेसे तुम्हें आनन्द हो, तुम तो उषाके साथही अर्थात् सवेरेही रथपर चढते हो ।

२०३ टिप्पणी-वपुष्या = सुंदर, रसीली, उत्तम शरीरवाली । वपुः = शरीर, सौंदर्य, सुन्दरता,सत्व, रसमय ।

[२०४]

२०४ आ तिष्ठतं सुवृतं यो रथो वामनु व्रतानि वर्तते हविष्मान् ।
येन नरा नासत्येषयध्यै वर्तिर्याथस्तनयाय त्मने च ॥३॥

२०४ आ । तिष्ठतम् । सुऽवृतम् । यः । रथः । वाम् ।
अनु । व्रतानि । वर्तते । हविष्मान् ।
येन । नरा । नासत्या । इषयध्यै ।
वर्तिः । याथः । तनयाय । त्मने । च ॥३॥

२०४ अन्वयः- नासत्या नरा ! यः हविष्मान् रथः वां व्रतानि अनु वर्तते, सुवृतं आ तिष्ठतं; येन तनयाय त्मने च इषयध्यै वर्तिः याथः ॥ ३ ॥

२०४ अर्थ- हे (नासत्या नरा) सत्यके पालक नेता अश्विदेवो ! (यः हविष्मान् रथः) जो हविर्भागसे पूर्ण रथ (वां) तुम दोनोंको (व्रतानि वर्तते) कार्योंको चलानेके लिए ले जाता है, उस (सुवृतं आतिष्ठतं) सुन्दर वाहनपर चढकर बैठो; (येन) जिसपरसे (तनयाय त्मने च) पुत्रको और उसको (इषयध्यै) यज्ञकी प्रेरणा करनेके लियेही उनके (वर्ति याथः) घर चले जाते हो।

२०४ भावार्थ- हे सत्यके पालक अश्विदेवो ! हविर्द्रव्योंसे भरपूर भरा हुआ तुम्हारा रथ तुम दोनोंको अपने कार्य करनेके लिये ले जाता है, उसपर तुम बैठो और यजमानको तथा उसके बालबच्चोंको यज्ञकी प्रेरणा करनेके लिये उनके यज्ञस्थानके प्रति जाओ।

२०४ मानवधर्म- सत्यका पालन करो, रथमें अन्नोंको रखो, और जहां यज्ञ चलते हों वहां जाओ और उनकी उचित सहायता करो।

[२०५]

२०५ मा वां वृको मा वृकीरा दधर्षीन्मा परि वर्क्तमुत माति धक्तम्। अयं वां भागो निहित इयं गीर्दस्राविमे वां निधयो मधूनाम् ॥४॥

२०५ मा । वाम् । वृकः । मा । वृकीः । आ । दधर्षीत् । मा । परि । वर्क्तम् । उत । मा । अति । धक्तम् । अयम् । वाम् । भागः । निऽहितः । इयम् । गीः । दस्रौ । इमे । वाम् । निऽधयः । मधूनाम् ॥४॥

२०५ अन्वयः— दस्रौ ! वां अयं भागः निहितः, इयं गीः, मधूनां इमे निधयः वां; मा परि वर्क्तं, उत मा अति धक्तं, वां मा वृकः मा वृकीः आ दधर्षीत् ॥ ४ ॥

२०५ अर्थ— हे (दस्रौ) शत्रुविनाशकर्ता अश्विदेवो ! (वां) तुम दोनोंके लिए (अयं भागः निहितः) यह भाग रखा है, (इयं गीः) यह स्तुति तैयार है, (मधूनां इमे निधयः) शहदोंके ये भाण्डार (वां) तुम्हारे लिए हैं। (मा परि वर्क्तं) हमें न छोड दो, (उत) और (मा अति धक्तं) न हमसे अन्य दूसरेको दान दो, (वां) तुम्हारी कृपासे (मा वृकीः मा वृकः) मुझे वृकियाँ तथा भेडिया न (आ दधर्षीत्) आक्रान्त करें।

२०५ भावार्थ— हे शत्रुविनाशकर्ता अश्विदेवो ! आपके लिये यह हवि-र्भाग रखा है, यह स्तुति तुम्हारे लियेही है, ये शहदके पात्र तुम्हारे लिये तैयार रखे हैं, तुम हमें न छोडो, न दूसरेके पास जाओ । भेडी या भेडिया हमारे ऊपर हमला न करें।

२०५ मानवधर्म— नेता लोग अनुयायियोंमें रहें, उनको सुरक्षित रखनेके लिये सदा यत्न करें।

[२०६]

२०६ युवां गोतमः पुरुमीळ्हो अत्रिर्दस्रा हवतेऽवसे हविष्मान्।
दिशं न दिष्टामृजूयेव यन्ता मे हवं नासत्योप यातम् ॥५

२०६ युवाम् । गोतमः । पुरुऽमीळ्हः । अत्रिः ।
दस्रा । हवते । अवसे । हविष्मान् ।
दिशम् । न । दिष्टाम् । ऋजुयाऽइव । यन्ता ।
आ । मे । हवम् । नासत्या । उप । यातम् ॥५॥

२०६ अन्वयः— दस्रा नासत्या ! हविष्मान् गोतमः, पुरुमीळ्हः, अत्रिः अवसे युवां हवते; ऋजूया इव यन्ता दिष्टां दिशं न मे हवं उप यातम् ॥ ५ ॥

२०६ अर्थ— हे (दस्रा नासत्या) शत्रुविनाशक और सत्यसे युक्त अश्वि-देवो ! (हविष्मान्) हवि साथ लेकर गोतम, अत्रि और पुरुमीळ्ह (अवसे) रक्षाके लिए (युवां हवते) तुम दोनोंको बुलाता है, (ऋजूया इव यन्ता) सरल मार्गसे जानेवाला जैसे (दिष्टां दिशं न) दर्शायी हुई दिशाकी ओर जाता है वैसेही (मे हवं) मेरी पुकार सुनकर मेरे (उप यातं) समीप आ जाओ ।

२०६ भावार्थ— हे शत्रुविनाशक सत्यके पालक अश्विदेवो ! हवि लेकर गोतम, अत्रि और पुरुमीढ ये ऋषि अपनी सुरक्षाके लिये तुम्हारी प्रार्थना करते हैं। सरल मार्गसे जानेवाला इष्ट स्थानको सहजहीसे पहुंचता है, इस तरह मेरी प्रार्थना सुनकर सरल मार्गसे शीघ्रही मेरे पास पहुंच जाओ।

२०६ मानवधर्म— मनुष्य अपनी सुरक्षाका यत्न करे। सरल मार्गसे चले और निर्विघ्न इष्ट स्थानको पहुंचे।

[२०७]

२०७ अतारिष्म तमसस्पारमस्य प्रति वां स्तोमो अश्विनाव- धायि। एह यातं पथिभिर्देवयानैर्विद्यामेषं वृजनं जीर- दानुम् ॥६॥

२०७ अतारिष्म। तमसः। पारम्। अस्य। प्रति। वाम्। स्तोमः। अश्विनौ। अधायि। आ। इह। यातम्। पथिऽभिः। देवऽयानैः। विद्याम। इषम्। वृजनम्। जीरऽदानुम् ॥६॥

२०७ अन्वयः— अस्य तमसः पारं अतारिष्म, हे अश्विनौ! वां प्रति स्तोमः अधायि; देवयानैः पथिभिः इह आयातं, जीरदानुं इषं वृजनं विद्याम ॥ ६ ॥

२०७ अर्थ— (अस्य तमसः) इस अंधेरेके (पारं अतारिष्म) पार हम चले गये, हे अश्विदेवो! (वां प्रति) तुम दोनोंके लिए (स्तोमः अधायि) स्तोत्र तैयार कर दिया है, (देवयानैः पथिभिः) देवतागण जिसपरसे चलते हैं ऐसे मार्गोंसे (इह आयातं) इधर आओ (जीरदानुं इषं वृजनं विद्याम) शीघ्र विजय अन्न तथा बल हमें मिल जाय।

२०७ भावार्थ— इस अन्धेरे स्थानसे हम पार हो चुके। तुम्हारे लिये यह स्तवन किया है। देवोंके आनेके मार्गसे यहां हमारे पास आओ। हमें विजय, अन्न तथा बल मिले।

२०७ मानवधर्म— अन्धेरका मार्ग शीघ्र समाप्त करो, प्रकाशमें शीघ्र आओ। जिन मार्गोंसे श्रेष्ठ लोग आते जाते हैं, उन मार्गोंसेही जाओ। शीघ्रही विजय अन्न और बल प्राप्त करो।

॥ २०८ ॥ (ऋ० १।१८४।१-६)

२०८ ता वा॒म॒द्य ताव॑प॒रं हु॑वेमो॒च्छन्त्या॑मु॒षसि॒ वह्नि॑रु॒क्थैः ।
नास॑त्या॒ कुह॑ चि॒त्सन्ता॑व॒र्यो दि॒वो नपा॑ता सु॒दास्त॑राय ॥१॥

२०८ ता । वा॒म् । अ॒द्य । तौ । अ॒प॒रम् । हु॒वे॒म॒ ।
उ॒च्छन्त्या॑म् । उ॒षसि॑ । वह्निः॑ । उ॒क्थैः ।
नास॑त्या । कुह॑ । चि॒त् । सन्तौ॑ । अ॒र्यः ।
दि॒वः । नपा॑ता । सु॒दाः॒ऽत॑राय ॥१॥

२०८ अन्वयः- दिवः न पाता ! नासत्या ! अद्य ता वां, अपरं तौ हुवेम, उच्छन्त्यां उषसि उक्थैः वह्निः, कुह चित् सन्तौ सुदास्तराय अर्यः ॥१॥

२०८ अर्थ- हे (दिवः न पाता) द्युलोकको न गिरानेवाले (नासत्या) सत्यके पालक अश्विदेवो ! (अद्य) आज (ता वां) उन विख्यात तुम दोनोंको (अपरं) दूसरे दिन भी (तौ हुवेम) उन्हेंही तुम्हें, हम बुलाते हैं, (उच्छन्त्यां उषसि) अँधियारी हटानेवाली उषावेलाके समीप आनेपर (उक्थैः वह्निः) स्तोत्रोंका पाठ करते करते अग्नि प्रज्वलित किया जाता है, (कुह चित् सन्तौ) कहीं भी तुम विद्यमान रहो, पर (सुदास्तराय) उत्तम दानीके पास इधर आओ, ऐसी (अर्यः) प्रगतिशील मानवकी प्रार्थना है ।

२०८ भावार्थ- हे द्युलोकको आश्रय देनेवाले अश्विदेवो ! हम तुम्हें जैसा आज बुलाते हैं वैसे कल भी बुलावेंगे। हम प्रातःकालमें अग्निको प्रदीप्त करते हैं और तुम्हारे स्तोत्र गाते हैं । श्रेष्ठ पुरुष, तुम कहीं भी रहे तो, तुम्हेंही अपने पास बुलावेगा ।

२०८ मानवधर्म- श्रेष्ठ नेताओंको आदरसे अपने पास बुलाओ ।

२०८ टिप्पणी- सु-दास्-तर = अधिक दान देनेवाला, दाता ।

[२०९]

२०९ अ॒स्मे ऊ॒ षु वृ॑षणा मादयेथा॒मुत्प॒णीँर्ह॑तमू॒र्म्या मद॑न्ता ।
श्रु॒तं मे॒ अच्छो॑क्तिभिर्म॒तीना॒मेष्टा॑ नरा॒ निचे॑तारा च॒ कर्णैः॑ ॥२॥

२०९ अस्मे इति । ऊँ इति । सु । वृषणा । मादयेथाम् ।
उत् । पणीन् । हतम् । ऊर्म्या । मदन्ता ।
श्रुतम् । मे । अच्छोक्तिऽभिः । मतीनाम् ।
एष्टा । नरा । निऽचेतारा । च । कर्णैः ॥२॥

२०९. अन्वयः- नरा ! वृषणा ! अस्मे ऊ सु मादयेथां, ऊर्म्या मदन्ता पणीन् उत् हतं, मे अच्छोक्तिभिः मतीनां कर्णैः श्रुतं, एष्टा निचेतारा च ॥ २ ॥

२०९. अर्थ- हे (नरा वृषणा) नेता तथा बलवान् अश्विदेवो ! (अस्मे ऊ) हमेंही (सु मादयेथां) भली भाँति हर्षित करो । (ऊर्म्या मदन्ता) सोम-पानसे आनन्दित होते हुए तुम (पणीन् उत् हतं) पणियोंका समूल वध करो, और (मे अच्छोक्तिभिः) मेरी निर्मल उक्तियोंसे उत्पन्न (मतीनां) मननीय स्तोत्रोंको (कर्णैः श्रुतं) अपने कानोंसे सुनलो, क्योंकि तुम दोनों (एष्टा निचेतारा च) ढूँढनेवाले और संग्रह करनेवाले हो ।

२०९. भावार्थ- हे बलवान् नेता अश्विदेवो ! तुम हम सबको सुखी करो। तुम सोमपानसे आनंदित होकर पणियोंका नाश करो । मेरी स्तुतिका श्रवण करो । तुम अच्छे मनुष्यको ढूंढते हैं और उसीको अपना आश्रय देते हैं ।

२०९ मानवधर्म- जनताको सुखी करो । अच्छे मनुष्यको ढूंढकर निकालो और जितने अच्छे लोग मिलेंगे, उनका संग्रह करो ।

२०९ टिप्पणी- ऊर्मी= सोम रसकी लहर, सोमपान । एष्टा (एषृ) = ढूंढनेवाला । निचेतृ = संग्रह करनेवाला ।

[२१०]

२१० श्रियै पूषन्निषुकृतेव देवा नासत्या वहतुं सूर्यायाः ।
वच्यन्ते वां ककुहा अप्सु जाता युगा जूर्णेव वरुणस्य भूरेः ॥३॥

२१० श्रियै । पूषन् । इषुकृताऽइव । देवा ।
नासत्या । वहतुम् । सूर्यायाः ।
वच्यन्ते । वाम् । ककुहाः । अप्ऽसु । जाताः ।
युगा । जूर्णाऽइव । वरुणस्य । भूरेः ॥३॥

२१० अन्वयः- देवा ! नासत्या ! पूषन् ! सूर्यायाः वहतुं श्रिये इषुकृता इव; अप्सु जाता ककुहाः भूरेः वरुणस्य जूर्णा इव युगा वां वध्यन्ते ॥ ३ ॥

२१० अर्थ- हे (देवा !) दानी ! (नासत्या) सत्यके पालक अश्विदेवो ! (हे पूषन्) पोषणकर्ता ! (सूर्यायाः वहतुं) सूर्यकन्याको रथपर बिठाकर (श्रिये) यश-पानेके लिए तुम दोनों (इषुकृता इव) बाणकी तरह सीधे चले जाते हो; (अप्सु जाता) सागरसे प्राप्त या उत्पन्न (ककुहाः) घोडे (भूरेः वरुणस्य) अत्यन्त विशाल वरुणके (जूर्णा इव युगा) प्राचीन समयके रथोंके समानही (वां वध्यन्ते) तुम दोनोंके भी प्रशंसित होते हैं।

२१० भावार्थ- हे दानी सत्यपालक, पोषणकर्ता अश्विदेवो ! सूर्यकी पुत्रीको अपने रथपर चढानेका यश प्राप्त करनेके लिये बाणके वेगसे तुम दोनों गये। इस समय समुद्रसे प्राप्त महान् वरुणदेवके प्राचीन रथके घोडोंके समानही तुम्हारे घोडोंकी स्तुति होती है।

२१० मानवधर्म- दान दो, सत्यका पालन करो, और अनुयायियोंका पोषण करो। अपने रथको वेगसे चलाओ।

२१० टिप्पणी-पूषन् = पुष्टि करनेवाला। इस मंत्रमें यह पद एकवचनी है, तथापि यह द्विवचनी अश्विदेवोंका विशेषण माना जाता है। वहतु = रथपर बिठलाना, दहेज। इषुकृत् = बाणसे उत्पन्न वेग। अप् = जल, कर्म, यज्ञ। ककुहः = उत्तम, सबमें श्रेष्ठ, रथका एक भाग, रथ, घोडा। अप्सु जात = समुद्रसे उत्पन्न, समुद्रके परे अरब देशसे उत्तम घोडे आते हैं अतः वे जलसे उत्पन्न समझे जाते हैं। युगं = जोडी, दो, युग, जहां घोडे जोते जाते हैं।

[२११]

२११ अ॒स्मे सा वां॑ माध्वी रा॒तिर॑स्तु॒ स्तोमं॑ हिनोतं मा॒न्यस्य॑ का॒रोः। अनु॒ यद् वां॑ श्रव॒स्या॑ सुदानू सु॒वीर्या॑य च॒र्षणयो॒ मद॑न्ति ॥४॥

२११ अ॒स्मे इति॑। सा। वा॒म्। मा॒ध्वी॒ इति॑। रा॒तिः। अ॒स्तु॒। स्तोम॑म्। हि॒नो॒त॒म्। मा॒न्यस्य॑। का॒रोः। अनु॑। यत्। वा॒म्। श्र॒व॒स्या॑। सु॒दा॒नू॒ इति॑ सु॒ऽदा॒नू॒। सु॒ऽवीर्या॑य। च॒र्षण॑यः। मद॑न्ति ॥४॥

२११. अन्वयः– सुदानू ! वां सा माध्वी रातिः अस्मे अस्तु, मान्यस्य कारोः स्तोमं हिनोतं; यत् वां अनु भवस्या चर्षणयः सुवीर्याय मदन्ति ॥ ४ ॥

२११ अर्थ– हे (सुदानू माध्वी) अच्छे दान देनेवाले, मधुर सोमरस पीनेवाले अश्विदेवो ! (वां) तुम दोनोंकी (सा रातिः) वह देन (अस्मे अस्तु) हमारे लिएही रहे, (मान्यस्य कारोः) माननीय और कार्यशीलके (स्तोमं हिनोतं) स्तोत्रको चारों ओर तुम प्रेरित करो, (यत्) निश्चयसे (वां अनु) तुम दोनोंके अनुकूलतामें रहकर (श्रवस्या) यश पानेके लिए (चर्षणयः) सब लोग (सुवीर्याय मदन्ति) उत्तम पराक्रम करनेके लियेही आनंदित होते हैं।

२११ भावार्थ– हे उत्तम दान देनेवाले, 'मधुर रस' पीनेवाले अश्विदेवो ! तुम दोनोंका दान हमें प्राप्त होता रहे। सन्माननीय कुशल कारीगरका या कविका स्तोत्र सुनो और उसका यश चारों ओर बढाओ। सब लोग तुम्हारी सहायतासे उत्तम पराक्रम करके श्रेष्ठ यश पानेकीही आनंदसे इच्छा करते हैं।

२११ मानवधर्म– उत्तम दान दो। मधुर अन्नका सेवन करो। उत्तम कविके काव्यका यश चारों ओर बढे। उत्तम पराक्रम करो और यश कमाओ।

२११ टिप्पणी–कारु = कर्मोंका कर्ता, कर्ता, कारीगर, कवि, स्तोत्रकी रचना करनेवाला। चर्षणिः = मनुष्य, खेती करनेवाले।

[२१२]

२१२ एष वां स्तोमो अश्विनावकारि मानेभिर्मघवाना सुवृक्ति ।
यातं वर्तिस्तनयाय त्मने चागस्त्ये नासत्या मदन्ता ॥५॥

२१२ एषः । वाम् । स्तोमः । अश्विनौ । अकारि ।
मानेभिः । मघऽवाना । सुऽवृक्ति ।
यातम् । वर्तिः । तनयाय । त्मने । च ।
अगस्त्ये । नासत्या । मदन्ता ॥५॥

२१२ अन्वयः– नासत्या अश्विनौ ! मघवाना ! एष वां स्तोमः सुवृक्ति अकारि, तनयाय त्मने च मदन्ता अगस्त्ये वर्तिः यातम् ॥ ५ ॥

२१२ अर्थ– हे (मघवाना) ऐश्वर्यसंपन्न ! सत्यपालक अश्विदेवो ! (एषः) यह (वां स्तोमः) तुम दोनोंका स्तोत्र (सुवृक्ति अकारि) भली भाँति तैयार किया है, इसलिए (तनयाय त्मने च) पुत्रके एवं अपने लाभके लिए (मदन्ता) हर्षित होते हुए (अगस्त्ये) अगस्त्यके (वर्तिः यातं) घर आओ ॥ ६ ॥

२१२ भावार्थ- हे ऐश्वर्यसंपन्न और सत्यपालक अश्विदेवो ! यह तुम्हारा स्तोत्र मैंने किया है । इससे आनंदित होकर तुम दोनों शुभ अगस्त्यके घर आओ और मेरे पुत्रोंका तथा मेरा भला करो।

[२१३]

२१३ अतारिष्म तमसस्पारमस्य प्रति वां स्तोमो अश्विनावधायि । एह यातं पथिभिर्देवयानैर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥६॥

२१३ अतारिष्म । तमसः । पारम् । अस्य ।
प्रति । वाम् । स्तोमः । अश्विनौ । अधायि ।
आ । इह । यातम् । पथिऽभिः । देवऽयानैः ।
विद्याम । इषम् । वृजनम् । जीरऽदानुम् ॥६॥

२१३ वां मंत्र पूर्वस्थानमें अर्थके साथ दिया है। देखो २०७ वां मंत्र, १७३ में भी यही मंत्र है।

[२१४] (ऋ. २।३७।५)
(२१४-२१५) गृत्समदः (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः ।
(ऋतुसहितौ) । जगती ।

२१४ अर्वाञ्चमद्य यय्यं नृवाहणं रथं युञ्जाथामिह वां विमोचनम् । पृङ्क्तं हवींषि मधुना हि कं गतमथा सोमं पिबतं वाजिनीवसू ॥५॥

२१४ अर्वाञ्चम् । अद्य । यय्यम् । नृऽवाहनम् ।
रथम् । युञ्जाथाम् । इह । वाम् । विऽमोचनम् ।
पृङ्क्तम् । हवींषि । मधुना । आ । हि । कम् । गतम् ।
अथ । सोमम् । पिबतम् । वाजिनीवसू इति वाजिनीऽवसू ॥५॥

२१४ अन्वयः- वाजिनी-वसू ! अद्य इह वां विमोचनं, यय्यं नृवाहणं रथं अर्वाञ्चं युञ्जाथां; हवींषि मधुना पृङ्क्तं, आगतं हि अथ सोमं पिबतम् ॥५॥

२१४ अर्थ- हे (वाजिनी-वसू) अन्नसे बसानेवाले अश्विदेवो ! (अद्य) आज (इह वां विमोचनं) इधर तुम दोनोंको उतारनेवाले (पर्व्यं) गतिशील (नृ-वाहणं रथं) नेताओंको ले चलनेवाले रथको (अर्वाञ्चं युञ्जाथां) हमारे समीपही जोड दो, (हवींषि मधुना पृङ्क्तं) हवियोंको मधुसे जोड दो, (आगतं हि) इधर जरूर आओ, (अथ) पश्चात् (सोमं पिबतं) सोमका पान करो।

२१४ भावार्थ- हे सबके लिये अन्नका प्रबंध करनेवाले अश्विदेवो ! आज तुम अपने रथको हमारे पासही ले आओ, तुम यहीं रथसे उतरो और अपने रथको यहां खोल दो ! हविरूप अन्नको मधुसे मिश्रित करो और पश्चात् सोमरस पीओ।

[२१५] (ऋ. २।३९।१-८) त्रिष्टुप्।

२१५ ग्रावाणेव तदिदर्थं जरेथे गृध्रेव वृक्षं निधिमन्तमच्छ।
ब्रह्माणेव विदथ उक्थशासा दूतेव हव्या जन्या पुरुत्रा॥१

२१५ ग्रावाणाऽइव। तत्। इत्। अर्थम्। जरेथे इति।
गृध्राऽइव। वृक्षम्। निधिऽमन्तम्। अच्छ।
ब्रह्माणाऽइव। विदथे। उक्थऽशासा।
दूताऽइव। हव्या। जन्या। पुरुऽत्रा॥१॥

२१५ अन्वयः- ग्रावाणा इव तद् अर्थं इत् जरेथे, वृक्षं गृध्रा इव निधिमन्तं अच्छ; विदथे ब्रह्माणा इव उक्थशासा, जन्या दूता इव पुरुत्रा हव्या॥ १॥

२१५ अर्थ- तुम दोनों [ग्रावाणा इव] दो पत्थरोंकी नाईं [तद् अर्थं इत्] उस एकही वस्तुके प्रति आकर [जरेथे] उसकी स्तुति करते हो, [वृक्षं गृध्रा इव] पेडके समीप जैसे दो गिद्ध पंछी आते हैं वैसेही तुम [निधिमन्तं अच्छ] निधि अपने पास रखनेवालेके प्रति जाते हो, [विदथे] यज्ञमें [ब्रह्माणा-इव] दो ब्राह्मणोंके समान तुम (उक्थशासा) स्तोत्र कहनेवाले हो और (जन्या दूता इव) जनताके हित किये भेजे हुए दो दूतोंके समान तुम दोनों [पुरुत्रा हव्या] विविध स्थानोंमें बुलानेयोग्य हो।

२१५ भावार्थ- जैसे दो पत्थर एकही सोमवल्लीको कूटते हुए शब्द करते हैं, उस तरह तुम दोनों एकही विषयकी चर्चा करते हो। जैसे दो पक्षी एकही फलोंसे लदे वृक्षके पास जाते हैं वैसे तुम दोनों धनधान्यसम्पन्न यजमानके

२१२ भावार्थ- हे ऐश्वर्यसंपन्न और सत्यपालक अश्विदेवो ! यह तुम्हारा स्तोत्र मैंने किया है। इससे आनंदित होकर तुम दोनों मुझ अगस्त्यके घर आओ और मेरे पुत्रोंका तथा मेरा भला करो।

[२१३]

२१३ अतारिष्म तमसस्पारमस्य प्रति वां स्तोमो अश्विनावधायि । एह यातं पथिभिर्देवयानैर्विद्यामेषं वृजनं जीरदानुम् ॥६॥

२१३ अतारिष्म । तमसः । पारम् । अस्य ।
प्रति । वाम् । स्तोमः । अश्विनौ । अधायि ।
आ । इह । यातम् । पथिऽभिः । देवऽयानैः ।
विद्याम । इषम् । वृजनम् । जीरऽदानुम् ॥६॥

२१३ वां मंत्र पूर्वस्थानमें अर्थके साथ दिया है। देखो २०७ वां मंत्र, ३७३ में भी यही मंत्र है।

[२१४] (ऋ. २।३७।५)
(२१४-२१५) गृत्समदः (आङ्गिरसः शौनहोत्रः पश्चाद्) भार्गवः शौनकः ।
(ऋतुसहितौ) । जगती ।

२१४ अर्वाञ्चमद्य यय्यं नृवाहणं रथं युञ्जाथामिह वां विमोचनम् । पृङ्क्तं हवींषि मधुना हि कं गतमथा सोमं पिबतं वाजिनीवसू ॥५॥

२१४ अर्वाञ्चम् । अद्य । यय्यम् । नृऽवाहणम् ।
रथम् । युञ्जाथाम् । इह । वाम् । विऽमोचनम् ।
पृङ्क्तम् । हवींषि । मधुना । आ । हि । कम् । गतम् ।
अथ । सोमम् । पिबतम् । वाजिनीवसू इति वाजिनीऽवसू ॥५॥

२१४ अन्वयः- वाजिनी-वसू ! अद्य इह वां विमोचनं, यय्यं नृवाहणं [illegible]ं अर्वाञ्चं युञ्जाथां। हवींषि मधुना पृङ्क्तं, आगतं हि अथ सोमं पिबतम्॥५॥

२१४ अर्थ– हे (वाजिनी-वसू) अन्नसे बसानेवाले अश्विदेवो ! (अद्य) आज (इह वां विमोचनं) इधर तुम दोनोंको उतारनेवाले (यथ्यं) गतिशील (नृ-वाहणं रथं) नेताओंको ले चलनेवाले रथको (अर्वाञ्चं युञ्जाथां) हमारे समीपही जोड दो, (हवींषि मधुना पृङ्क्तं) हवियोंको मधुसे जोड दो, (आगतं हि) इधर जरूर आओ, (अथ) पश्चात् (सोमं पिबतं) सोमका पान करो।

२१४ भावार्थ– हे सबके लिये अन्नका प्रबंध करनेवाले अश्विदेवो ! आज तुम अपने रथको हमारे पासही ले आओ, तुम यहीं रथसे उतरो और अपने रथको यहां जोड दो ! हविरूप अन्नको मधुसे मिश्रित करो और पश्चात् सोम-रस पीओ।

[२१५] (ऋ. २।३९।१-८) त्रिष्टुप्।

२१५ ग्रावा॑णेव॒ तदिदर्थं॒ जरे॑थे॒ गृध्रे॑व वृ॒क्षं नि॑धि॒मन्त॒मच्छ॑ ।
ब्र॒ह्माणे॑व वि॒दथ॑ उक्थ॒शासा॑ दू॒तेव॒ हव्या॒ जन्या॑ पुरु॒त्रा ॥१

२१५ ग्रावा॑णाऽइव । तत् । इत् । अर्थ॑म् । ज॒रे॒थे॒ इति॑ ।
गृध्रा॑ऽइव । वृ॒क्षम् । नि॒धि॒ऽमन्त॑म् । अच्छ॑ ।
ब्र॒ह्माणा॑ऽइव । वि॒दथे॑ । उ॒क्थ॒ऽशासा॑ ।
दू॒ताऽइ॑व । हव्या॑ । जन्या॑ । पु॒रु॒ऽत्रा ॥१॥

२१५ अन्वयः– ग्रावाणा इव तत् अर्थं इत् जरेथे, वृक्षं गृध्रा इव निधिमन्तं अच्छ; विदथे ब्रह्माणा इव उक्थशासा, जन्या दूता इव पुरुत्रा हव्या ॥ १ ॥

२१५ अर्थ– तुम दोनों [ग्रावाणा इव] दो पत्थरोंकी नाईं [तत् अर्थं इत्] उस एकही वस्तुके प्रति आकर [जरेथे] उसकी स्तुति करते हो, [वृक्षं गृध्रा इव] पेडके समीप जैसे दो गिद्ध पंछी जाते हैं वैसेही तुम [निधिमन्तं अच्छ] निधि अपने पास रखनेवालेके प्रति जाते हो, [विदथे] यज्ञमें [ब्रह्माणा-इव] दो ब्राह्मणोंके समान तुम (उक्थशासा) स्तोत्र कहनेवाले हो और (जन्या दूता इव) जनताके हित लिये भेजे हुए दो दूतोंके समान तुम दोनों [पुरुत्रा हव्या] विविध स्थानोंमें बुलानेयोग्य हो।

२१५ भावार्थ– जैसे दो पत्थर एकही सोमवल्लीको कूटते हुए शब्द करते हैं, उस तरह तुम दोनों एकही विषयकी चर्चा करते हो। जैसे दो पक्षी एकही फलोंसे लदे वृक्षके पास जाते हैं वैसे तुम दोनों धनधान्यसम्पन्न यजमानके

पास जाते हो। यज्ञमें जैसे दो ब्राह्मण स्तोत्रपाठ करते हैं वैसे तुम भी करते हो। जैसे जनताके हित करनेके लिये राजाके द्वारा भेजे दो दूत बहुत मनुष्यों द्वारा आदर करनेके योग्य समझे जाते हैं, वैसाही तुम्हारा आदर होता है।

२१५ मानवधर्म– सब मिलकर प्रस्तुत विषयकी चर्चा करो। सब मिलकर अन्नको प्राप्त करो। मिलकर प्रार्थना उपासना करो। जनताका हित करनेवालोंका आदर करो।

२१५ टिप्पणी– अर्थ = धर्म, अर्थ, काम, मोक्षके साथ संबंध रखनेवाले विषय। ग्रावाणः अर्थं जरेथे = पत्थर शत्रुको क्षीण करते हैं (सायण) अर्थ = शत्रु। निधिमान् = धनवान्। जन्य = जनताका हितकर्ता। हव्य = हवनीय, प्रशंसनीय, आदरणीय।

[२१६]

२१६ प्रातर्यावाणा रथ्येव वीराऽजेव यमा वरमा सचेथे।
मेने इव तन्वाऽ शुम्भमाने दम्पतीव क्रतुविदा जनेषु॥२॥

२१६ प्रातःऽयावाना। रथ्याऽइव। वीरा।
अजाऽइव। यमा। वरम्। आ। सचेथे इति।
मेने इवेति मेनेऽइव। तन्वा। शुम्भमाने इति।
दम्पती इवेति दम्पतीऽइव। क्रतुऽविदा। जनेषु॥२॥

२१६. अन्वयः— जनेषु दम्पती इव क्रतुविदा, मेने इव तन्वा शुम्भमाने, रथ्या इव वीरा प्रातः यावाणा अजा इव यमा वरं आ सचेथे॥ २॥

२१६. अर्थ— तुम दोनों (जनेषु) जनताके मध्य (दम्पती इव) पतिपत्नीके समान (क्रतुविदा) कार्य जाननेवाले हो, (मेने इव) दो महिलाओंके समान (तन्वा शुंभमाने) अपने शरीरोंकी सजावट करते हो, (रथ्या इव वीरा) महारथियोंके समान वीर हो; (प्रातः यावाणा) प्रातःकालही उठकर यात्रा करनेवाले और (अजा इव यमा) दो बकरोंके समान युगलमूर्ति होवे। तुम (वरं आ सचेथे) श्रेष्ठके पास जाते हो।

२१६ भावार्थ– तुम जनतामें पतिपत्नीके समान अपने कर्तव्यमें तत्पर, स्त्रियोंके समान शोभायमान, महारथियोंके समान वीर और युगल भाई जैसे हो। वे तुम श्रेष्ठ यजमानके पास जाते हैं हो।

२१६ *मानवधर्म*— पतिपत्नी अपने कर्तव्यमें तत्पर रहें, मनुष्य वीर बनें, अपनी वेषभूषासे सुशोभित रहें, श्रेष्ठ पुरुषोंकी संगतिमें रहें।

[२१७]

२१७ शृङ्गेव नः प्रथमा गन्तमर्वाक्छफाविव जर्भुराणा तरोभिः। चक्रवाकेव प्रति वस्तोरुस्राऽर्वाञ्चा यातं रथ्येव शक्रा ॥३॥

२१७ शृङ्गाऽइव । नः । प्रथमा । गन्तम् । अर्वाक् ।
शफौऽइव । जर्भुराणा । तरःऽभिः ।
चक्रवाकाऽइव । प्रति । वस्तोः । उस्रा ।
अर्वाञ्चा । यातम् । रथ्याऽइव । शक्रा ॥३॥

२१७. अन्वयः— तरोभिः शफौ इव जर्भुराणा नः अर्वाक् गन्तं, शृंगा इव प्रथमा, प्रति वस्तोः चक्रवाका इव उस्रा शक्रा रथ्या इव अर्वाञ्चा यातम् ॥ ३ ॥

२१७ अर्थ— (तरोभिः) वेगोंसे (शफौ इव जर्भुराणा) घोडेके खुरके समान खूब चलनेवाले (नः अर्वाक् गन्तं) हमारे पास आओ। (शृंगा इव प्रथमा) किसी पशुके सींगोंके समान पहलेही हमारे पास चले आओ। (प्रति वस्तोः) हरदिन (चक्रवाका इव) चक्रवाकचक्रवाकीके समान हमारे पास आओ (उस्रा शक्रा) शत्रुओंको हटानेवाले और शक्तिसंपन्न तुम दोनों (रथ्या इव अर्वाञ्चा यातं) रथारूढ वीरोंके समान हमारे पास चले आओ।

२१७. भावार्थ— वेगसे घोडोंके समान दौडते हुए हमारे पास आओ। पशुके सींग जैसे पहिले पहुंचते हैं वैसे तुम भी हमारे पास पहिले पहुंचो। चक्रवाक पक्षीयोंके समान शीघ्रही हमारे पास आओ। शत्रुको परास्त करनेवाले शक्तिमान वीरोंके समान तथा महारथीयोंके समान तुम हमारे पास शीघ्र आ पहुंचो।

२१७ मानवधर्म— वेगसे चलो। शत्रुको परास्त करनेकी शक्ति अपनेमें बढाओ। महारथी शूरवीर बनो।

[२१८]

२१८ नावेव नः पारयतं युगेव नभ्येव न उपधीव प्रधीव। श्वानेव नो अरिषण्या तनूनां खृगलेव विस्रसः पातमस्मान् ॥४॥

७

२१८ नावाऽईव । नः । पारयतम् । युगाऽईव ।
नभ्याऽइव । नः । उपधी इवेत्युपधीऽईव । प्रधी इवेति
प्रधीऽईव । श्वानाऽइव । नः । अरिषण्या । तनूनाम् ।
खृगलाऽइव । विऽस्रसः । पातम् । अस्मान् ॥४॥

२१८. अन्वयः– नः नावा इव, युगा इव, नभ्या इव, उपधी इव, प्रधी इव पारयतं; श्वाना इव नः तनूनां अरिषण्या, अस्मान् खृगला इव विस्रसः पातम् ॥ ४ ॥

२१८. अर्थ– (नः) हमें (नावा इव) नौकाओंके समान, (युगा इव) रथके डंडोंके समान, (नभ्या इव) पहियोंके केन्द्रमें रखे लट्ठोंके समान, (उपधी इव) चक्रके पार्श्वमें रखे तख्तोंके तुल्य, (प्रधी इव) चक्रके वृत्तके समान संकटोंसे (पारयतं) पार ले चलो; (श्वाना इव) कुत्तोंके समान (नः तनूनां) हमारे शरीरोंकी (अरिषण्या) अहिंसक होकर रक्षा करो, (अस्मान्) हमें (खृगला इव) कवचके समान (विस्रसः पातं) जरासे या विक्षेपणसे बचाओ ।

२१८ भावार्थ- नौकाके समान तथा रथके अंगोंके समान हमें सब संकटोंसे पार ले चलो । कुत्तोंके समान हमारी रक्षा करो और कवचोंके समान हमें सुरक्षित रखो, नाशसे बचाओ ।

२१८. मानवधर्म– वीर पुरुष जनताकी सब प्रकारसे सुरक्षा करें ।

[२१९]

२१९ वातेवाजुर्या नद्येव रीतिरक्षी इंव चक्षुषा यातमर्वाक् ।
हस्ताविव तन्वे३ शंभविष्ठा पादेव नो नयतं यस्यो
अच्छ ॥५॥

२१९ वाताऽइव । अजुर्या । नद्याऽइव । रीतिः ।
अक्षी इवेत्यक्षीऽइव । चक्षुषा । आ । यातम् । अर्वाक् ।
हस्तौऽइव । तन्वे । शम्ऽभविष्ठा ।
पादाऽइव । नः । नयतम । यस्यः । अच्छ ॥५॥

२१९. वाता इव अजुर्या, नद्या इव रीतिः, अक्षी इव चक्षुषा अर्वाक् आ यातम् । तन्वे हस्तौ इव शंभविष्ठा, नः वस्यः अच्छ पादा इव नयतम् ॥ ५ ॥

२१९ अर्थ- (वाता इव अजुर्या) वायुप्रवाहके तुल्य जीर्ण न होनेवाले, (नद्या इव रीतिः) नदियोंके समान सदा आगे बढनेवाले, (अक्षी इव चक्षुषा) आँखोंके तुल्य दृष्टिशक्तिसे युक्त तुम दोनों (अर्वाक् आयातं) हमारे पास आओ; (तन्वे हस्तौ इव शंभविष्ठा) शरीरके लिए हाथोंके समान सुख देनेवाले तुम दोनों (नः) हमें (वस्यः अच्छ) श्रेष्ठ धनके प्रति (पादा इव नयतं) पैरोंके समान ले चलो ।

२१९ भावार्थ- वायुके समान क्षीण न होनेवाले, नदियोंके समान आगे बढते रहनेवाले, आंखोंके समान देखनेवाले तुम दोनों हमारे पास आओ। हाथोंके समान शरीरके लिये सुखदायक होओ और पावोंके समान हमें अच्छे धनके पास ले चलो ।

२१९. मानवधर्म- वायुके समान जीवन देनेवाले, नदियों समान आगे बढनेवाले, आंखोंके समान देखनेवाले बनो, पावोंके समान उत्तम स्थानके पास पहुंचो और हाथोंके समान सुख दो ।

२१९ टिप्पणी- वस्यः = निवासके लिये आवश्यक धन ।

[२२०]

२२० ओष्ठाविव मध्वास्ने वदन्ता स्तनाविव पिप्यतं जीवसे
नः । नासेव नस्तन्वो रक्षितारा कर्णाविव सुश्रुता
भूतमस्मे ॥६॥

२२० ओष्ठौऽइव । मधु । आस्ने । वदन्ता ।
स्तनौऽइव । पिप्यतम् । जीवसे । नः ।
नासाऽइव । नः । तन्वः । रक्षितारा ।
कर्णौऽइव । सुऽश्रुता । भूतम् । अस्मे इति ॥६॥

२२० अन्वयः- आस्ने ओष्ठौ इव मधु वदन्ता नः जीवसे स्तनौ इव पिप्यतम् । नासा इव नः तन्वः रक्षितारा अस्मे कर्णौ इव सुश्रुता भूतम् ॥ ६ ॥

२२०. अर्थ-(आस्ने) मुँहके लिए (ओष्ठौ इव) होंठोंके तुल्य (मधु वदन्ता) मिठास भरा वचन कहते हुए तुम दोनों (नः जीवसे) हमारे जीवनके लिए हमें (स्तनौ इव पिप्यतं) स्तनोंके समान पुष्ट करते रहो; (नासा इव) नासापुटके तुल्य (नः तन्वः रक्षितारा) हमारे शरीरोंके संरक्षक बनो, और (अस्मे) हमारे लिए (कर्णौ इव) कर्णेन्द्रियके समान (सुश्रुता भूतं) भली भाँति सुननेवाले बनो।

२२० भावार्थ- मुखके लिये जैसे होंठ वैसे तुम मीठा भाषण करो, स्तनोंके समान दीर्घ जीवनके लिये पोषक रससे हमें पुष्ट करो, नासिकासे जैसा प्राणके द्वारा संरक्षण होता है वैसी हमारी सुरक्षा करो, कानोंके समान हमारे कथनका श्रवण करो।

२२० मानवधर्म- मीठा भाषण करो, पोषक अन्नपानसे पोषण करो, दीर्घायु बनो, सबके कथनोंको सुनो, बहुश्रुत बनो।

[२२१]

२२१ हस्तेव शक्तिमभि संददी नः क्षामेव नः समजतं रजांसि। इमा गिरो अश्विना युष्मयन्तीः क्ष्णोत्रेणेव स्वधितिं सं शिशीतम् ॥७॥

२२१ हस्ताऽइव। शक्तिम्। अभि। संददी इति सम्ऽददी। नः। क्षामाऽइव। नः। सम्। अजतम्। रजांसि। इमाः। गिरः। अश्विना। युष्मऽयन्तीः। क्ष्णोत्रेणऽइव। स्वऽधितिम्। सम्। शिशीतम् ॥७॥

२२१. अन्वयः- नः हस्ता इव शक्तिं अभि संददी, क्षामा इव नः रजांसि सं अजतम्, अश्विना! इमाः युष्मयन्तीः गिरः स्वधितिं क्ष्णोत्रेण इव, सं शिशीतम् ॥ ७ ॥

२२१ अर्थ- (नः हस्ता इव) हमें हाथोंके समान (शक्तिं अभि संददी) बल ठीक प्रकार दे दो, (क्षामा इव) द्यावापृथिवीके समान (नः रजांसि सं अजतं) हमें पर्याप्त स्थान भलीभाँति दो, हे अश्विदेवो! (इमाः) ये (युष्मयन्तीः गिरः) तुम्हारी कामना करनेवाले भाषण (स्वधितिं क्ष्णोत्रेण इव) कुल्हाड़ीको सानसे जिस तरह तीक्ष्ण करते हैं, वैसेही (सं शिशीतं) अच्छी तरह तेज—प्रभावशाली करदो!

२२१ भावार्थ- हाथीके समान हमें शक्ति दे दो, द्यावापृथिवीके समान हमें पर्याप्त स्थान दे दो, ये तुम्हारी स्तुतियाँ, शस्त्रको सानस तीक्ष्ण करती है उस तरह, तेजस्वी बना दो।

२२१. मानवधर्म — शक्तिमान् बनो, कार्यक्षेत्र बढा दो, अपने ज्ञानको तेजस्वी रखो तथा शस्त्रोंको भी तीक्ष्ण करो।

[२२२]

२२२ एतानि वामश्विना वर्धनानि ब्रह्म स्तोमं गृत्समदासो अक्रन्। तानि नरा जुजुषाणोप यातं बृहद्वदेम विदथे सुवीराः ॥८॥

२२२ एतानि। वाम्। अश्विना। वर्धनानि।
ब्रह्म। स्तोमम्। गृत्सऽमदासः। अक्रन्।
तानि। नरा। जुजुषाणा। उप। यातम्।
बृहत्। वदेम। विदथे। सुऽवीराः ॥८॥

२२२. अन्वयः- नरा अश्विना ! वां वर्धनानि एतानि ब्रह्म स्तोमं गृत्समदासः अक्रन्, तानि जुजुषाणा उप यातं, विदथे सुवीराः बृहत् वदेम ॥ ८ ॥

२२२. अर्थ- हे (नरा) नेता अश्विदेवो ! (वां वर्धनानि) तुम्हारे यशकी वृद्धि करनेवाले (एतानि) ये (ब्रह्म स्तोमं) ज्ञानदायक स्तोत्र (गृत्समदासः अक्रन्) गृत्समद परिवारके लोगोंने बनाये हैं। (तानि जुजुषाणा) उनका स्वीकार करते हुए तुम दोनों (उप यातं) हमारे समीप आओ, (विदथे) यज्ञमें (सुवीराः) अच्छे वीरोंसे युक्त बनकर हम (बृहत् वदेम) बहुत स्तुतिका गायन करें।

२२२. भावार्थ- हे नेता अश्विदेवो! तुम्हारा वर्णन करनेवाले ये स्तोत्र गृत्समद गोत्रके ऋषियोंने किये हैं। तुम इनका श्रवण करके हमारे पास आओ और जब तुम आओगे तब हम उत्तम वीर बनकर तुम्हारे बहुत स्तोत्र गायेंगे।

[२२३-२२४] (ऋ. २।४१।७-९) गायत्री।

२२३ गोमदू षु नासत्याऽश्वावद्यातमश्विना। वर्ती रुद्रा नृपाय्यम् ॥७॥

(१९१)

२२४ न यत् परो नान्तर आदधर्षद् वृषण्वसू ।
दुःशंसो मर्त्यो रिपुः ॥८॥

२२३ गोऽमत् । ऊँ इति । सु । नासत्या ।
अश्वऽवत् । यातम् । अश्विना ।
वर्तिः । रुद्रा । नृऽपाय्यम् ॥७॥

२२४ न । यत् । परः । न । अन्तरः ।
आऽदधर्षत् । वृषण्वसू इति वृषण्ऽवसू ।
दुःऽशंसः । मर्त्यः । रिपुः ॥८॥

२२३-२२४. अन्वयः– रुद्रा ! नासत्या अश्विना ! गोमत् अश्वावत् नृपाय्यं वर्तिः सु यातं, यत् वृषण्वसू ! दुःशंसः रिपुः मर्त्यः न परः न अन्तरः आ-दधर्षत् ॥ ७-८ ॥

२२३-२२४. अर्थ– हे (रुद्रा) शत्रुको रुलानेवाले (नासत्या) सत्यपालक (अश्विना) ! अश्विदेवो ! तुम दोनो (गोमत् अश्वावत्) गायों और घोडोंसे पूर्ण (नृपाय्यं वर्तिः) नेताओंसे पालन करनेयोग्य घरके पास (सु यातं) भलीभाँति जाओ, (यत्) जिसे (वृषण्वसू) हे धनकी वर्षा करनेवाले ! (दुःशंसः रिपुः) बुरी बातें कहनेवाला शत्रुभूत (मर्त्यः) मानव (न परः न अन्तरः) न पराया न अन्दरका हमारे ऊपर (आदधर्षत्) आक्रान्त करनेका साहस कर सके ।

२२३-२२४. भावार्थ– हे शत्रुको रुलानेवाले सत्यके रक्षक अश्विदेवो ! तुम दोनों गौओं और घोडोंसे युक्त तथा वीरों द्वारा पालन करनेयोग्य हमारे घरके पास आओ । जिससे, हे धन देनेवाले देवो ! हमारे अन्दरका अथवा बाहरका कोई भी दुष्ट शत्रु हमपर आक्रमण करनेके लिये समर्थ नहीं होगा ।

२२३-२२४. मानवधर्म— शत्रुको भयभीत करो, सत्यका पालन करो, घरमें बहुत गौवें और घोडे पालो । अपनी ऐसी सुरक्षा करो कि जिससे किसी तरहका शत्रु आक्रमण न कर सके ।

[२२५]

२२५ ता नु आ वोळ्हमश्विना रयिं पिशङ्गसंदृशम् ।
धिष्ण्या वरिवोविदम् ॥९॥

२२५ ता । नः । आ । वोळ्हम् । अश्विना ।
रयिम् । पिशङ्गऽसंदृशम् ।
धिष्ण्या । वरिवःऽविदम् ॥९॥

२२५ अन्वय:– धिष्ण्या अश्विना ! नः वरिवोविदं पिशङ्गसंदृशं रयिं ता आ वोळ्हम् ॥९॥

२२५ अर्थ– हे (धिष्ण्या अश्विना) उच्चपदके योग्य अश्विदेवो ! (नः) हमारे लिये (वरिवोविदं) धनको बढाने हारे (पिशङ्गसंदृशं) सुवर्णयुक्त होनेके कारण पीले रंगवाली (रयिं) संपत्तिको (ता आ वोळ्हं) वे तुम दोनों इधर ले आओ।

२२५ भावार्थ– हे प्रशंसायोग्य अश्विदेवो ! तुम दोनों हमें ऐसी संपत्ति दो कि जिसमें सुवर्ण बहुत हो और जो धनको बढानेमें समर्थ हो।

[२२६] (ऋ. ३।५८।१-९)
[२२६-२३४] गाथिनो विश्वामित्रः । त्रिष्टुप्।

२२६ धेनुः प्रत्नस्य काम्यं दुहानाऽन्तः पुत्रश्चरति दक्षिणायाः ।
आ द्योतनिं वहति शुभ्रयामोषसः स्तोमो अश्विनावजीगः ॥१॥

२२६ धेनुः । प्रत्नस्य । काम्यम् । दुहाना ।
अन्तः । पुत्रः । चरति । दक्षिणायाः ।
आ । द्योतनिम् । वहति । शुभ्रऽयामा ।
उषसः । स्तोमः । अश्विनौ । अजीगः ॥१॥

२२६ अन्वयः— प्रत्नस्य काम्यं दुहाना धेनुः, दक्षिणायाः पुत्रः अन्तः चरति, शुभ्रयामा द्योतनिं आ वहति, अश्विनौ स्तोमः उषसः अजीगः ॥ १ ॥

२२६ अर्थ— (प्रत्नस्य काम्यं) पुरातन इच्छाके अनुकूल (दुहाना धेनुः) दुही जाती हुई गौ और (दक्षिणायाः पुत्रः) दक्षिणामें दी गौका बछडा यज्ञस्थलके (अन्तः चरति) भीतर घूमता है (शुभ्रयामा) शुभ्रगतिवाला वीर (द्योतनिं आ वहति) ज्योतिको धारण करता है, (अश्विनौ) अश्विनौकी प्रशंसा करनेके लिए (स्तोमः) स्तोत्र (उषसः अजीगः) उषाके कारण जागृत हुआ है, उषःकालमें पढा जाता है।

बुद्धि हमारे पास न रहे, हममें उदारता रहे। हमने तैयार किया अन्न तुम यहां आकर सेवन करो।

२२७ मानवधर्म– मातापिताके समान जनताकी सुरक्षा करो। व्यापारियोंका अधिक लाभ कमानेका भाव न धारण करो, उदारताका भाव मनमें बढाओ॥

[२२८]

२२८ सुयुग्भिरश्वैः सुवृता रथेन दस्राविमं शृणुतं श्लोकमद्रेः।
किमङ्ग वां प्रत्यवर्तिं गमिष्ठाऽऽहुर्विप्रासो अश्विना पुराजाः॥२॥

२२८ सुयुक्ऽभिः। अश्वैः। सुऽवृता। रथेन।
दस्रौ। इमम्। शृणुतम्। श्लोकम्। अद्रेः।
किम्। अङ्ग। वाम्। प्रति। अवर्तिम्। गमिष्ठा।
आहुः। विप्रासः। अश्विना। पुराऽजाः॥२॥

२२८. अन्वयः– दस्रौ अश्विना! अद्रेः इमं श्लोकं सुवृता रथेन सुयुग्भिः अश्वैः शृणुतं; किं पुराजाः विप्रासः वां अवर्तिं प्रति गमिष्ठा आहुः अङ्ग? ॥२॥

२२८. अर्थ— हे (दस्रौ!) शत्रुविनाशक अश्विदेवो! (अद्रेः इमं श्लोकं) पर्वत (पर उठानेवाले इस सोम) के इस काव्यको (सुवृता रथेन) सुन्दर गतिवाले रथपरसे, (सुयुग्भिः अश्वैः) उत्तम शिक्षित घोडोंको जोतकर, आकर (शृणुतं) सुनते हैं (किं पुराजाः विप्रासः) कि, 'पूर्व कालमें उत्पन्न ज्ञानी लोग (वां) तुम्हें (अवर्तिं प्रति गमिष्ठा) दरिद्रताको हटानेके लिए जाते हैं' ऐसा (आहुः अंग) बतलाते हैं न?

२२८. भावार्थ— अश्विदेव शत्रुका नाश करते हैं, सुन्दर रथको उत्तम घोडे जोतकर यज्ञमें आते हैं, और सोमके काव्यको सुनते हैं, उस काव्यका भाव यह होता है कि अश्विदेव जनताकी 'दरिद्रताको दूर करनेके लिये जनताके समीप जाते हैं'।

२२८. मानवधर्म– जनताकी दरिद्रता दूर करनेका यत्न करना योग्य है।

[२२९]

२२९ आ मन्येथामा गतं कच्चिदेवैर्विश्वे जनासो अश्विना हवन्ते।
इमा हि वां गोऋजीका मधूनि प्र मित्रासो न ददुरुस्रो अग्रे ॥४॥

२२९ आ। मन्येथाम्। आ। गतम्। कत्। चित्। एवैः।
विश्वे। जनासः। अश्विना। हवन्ते॥
इमा। हि। वाम्। गोऽऋजीका। मधूनि।
प्र। मित्रासः। न। ददुः। उस्रः। अग्रे ॥४॥

२२९. अन्वयः– अश्विना ! आ मन्येथां, एवैः आ गतं, कच्चित्, विश्वे जनासः हवन्ते; उस्रः अग्रे इमा गोऋजीका मधूनि वां हि मित्रासः न प्र ददुः ॥४॥

२२९. अर्थ— (हे अश्विनौ) हे अश्विदेवो ! (आ मन्येथां) तुम (हमारे इस कर्मका) अनुमोदन करो (एवैः आगतं कच्चित) घोडोंसे अवश्य आओ, क्योंकि (विश्वे जनासः हवन्ते) सभी लोग तुम्हें बुलाते हैं, (उस्रः अग्रे) सूर्योदयके पहलेही (इमा गोऋजीका मधूनि) इन गोरसमिश्रित मीठे सोमरसोंको (वां हि) तुम्हेंही (मित्रासः न प्र ददुः) मित्रोंके सामने ये याजक देते हैं।

२२९. भावार्थ— अश्विदेवोंको सब लोग बुलाते हैं, वहां वे घोडोंपर सवार होकर प्रातःकालमें जांय और मित्र जैसे याजकोंसे दिये गोरसमिश्रित सोमरस पीवें।

[२३०]

२३० तिरः पुरू चिदश्विना रजांस्याङ्गूषो वां मघवाना जनेषु।
एह यातं पथिभिर्देवयानैर्दस्राविमे वां निधयो मधूनाम्॥५॥

२३० तिरः। पुरु। चित्। अश्विना। रजांसि।
आङ्गूषः। वाम्। मघऽवाना। जनेषु॥
आ। इह। यातम्। पथिऽभिः। देवऽयानैः।
दस्रौ। इमे। वाम्। निऽधयः। मधूनाम् ॥५॥

२३० अन्वयः- मघवाना अश्विना ! पुरू रजांसि चित् तिरः वां आंगूषः जनेषु दस्रौ ! देवयानैः पथिभिः इह आयातं इमे मधूनां निधयः वां ॥ ५ ॥

२३० अर्थ- हे (मघवाना) ऐश्वर्यसंपन्न अश्विदेवो ! (पुरू रजांसि चित् तिरः) बहुतसे रजोगुणोंको भी- पार करके (वां आंगूषः) तुम्हारी स्तुति (जनेषु) जनतामें हो जावे; हे (दस्रौ) शत्रुविनाशक वीरो ! (देवयानैः पथिभिः) देवता गण जिनपरसे चलते हैं ऐसे मार्गोंसे (इह आ यातं) इधर पधारो, क्योंकि (इमे मधूनां निधयः वां) ये मधुरसोंके भाण्डार तुम्हारे लिए रखे हैं ।

२३० भावार्थ— अश्विदेव, धूलीके मलिन स्थानोंसे पार होकर जनतामें स्तुतिको प्राप्त करें । शत्रुका नाश करें, देवोंके मार्गोंसे पधारें और मीठा अन्न सेवन करें ।

२३० मानवधर्म- धूलीके स्थानोंमें मनुष्य न रहें । स्तुतिके योग्य कार्य कर शत्रुका नाश करें। दिव्य मार्गसे आवें और जावें और मधुर सात्विक अन्नका सेवन करें ।

[२३१]

२३१ पु॒रा॒णमोकः॑ स॒ख्यं शि॒वं वां॑ यु॒वोर्न॑रा॒ द्रवि॑णं ज॒ह्नाव्या॑म् ।
पुनः॑ कृण्वा॒नाः स॒ख्या शि॒वानि॒ मध्वा॑ मदेम स॒ह नू स॑मा॒नाः ॥६॥

२३१ पु॒रा॒णम् । ओकः॑ । स॒ख्यम् । शि॒वम् । वा॒म् । यु॒वोः । न॒रा॒ । द्रवि॑णम् । ज॒ह्नाव्या॑म् ॥
पुन॒रिति॑ । कृ॒ण्वा॒नाः । स॒ख्या । शि॒वानि॑ । मध्वा॑ । म॒दे॒म॒ । स॒ह । नु । स॒मा॒नाः ॥६॥

२३१ अन्वयः- नरा ! वां पुराणं ओकः सख्यं शिवं, युवोः द्रविणं जह्नाव्यां; पुनः शिवानि सख्या कृण्वानाः समानाः सह नु मध्वा मदेम ॥ ६ ॥

२३१ अर्थ- हे (नरा) नेता अश्विदेवो ! (वां पुराणं ओकः) तुम्हारा पुराना वासस्थान तथा तुम्हारी (सख्यं शिवं) मित्रता कल्याणकारक है, (युवोः द्रविणं जह्नाव्यां) तुम्हारा धन नदीके पास रखा है; (पुनः) फिरसे (शिवानि सख्या) हितकारक मित्रता (कृण्वानाः) करते हुए (समानाः) समभावसे (सह नु) सब मिलकरही (मध्वा मदेम) मीठे रसपानसे हर्षित हों ।

२३१ भावार्थ– नेताओंका घर और उनका मित्रभाव कल्याणकारी हो, उनका मन सबका कल्याण करे। सब लोग समभावसे मीठे अन्नका सेवन करते रहें।

[२३२]

२३२ अश्विना वायुना युवं सुदक्षा नियुद्भिश्च सजोषसा युवाना।
नासत्या तिरोअह्न्यं जुषाणा सोमं पिबतमस्रिधा सुदानू ॥७॥

२३२ अश्विना । वायुना । युवम् । सुऽदक्षा ।
नियुत्ऽभिः । च । सऽजोषसा । युवाना ॥
नासत्या । तिरःऽअह्न्यम् । जुषाणा ।
सोमम् । पिबतम् । अस्रिधा । सुदानू इति सुऽदानू ॥७॥

२३२ अन्वयः— सुदानू अश्विना ! नासत्या ! सुदक्षा अस्रिधा युवाना युवं वायुना नियुद्भिः च सजोषसा तिरोअह्न्यं सोमं जुषाणा पिबतम् ॥ ७ ॥

२३२ अर्थ– हे (सुदानू) अच्छे दानी अश्विदेवो ! तुम (नासत्या) सत्य पूर्ण (सुदक्षा) अच्छी शक्तिसे युक्त (अस्रिधा) बिना किसी क्षतिके (युवाना युवं) नित्य युवक तुम दोनों (वायुना नियुद्भि: च) वायु और घोडोंके साथ (सजोषसा) प्रीतिपूर्वक (तिरोअह्न्यं सोमं) कल निचोडकर रखे सोमको (जुषाणा पिबतं) आदरपूर्वक पान करो।

२३२ भावार्थ– अच्छे दानी बनो, सत्यका पालन करो, कार्यमें क्षति न रखो, तरुण जैसे उत्साही वीर बनो, घोडोंपर सवार होकर वायुवेगसे आओ और कल तैयार किये सोमरसका पान करो।

२३२ मानवधर्म– दान दो, सत्यका पालन करो, प्रत्येक कार्य दक्षताके साथ करो, उसमें त्रुटी रहने न दो, वीरताका धारण करो।

[२३३]

२३३ अश्विना परि वामिषः पुरूचीरीयुर्गीर्भिर्यतमाना अमृध्राः।
रथो ह वामृतजा अद्रिजूतः परि द्यावापृथिवी याति सद्यः ॥८॥

२३३ आश्विना । परि॑ । वा॒म् । इषः॑ । पु॒रू॒चीः॑ ।
ई॒यु॒ः । गीः॒ऽभिः॑ । यत॑मानाः । अमृ॑ध्राः ॥
रथः॑ । ह॒ । वा॒म् । ऋ॒त॒ऽजाः । अद्रि॑ऽजूतः ।
परि॑ । द्यावा॑पृथि॒वी इति॑ । या॒ति॒ । स॒द्यः ॥८॥

२३३ अन्वयः– आश्विना ! पुरूचीः इषः वां परि ईयुः, यतमानाः अमृध्राः गीर्भिः; वां ऋतजाः अद्रिजूतः रथः ह सद्यः द्यावा-पृथिवी परि याति ॥ ८ ॥

२३३ अर्थ– हे अश्विदेवो ! (पुरूचीः इषः) बहुतसी अन्नसामग्रियाँ (वां परि ईयुः) तुम्हें चारों ओरसे प्राप्त होती हैं, (यतमानाः) प्रयत्नशील लोग (अमृध्राः) किसी प्रकारकी क्षति या रुकावट न पाते हुए (गीर्भिः) अपने भाषणोंमें तुम्हारी स्तुति करते हैं; (वां ऋतजाः), तुम दोनोंका सत्यके लिये उत्पन्न (अद्रिजूतः रथः ह) पर्वतकी लकडियोंसे बनाया रथ सचमुच (सद्यः द्यावापृथिवी) तुरन्त भूलोक तथा द्युलोकके (परि याति) इर्दगिर्द प्रयाण करता है ।

[२३४]

२३४ आश्विना मधुषुत्तमो युवाकुः सोम॒स्तं पा॑तमा ग॑तं दुरो॒णे ।
रथो॑ ह वां॒ भूरि॒ वर्पः॒ करि॑क्रत् सु॒ताव॑तो निष्कृ॒तमा-
ग॑मिष्ठः ॥९॥

२३४ आश्विना । मधु॒सुत्ऽतमः । यु॒वाकुः॑ । सोमः॑ ।
तम् । पा॒त॒म् । आ । ग॒त॒म् । दु॒रो॒णे ॥
रथः॑ । ह॒ । वा॒म् । भूरि॑ । वर्पः॑ । करि॑क्रत् ।
सु॒तऽव॑तः । निः॒ऽकृ॒तम् । आऽग॑मिष्ठः ॥९॥

२३४ अन्वयः– आश्विना ! युवाकुः सोमः मधुषुत्तमः, दुरोणे आगतं, तं पातं, वां रथः ह भूरि वर्पः करिक्रत् सुतावतः निष्कृतं आ गमिष्ठः ॥ ९ ॥

२३४ अर्थ– हे अश्विदेवो ! (युवाकुः सोमः), तुम्हारी कामना पूर्ण करता हुआ सोम (मधुषुत्तमः) मीठेपनको खूब बढाता है, इसलिए (दुरोणे आगतं) घरपर पधारकर, (तं पातं) उसका पान करो; (वां रथः ह) तुम्हारा रथ अवश्यही (भूरि वर्पः करिक्रत्) बहुत स्वीकरणीय तेज उत्पन्न करता हुआ (सुतावतः) निचोडनेवालेके (निष्कृतं आ गमिष्ठः) घर अत्यधिक रूपमें आ जाता है ।

[२३५] (ऋ० ४।१५।९—१०)

(२३५-२४३) वामदेवो गौतमः । गायत्री ।

२३५ एष वां देवावश्विना कुमारः साहदेव्यः ।
दीर्घायुरस्तु सोमकः ॥९॥

२३५ एषः । वाम् । देवौ । अश्विना ।
कुमारः । साहऽदेव्यः ॥
दीर्घऽआयुः । अस्तु । सोमकः ॥९॥

२३५ अन्वयः–देवौ अश्विना ! एषः सोमकः साहदेव्यः कुमारः वां दीर्घायुः अस्तु ॥९॥

२३५ अर्थ–हे (देवौ) देवतारूपी अश्विदेवो ! (एषः सोमकः) यह सोमक नामवाला (साहदेव्यः कुमारः) सहदेवका पुत्र (वां) तुम्हारी कृपासे (दीर्घायुः अस्तु) दीर्घ जीवनवाला बन जाय ।

[२३६]

२३६ तं युवं देवावश्विना कुमारं साहदेव्यम् ।
दीर्घायुषं कृणोतन ॥१०॥

२३६ तम् । युवम् । देवौ । अश्विना ।
कुमारम् । साहऽदेव्यम् ॥
दीर्घऽआयुषम् । कृणोतन ॥१०॥

२३६ अन्वयः– देवौ अश्विना ! युवं तं साहदेव्यं कुमारं दीर्घायुषं कृणोतन ॥१०॥

२३६ अर्थ–हे द्योतमान अश्विदेवो । (युवं) तुम दोनों (तं) उस सहदेवके पुत्रको (दीर्घायुषं कृणोतन) दीर्घ जीवनवाला बना दो ।

[२३७] (ऋ० ४।४५।१–७) जगती, ७ त्रिष्टुप् ।

२३७ एष स्य भानुरुदियर्ति युज्यते रथः परिज्मा दिवो अस्य
सानवि । पृक्षासो अस्मिन् मिथुना अधि त्रयो दृतिस्तु-
रीयो मधुनो वि रप्शते ॥१॥

२३७ एषः । स्यः । भानुः । उत् । इयर्ति । युज्यते । रथः । परिऽज्मा । दिवः । अस्य । सानवि ॥ पृक्षासः । अस्मिन् । मिथुनाः । अधि । त्रयः । दृतिः । तुरीयः । मधुनः । वि । रप्शते ॥१॥

२३७ अन्वयः—स्यः एषः भानुः उत् इयर्ति, अस्य दिवः सानवि परिज्मा रथ, युज्यते; अस्मिन् अधि त्रयः मिथुनाः पृक्षासः तुरीयः मधुनः दृतिः वि रप्शते ॥ १ ॥

२३७ अर्थ- (स्यः एषः) वह यह (भानुः उत् इयर्ति) सूर्य ऊपर आ रहा है, (अस्य दिवः सानवि) इस द्युलोकके ऊँचे विभागमें (परिज्मा रथः युज्यते) चारों ओर जानेवाला रथ जोता जाता है; (अस्मिन् अधि) इसपर (त्रयः मिथुनाः पृक्षासः) तीन युगल अन्न रखे हुए हैं, (तुरीयः) चौथा (मधुनः दृतिः) मधुका पात्र (वि रप्शते) विविध प्रकारसे विराजित होता है।

[२३८]

२३८ उद् वां पृक्षासो मधुमन्त ईरते रथा अश्वास उषसो व्युष्टिषु । अपोर्णुवन्तस्तम आ परीवृतं स्वर्ण शुक्रं तन्वन्त आ रजः ॥२॥

२३८ उत् । वाम् । पृक्षासः । मधुऽमन्तः । ईरते । रथाः । अश्वासः । उषसः । विऽउष्टिषु ॥ अपऽऊर्णुवन्तः । तमः । आ । परिऽवृतम् । स्वः । न । शुक्रम् । तन्वन्तः । आ । रजः ॥२॥

२३८ अन्वयः— उषसः व्युष्टिषु मधुमन्तः पृक्षासः अश्वासः रथाः परिवृतं तमः आ अपऊर्णुवन्तः, शुक्रं रजः स्वः न आतन्वन्तः वां उत् ईरते ॥ २ ॥

२३८ अर्थ- (उषसः व्युष्टिषु) उषाओंके निकल आनेपर (मधुमन्तः पृक्षासः) मीठासससे युक्त अन्न, (अश्वासः रथाः) घोडे तथा रथ (परिवृतं तमः) चारों ओरसे घिरा हुआ अंधकार (आ अपऊर्णुवन्तः) पूर्णतया दूर हटाते हुए, (शुक्रं रजः) दीप्त तेजको (स्वः न) सूर्यके समान (आतन्वन्तः) चारों ओर फैलाते हुए (वां उत् ईरते) तुम दोनोंको ऊपर उठाते हैं।

[२३९]

२३९ मध्वः पिबतं मधुपेभिरासभिरुत प्रियं मधुने युञ्जाथां रथम् । आ वर्तनिं मधुना जिन्वथस्पथो दृतिं वहेथे मधुमन्तमश्विना ॥३॥

२३९ मध्वः । पिबतम् । मधुऽपेभिः । आसऽभिः । उत । प्रियम् । मधुने । युञ्जाथाम् । रथम् ॥ आ । वर्तनिम् । मधुना । जिन्वथः । पथः । दृतिम् । वहेथे इति । मधुऽमन्तम् । अश्विना ॥३॥

२३९ अन्वयः— अश्विना ! मधुपेभिः आसभिः मध्वः पिबतं, उत प्रियं रथं मधुने युञ्जाथां, वर्तनिं पथः मधुना आ जिन्वथः, मधुमन्तं दृतिं वहेथे॥३॥

२३९ अर्थ— हे अश्विदेवो ! (मधुपेभिः आसभिः) मीठे रसको पीनेवाले मुखोंसे (मध्वः पिबतं) मीठा रस पीओ, (उत) और (प्रियं रथं) प्यारे रथको (मधुने युञ्जाथां) मधु पानेके लिये घोडोंसे जोत दो, (वर्तनिं पथः) चरतकके मार्गको (मधुना आ जिन्वथः) मधुसे पूरी तरह भर देते हो (मधुमन्तं दृतिं वहेथे) मीठास भरे पात्रको तुम दोनों ढोते हो ।

२३९ टिप्पणी— 'दृतिः'=यह चमडेका पात्र हैं, पखाल, मशक । सोमका रस इस चर्मपात्रमें भरकर रखते थे ऐसा इससे पता लगता है । मधुमन्तं दृतिं । मीठा सोमरस जिसमें भरा है ऐसा दृति, पखाल या मशक ।

[२४०]

२४० हंसासो ये वां मधुमन्तो अस्रिधो हिरण्यपर्णा उहुव उषर्बुधः । उदप्रुतो मन्दिनो मन्दिनिस्पृशो मध्वो न मक्षः सवनानि गच्छथः ॥४॥

२४० हंसासः । ये । वाम् । मधुऽमन्तः । अस्रिधः । हिरण्यऽपर्णाः । उहुवः । उषःऽबुधः ॥ उदऽप्रुतः । मन्दिनः । मन्दिऽनिस्पृशः । मध्वः । न । मक्षः । सवनानि । गच्छथः ॥४॥

२४० अन्वयः— ये हंसासः मधुमन्तः अस्रिधः हिरण्यपर्णाः, उषर्बुधः, उहुवः, उदप्रुतः, मन्दिनः मन्दिनिस्पृशः वां; मक्षः मध्वः न, सवनानि गच्छथः ॥ ४ ॥

२४० अर्थ— (ये) जो (हंसासः, मधुमन्तः) हंसतुल्य, मीठाससे पूर्ण, (अस्रिधः हिरण्यपर्णाः) द्रोह न करनेवाले, सुवर्णके समान चमकनेवाले पत्तोंसे युक्त (उषर्बुधः उहुवः) प्रातःकाल जागनेवाले, दूरतक पहुँचानेवाले, (उदप्रुतः मन्दिनः) वेगसे जानेके कारण पसीनेके बूँदोंको टपकानेवाले, आनन्दित (मन्दिनिस्पृशः) हर्षित करनेवालेको छूनेवाले घोडे (वां) तुम्हें ले चलते हैं, इसलिए (मक्षः मध्वः न) मधु मक्खियाँ मधुकी ओर जैसे चली जाती हैं, वैसेही (सवनानि गच्छथः) हमारे सवनोंमें तुम जाते हो।

[२४१]

२४१ स्वश्वासो मधुमन्तो अग्नयं उस्रा जरन्ते प्रति वस्तोरश्विना । यन्निक्तहस्तस्तरणिर्विचक्षणः सोमं सुषाव मधुमन्तमद्रिभिः ॥५॥

२४१ सुऽअश्वासः । मधुऽमन्तः । अग्नयः ।
उस्रा । जरन्ते । प्रति । वस्तोः । अश्विना ॥
यत् । निक्तऽहस्तः । तरणिः । विऽचक्षणः ।
सोमम् । सुसाव । मधुऽमन्तम् । अद्रिऽभिः ॥५॥

२४१ अन्वयः– यत् विचक्षणः तरणिः निक्तहस्तः मधुमन्तं सोमं अद्रिभिः सुषाव, प्रति वस्तोः मधुमन्तः स्वश्वासः अग्नयः उस्रा अश्विना जरन्ते ॥५॥

२४१ अर्थ— (यत्) जब (विचक्षणः तरणिः) बुद्धिमान् और कार्य पूरा करनेवाला मानव (निक्तहस्तः) हाथोंको स्वच्छ धोकर (मधुमन्तं सोमं सुषाव) मीठे सोम वनस्पतिको निचोड चुका हो, तब (प्रति वस्तोः) हर प्रातःकाल (मधुमन्तः स्वश्वासः अग्नयः) मीठाससे पूर्ण, अच्छे हिंसा-रहित कार्योंसे युक्त अग्निसमान दीप्तिमान् अग्रणी लोग (उस्रा अश्विना जरन्ते) साथ रहनेवाले अश्विदेवोंकी स्तुति करते हैं।

[२४२]

२४२ आकेनिपासो अहंभिर्दविध्वतः स्वर्ण शुक्रं तन्वन्त आ रजः । सूरश्चिदश्वान् युयुजान ईयते विश्वाँ अनु स्वधया चेतथस्पथः ॥६॥

२४२ आकेऽनिपासः । अहंऽभिः । दविध्वतः ।
स्वः । न । शुक्रम् । तन्वन्तः । आ । रजः ॥
सूरः । चित् । अश्वान् । युयुजानः । ईयते ।
विश्वान् । अनु । स्वधया । चेतथः । पथः ॥६॥

२४२ अन्वय.— शुक्र रज स्व न आ-तन्वन्तः अहभि दविध्वत. आकेनिपास., अश्वान् युयुजान' सूरः चित् ईयते, स्वधया विश्वान् पथ. अनु चेतथः ॥ ६ ॥

२४२ अर्थ— (शुक्र रज) प्रदीप्त तेजको (स्व न) सूर्यके समान (आ तन्वन्त) फैलाते हुए (अहभि) दिनोंसे (दविध्वत) अँधियारीको हटाते हुए (आकेनिपासः) समीप आ गिरनेवाले किरण होते हैं (अश्वान् युयुजान) घोडोंको जोतता हुआ (सूर चित् ईयते) विद्वान् भी सचार करता है, (स्वधया) स्वधासे-अपनी धारणाशक्तिसे (विश्वान् पथ) सभी मार्गोंको तुम (अनु चेतथ·) अनुक्रमसे जतलाते हो ।

[२४३]

२४३ प्र वामवोचमश्विना धियंधा रथः स्वश्वो अजरो यो अस्ति । येन सद्यः परि रजांसि याथो हविष्मन्तं तरणिं भोजमच्छ ॥७॥

२४३ प्र । वाम् । अवोचम् । अश्विना । धियम्ऽधाः ।
रथः । सुऽअश्वः । अजरः । यः । अस्ति ॥
येन । सद्यः । परि । रजांसि । याथः ।
हविष्मन्तम् । तरणिम् । भोजम् । अच्छ ॥७॥

•२४३ अन्वय – अश्विना ! धियधा वां प्र अवोच, य स्वश्वः अजर रथ अस्ति, येन हविष्मन्त तरणिं भोज अच्छ सद्य रजांसि परि याथ ॥ ७ ॥

२४३ अर्थ– हे अश्विदेवो ! (धियंधाः) बुद्धिको धारण करनेवाला मैं (वां [illegible] अवोचं) तुम्हारे संबंधमें बहुत कुछ कह चुका हूँ, (यः स्वश्वः) जो अच्छे घोडोंवाला (अजरः रथः अस्ति) जीर्ण न होनेवाला रथ है, (येन) जिसपरसे (हविष्मन्तं तरणिं) हविसे युक्त तारण करनेवाले (भोजं अच्छ) तथा भोजन देनेवाले [यज्ञ]के प्रति (सद्यः) तुरन्तही (रजांसि परि याथः) लोकोंको पारकर तुम चले जाते हो ।

[२४४] (ऋ० ४।४३।१–७)

[२४४–२५७] पुरुमीळ्हाजमीळ्हौ सौहोत्रौ । अश्विनौ । त्रिष्टुप् ।

२४४ क उ श्रवत् कतमो यज्ञियानां वन्दारु देवः कतमो जुषाते । कस्येमां देवीममृतेषु प्रेष्ठां हृदि श्रेषाम सुष्टुतिं सुहव्याम् ॥१॥

२४४ कः । ऊँ इति । श्रवत् । कतमः । यज्ञियानाम् । वन्दारु । देवः । कतमः । जुषाते ॥ कस्य । इमाम् । देवीम् । अमृतेषु । प्रेष्ठाम् । हृदि । श्रेषाम । सुऽस्तुतिम् । सुऽहव्याम् ॥१॥

२४४ अन्वयः– यज्ञियानां कतमः कः उ श्रवत् कतमः देवः वन्दारु जुषाते इमां सुष्टुतिं सुहव्यां प्रेष्ठां अमृतेषु कस्य हृदि श्रेषाम ॥१॥

२४४ अर्थ—(यज्ञियानां कतमः कः उ) पूजनीय देवोंमेंसे कौनसा देव (श्रवत्) हमारी प्रार्थना सुन लेगा ? (कतमः देवः) इनमेंसे भला कौनसा देव (वन्दारु जुषाते) वन्दनीय स्तोत्रका मनःपूर्वक सेवन करता है ? (इमां) इस (सुष्टुतिं सुहव्यां) सुन्दर अच्छी (प्रेष्ठां) अत्यन्त प्रिय स्तुति (अमृतेषु) अमरोंमें (कस्य हृदि श्रेषाम) भला किसके लिये हम करें ?

[२४५]

२४५ को मृळाति कतम आगमिष्ठो देवानामु कतमः शंभविष्ठः। रथं कमाहुर्द्रवदश्वमाशुं यं सूर्यस्य दुहिताऽवृणीत ॥२॥

२४५ कः । मृळाति । कतमः । आऽगमिष्ठः ।
देवानाम् । ऊँ इति । कतमः । शम्ऽभविष्ठः ॥
रथम् । कम् । आहुः । द्रवत्ऽअश्वम् । आशुम् ।
यम् । सूर्यस्य । दुहिता । अवृणीत ॥२॥

२४५ अन्वयः- कः मृळाति ? देवानां कतमः आगमिष्ठः ? कतमः उं शंभविष्ठः ? कं आशुं द्रवदश्वं रथं आहुः ? सूर्यस्य दुहिता यं अवृणीत ॥२॥

२४४ अर्थ— (कः मृळाति ?) कौन सुख देता है ? (देवानां) देवोंमें (कतमः आगमिष्ठः) भला कौनसा इधर आनेमें अत्यन्त आतुरता दर्शाता है ? (कतमः उ शंभविष्ठः) कौनसा देव सचमुच अत्यन्त सुखदायक है ? (कं आशुं द्रवत् अश्वं रथं आहुः) किसे भला शीघ्रगामी और दौडनेवाले घोडोंसे युक्त रथ है ऐसा कहते हैं (सूर्यस्य दुहिता) सूर्यकी कन्या (यं अवृणीत) जिसे स्वीकार कर चुकी ।

[२४६]

२४६ मक्षू हि ष्मा गच्छथ ईवतो द्यूनिन्द्रो न शक्तिं परित-
क्म्यायाम्। दिव आजाता दिव्या सुपर्णा कया शचीनां
भवथः शचिष्ठा ॥३॥

२४६ मक्षु । हि । स्म । गच्छथः । ईवतः । द्यून् ।
इन्द्रः । न । शक्तिम् । परिऽतक्म्यायाम् ॥
दिवः । आऽजाता । दिव्या । सुऽपर्णा ।
कया । शचीनाम् । भवथः । शचिष्ठा ॥३॥

२४६ अन्वयः- दिव्या सुपर्णा ! दिवः आ जाता ! शचीनां कया शचिष्ठा भवथः, परितक्म्यायां इन्द्रः न शक्तिं, ईवतः द्यून् मक्षु हि गच्छथः स्म ॥३॥

२४६ अर्थ- हे (दिव्या सुपर्णा !) दिव्य तथा सुन्दर पर्णवाले और (दिवः आ जाता) द्युलोकसे आनेवाले अश्विदेवो ! (शचीनां कया) अनेक शक्तियोंमेंसे भला किस शक्तिके कारण तुम (शचिष्ठा भवथः) अत्यन्त शक्तिमान् बन जाते हो, (परितक्म्यायां) रात्रिमें (इन्द्रः न) इन्द्रके तुल्य तुम (शक्तिं) बल दर्शाते हो, (ईवतः द्यून्) आ जाते हुए दिनोंमें अर्थात् आगामी कालमें होनेवाले कार्योंके प्रति (मक्षु हि) बहुतही शीघ्र तुम (गच्छथः स्म) जाते हो ।

२४६ मानवधर्म– रात्रीके समय अन्धेरा होनेके कारण बहुत कष्ट उत्पन्न होनेकी संभावना है, अतः उसी समय वीरोंको अपना बल प्रदर्शित करना चाहिये। वीर रात्रीके समय पहारा करें और दूसरोंकी सुरक्षा करें।

[२४७]

२४७ का वां भूदुपमातिः कया न आश्विना गमथो हूयमाना।
को वां महश्चित् त्यजसो अभीक उरुष्यतं माध्वी दस्रा न ऊती ॥४॥

२४७ का। वाम्। भूत्। उपऽमातिः। कया। नः।
आ। अश्विना। गमथः। हूयमाना ॥
कः। वाम्। महः। चित्। त्यजसः। अभीके।
उरुष्यतम्। माध्वी इति। दस्रा। नः। ऊती ॥४॥

२४७ अन्वयः– माध्वी! दस्रा! अश्विना! का उपमातिः वां भूत् कया हूयमाना नः आगमथः; वां अभीके कः महः त्यजसः चित्, ऊती नः उरुष्यतम् ॥४॥

२४७ अर्थ– हे (माध्वी! दस्रा!) मीठे स्वभाववाले तथा शत्रुविनाशक अश्विदेवो! (का उपमातिः) भला कौनसी उपमा (वां भूत्) तुम्हारे [गुणोंका वर्णन करनेके] लिए पर्याप्त होगी? (कया हूयमाना) भला किस स्तुतिसे बुलानेपर (नः आगमथः) हमारे पास तुम आओगे? (वां अभीके) तुम्हारे (महः त्यजसः चित्) बडे भारी क्रोधको (कः) भला कौन सहन करेगा? (ऊती नः उरुष्यतं) रक्षाकी आयोजनासे हमें सुरक्षित रखो।

२४७ मानवधर्म– जनताकी सुरक्षाकी आयोजना करो।

[२४८]

२४८ उरु वां रथः परि नक्षति द्यामा यत् समुद्रादभि वर्तते वाम्। मध्वा माध्वी मधु वां प्रुषायन् यत् सीं वां पृक्षो भुरजन्त पक्वाः ॥५॥

२४८ उरु । वाम् । रथः । परि । नक्षति । द्याम् ।
आ । यत् । समुद्रात् । अभि । वर्तते । वाम् ॥
मध्वा । माध्वी इति । मधु । वाम् । प्रुषायन् ।
यत् । सीम् । वाम् । पृक्षः । भुरजन्त । पक्वाः ॥५॥

२४८ अन्वय – वां उरु रथः यत् समुद्रात् वां आ अभि वर्तते, द्यां परि नक्षति, माध्वी ! वां मधु मध्वा प्रुषायन्, यत् वां पृक्षः सीं पक्वाः भुरजन्त॥५॥

२४८ अर्थ– (वां उरु रथ) तुम दोनोंका विशाल रथ (यत्) जब (समुद्रात् वां आ अभिवर्तते) समुद्रमेंसे–अन्तरिक्षमेंसे तुम्हारी ओर आता है, तब (द्यां परि नक्षति) द्युलोकमें चारों ओर चला जाता है, हे (माध्वी) मीठे अश्विदेवो! (वां मधु) तुम्हारे मीठे रस हमको (मध्वा प्रुषायन्) मीठाससे भर देते हैं (यत्) जब (वां पृक्ष) तुम्हारे अन्नोंको (सीं) सभी ओरसे (पक्वाः भुरजन्त) पके धान्य प्राप्त होते हैं।

[२४९]

२४९ सिन्धुर्ह वां रसया सिञ्चदश्वान् घृणा वयोऽरुषासः परि ग्मन्। तदू षु वामजिरं चेति यानं येन पती भवथः सूर्यायाः ॥६॥

२४९ सिन्धुः । ह । वाम् । रसया । सिञ्चत् । अश्वान् ।
घृणा । वयः । अरुषासः । परि । ग्मन् ॥
तत् । ऊँ इति । सु । वाम् । अजिरम् । चेति । यानम् ।
येन । पती इति । भवथः । सूर्यायाः ॥६॥

२४९ अन्वय – वां अश्वान् सिन्धुः ह रसया सिञ्चत्, अरुषासः घृणा वयः परि ग्मन्; वां तत् अजिरं यानं सु चेति; येन सूर्यायाः पती भवथ ॥६॥

२४९ अर्थ— (वां अश्वान्) तुम्हारे घोडोंको (सिन्धु ह) बडे भारी नदीने (रसया सिञ्चत्) रसीले जलसे सिञ्चित किया है, (अरुषास) लाल रँगवाले (घृणा वय) दीप्तिमान् और पक्षीके तुल्य वेगवान् घोडे (परि ग्मन्) चारों ओर चले गये हैं, (वां तत्) तुम्हारा वह (अजिर यान) शीघ्रगामी रथ (सु चेति) भलीभाँति ज्ञात हो गया है, (येन) जिसकी सहायतासे (सूर्याया पती भवथः) तुम दोनों सूर्याके पति—पालन कर्ता बनते हो।

[२५०]

२५० इहेह यद्वां समना पपृक्षे सेयमस्मे सुमतिर्वाजरत्ना ।
उरुष्यतं जरितारं युवं ह श्रितः कामो नासत्या युवद्रिक्
॥७॥

२५० इहऽइह । यत् । वाम् । समना । पपृक्षे ।
सा । इयम् । अस्मे इति । सुऽमतिः । वाजऽरत्ना ॥
उरुष्यतम् । जरितारम् । युवम् । ह ।
श्रितः । कामः । नासत्या । युवद्रिक् ॥७॥

२५० अन्वयः- वाजरत्ना ! नासत्या ! यद् समना वां पपृक्षे, इयं सा सुमतिः अस्मे; जरितारं युवं उरुष्यतं, कामः युवद्रिक् ह श्रितः ॥७॥

२५० अर्थ- हे (वाजरत्ना नासत्या) बलरूप धन अपने पास रखनेवाले अश्विदेवो ! (यद् समना वां) जो समान मनवाले तुम्हें (पपृक्षे) मैं अन्न अर्पण करता हूँ, (इयं सा सुमतिः) यही वह अच्छी बुद्धि है, इससे (अस्मे) हमें (सुख हो); .(जरितारं युवं उरुष्यतं) प्रशंसकको तुम दोनों सुरक्षित रखो, (कामः) हमारी इच्छा (युवद्रिक् ह श्रितः) तुम्हारी ओरही जा रही है ।

२५० मानवधर्म- बलरूप रत्नसे सौभ्यर्य बढाना चाहिये । एक विचार-वालोंका संगठन करना चाहिये । सबको पर्याप्त अन्न मिलना चाहिये ।

[२५१] (ऋ. ४।४४।१—७)

२५१ तं वां रथं वयमद्या हुवेम पृथुज्रयमश्विना संगतिं गोः ।
यः सूर्यां वहति वन्धुरायुर्गिर्वाहसं पुरुतमं वसूयुम् ॥१॥

२५१ तम् । वाम् । रथम् । वयम् । अद्य । हुवेम ।
पृथुऽज्रयम् । अश्विना । सम्ऽगतिम् । गोः ॥
यः । सूर्याम् । वहति । वन्धुरऽयुः ।
गिर्वाहसम् । पुरुऽतमम् । वसुऽयुम् ॥१॥

अश्विनौ दे० २७

२५१ अन्वयः– अश्विना ! वां तं वसुयुं, पुरुतमं गिर्वाहसं गोः संगतिं पृथुज्रयं रथं अद्य हुवेम; यः वन्धुरायुः सूर्यां वहति ॥१॥

२५१ अर्थ— हे अश्विदेवो ! (वां तं) तुम्हारे उस (वसुयुं) धनसे पूर्ण (पुरुतमं) विशाल (गिर्वाहसं) भाषणोंको दूरतक पहुँचानेवाले (गोः संगतिं) गायोंसे युक्त करनेवाले (पृथुज्रयं रथं) विख्यात वेगवाले रथको (अद्य हुवेम) आज बुलाते हैं, (यः वन्धुरायुः) जो कठवाला होकर (सूर्यां वहति) सूर्याको इष्ट स्थानपर पहुँचाता है ।

२५१ मानवधर्म– गायोंको प्राप्त करना चाहिये । वेगवान् रथ वीरोंके पास रहे ।

[२५२]

२५२ युवं श्रियमश्विना देवता तां दिवो नपाता वनथः
शचीभिः । युवोर्वपुरभि पृक्षः सचन्ते वहन्ति यत्
ककुहासो रथे वाम् ॥२॥

२५२ युवम् । श्रियम् । अश्विना । देवता । ताम् ।
दिवः । नपाता । वनथः । शचीभिः ॥
युवोः । वपुः । अभि । पृक्षः । सचन्ते ।
वहन्ति । यत् । ककुहासः । रथे । वाम् ॥२॥

२५२ अन्वयः– दिवः नपाता अश्विना ! देवता युवं तां श्रियं शचीभिः वनथः; यत् ककुहासः वां रथे वहन्ति पृक्षः युवोः वपुः अभि सचन्ते ॥२॥

२५२ अर्थ— हे (दिवः नपाता) द्युलोकको न गिरानेवाले अश्विदेवो ! (देवता युवं) देवतारूपी तुम दोनों (तां श्रियं) उस शोभाको (शचीभिः वनथः) शक्तियोंसे प्राप्त करते हो, (यत्) जब (ककुहासः) बड़े भारी घोड़े (वां) तुम्हें (रथे वहन्ति) रथपर बैठनेपर इष्ट स्थानपर पहुँचाते हैं, तब (पृक्षः) अन्न (युवोः वपुः अभि सचन्ते) तुम दोनोंके शरीरको प्राप्त होते हैं, पुष्ट करते हैं ।

२५२ मानवधर्म— शक्तिसे प्राप्त होनेवाली शोभा प्राप्त करनी चाहिये । ऐसे अन्नका सेवन करना चाहिये कि जिससे शरीरका बल बढ़ता जाय ।

[२५३]

२५३ को वामद्या करते रातहव्य ऊतये वा सुतपेयाय वाऽर्कैः।
ऋतस्य वा वनुषे पूर्व्याय नमो येमानो अश्विना ववर्तत्॥३

२५३ कः । वाम् । अद्य । करते । रातऽहव्यः ।
ऊतये । वा । सुतऽपेयाय । वा । अर्कैः ॥
ऋतस्य । वा । वनुषे । पूर्व्याय ।
नमः । येमानः । अश्विना । आ । ववर्तत् ॥३॥

२५३ अन्वयः— अश्विना ! रातहव्यः कः अर्कैः वां अद्य ऊतये वा सुतपेयाय वा करते ? पूर्व्याय ऋतस्य वनुषे वा नमः येमानः आ ववर्तत् ॥३॥

२५३ अर्थ— हे अश्विदेवो ! (रातहव्यः कः) हविर्भाग दे चुकनेपर भला कौन (अर्कैः) पूजनीय साधनोंसे (वां अद्य) तुम्हारी आज (ऊतये वा सुतपेयाय वा) संरक्षणके लिए या निचोडे हुए सोमको पीनेके लिए (करते) प्रशंसा करता है ? (पूर्व्याय ऋतस्य वनुषे वा) पूर्वकालीन सत्यधर्मकी प्राप्तिके लिए (नमः येमानः) नमन करता हुआ (आ ववर्तत) अपनी ओर तुम्हें कौन प्रवृत्त करता है ?

[२५४]

२५४ हिरण्ययेन पुरुभू रथेनेमं यज्ञं नासत्योप यातम् ।
पिबाथ इन्मधुनः सोम्यस्य दधथो रत्नं विधते जनाय॥४

२५४ हिरण्ययेन । पुरुभू इति पुरुऽभू । रथेन ।
इमम् । यज्ञम् । नासत्या । उप । यातम् ॥
पिबाथः । इत् । मधुनः । सोम्यस्य ।
दधथः । रत्नम् । विधते । जनाय ॥४॥

२५४ अन्वयः— पुरुभू नासत्या ! हिरण्ययेन रथेन इमं यज्ञं उप यातं, मधुनः सोमस्य पिबाथः इत्, विधते जनाय रत्नं दधथः ॥४॥

२५४ अर्थ— हे (पुरुभू नासत्या) बहुत प्रकारसे अपना अस्तित्व ज़तलानेहारे तथा सत्यपालक अश्विदेवो ! (हिरण्ययेन रथेन) सुवर्णमय रथपरसे (इमं यज्ञं) इस यज्ञके (उप यातं) समीप आओ, (मधुनः सोमस्य)

१४

मीठे सोमरसको (पिबाथः इत) पान करो और (विधते जनाय) पुरुषार्थ करनेहारे लोगोंको (रत्नं दधथः) रत्न दे डालो ।

[२५५]

२५५ आ नों यातं दिवो अच्छां पृथिव्या हिंरण्ययेंन सुवृता रथेंन । मा वामन्ये नि यंमन् देवयन्तः सं यद् दुदे नाभिः पूर्व्या वाम् ॥५॥

२५५ आ । नः । यातम् । दिवः । अच्छं । पृथिव्याः । हिरण्ययेंन । सुऽवृता । रथेंन ॥
मा । वाम् । अन्ये । नि । यमन् । देवऽयन्तः ।
सम् । यत् । दुदे । नाभिः । पूर्व्या । वाम् ॥५॥

२५५ अन्वयः– दिवः पृथिव्याः नः अच्छा हिरण्ययेन सुवृता रथेन आ यातं, देवयन्तः अन्ये वां मा नियमन् यत् वां पूर्व्या नाभिः सं ददे ॥५॥

२५५ अर्थ– (दिवः पृथिव्याः) द्युलोकसे या भूलोकसे (नः अच्छ) हमारी ओर (हिरण्ययेन सुवृता रथेन) सुवर्णमय सुन्दर रथपरसे (आयातं) आओ, (देवयन्तः अन्ये) देवोंकी कामना करनेहारे दूसरे लोग (वां मा नियमन्) तुम्हें बीचमेंही न रोक रखें, (यत्) क्योंकि (पूर्व्या नाभिः) पूर्वकालसे हमारा वह घर (वां) तुम्हें (सं ददे) अच्छीभाँति तुम्हें पकड़कर चुका है। तुम्हारा संबंध हमसे पूर्वकालसे चला आया है।

[२५६]

२५६ नू नों रुयिं पुरुवीरं बृहन्तं दस्रा मिमाथामुभयेष्वस्मे । नरो यद् वांमश्विना स्तोममावन्त्सधस्तुतिमाजमीळ्हासो अग्मन् ॥६॥

२५६ नु । नः । रयिम् । पुरुऽवीरम् । बृहन्तम् ।
दस्रा । मिमाथाम् । उभयेषु । अस्मे इति ॥
नरः । यत् । वाम् । अश्विना । स्तोमम् । आवन् ।
सधऽस्तुतिम् । आजऽमीळ्हासः । अग्मन् ॥६॥

२५६ अन्वयः– दस्रा अश्विना ! नः नु पुरुवीरं बृहन्तं रयिं अस्मे उभयेषु मिमाथां; यत् वां स्तोमं नरः आवन्, आजमीळ्हासः सधस्तुतिं अगमन् ॥६॥

२५६ अर्थ– हे (दस्रा) शत्रुविनाशक अश्विदेवो ! (नः नु) हमें जल्दही (पुरुवीरं बृहन्तं रयिं) अनेक वीरोंसे युक्त प्रचण्ड धनको (अस्मे उभयेषु मिमाथां) हमारे दोनों दलोंमें दे डालो; (यत् वां स्तोमं) जब कि तुम्हारी स्तुतिको (नरः आवन्) नेताओंने सुरक्षित कर रखा है तथा (आजमीळ्हासः) अजमीळ्ह परिवारके लोग (सधस्तुतिं अगमन्) मिलकर की जानेवाली प्रशंसामें सम्मीलित होनेके लिये आगये है।

[२५७]

२५७ इहेह यद् वां समना पंपृक्षे सेयमस्मे सुमतिर्वाजरत्ना ।
उरुष्यतं जरितारं युवं ह श्रितः कामो नासत्या युवद्रिक् ॥७॥

२५७ इहऽइह । यत् । वाम् । समना । पपृक्षे ।
सा । इयम् । अस्मे इति । सुऽमतिः । वाजऽरत्ना ॥
उरुष्यतम् । जरितारम् । युवम् । ह ।
श्रितः । कामः । नासत्या । युवद्रिक् ॥७॥

२५७ [इस मंत्रको २५० पर देखो]

[२५८] (ऋ० ५।७३।१-१०)

(२५८—२७७) पौर आत्रेयः । अनुष्टुप्।

२५८ यदद्य स्थः परावति यदर्वावत्यश्विना ।
यद् वां पुरू पुरुभुजा यदन्तरिक्ष आ गतम् ॥१॥

२५८ यत् । अद्य । स्थः । पराऽवति ।
यत् । अर्वाऽवति । अश्विना ॥
यत् । वा । पुरु । पुरुऽभुजा ।
यत् । अन्तरिक्षे । आ । गतम् ॥१॥

२५८ अन्वयः– पुरुभुजा अश्विना ! यत् अद्य परावति स्थः यत् अर्वावति, यत् अन्तरिक्षे यत् वा पुरू आ गतम् ॥१॥

२५८ अर्थ- हे (पुरुभुजा) बडे भुजोंवाले अश्विदेवो ! (यत् अद्य) जो आज (परावति स्थः) बहुत दूर स्थानमें तुम दोनों हो, (यत् अर्वावति) या समीप स्थानपर हो, (यत् अन्तरिक्षे) अथवा अन्तरिक्षमें (यत् वा पुरू) या किन्हीं अन्य अनेक स्थानोंमें तुम रहो, पर (आगतं) इधर हमारे पास आओ ।

[२५९]

२५९ इह त्या पुरुभूतमा पुरू दंसांसि बिभ्रता ।
वरस्या याम्यध्रिगू हुवे तुविष्टमा भुजे ॥२॥

२५९ इह । त्या । पुरुऽभूतमा ।
पुरु । दंसांसि । बिभ्रता ॥
वरस्या । यामि । अध्रिगू इत्यध्रिऽगू ।
हुवे । तुविःऽतमा । भुजे ॥२॥

२५९ अन्वयः- त्या पुरू दंसांसि बिभ्रता पुरुभूतमा वरस्या अध्रिगू इह यामि, तुविष्टमा भुजे हुवे ॥२॥

२५९ अर्थ— (त्या) उन दोनों (पुरू दंसांसि बिभ्रता) बहुतसे कर्म करनेवाले, (पुरुभूतमा) बहुतोंको आदरपूर्वक रखनेवाले, (वरस्या) श्रेष्ठ (अध्रिगू) बिना रोक आगे बढनेवाले अश्विदेवोंके समीप (इह यामि) इधर मैं जा रहा हूँ, (तुविष्टमा) बहुत सारी सामग्रीको साथ रखनेवाले उन्हें (भुजे हुवे) भोजनके लिए मैं बुलाता हूँ।

२५९ मानवधर्म- विविध शुभ कर्मोंको करो । श्रेष्ठ बनो, ऐसी प्रगति करो कि जो किसीसे रोकी न जाय । पर्याप्त सामग्री अपने पास रखो ।

[२६०]

२६० ईर्मान्यद् वपुषे वपुश्चक्रं रथस्य येमथुः ।
पर्यन्या नाहुषा युगा मह्ना रजांसि दीयथः ॥३॥

२६० ईर्मा । अन्यत् । वपुषे । वपुः ।
चक्रम् । रथस्य । येमथुः ॥
परि । अन्या । नाहुषा । युगा ।
मह्ना । रजांसि । दीयथः ॥३॥

२६० अन्वयः– रथस्य अन्यत् वपुः चक्रं ईर्मा वपुषे येमथुः; अन्या मह्ना रजांसि नाहुषा युगा परि दीयथः ॥३॥

२६० अर्थ– (रथस्य अन्यत्) रथका एक (वपुः चक्रं) सुंदर पहिया (ईर्मा वपुषे) गतिद्वारा शोभा बढानेके लिए (येमथुः) तुम दोनों स्थिर कर चुके, (अन्या) दूसरे (रजांसि) लोकोंमें तथा अनेक (नाहुषा युगा) मानवी युगोंमें (मह्ना) अपनी महिमासे (परि दीयथः) तुम चले जाते हो ।

२६० टिप्पणी– वपुः = शरीर, शोभा, सुन्दरता । ईर्मा = गति । नाहुषा युगा = नहुषकी संतान, मानवी युग ।

[२६१]

२६१ तदू षु वामेना कृतं विश्वा यद् वामनु ष्टवे ।
नाना जातावरेपसा समस्मे बन्धुमेयथुः ॥४॥

२६१ तत् । ऊँ इति । सु । वाम् । एना । कृतम् ।
विश्वा । यत् । वाम् । अनु । स्तवे ॥
नाना । जातौ । अरेपसा ।
सम् । अस्मे इति । बन्धुम् । आ । ईयथुः ॥४॥

२६१ अन्वयः— विश्वा ! यत् वां अनु स्तवे तत् वां उ एना सुकृतं, अरेपसा, नाना जातौ अस्मे बन्धुं सं आ ईयथुः ॥४॥

२६१ अर्थ– हे (विश्वा) सब देवो ! (यत् वां अनु) जो तुम दोनोंके अनुकूल (स्तवे) मैं स्तुति करता हूँ, (तत्) वह केवल (वां उ) तुम दोनोंके लियेही (एना सु कृतं) भलीभाँतिकी है; (अ-रेपसा) निर्दोष और (नाना जातौ) अनेक कर्मोंके लिये प्रसिद्ध हुए तुम दोनों (अस्मे) हमारे साथ (बन्धुं सं आ ईयथुः) बन्धुभावको ठीक प्रकार दर्शाते हो ।

२६१ मानवधर्म— जो स्वयं निर्दोष रहकर अनेक कर्म कुशलताके साथ करते हैं, वेही प्रशंसायोग्य हैं ।

[२६२]

२६२ आ यद् वां सूर्या रथं तिष्ठद् रघुष्यदं सदा ।
परि वामरुषा वयो घृणा वरन्त आतपः ॥५॥

२६२ आ । यत् । वाम् । सूर्या । रथम् ।
तिष्ठंत् । रघुऽस्यदम् । सदा ॥
परिं । वाम् । अरुषाः । वयः ।
घृणा । वरन्ते । आऽतपः ॥५॥

२६२ अन्वय — यत् सूर्या वा सदा रघु-स्यद रथ आ तिष्ठत् घृणा आतप अरुषा वयः वा परि वरन्ते ॥५॥

२६२ अर्थ— (यत्) जब (सूर्या) सूर्यकी कन्या (वा) तुम्हारे (सदा) हमेशा (रघु-स्यद रथ) शीघ्रगामी रथपर (आ तिष्ठत्) चढ गयी, तब (घृणा प्रदीप्त (आतप) शत्रुओंको परिताप देनेहारे (अरुषाः वय) लाल रंगवाले पक्षीसदृश गतिशील घोडे (वां परि वरन्ते) तुम्हें घेर लेते हैं।

[२६३]

२६३ युवोरत्रिश्चिकेतति नरा सुम्नेन चेतसा ।
घर्मं यद् वामरेपसं नासत्यास्ना भुरण्यति ॥६॥

२६३ युवोः । अत्रिः । चिकेतति ।
नरा । सुम्नेन । चेतसा ॥
घर्मम् । यत् । वाम् । अरेपसम् ।
नासत्या । आस्ना । भुरण्यति ॥६॥

२६३ अन्वय — नासत्या नरा ! अत्रि सुम्नेन चेतसा युवो चिकेतति, यत् आस्ना वां अरेपस घर्मं भुरण्यति ॥६॥

२६३ अर्थ- हे (नरा) नेता अश्विदेवो ! (अत्रिः सुम्नेन चेतसा) अपि अग्नि आनन्दित मनसे (युवो चिकेतति) तुम्हारी प्रशंसा करता है, (यत्) जबकि (आस्ना वां) मुँहसे तुम दोनोंकी स्तुति करके (अरेपसं घर्मं) निर्दोष आग्निको (भुरण्यति) प्राप्त करता है ।

[२६४]

२६४ उग्रो वां ककुहो ययिः शृण्वे यामेषु संतनिः ।
यद् वां दंसोभिरश्विनाऽत्रिर्नराववर्तति ॥७॥

२६४ उग्रः । वाम् । ककुहः । ययिः ।
शृण्वे । यामेषु । सम्ऽतनिः ॥
यत् । वाम् । दंसःऽभिः । अश्विना ।
अत्रिः । नरा । आऽववर्तति ॥७॥

२६४ अन्वयः— अश्विना ! यामेषु वां उग्रः ककुहः संतनिः ययिः शृण्वे; यत् अत्रिः वां दंसोभिः आ ववर्तति ॥७॥

२६४ अर्थ— हे अश्विदेवो ! (यामेषु) चढाइयोंमें (वां) तुम्हारे (उग्रः ककुहः) भीषण, ऊँचे (सन्तनिः) हमेशा आगे बढनेवाले (ययिः) गतिशील रथका (शृण्वे) शब्द सुनाई देता है, (यत्) जब अत्रि (वां दंसोभिः) तुम दोनोंको अपने कर्मोंसे (आ ववर्तति) अपनी ओर आकर्षित करता है ।

[२६५]

२६५ मध्वं ऊ षु मधूयुवा रुद्रा सिषक्ति पिप्युषी ।
यत् समुद्राति पर्षथः पक्वाः पृक्षो भरन्त वाम् ॥८॥

२६५ मध्वः । ऊँ इति । सु । मधुऽयुवा ।
रुद्रा । सिसक्ति । पिप्युषी ॥
यत् । समुद्रा । अति । पर्षथः ।
पक्वाः । पृक्षः । भरन्त । वाम् ॥८॥

२६५ अन्वयः— मधुयुवा ! रुद्रा ! मध्वः सु पिप्युषी सिषक्ति, समुद्रा यत् अति पर्षथः वां पक्वाः पृक्षः भरन्त ॥८॥

२६५ अर्थ— हे (मधुयुवा) मधुको मिश्रित करनेवाले (रुद्रा) शत्रुको रुलानेवाले अश्विदेवो ! (मध्वः सु पिप्युषी) मधुर रससे भलीभाँति पुष्ट करनेवाली प्रशंसा तुम्हारी (सिषक्ति) सेवा करती है, (समुद्रा यत्) समुद्रोंको चूँकि (अति पर्षथः) तुम दोनों पारकर चले आते हो, (वां) तुम्हें (पक्वाः पृक्षः भरन्त) पके हुए अन्न दिये जाते हैं ।

[२६६]

२६६ सत्यमिद् वा उ अश्विना युवामाहुर्मयोभुवा ।
ता यामन् यामहूतमा यामन्ना मृळयत्तमा ॥९॥

२६६ सत्यम् । इत् । वै । ॐ इति । अश्विना ।
युवाम् । आहुः । मयःऽभुवा ॥
ता । यामन् । यामऽहूतमा ।
यामन् । आ । मृळयत्ऽतमा ॥९॥

२६६ अन्वयः– अश्विना ! युवां सत्यं इत् मयोभुवा आहुः वै; यामन् ता यामहूतमा, यामन् आ मृळयत्तमा ॥९॥

२६६ अर्थ— हे अश्विदेवो ! (युवां सत्यं इत्) तुम्हें सचमुच (मयो-भुवा आहुः वै) सुखदायक बतलाते हैं, (यामन्) यात्राके समय (ता) वे दोनों (यामहूतमा) युद्धोंमें बुलवाने योग्य हैं इसलिए (यामन् मृळय-त्तमा) आक्रमणके समय ये बहुत सुख देनेवाले बनो ।

[२६७]

२६७ इमा ब्रह्माणि वर्धनाऽश्विभ्यां सन्तु शंतमा ।
या तक्षाम रथाँ इवावोचाम बृहन्नमः ॥१०॥

२६७ इमा । ब्रह्माणि । वर्धना ।
अश्विऽभ्याम् । सन्तु । शम्ऽतमा ॥
या । तक्षाम । रथान्ऽइव ।
अवोचाम । बृहत् । नमः ॥१०॥

२६७ अन्वयः— अश्विभ्यां इमा ब्रह्माणि शंतमा वर्धना सन्तु या रथान् इव तक्षाम, बृहत् नमः अवोचाम ॥१०॥

२६७ अर्थ— (अश्विभ्यां) अश्विदेवोंके लिए (इमा ब्रह्माणि) ये स्तोत्र (शन्तमा वर्धना सन्तु) शान्तिदायक तथा उनका यश बढानेहारे हों, (या) जिन्हें (रथान् इव) रथोंके समान (तक्षाम) हम बना चुके हैं और (बृहत् नमः अवोचाम) बडा भारी अन्न भी देनेके लिये कह चुके ।

२६७ मानवधर्म— काव्य ऐसा हो कि जो शान्ति बढानेवाला, यश बढानेवाला और नम्रता बढानेवाला हो अथवा अन्न देनेवाला हो ।

[२६८] (ऋ० ५।७४।१-१०) अनुष्टुप्, ८ निचृत् ।

२६८ कूष्ठो देवावश्विनाऽद्या दिवो मनावसू ।
तच्छ्रवथो वृषण्वसू अत्रिर्वामा विवासति ॥१॥

२६८ कूऽस्थः । देवौ । अश्विना ।
अद्य । दिवः । मनावसू इति ॥
तत् । श्रवथः । वृषण्वसू इति वृषण्ऽवसू ।
अग्निः । वाम् । आ । विवासति ॥१॥

२६८ अन्वयः— मनावसू देवौ अश्विना ! कूस्थः अद्य दिवः, वृषण्वसू ! अग्निः वां आविवासति, तत् श्रवथः ॥१॥

२६८ अर्थ- हे (मना-वसू) उत्कृष्ट मनवाले अश्विदेवो ! (कू-स्थः) तुम दोनों भूमिपर रहनेकी इच्छा करके (अद्य दिवः) आज द्युलोकसे इधर आओ। हे (वृषण्वसू) धनकी वर्षा करनेवाले ! अग्नि (वां आ विवासति) तुम्हारी सेवा करता है, (तत् श्रवथः) उसे सुन लो।

[२६९]

२६९ कुह त्या कुह नु श्रुता दिवि देवा नासत्या ।
कस्मिन्ना यतथो जने को वां नदीनां सचा ॥२॥

२६९ कुह । त्या । कुह । नु । श्रुता ।
दिवि । देवा । नासत्या ॥
कस्मिन् । आ । यतथः । जने ।
कः । वाम् । नदीनाम् । सचा ॥२॥

२६९ अन्वयः- नासत्या देवा दिवि, कुह नु श्रुता, त्या कुह, कस्मिन् जने आ यतथः, वां नदीनां कः सचा ? ॥२॥

२६९ अर्थ- (नासत्या देवा दिवि) सत्यपालक अश्विदेव द्युलोकमें या (कुह) किधर (नु श्रुता) विख्यात हैं ? (त्या कुह) वे दोनों कहाँ हैं ? (कस्मिन् जने) किस मनुष्यके घर (आ यतथः) तुम प्रयत्न करते हो ? (वां नदीनां) तुम्हारी नदियोंका (कः सचा) भला कौन सहगामी है ?

[२७०]

२७० कं याथः कं ह गच्छथः कमच्छा युञ्जाथे रथम् ।
कस्य ब्रह्माणि रण्यथो वयं वामुश्मसीष्टये ॥३॥

२७० कम् । याथः । कम् । ह । गच्छथः ।
कम् । अच्छ । युञ्जाथे इति । रथम् ॥
कस्य । ब्रह्माणि । रण्यथः ।
वयम् । वाम् । उश्मसि । इष्टये ॥३॥

२७० अन्वयः- वयं इष्टये वां उश्मसि, कं ह गच्छथः, कं याथः, रथं कं अच्छ युञ्जाथे, कस्य ब्रह्माणि रण्यथः? ॥३॥

२७० अर्थ— (वयं) हम (इष्टये) इच्छित वस्तुकी प्राप्तिके लिए (वां उश्मसि) तुम्हारी कामना करते हैं, (कं ह गच्छथः) भला तुम किसके समीप जाते हो ? (कं याथः) किसके पास चले जाते हो ? (कं अच्छ) किसके प्रति पहुँचनेके लिए (रथं युञ्जाथे) रथको जोडते हो और (कस्य ब्रह्माणि) किसके स्तोत्रोंसे (रण्यथः) तुम रममाण होते हो ?

[२७१]

२७१ पौरं चिद्ध्युदप्रुतं पौर पौराय जिन्वथः ।
यदीं गृभीततातये सिंहमिव द्रुहस्पदे ॥४॥

२७१ पौरम् । चित् । हि । उदऽप्रुतम् ।
पौर । पौराय । जिन्वथः ॥
यत् । ईम् । गृभीतऽतातये ।
सिंहम्ऽइव । द्रुहः । पदे ॥४॥

२७१ अन्वयः- पौर! पौराय उदप्रुतं पौरं चित् हि जिन्वथः, यत् गृभीततातये ईं द्रुहः पदे सिंहं इव ॥४॥

२७१ अर्थ- हे (पौर) नागरिक! ऐसी हांक (पौराय) नगरनिवासी जनके लिए (उदप्रुतं) जलमें डूबनेवाले (पौरं चित् हि) नागरिककी सदा यथार्थ (जिन्वथः) तुमने मारी थी, (यत् गृभीततातये) जब शत्रुद्वारा घेरे हुएको छुडवानेके लिये (ईं) इसे (द्रुहः पदे सिंहं इव) वनमें सिंहके समान तुमने सहायता दी।

२७१ मानवधर्म- जनताकी सहायता करो, कष्टोंसे नागरिकोंकी सुरक्षा करो। शत्रुसे घेरे गये मनुष्योंको सहायता करके छुडाओ ॥

[२७२]

२७२ प्र च्यवानाज्जुजुरुषो वव्रिमत्कं न मुञ्चथः ।
युवा यदी कृथः पुनरा काममृण्वे वध्वः ॥५॥

२७२ प्र । च्यवानात् । जुजुरुषः ।
वव्रिम् । अत्कम् । न । मुञ्चथः ॥
युवा । यदि । कृथः । पुनः ।
आ । कामम् । ऋण्वे । वध्वः ॥५॥

२७२ अन्वयः— जुजुरुषः च्यवानात् वव्रिं अत्कं न प्र मुञ्चथः, यदि पुनः युवा कृथः वध्वः कामं आ ऋण्वे ॥५॥

२७२ अर्थ– (जुजुरुषः च्यवानात्) बूढे च्यवनसे (वव्रिं) ढकनेवाली चमडीको (अत्कं न) कवचके समान (प्र मुञ्चथः) तुमने उतार डाला (यदि) और (पुनः) फिर (युवा कृथः) उसे युवक बना दिया तब वह (वध्वः कामं) वधूकी कामनाको करनेयोग्य रूपको (आ ऋण्वे) प्राप्त हुआ।

२७२ भावार्थ— अश्विदेवोंने वृद्ध च्यवन ऋषिके शरीरपरसे चमडी, कवच उतारनेके समान, उतार दी, तब वह युवा बना और वधूकी इच्छा करने लगा।

२७२ मानवधर्म— औषधि योजनासे वृद्धके शरीरपरसे चमडी उतार दी जाय, तो वह फिरसे तरुण बनेगा और वह तरुण स्त्रीकी कामना करनेयोग्य वीर्यवान् हो जायगा। (आयुर्वेदके ज्ञानियोंको इस औषधि-प्रयोगका विज्ञान निश्चित करना चाहिये।)

[२७३]

२७३ अस्ति हि वामिह स्तोता स्मसि वां संदृशि श्रिये ।
नू श्रुतं म आ गतमवोभिर्वाजिनीवसू ॥६॥

२७३ अस्ति । हि । वाम् । इह । स्तोता ।
स्मसि । वाम् । सम्ऽदृशि । श्रिये ॥
नु । श्रुतम् । मे । आ । गतम् ।
अवःऽभिः । वाजिनीवसू इति वाजिनीऽवसू ॥६॥

२७३ अन्वयः— वां इह स्तोता अस्ति हि, श्रिये वां संदृशि स्मसि, वाजिनीवसू ! मे नु श्रुतं, अवोभिः आ गतम् ॥६॥

२७३ अर्थ— (वां) तुम्हारी (स्तोता इह अस्ति हि) प्रशंसा करनेवाला यहीं है, (श्रिये वां संदृशि स्मसि) शोभाके लिए तुम्हारी दृष्टिकी कक्षामें हम रहते हैं, हे (वाजिनी-वसू) सेनारूपी धनसे युक्त अश्विदेवो! (मे नु श्रुतं) मेरी पुकार अब सुन लो और (अवोभिः आगतं) संरक्षणकी आयोजनाओंसे युक्त होकर आओ।

२७३ भावार्थ— संरक्षकोंकी सेनासे युक्त वीर अपने संरक्षण साधनोंके साथ आ जांय और जनताकी सुरक्षा करें।

२७३ मानवधर्म— संरक्षक दल सिद्ध रखो और संरक्षण साधनोंसे नागरिकोंकी सुरक्षा करो। दुष्टोंद्वारा नागरिक न मारे जांय।

[२७४]

२७४ को वामद्य पुरूणामा वव्ने मर्त्यानाम् ।
को विप्रो विप्रवाहसा को यज्ञैर्वाजिनीवसू ॥७॥

२७४ कः । वाम् । अद्य । पुरूणाम् ।
आ । वव्ने । मर्त्यानाम् ॥
कः । विप्रः । विप्रऽवाहसा ।
कः । यज्ञैः । वाजिनीवसू इति वाजिनीऽवसू ॥७॥

२७४ अन्वय.— विप्र-वाहसा ! वाजिनी वसू ! अद्य पुरूणां वां कः, कः विप्र., क· यज्ञैः आ वव्ने ? ॥७॥

२७४ अर्थ— हे (विप्र-वाहसा) ज्ञानियोंद्वारा सेवनीय और (वाजिनी-वसू) सेनाको पास रखनेवाले अश्विदेवो! (अद्य पुरूणां) आज नागरिकोंमेंसे (कः क विप्र) कौन ज्ञानी, तथा (क यज्ञै.) भला कौन पुरुष यज्ञोंसे (आ वव्ने) पूर्णतया (वां) तुम्हें स्वीकार करता है।

[२७५]

२७५ आ वां रथो रथानां येष्ठो यात्वश्विना ।
पुरू चिदस्मयुस्तिर आङ्गूषो मर्त्येष्वा ॥८॥

२७५ आ । वाम् । रथः । रथानाम् ।
येष्ठः । यातु । अश्विना ॥
पुरु । चित् । अस्मऽयुः । तिरः ।
आङ्गूषः । मर्त्येषु । आ ॥८॥

२७५ अन्वयः—अश्विना! रथानां येष्ठः वां रथः आ यातु; मर्त्येषु अस्मयुः, पुरु चित् तिरः आंगूषः आ ॥८॥

२७५ अर्थ– हे अश्विदेवो ! (रथानां) रथोंमें (येष्ठः वां रथः) विशेष वेगवाला तुम्हारा रथ (आ यातु) इधर आजाए; (मर्त्येषु) मानवोंमें (अस्मयुः) हमारीही कामना करनेवाला तथा (पुरु चित् तिरः) अनेक शत्रुओंको भी हटा देनेवाला (आंगूषः आ) वह प्रशंसनीय रथ इधर आवे ।

[२७६]

२७६ शर्म षु वां मधूयुवाऽस्माकमस्तु चर्कृतिः ।
अर्वाचीना विचेतसा विभिः श्येनेव दीयतम् ॥९॥

२७६ शर्म । ऊँ इति । सु । वाम् । मधुऽयुवा ।
अस्माकम् । अस्तु । चर्कृतिः ॥
अर्वाचीना । विऽचेतसा ।
विऽभिः । श्येनाऽइव । दीयतम् ॥९॥

२७६ अन्वयः– मधु-युवा ! अस्माकं वां चर्कृतिः सु शं अस्तु; विचेतसा अर्वाचीना श्येना इव विभिः दीयतम् ॥९॥

२७६ अर्थ– हे (मधु-युवा) मधुसे युक्त अश्विदेवो ! (अस्माकं) हमारा (वां चर्कृतिः) तुम्हारे लिए किया हुआ कर्म (सु शं अस्तु) भलीभाँति सुखदायक हो; (विचेतसा) तुम विशिष्ट चेतनशक्तिसे युक्त हो, इसलिए (अर्वाचीना) हमारे सामने (श्येना इव) बाज पंछीके सदृश (विभिः दीयतम्) वेगवान् घोडोंसे आ जाओ ।

[२७७]

२७७ अश्विना यद्ध कर्हि चिच्छुश्रूयातमिमं हवम् ।
वस्वीरू षु वां भुजः पृञ्चन्ति सु वां पृचः ॥१०॥

२७७ अश्विना । यत् । ह । कर्हि । चित् ।
शुश्रुयातम् । इमम् । हवम् ॥
वस्वीः । ऊँ इति । सु । वाम् । भुजः ।
पृञ्चन्ति । सु । वाम् । पृचः ॥१०॥

२७७ अन्वयः— अश्विना ! इमं हवं यत् कर्हि चित् ह शुश्रुयातं, वस्वीः भुजः वां सु, पृचः वां सु पृञ्चन्ति ॥१०॥

२७७ अर्थ— हे अश्विदेवो ! (इमं हवं) इस पुकारको (यत्) जहाँ (कर्हि चित् ह) कहीं भी तुम रहो लेकिन (शुश्रुयातं) सुन लो (वस्वीः भुजः) प्रशंसनीय भोजन (वां सु) तुम्हें ठीक प्रकार मिले इसलिए रखे हैं, (पृचः वां) अन्नोंको तुम्हारे लिए (सु पृञ्चन्ति) भलीभाँति मिश्रित करते हैं।

[२७८] (ऋ० ५।७५।१-९)

(२७८-२८६) अवस्युरात्रेयः । पङ्क्तिः ।

२७८ प्रति प्रियतमं रथं वृषणं वसुवाहनम् ।
स्तोता वामश्विनावृषिः स्तोमेन प्रति भूषति
माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥१॥

२७८ प्रति । प्रियऽतमम् । रथम् ।
वृषणम् । वसुऽवाहनम् ॥
स्तोता । वाम् । अश्विनौ । ऋषिः ।
स्तोमेन । प्रति । भूषति ।
माध्वी इति । मम । श्रुतम् । हवम् ॥१॥

२७८ अन्वयः— माध्वी अश्विनौ ! स्तोता ऋषिः वां प्रियतमं वसुवाहं वृषणं रथं प्रति स्तोमेन प्रति भूषति, मम हवं श्रुतम् ॥१॥

२७८ अर्थ— हे (माध्वी) मधुरतासे युक्त अश्विदेवो ! (स्तोता ऋषिः) प्रशंसा करनेवाला ऋषि (वां) तुम्हारे (प्रियतमं) अत्यन्त प्रिय, (वसुवाहनं) धन ढोनेवाले और (वृषणं रथं प्रति) बलवान् रथका (स्तोमेन प्रति भूषति) स्तोत्रसे वर्णन करता है, तुम (मम हवं श्रुतं) मेरी पुकारको सुन लो।

[२७९]

२७९ अत्यायातमश्विना तिरो विश्वा अहं सना ।
दस्रा हिरण्यवर्तनी सुषुम्ना सिन्धुवाहसा
माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥२॥

२७९ अतिऽआयातम् । अश्विना ।
तिरः । विश्वाः । अहम् । सना ॥
दस्रा । हिरण्यवर्तनी इति हिरण्यऽवर्तनी ।
सुऽसुम्ना । सिन्धुऽवाहसा ।
माध्वी इति । मम । श्रुतम् । हवम् ॥२॥

२७९ अन्वयः– माध्वी अश्विना ! सिन्धुवाहसा ! हिरण्यवर्तनी ! सु-सुम्ना! दस्रा ! मम हवं श्रुतं, अति-आयातं, अहं सना विश्वाः तिरः ॥२॥

२७९ अर्थ— हे (माध्वी) मिठाससे युक्त (सिन्धु-वाहसा) नदियोंमें जानेवाले ! (हिरण्यवर्तनी) सुवर्णके रथवाले ! (सु-सुम्ना ! दस्रा) अच्छे मनसे युक्त शत्रुविनाशक अश्विदेवो ! (मम हवं श्रुतं) मेरी पुकार सुन लो और (अति आयातं) विघ्नोंको लाँघकर इधर आजाओ, तथा ऐसा प्रबंध करो कि (अहं) मैं (सना) हमेशा (विश्वाः तिरः) सभी बाधाओंको हटा सकूँ ।

[२८०]

२८० आ नो रत्नानि बिभ्रतावश्विना गच्छतं युवम् ।
रुद्रा हिरण्यवर्तनी जुषाणा वाजिनीवसू
माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥३॥

२८० आ । नः । रत्नानि । बिभ्रतौ ।
अश्विना । गच्छतम् । युवम् ॥
रुद्रा । हिरण्यवर्तनी इति हिरण्यऽवर्तनी ।
जुषाणा । वाजिनीवसू इति वाजिनीऽवसू ।
माध्वी इति । मम । श्रुतम् । हवम् ॥३॥

१८० अन्वयः— रुद्रा ! हिरण्यवर्तनी ! वाजिनी-वसू अश्विना ! नः रत्नानि बिभ्रतौ जुषाणा युवं आ गच्छतं माध्वी ! मम हवं श्रुतम् ॥३॥

१८० अर्थ- हे (रुद्रा) शत्रुको रुलानेवाले (हिरण्यवर्तनी) स्वर्णमय रथवाले (वाजिनी-वसू) सेनारूप धनवाले अश्विदेवो ! (नः रत्नानि बिभ्रतौ) हमारे लिए रत्नोंको ले आते हुए (जुषाणा) हमारे कथनको ध्यानपूर्वक सुनते हुए (युवं) तुम दोनों (आ गच्छतं) आओ। हे (माध्वी) मधुरतासे युक्त ! (मम हवं श्रुतं) मेरी पुकार सुनो।

[१८१]

१८१ सुष्टुभो वां वृषण्वसू रथे वाणीच्याहिता ।
उत वां ककुहो मृगः पृक्षः कृणोति वापुषो
माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥४॥

१८१ सुऽस्तुभः । वाम् । वृषण्वसू इति वृषण्ऽवसू ।
रथे । वाणीची । आऽहिता ॥
उत । वाम् । ककुहः । मृगः ।
पृक्षः । कृणोति । वापुषः ।
माध्वी इति । मम । श्रुतम् । हवम् ॥४॥

१८१ अन्वयः- वृषण्वसू ! वां सु-स्तुभः, वाणीची रथे आहिता, उत ककुहः मृगः वापुषः वां पृक्षः कृणोति, माध्वी ! मम हवं श्रुतम् ॥४॥

१८१ अर्थ— हे (वृषण्वसू) धनोंकी वर्षा करनेवाले देवो ! मैं (वां सुस्तुभः) तुम दोनोंका अच्छा प्रशंसक हूँ, (वाणीची रथे आहिता) मेरी स्तुति तुम्हारे रथके विषयमें हो रही है (उत) और (ककुहः मृगः) महान्, तुम्हारा अन्वेषण कर्ता (वापुषः) बडे शरीरवाला (वां) तुम्हारे लिए (पृक्षः कृणोति) हविर्भाग तैयार करता है, इसलिए हे (माध्वी) मिठाससे पूर्ण देवो ! (मम हव श्रुत) मेरी पुकार सुन लो।

[१८२]

१८२ बोधिन्मनसा रथ्येषिरा हवनश्रुता ।
विभिश्च्यवानमश्विना नि याथो अद्वयाविनं
माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥५॥

२८२ बोधित्ऽमनसा । रथ्या ।
इषिरा । हवनऽश्रुता ॥
विऽभिः । च्यवानम् । अश्विना ।
नि । याथः । अद्वयाविनम् ।
माध्वी इति । मम । श्रुतम् । हवम् ॥५॥

२८२ अन्वयः— माध्वी अश्विना ! रथ्या, इषिरा, हवन-श्रुता, बोधित्-मनसा अद्वयाविनं च्यवानं विभिः नि याथः, मम हवं श्रुतम् ॥५॥

२८२ अर्थ— हे (माध्वी) मिठाससे युक्त अश्विदेवो ! (रथ्या) रथपर चढे (इषिरा) गतिशील, (हवन-श्रुता) पुकार सुननेवाले और (बोधित्-मनसा) ज्ञानयुक्त मनवाले तुम दोनों (अद्वयाविनं च्यवानं) मनमें कुछ और बाहर कुछ ऐसे बर्ताव न करनेवाले च्यवानके समीप (विभिः नि याथः) वेगपूर्वक जानेवाले घोडोंसे पहुँचते हो, इसलिए मेरी पुकार सुनो।

[२८३]

२८३ आ वां नरा मनोयुजोऽश्वासः प्रुषितप्सवः ।
वयो वहन्तु पीतये सह सुम्नेभिरश्विना
माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥६॥

२८३ आ । वाम् । नरा । मनःऽयुजः ।
अश्वासः । प्रुषितऽप्सवः ॥
वयः । वहन्तु । पीतये ।
सह । सुम्नेभिः । अश्विना ।
माध्वी इति । मम । श्रुतम् । हवम् ॥६॥

२८३ अन्वयः– नरा अश्विना ! मनोयुजः प्रुषितप्सुवः वयः अश्वासः वां सुम्नेभिः सह पीतये आ वहन्तु; माध्वी ! मम हवं श्रुतम् ॥६॥

२८३ अर्थ– हे (नरा) नेता अश्विदेवो ! (मनोयुजः) मनके इशारेसे कार्यमें जुट जानेवाले, (प्रुषितप्सुवः) धब्बेवाले रूपोंवाले (वयः अश्वासः)

गतिशील घोडे (वां) तुम दोनोंको (सुम्नेभिः सह पीतये) सुखोंके साथ सोमपानके लिए (आ वहन्तु) इधर ले आयँ। हे (माध्वी) मधुरतासे पूर्ण ! (मम हवं) मेरा बुलावा (श्रुतं) सुनो।

[२८४]

२८४ अश्विना॒वेह ग॑च्छतं॒ नास॑त्या॒ मा वि वे॑नतम् ।
ति॒रश्चि॑दर्य॒या परि॑ व॒र्तिर्या॑तमदाभ्या॒
माध्वी॒ मम॑ श्रु॒तं हव॑म् ॥७॥

२८४ अश्वि॑नौ । आ । इ॒ह । ग॒च्छ॒त॒म् ।
नास॑त्या । मा । वि । वे॒न॒त॒म् ॥
ति॒रः । चि॒त् । अ॒र्य॒ऽया । परि॑ ।
व॒र्तिः । या॒त॒म् । अ॒दा॒भ्या॒ ।
माध्वी॒ इति॑ । मम॑ । श्रु॒त॒म् । हव॑म् ॥७॥

२८४ अन्वयः- अदाभ्या नासत्या माध्वी अश्विना ! इह आ गच्छतं, मा वि वेनतं अर्यया तिरः चित् वर्तिः परि यातं, मम हवं श्रुतम् ॥७॥

२८४ अर्थ— हे (अदाभ्या) न दबनेवाले ! सत्यपालक ! मधुरिमा-वाले अश्विदेवो ! (इह आ गच्छतं) इधर आओ, (मा वि वेनतं) न उदासीन बनो, (अर्यया) तुम दोनों अधिपति हो इसलिए (तिरः चित्) दूर देशसे भी (वर्तिः परि यात) घर चले आओ और (मम) मेरी (हव श्रुत) पुकार सुनो।

२८४ मानवधर्म— किसीके दबावसे न दब जाओ, सत्यका पालन करो, मीठे स्वभाववाले बनो, आर्यत्वके योग्य व्यवहार करो, कभी उदास न बनो, सुदूर स्थानसे भी अपने घर आओ।

[२८५]

२८५ अ॒स्मिन् य॒ज्ञे अ॑दाभ्या जरि॒तारं॑ शुभस्पती ।
अ॒व॒स्युम॑श्विना यु॒वं गृ॒णन्त॒मुप॑ भूषथो
माध्वी॒ मम॑ श्रु॒तं हव॑म् ॥८॥

२८५ अस्मिन् । यज्ञे । अदाभ्या ।
जरितारम् । शुभः । पती इति ॥
अवस्युम् । अश्विना । युवम् ।
गृणन्तम् । उप । भूषथः ।
माध्वी इति । मम । श्रुतम् । हवम् ॥८॥

२८५ अन्वयः- शुभस्पती ! अदाभ्या माध्वी अश्विना ! अस्मिन् यज्ञे जरितारं अवस्युं युवं गृणन्तं उप भूषथः, मम हवं श्रुतम् ॥ ८ ॥

२८५ अर्थ- हे (शुभस्पती) शुभोंके पालनकर्ता (अदाभ्या माध्वी) न दबनेवाले, मधुरिमामय अश्विदेवो ! (अस्मिन् यज्ञे) इस यज्ञमें (जरितारं) प्रशंसक (अवस्युं) रक्षणकी इच्छा करनेहारे (युवं गृणन्तं) तुम दोनोंकी प्रशंसा करनेवालेके (उप भूषथः) समीप जाकर उसे अलंकृत करते हो, इसलिए (मम हवं) मेरे बुलावेको (श्रुतं) सुनो।

[२८६]

२८६ अभूदुषा रुशत्पशुराग्निरधाय्यृत्वियः ।
अयोजि वां वृषण्वसू रथो दस्रावमर्त्यो
माध्वी मम श्रुतं हवम् ॥९॥

२८६ अभूत् । उषाः । रुशत्ऽपशुः ।
आ । अग्निः । अधायि । ऋत्वियः ॥
अयोजि । वाम् । वृषण्वसू इति वृषण्ऽवसू ।
रथः । दस्रौ । अमर्त्यः ।
माध्वी इति । मम । श्रुतम् । हवम् ॥९॥

२८६ अन्वयः- माध्वी दस्रौ ! वृषण्वसू ! उषा अभूत्, ऋत्वियः रुशत्पशुः अग्निः आ अधायि; वां अमर्त्यः रथः अयोजि, मम हवं श्रुतम् ॥ ९ ॥

२८६ अर्थ-हे (माध्वी दस्रौ) मधुरिमामय शत्रुविनाशक (वृषण्वसू) धनको स्थिर करनेहारे अश्विदेवो ! (उषा अभूत्) प्रातःकाल हो चुका, (ऋत्वियः) ऋतुके अनुसार (रुशत्-पशुः अग्निः) प्रदीप्त तेजवाला अग्नि (आ अधायि) पूर्णतया रखा गया है, (वां) तुम्हारा (अमर्त्यः रथः) न नष्ट होनेवाला रथ (अयोजि) युक्त किया गया है, इसलिए (मम इवं श्रुतं) मेरी पुकार सुन लो।

[२८७] (ऋ० ५।७६।१-५)

(२८७-२९६) भौमोऽत्रिः। त्रिष्टुप्।

२८७ आ भा॑त्य॒ग्निरु॒षसा॒मनी॑क॒मुद्विप्रा॑णां देव॒या वाचो॑ अस्थुः। अ॒र्वाञ्चा॑ नू॒नं र॑थ्ये॒ह या॑तं पीपि॒वांस॑मश्विना घ॒र्ममच्छ॑ ॥१॥

२८७ आ। भा॒ति॒। अ॒ग्निः। उ॒षसा॑म्। अनी॑कम्। उत्। विप्रा॑णाम्। दे॒व॒ऽयाः। वाचः॑। अ॒स्थुः॥ अ॒र्वाञ्चा॑। नू॒नम्। र॒थ्या॒। इ॒ह। या॒त॒म्। पी॒पि॒ऽवांस॑म्। अ॒श्वि॒ना॒। घ॒र्मम्। अच्छ॑ ॥१॥

२८७ अन्वयः- उषसां अनीकं अग्निः आ भाति, विप्राणां देवया वाचः उत् अस्थुः। रथ्या अश्विना ! पीपिवांसं घर्मं अच्छ नूनं इह अर्वाञ्चा यातम् ॥ १ ॥

२८७ अर्थ- (उषसां अनीकं) प्रातःवेलाके समीप (अग्निः आ भाति) अग्नि पूर्णतया प्रदीप्त हो उठता है (विप्राणां देवयाः वाचः) ज्ञानियोंके देवोंको चाहनेवाले भाषण (उत् अस्थुः) होने लगे, हे (रथ्या अश्विना) रथपर चढे हुए अश्विदेवो (पीपिवांसं घर्मं अच्छ) पुष्ट होनेवाले अग्निके प्रति (नूनं इह) अवश्यही इधर (अर्वाञ्चा यातं) हमारे पास आओ।

[२८८]

२८८ न संस्कृ॒तं प्र मि॑मीतो॒ गमि॑ष्ठा॒ऽन्ति नू॒नम॒श्विनोप॑स्तुते॒ह। दिवा॑ऽभिपि॒त्वेऽव॒साग॑मिष्ठा॒ प्रत्यव॑र्तिं दा॒शुषे॒ शंभ॑विष्ठा ॥२

२८८ न । सुंस्कृतम् । प्र । मिमीतः । गमिष्ठा ।
अन्ति । नूनम् । अश्विना । उपऽस्तुता । इह ॥
दिवा । अभिऽपित्वे । अवसा । आऽगमिष्ठा ।
प्रति । अवर्तिम् । दाशुषे । शम्ऽभविष्ठा ॥२॥

२८८ अन्वयः- संस्कृतं न प्र मिमीतः, नूनं उपस्तुता अश्विना इह अन्ति गमिष्ठा; अवर्तिं प्रति दिवा अभिपित्वे अवसा आगमिष्ठा, दाशुषे शंभविष्ठा ॥२॥

२८८ अर्थ- (संस्कृतं न प्र मिमीतः) जो संस्कार करके सिद्ध किया है उसे ये दोनों नष्ट नहीं करते हैं, (नूनं उपस्तुता) अवश्यही प्रशंसित होनेपर अश्विदेव (इह अन्ति गमिष्ठा) इधर समीप आनेमें तैयार रहते हैं, (अवर्तिं प्रति) दरिद्रताके समीप उसे हटानेके लिए (दिवा अभिपित्वे) दिनके प्रारंभमें (अवसा आगमिष्ठा) संरक्षणके साथ आनेवाले और (दाशुषे शंभविष्ठा) दानी पुरुषको अत्यन्त सुख देनेवाले हैं।

२८८ मानवधर्म- जो सुसंस्कृत है उसका नाश न करो, दरिद्रताको [illegible] करो, सबकी सुरक्षा करो, दाताको सुख दो।

[२८९]

२८९ उता यातं संगवे प्रातरह्नो मध्यंदिन उदिता सूर्यस्य ।
दिवा नक्तमवसा शंतमेन नेदानीं पीतिरश्विना ततान॥३

२८९ उत । आ । यातम् । सम्ऽगवे । प्रातः । अह्नः ।
मध्यंदिने । उत्ऽइता । सूर्यस्य ॥
दिवा । नक्तम् । अवसा । शम्ऽतमेन ।
न । इदानीम् । पीतिः । अश्विना । आ । ततान ॥३॥

२८९ अन्वयः— उत संगवे अह्नः प्रातः मध्यंदिने, सूर्यस्य उदिता, दिवा नक्तं शंतमेन अवसा आ यातं, इदानीं पीतिः न अश्विना आ ततान ॥ ३ ॥

२८९ अर्थ— (उत) और (संगवे अह्नः) दिनके उस समय जब कि गौएं इकट्ठी होती हैं, (प्रातः) सुबह, (मध्यंदिने) दुपहरके समय, (सूर्यस्य उदिता) सूर्यके उदय होनेपर (दिवा नक्तं) दिन और रात (शंतमेन अवसा) सुखदायक संरक्षणके साथ (आ यातं) इधर पधारो, (इदानीं) अबही (पीतिः) यह रसपान (अश्विना) अश्विदेवोंके साथ (आ ततान न) हो रहा है ऐसा नहीं है।

[२९०]

२९० इदं हि वां प्रदिवि स्थानमोक इमे गृहा अश्विनेदं दुरोणम् । आ नो दिवो बृहतः पर्वतादाऽद्भ्यो यातमिषमूर्जं वहन्ता ॥४॥

२९० इदम् । हि । वाम् । प्रऽदिवि । स्थानम् । ओकः । इमे । गृहाः । अश्विना । इदम् । दुरोणम् ॥ आ । नः । दिवः । बृहतः । पर्वतात् । आ । अत्ऽभ्यः । यातम् । इषम् । ऊर्जम् । वहन्ता ॥४॥

२९० अन्वयः- अश्विना ! इदं ओकः वां हि प्रदिवि स्थानं, इमे गृहाः, इदं दुरोणं; दिवः बृहतः पर्वतात् अद्भ्यः इषं ऊर्जं वहन्ता नः आ यातम् ॥४॥

२९० अर्थ— हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (इदं ओकः) यह वसतिगृह (वां हि) तुम दोनोंके लिएही (प्रदिवि स्थानं) उत्कृष्ट जगह है, इसी प्रकार (इमे गृहाः) ये घर (इदं दुरोणं) यह मकान भी तुम्हारे लिएही हैं; (दिवः) द्युलोकसे, (बृहतः पर्वतात्) बडे भारी पहाडसे (अद्भ्यः) जलोंसे (इषं ऊर्जं वहन्ता) अन्न और बल के लाते हुए (नः आयातं) हमारे समीप आओ ।

[२९१]

२९१ समश्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम । आ नो रयिं वहतमोत वीराना विश्वान्यमृता सौभगानि ॥५॥

२९१ सम् । अश्विनोः । अवसा । नूतनेन । मयःऽभुवा । सुऽप्रनीती । गमेम ॥ आ । नः । रयिम् । वहतम् । आ । उत । वीरान् । आ । विश्वानि । अमृता । सौभगानि ॥५॥

२९१ अन्वयः- अश्विनोः नूतनेन मयोभुवा अवसा सुप्रनीती सं गमेम; नः रयिं आ वहतं उत वीरान् विश्वानि सौभगानि अमृता ॥५॥

२९१ अर्थ- (अश्विनोः नूतनेन) अश्विदेवोंके नये (मयोभुवा अवसा) सुखकारक संरक्षणसे, (सुप्रणीती) सुन्दर नेतृत्वसे (सं गमेम) हम भली प्रकार जीवन बितायें; (नः रयिं आ वहतं) हमें धन ले आओ, (उत) और वैसेही (वीरान्) वीरोंको तथा (विश्वानि सौभगानि अमृता) सभी सौभाग्य हमें देदो।

[२९२] (ऋ० ५।७७।१-५)

२९२ प्रातर्यावाणा प्रथमा यजध्वं पुरा गृध्रादररुषः पिबातः। प्रातर्हि यज्ञमश्विना दधाते प्र शंसन्ति कवयः पूर्वभाजः ॥१॥

२९२ प्रातःऽयावाना। प्रथमा। यजध्वम्।
पुरा। गृध्रात्। अररुषः। पिबातः॥
प्रातः। हि। यज्ञम्। अश्विना। दधाते इति।
प्र। शंसन्ति। कवयः। पूर्वऽभाजः ॥१॥

२९२ अन्वयः— प्रातः-यावाना प्रथमा यजध्वं, अररुषः गृध्रात् पुरा पिबातः, अश्विना प्रातः हि यज्ञं दधाते पूर्वभाजः कवयः प्र शंसन्ति ॥ १ ॥

२९२ अर्थ— (प्रातः-यावाना प्रथमा) सुबह सबसे प्रथम आनेवाले अश्विदेवोंकी (यजध्वं) पूजा करो, (अररुषः गृध्रात्) अदानी तथा लालचीसे (पुरा पिबातः) पहलेही वे सोमको पीते हैं, क्योंकि अश्विदेव (प्रातः हि) सुबहही (यज्ञं दधाते) यज्ञके पास आते हैं और (पूर्वभाजः कवयः) पूर्वकालीन विद्वान् उनकी (प्र शंसन्ति) प्रशंसा करते हैं।

[२९३]

२९३ प्रातर्यजध्वमश्विना हिनोत न सायमस्ति देवया अजुष्टम्। उतान्यो अस्मद् यजते वि चावः पूर्वःपूर्वो यजमानो वनीयान् ॥२॥

२९३ प्रातः । यजध्वम् । अश्विना । हिनोत ।
न । सायम् । अस्ति । देवऽयाः । अजुष्टम् ॥
उत । अन्यः । अस्मत् । यजते । वि । च । आवः ।
पूर्वःऽपूर्वः । यजमानः । वनीयान् ॥२॥

२९३ अन्वयः— अश्विना प्रातः यजध्वं, हिनोत, सायं अजुष्टं, देवया न अस्ति; उत अस्मत् अन्यः यजते वि आवः च, पूर्वः-पूर्वः यजमानः वनीयान् ॥ २ ॥

. २९३ अर्थ— अश्विदेवोंके लिए (प्रातः यजध्वं) सुबह यजन करो, (हिनोत) प्रेरणा करो, (सायं अजुष्टं) शामको वह असेवनीय बनता है और (देव यः न अस्ति) देवोंके समीप जानेवाला नहीं रहता, (उत) और (अस्मत् अन्यः) हमसे पूर्व दूसरा कोई (यजते) यजन करता है तो (वि आवः च) उनकी विशेष तृप्ति करता है, क्योंकि (पूर्वः-पूर्वः यजमानः) पहले पहले जो यजन करनेवाला होता है, वही (वनीयान्) देवोंके लिए आदरणीय बनता है।

२९३ मानवधर्म— प्रातःकाल उठो और देवोंकी पूजा करो। अपने पूर्व दूसरा कोई न उठे और वह हमसे पूर्व पूजा न करे। जो प्रथम पूजा करता है, उसपर देव प्रसन्न होते हैं।

प्रभातमें उठनेका यह आदेश मननीय है।

[२९४]

२९४ हिरण्यत्वङ्मधुवर्णो घृतस्नुः पृक्षो वहन्ना रथो वर्तते वाम्। मनोजवा अश्विना वातरंहा येनातियाथो दुरितानि विश्वा ॥३॥

२९४ हिरण्यऽत्वक् । मधुऽवर्णः । घृतऽस्नुः ।
पृक्षः । वहन् । आ । रथः । वर्तते । वाम् ॥
मनःऽजवाः । अश्विना । वातऽरंहाः ।
येन । अतिऽयाथः । दुःऽइतानि । विश्वा ॥३॥

२९४ अन्वयः-वां हिरण्य-त्वक् मधुवर्णः घृतस्नुः रथः पृक्षः वहन् आ वर्तते; मनो-जवाः वात-रंहाः हे अश्विना येन विश्वा दुरिता अति याथः ॥ ३ ॥

२९४ अर्थ— (वां हिरण्य-त्वक्) तुम दोनोंका सुवर्णसे ढका हुआ (मधुवर्णः) मनोहर रंगवाला (घृत-स्नुः रथः) घृत टपकाता हुआ रथ (पृक्षः वहन्) अन्न ढोता हुआ, (आ वर्तते) हमारे सामने आता है, (मनो-जवाः) वह मनके तुल्य वेगवान् (वात-रंहाः) वायुके समान तेज दौडनेवाला है, हे अश्विदेवो ! (येन) जिस रथसे (विश्वा दुरिता) सभी बुराइयोंको (अति याथः) पार करके चले जाते हो।

२९४ मानवधर्म— रथ सुवर्ण जैसा तेजस्वी और अत्यंत वेगवान् हो। इसमें रखकर घी तथा अन्न लाया जाय और उनसे सब दुःखदायक पाप दूर किये जांय ॥

[२९५]

२९५ यो भूयिष्ठं नासत्याभ्यां विवेष चनिष्ठं पित्वो ररते विभागे । स तोकमस्य पीपरच्छमीभिरनूर्ध्वभासः सदमित् तुतुर्यात् ॥४॥

२९५ यः । भूयिष्ठम् । नासत्याभ्याम् । विवेष । चनिष्ठम् । पित्वः । ररते । विऽभागे ॥ सः । तोकम् । अस्य । पीपरत् । शमीभिः । अनूर्ध्वऽभासः । सदम् । इत् । तुतुर्यात् ॥४॥

२९५ अन्वयः- यः विभागे नासत्याभ्यां भूयिष्ठं चनिष्ठं विवेष पित्वः ररते सः अस्य तोकं शमीभिः पीपरत् सदमित् अनूर्ध्वभासः तुतुर्यात् ॥४॥

२९५ अर्थ- (यः) जो (विभागे) विभाग करनेके मौकेपर (नासत्याभ्यां) अश्विदेवोंको (भूयिष्ठं चनिष्ठं विवेष) अत्यन्त अधिक मात्रामें अन्न परोसता है और (पित्वः ररते) अन्नका दान करता है, (सः अस्य तोकं) वह अपने पुत्रका (शमीभिः पीपरत्) शुभ कर्मोंसे पालन करता रहेगा, और (सदमित्) हमेशा (अनूर्ध्व-भासः) बहुत कम तेजवालोंको (तुतुर्यात्) हिंसित करेगा ।

[२९६]

२९६ समश्विनोरवसा नूतनेन मयोभुवा सुप्रणीती गमेम ।
आ नो रयिं वहतमोत वीराना विश्वान्यमृता सौभगानि ॥५॥

२९६ सम् । अश्विनोः । अवसा । नूतनेन ।
मयःऽभुवा । सुऽप्रनीती । गमेम ॥
आ । नः । रयिम् । वहतम् । आ । उत । वीरान् ।
आ । विश्वानि । अमृता । सौभगानि ॥५॥

२९६ [इस मंत्रको २९१ पर देखो]

[२९७] (ऋ. ५।७८।१—९)

(२९७-३०५) सप्तवध्रिरात्रेयः । (५-९ गर्भस्राविण्युपनिषद्)। अनुष्टुप्, १-३ उष्णिक्, ४ त्रिष्टुप् ।

२९७ अश्विनावेह गच्छतं नासत्या मा वि वेनतम् ।
हंसाविव पततमा सुताँ उप ॥१॥

२९७ अश्विनौ । आ । इह । गच्छतम् ।
नासत्या । मा । वि । वेनतम् ॥
हंसौऽइव । पततम् । आ । सुतान् । उप ॥१॥

२९७ अन्वयः— नासत्या अश्विना ! इह आ गच्छतं, मा वि वेनतं, सुतान् उप हंसौ इव आ पततम् ॥१॥

२९७ अर्थ— हे अश्विदेवो ! (इह आ गच्छतं) इधर आओ, (मा वि वेनत) उदास न बनो (सुतान् उप) निचोडे हुए सोमरसोंके समीप (हंसौ इव आ पततं) हंसके तुल्य वेगपूर्वक आ जाओ ।

[२९८]

२९८ अश्विना हरिणाविव गौराविवानु यवसम् ।
हंसाविव पततमा सुताँ उप ॥२॥

२९८ अश्विना । हरिणौऽइव ।
गौरौऽइव । अनु । यवसम् ॥
हंसौऽइव । पततम् । आ । सुतान् । उप ॥२॥

२९८ अन्वयः- अश्विना ! यवसं अनु हरिणौ इव गौरौ इव; सुतान् उप हंसौ इव आ पततम् ॥२॥

२९८ अर्थ- हे अश्विदेवो ! (यवसं अनु) तृणके पीछे (हरिणौ इव) हिरनोंकी नाई (गौरौ इव) गौरमृगके समान (सुतान् उप) निचोडे हुए सोमोंके पास (हंसौ इव आ पततं) हंसोंके समान जल्द आ गिरो ।

[२९९]

२९९ अश्विना वाजिनीवसू जुषेथां यज्ञमिष्टये ।
हंसाविव पततमा सुताँ उप ॥३॥

२९९ अश्विना । वाजिनीवसू इति वाजिनीऽवसू ।
जुषेथाम् । यज्ञम् । इष्टये ॥
हंसौऽइव । पततम् । आ । सुतान् । उप ॥३॥

२९९ अन्वयः- वाजिनी-वसू अश्विना ! इष्टये यज्ञं जुषेथां, हंसौ इव सुतान् उप आ पततम् ॥३॥

२९९ अर्थ- हे (वाजिनी-वसू) सेनाको बसानेवाले अश्विदेवो ! (इष्टये) इष्टिके लिए (यज्ञं जुषेथां) यजन करो, और हंसोंके समान निचोडे हुए सोमोंके पास आ जाओ ।

[३००]

३०० अत्रिर्यद् वामवरोहन्नृबीसमजोहवीन्नाधमानेव योषा ।
श्येनस्य चिज्जवसा नूतनेनाऽऽगच्छतमश्विना शंतमेन ॥४

३०० अत्रिः । यत् । वाम् । अवऽरोहन् । ऋबीसम् ।
अजोहवीत् । नाधमानाऽइव । योषा ॥
श्येनस्य । चित् । जवसा । नूतनेन । आ ।
अगच्छतम् । अश्विना । शम्ऽतमेन ॥४॥

३०० अन्वयः- अश्विना ! यत् ऋबीसं अवरोहन् अत्रिः नाधमाना योषा इव वां अजोहवीत्, शंतमेन श्येनस्य नूतनेन चित् जवसा आगच्छतम् ॥ ४ ॥

३०० अर्थ— हे अश्विदेवो ! (यत्) जब (ऋबीसं अवरोहन्) अँधेरेसे पूर्ण जेलमें उतरते समय (अत्रिः नाधमाना योषा इव) अत्रिने याचना करती हुई नारीके समान (वां अजोहवीत्) तुम दोनोंको बुलाया, तब (शंतमेन) शान्तिदायक (श्येनस्य नूतनेन जवसा चित्) बाज पक्षीके नये वेगसेही (आगच्छतं) तुम दोनों आगये।

३०० भावार्थ— अत्रि ऋषिको जब कारागृहमें डाला गया, तब उसने स्त्रीके समान नम्रभावसे अश्विदेवोंकी प्रार्थना की। अश्विदेव शीघ्र आये और उन्होंने अत्रि ऋषिकी सहायता की।

[३०१]

३०१ वि जिहीष्व वनस्पते योनिः सूष्यन्त्या इव ।
श्रुतं मे अश्विना हवं सप्तवध्रिं च मुञ्चतम् ॥५॥

३०१ वि । जिहीष्व । वनस्पते ।
योनिः । सूष्यन्त्याःऽइव ॥
श्रुतम् । मे । अश्विना । हवम् ।
सप्तऽवध्रिम् । च । मुञ्चतम् ॥५॥

३०१ अन्वयः- वनस्पते ! सूष्यन्त्याः योनिः इव वि जिहीष्व, अश्विना ! मे हवं श्रुतं सप्तवध्रिं मुञ्चतं च ॥ ५ ॥

३०१ अर्थ- हे वनके अधिपति पेड़ ! (सूष्यन्त्याः योनिः इव) प्रसवोन्मुख नारीकी योनिके समान (वि जिहीष्व) खुला रह । हे अश्विदेवो ! (मे हवं श्रुतं) मेरी पुकार सुन लो, (सप्तवध्रिं मुञ्चतं च) और सप्तवध्रिको मुक्त करो ।

[३०२]

३०२ भीताय नाधमानाय ऋषये सप्तवध्रये ।
मायाभिरश्विना युवं वृक्षं सं च वि चाचथः ॥६॥

२०२ भीताय । नाधमानाय ।
ऋषये । सप्तऽवध्रये ॥
मायाभिः । अश्विना । युवम् ।
वृक्षम् । सम् । च । वि । च । अचथः ॥६॥

२०२ अन्वयः– अश्विना ! ऋषये सप्तवध्रये भीताय नाधमानाय मायाभिः युवं वृक्षं सं च वि च अचथः ॥ ६ ॥

२०२ अर्थ— हे अश्विदेवो ! ऋषि सप्तवध्रिको जोकि (भीताय नाधमानाय) भयभीत हो (सहायतार्थ) प्रार्थना कर रहा था, (मायाभिः) अपनी शक्तियोंसे (युवं) तुम दोनोंने (वृक्षं) पेडको (सं च वि च) (अचथः) विदीर्ण कर दिया।

[२०३]

२०३ यथा वातः पुष्करिणीं समिङ्गयति सर्वतः ।
एवा ते गर्भ एजतु निरैतु दशमास्यः ॥७॥

२०३ यथा । वातः । पुष्करिणीम् ।
सम्ऽइङ्गयति । सर्वतः ॥
एव । ते । गर्भः । एजतु ।
निःऽएतु । दशऽमास्यः ॥७॥

२०३ अन्वयः– पुष्करिणीं यथा वातः सर्वतः सं इङ्गयति, एव ते गर्भः दशमास्यः एजतु निः एतु ॥ ७ ॥

२०३ अर्थ– (पुष्करिणीं) तालाबको (यथा वातः) जैसे वायु (सर्वतः सं इङ्गयति) सभी ओरसे ठीक तरह हिलाता है, (एव) वैसेही (ते गर्भः) तेरा गर्भ (दशमास्यः) दस महिनेका होकर (एजतु) हलचल करना शुरु करे और (निः एतु) बाहर निकल आवे।

[२०४]

२०४ यथा वातो यथा वनं यथा समुद्र एजति ।
एवा त्वं दशमास्य सहावेहि जरायुणा ॥८॥

२०४ यथा । वातः । यथा । वनम् ।
यथा । समुद्रः । एजति ॥
एव । त्वम् । दशऽमास्य ।
सह । अव । इहि । जरायुणा ॥८॥

२०४ अन्वयः— यथा वातः यथा वनं, समुद्रः यथा एजति दशमास्य ! एव त्वं जरायुणा सह अव इहि ॥ ८ ॥

२०४ अर्थ— (यथा वातः) जैसे पवन हिलती है, (यथा वनं) जैसे जंगल हिलता झुलता है, (समुद्रः यथा एजति) समुन्दर जैसे चलायमान होता है, हे (दशमास्य) दस महिनोंके बने हुए गर्भ । (एव त्वं) उसी प्रकार तू (जरायुणा सह) वेष्टनके साथ (अव इहि) नीचे गिर जा ।

[२०५]

२०५ दश मासाञ्छशयानः कुमारो अधि मातरि ।
निरैतु जीवो अक्षतो जीवो जीवन्त्या अधि ॥९॥

२०५ दश । मासान् । शशयानः ।
कुमारः । अधि । मातरि ॥
निःऽऐतु । जीवः । अक्षतः ।
जीवः । जीवन्त्याः । अधि ॥९॥

२०५ अन्वयः— कुमारः दश मासान् मातरि अधि शयान , अक्षतः जीवः निः एतु, जीवन्त्याः अधि जीवः ॥ ९ ॥

२०५ अर्थ– (कुमारः) बालक (दश मासान्) दस महिनोंतक (मातरि अधि शयानः) मातामें सोता हुआ (अक्षतः जीवः) बिना किसी क्षति या व्यथाके जीवित दशामें (निः एतु) बहार निकल आये (जीवन्त्याः अधि जीवः) माताके जीवित रहते यह जीव निकल आये ।

२०५ भावार्थ— ये तीन मंत्र सुख प्रसुतिके हैं । गर्भ दस महिनोंतक माताके गर्भाशयमें रहे और दसवें महिनेमें सुखसे प्रसुति हो । अथर्ववेद में ये दस सुखप्रसूतिके कर्ममें प्रवीण हैं ।

[३०६] (ऋ० ६।६२।१-११)

(३०६-३२७) बार्हस्पत्यो भरद्वाजः । त्रिष्टुप् ।

३०६ स्तुषे नरा दिवो अस्य प्रसन्ताऽश्विना हुवे जरमाणो अर्कैः ।
या सद्य उस्रा व्युषि ज्मो अन्तान्युयूषतः पर्युरू वरांसि १

३०६ स्तुषे । नरा । दिवः । अस्य । प्रऽसन्ता ।
अश्विना । हुवे । जरमाणः । अर्कैः ॥
या । सद्यः । उस्रा । विऽउषि । ज्मः । अन्तान् ।
युयूषतः । परि । उरु । वरांसि ॥१॥

३०६ अन्वयः— दिवः नरा अस्य प्रसन्ता अश्विना अर्कैः जरमाणः हुवे स्तुषे; सद्यः उस्रा या व्युषि ज्मः अन्तान् उरु वरांसि परि युयूषतः ॥१॥

३०६ अर्थ— (दिवः नरा) द्युलोकके नेतावीरो! (अस्य प्रसन्ता अश्विना) इस दृश्यमान जगत्के प्रभु होते हुए अश्विदेवोंको (अर्कैः जरमाणः) अर्चनीय मंत्रोंसे प्रशंसित करता हुआ मैं (स्तुषे) स्तुति करता हूँ, (सद्यः उस्रा या) तुरन्त शत्रुओंको हटानेवाले ये दोनों देव (व्युषि) उषःकालमें (ज्मः अन्तान्) पृथ्वीके अन्ततक (उरु वरांसि) विशाल अँधेरेको (परि युयूषतः) हटा देते हैं ॥

[३०७]

३०७ ता यज्ञमा शुचिभिश्चक्रमाणा रथस्य भानुं रुरुचू रजोभिः ।
पुरू वरांस्यमिता मिमानाऽपो धन्वान्यति याथो अज्रान् २

३०७ ता । यज्ञम् । आ । शुचिऽभिः । चक्रमाणा ।
रथस्य । भानुम् । रुरुचुः । रजःऽभिः ॥
पुरु । वरांसि । अमिता । मिमाना ।
अपः । धन्वानि । अति । याथः । अज्रान् ॥२॥

२०७ अन्वयः- यज्ञं शुचिभिः ता आ चक्रमाणा, रजोभिः रथस्य भानुं रुरुचुः, अमिता पुरु वरांसि मिमाना धन्वानि अति अज्रान् अपः याथः ॥२॥

२०७ अर्थ— (यज्ञं शुचिभिः) यज्ञके प्रति निर्मल तेजोंके साथ आते हुए (ता) अश्विदेव (आ चक्रमाणा) आते समय (रजोभिः) तेजोंसे (रथस्य भानुं) रथकी दीप्तिको (रुरुचुः) उद्दीप्त करते हैं, (अमिता पुरु) असंख्य बहुतसे (वरांसि मिमाना) तेजोंको उत्पन्न करते हुए (धन्वानि अति) मरु-प्रदेशोंको पारकर (अज्रान् अपः याथः) घोडोंको जलोंके समीप ले चलते हैं॥

२०७ मानवधर्म– रथका प्रवास होनेपर घोडोंको समयपर जल देना चाहिये।

[२०८]

२०८ ता ह त्यद् वर्तिर्यदरध्रमुग्रेत्था धिय ऊहथुः शश्वदश्वैः।
मनोजवेभिरिषिरैः शयध्यै परि व्यथिर्दाशुषो मर्त्यस्य॥३

२०८ ता । ह । त्यत् । वर्तिः । यत् । अरध्रम् । उग्रा ।
इत्था । धियः । ऊहथुः । शश्वत् । अश्वैः ॥
मनःऽजवेभिः । इषिरैः । शयध्यै ।
परि । व्यथिः । दाशुषः । मर्त्यस्य ॥३॥

२०८ अन्वयः— उग्रा ता ह यत् अरध्रं त्यत् वर्तिः इत्था मनोजवेभिः इषिरैः अश्वैः शश्वत् धियः ऊहथुः; दाशुषः मर्त्यस्य व्यथिः परि शयध्यै ॥३॥

२०८ अर्थ- (उग्रा ता ह) उग्र रूपवाले वे दोनोंही वीर (यत् अरध्रं) दरिद्रतासे युक्त भक्तके (त्यत् वर्तिः) घरके प्रति (इत्था) इस ढंगसे (मनोजवेभिः) मनके तुल्य वेगवान् (इषिरैः अश्वैः) इशारेसेही चलनेवाले घोडोंसे (शश्वत्) हमेशा (धियः ऊहथुः) कर्मोंको चलानेके लिये जाते हैं, और (दाशुषः मर्त्यस्य व्यथिः) दानी मानवको कष्ट पहुँचानेवालेको (परि शयध्यै) लंबी निद्रामें सुलाते हैं॥

२०८ मानवधर्म— सत्कर्म करनेवाला गरीब भी हुआ तो भी उसको सहायता पहुंचाकर उसके यज्ञकर्मको सफल बनाना चाहिये और जो सज्जनोंको पीडा देते हैं उनको रोकना चाहिये।

[३०९]

३०९ ता नव्यसो जरमाणस्य मन्मोप भूषतो युयुजानसप्ती ।
शुभं पृक्षमिषमूर्जं वहन्ता होता यक्षत्प्रत्नो अध्रुग्युवाना ॥४

३०९ ता । नव्यसः । जरमाणस्य । मन्म ।
उप । भूषतः । युयुजानसप्ती इति युयुजानऽसप्ती ॥
शुभम् । पृक्षम् । इषम् । ऊर्जम् । वहन्ता ।
होता । यक्षत् । प्रत्नः । अध्रुक् । युवाना ॥४॥

३०९ अन्वयः— शुभं पृक्षं इषं ऊर्जं वहन्ता युयुजान-सप्ती ता नव्यसः जरमाणस्य मन्म उप भूषतः; अध्रुक् प्रत्नः होता युवाना यक्षत् ॥४॥

३०९ अर्थ— (शुभं पृक्षं) सुन्दर अन्न, (इषं ऊर्जं वहन्ता) पुष्टि तथा बल दूसरोंको पहुँचानेके लिए ढोते हुए (युयुजानसप्ती ता) घोडोंको जोतनेवाले ये दोनों (नव्यसः) नये (जरमाणस्य मन्म) स्तोताके मननीय स्तोत्रके (उप भूषतः) समीप जाकर उसकी शोभा बढाते हैं, (अध्रुक् प्रत्नः होता) द्रोह न करनेवाला पुराना हवनकर्ता (युवाना) युवक अश्विदेवोंकी (यक्षत्) पूजा करता है ॥

३०९ मानवधर्म— पुष्टि, बल और आरोग्य बढानेवाला अन्न प्राप्त करो। द्रोह न करो।

[३१०]

३१० ता वल्गू दस्रा पुरुशाकतमा प्रत्ना नव्यसा वचसा विवासे ।
या शंसते स्तुवते शम्भविष्ठा बभूवतुर्गृणते चित्रराती ॥५

३१० ता । वल्गू इति । दस्रा । पुरुशाकऽतमा ।
प्रत्ना । नव्यसा । वचसा । आ । विवासे ॥
या । शंसते । स्तुवते । शम्ऽभविष्ठा ।
बभूवतुः । गृणते । चित्रराती इति चित्रऽराती ॥५॥

*

३१० अन्वयः– शंसते स्तुवते या शम्भविष्ठा गृणते चित्रराती बभूवतुः; ता वल्गू दस्रा पुरुशाकतमा प्रत्ना नव्यसा वचसा आ विवासे ॥५॥

३१० अर्थ— (शंसते) दूसरोंके सामने विस्तारसे वर्णन करनेवालेको (स्तुवते) स्तुति करनेवालेको (या) जो दो अश्विदेव (शम्भविष्ठा) अत्यन्त सुख देनेवाले और (गृणते चित्रराती बभूवतुः) स्तुति करनेवालेको अद्‌भुत दान देनेवाले हो चुके, (ता) उन दोनों (वल्गू) सुन्दर (दस्रा) शत्रु-विनाशकर्ता (पुरुशाकतमा) बहुत कार्य करनेकी शक्ति रखनेवाले (प्रत्ना) पुरातन अश्विदेवोंको (नव्यसा वचसा) नये स्तोत्रसे (आ विवासे) पूर्णतया सन्तुष्ट करता हूँ ॥

[३११]

३११ ता भुज्युं विभिर॒द्भ्यः स॑मु॒द्रात्तुग्र॑स्य सू॒नुमू॑हथू॒ रजो॑भिः ।
अ॒रे॒णु॒भिर्योज॑नेभिर्भु॒जन्ता॑ पत॒त्रिभि॒रर्ण॑सो॒ निरु॒पस्था॑त् ॥६

३११ ता । भु॒ज्यु॒म् । विऽभिः॑ । अ॒त्ऽभ्यः॑ । स॒मु॒द्रात् ।
तुग्र॑स्य । सू॒नुम् । ऊ॒ह॒थुः॒ । रजः॑ऽभिः ॥
अ॒रे॒णु॒ऽभिः॑ । योज॑नेभिः । भु॒जन्ता॑ ।
प॒त॒त्रिऽभिः॑ । अर्ण॑सः । निः । उ॒प॒ऽस्थात् ॥६॥

३११ अन्वयः– तुग्रस्य सूनुं भुज्युं भुजन्ता ता समुद्रस्य अर्णसः अद्भ्यः उपस्थात् अरेणुभिः रजोभिः योजनेभिः पतत्रिभिः विभिः निः ऊहथुः ॥६॥

३११ अर्थ- (तुग्रस्य पुत्रं भुज्युं) तुग्र नरेशके पुत्र भुज्युको (भुजन्ता ता) सुरक्षित रखनेवाले वे दोनों (समुद्रस्य अर्णसः) समुन्दरके विशाल जलकी के (अद्भ्यः उपस्थात्) जलसमूहके समीपसे (अरेणुभिः रजोभिः) धूलिरहित लोकोंसे (योजनेभिः) योजनाओंसे (पतत्रिभिः विभिः) उड़ने-वाले अतः पंछीतुल्य यानोंसे (निः ऊहथुः) पूर्णतया ले चले ॥

३११ भावार्थ— तुग्रपुत्र भुज्युको अश्विदेवोंने ऊपर उठाया और अपने विमानमें रखकर उसको सुरक्षित स्थानपर पहुँचाया ।

[३१२]

३१२ वि ज॒युषा॑ रथ्या यात॒मद्रिं॑ श्रु॒तं हवं॑ वृषणा वध्रिम॒त्याः ।
द॒श॒स्यन्ता॑ श॒यवे॑ पिप्यथु॒र्गामिति॑ च्यवाना सुम॒तिं भु॑रण्यू ॥७॥

३१२ वि । जयुर्षा । रथ्या । यातम् । अद्रिम् ।
श्रुतम् । हर्वम् । वृषणा । वध्रिऽमत्याः ॥
दशस्यन्ता । शयवे । पिप्यथुः । गाम् ।
इति । च्यवाना । सुऽमतिम् । भुरण्यू इति ॥७॥

३१२ अन्वयः- वृषणा रथ्या ! जयुषा अद्रिं वि यातं, वध्रिमत्याः हवं श्रुतं; दशस्यन्ता शयवे गां पिप्यथुः इति सुमतिं च्यवाना भुरण्यू ॥७॥

३१२ अर्थ— हे (वृषणा ! रथ्या) बलवान् और रथपर चढनेहारे अश्विदेवों ! (जयुषा) विजयी रथपरसे (अद्रिं वि यातं) पहाडको लाँघकर जाओ, (वध्रिमत्याः हवं) वध्रिमतीकी पुकारको (श्रुतं) सुन लो, (दशस्यन्ता) दान देते हुए तुम दोनोंने (शयवे गां पिप्यथुः) शयुके लिए गायको दुधारू बनाया, (इति) इस ढंगकी (सुमतिं च्यवाना) उत्तम बुद्धि रखनेवाले तुम दोनों सबके (भुरण्यू) भरणकर्ता हो ॥

३१२ भावार्थ— अश्विदेव बलिष्ठ और रथपर चढनेवाले हैं। विजयी रथपरसे वे पर्वतको भी लांघते हैं, वध्रिमतिकी प्रार्थना सुनते हैं, दान देते हैं, शयुके लिये गौको दुधारू बनाते हैं और उत्तम मंत्रणा देते हैं।

[३१३]

३१३ यद्रोदसी प्रदिवो अस्ति भूमा हेळो देवानामुत मर्त्यत्रा ।
तदादित्या वसवो रुद्रियासो रक्षोयुजे तपुरघं दधात ॥८

३१३ यत् । रोदसी इति । प्रऽदिवः । अस्ति । भूम ।
हेळः । देवानाम् । उत । मर्त्यऽत्रा ॥
तत् । आदित्याः । वसवः । रुद्रियासः ।
रक्षःऽयुजे । तपुः । अघम् । दधात ॥८॥

३१३ अन्वयः- यत् देवानां उत मर्त्यत्रा प्रदिवः भूम हेळः अस्ति तत् तपुः अघं, आदित्याः ! वसवः ! रुद्रियासः ! रोदसी ! रक्षो युजे दधात ॥८॥

३१३ अर्थ- (यत्) जो (देवानां उत मर्त्यत्रा) देवोंका या मानवोंमें विद्यमान (प्रदिवः भूम) अत्यन्त तेजस्वी तथा बडा भारी (हेळः अस्ति)

३१६ भावार्थ— घरके पास गौओंके सुदृढ बाडे हों, उनमें बहुत गौवें रहें। ऐसे घरोंके पास वीर आजांय और उनके दूध पीनेके लिये उन बाडोंके द्वार खोले जाय।

[३१७] (ऋ. ६।६३।१—११)

त्रिष्टुप्, १ विराट्, ११ एकपदा त्रिष्टुप्।

३१७ क्व१ त्या वल्गू पुरुहूताद्य दूतो न स्तोमोऽविदन्नमस्वान्।
आ यो अर्वाङ्नासत्या ववर्त प्रेष्ठा ह्यसथो अस्य मन्मन् ॥१॥

३१७ क्व। त्या। वल्गू इति। पुरुऽहूता। अद्य।
दूतः। न। स्तोमः। अविदत्। नमस्वान् ॥
आ। यः। अर्वाक्। नासत्या। ववर्त।
प्रेष्ठा। हि। असथः। अस्य। मन्मन् ॥१॥

३१७ अन्वयः- त्या पुरुहूता वल्गू क्व ? अद्य नमस्वान् स्तोमः दूतः न अविदत्; यः नासत्या अर्वाक् आ ववर्त, अस्य मन्मन् प्रेष्ठा हि असथः ॥ १ ॥

३१७ अर्थ- (त्या पुरुहूता) वे दोनों बहुतों द्वारा बुलाये हुए (वल्गू क्व) सुन्दर अश्विदेव कहाँ हैं ? (अद्य) आजके दिन (नमस्वान् स्तोमः) नमनसे युक्त स्तोत्र (दूतः न) दूतके समान (अविदत्) उन्हें प्राप्त होगया, (यः) जो (नासत्या) अश्विदेवोंको (अर्वाक् आ ववर्त) हमारे सम्मुख आकर्षित कर चुका है; (अस्य मन्मन्) इसके मननीय काव्यमें तुम दोनों (प्रेष्ठा हि असथः) अत्यन्त रममाण हो जाओ ॥

[३१८]

३१८ अरं मे गन्तं हवनायास्मै गृणाना यथा पिबाथो अन्धः। परि ह त्यद् वर्तिर्याथो रिषो न यत् परो नान्तरस्तुतुर्यात् ॥२॥

३१८ अरम् । मे । गन्तम् । हवनाय । अस्मै ।
गृणाना । यथा । पिबाथः । अन्धः ॥
परि । ह । त्यत् । वर्तिः । याथः । रिपः ।
न । यत् । परः । न । अन्तरः । तुतुर्यात् ॥२॥

३१८ अन्वयः— अस्मै मे हवनाय अरं गन्तं, यथा गृणाना अन्धः पिबाथः, त्यत् वर्तिः [redacted] रिपः परि याथः यत् न परः न अन्तरः तुतुर्यात् ॥२॥

३१८ अर्थ– (अस्मै मे) इस मेरे (हवनाय अरं गन्तं) बुलानेपर तुम दोनों ठीक तरह आओ, (यथा गृणाना) जैसे जैसे हम तुम्हारी प्रशंसा करते हैं, वैसे (अन्धः पिबाथः) सोमरसको पीते रहो; (त्यत् वर्तिः [redacted]) उस घरको अवश्यही (रिपः परि याथः) हिंसक शत्रुसे बचाते रहो (यत्) जिस घरको (न परः) न दूसरा (न अन्तरः) न समीपका शत्रु (तुतुर्यात्) हिंसित करे ॥

३१८ भावार्थ— वीर हमारे घरपर आजांय, शत्रुसे उस घरकी सुरक्षा करें, और प्रशंसित होकर सोमरस पीयें और आनन्द प्रसन्न रहें ।

[३१९]

३१९ अकारि वामन्धसो वरीमन्नस्तारि बर्हिः सुप्रायणतमम् ।
उत्तानहस्तो युवयुर्ववन्दा वां नक्षन्तो अद्रय आञ्जन् ॥३

३१९ अकारि । वाम् । अन्धसः । वरीमन् ।
अस्तारि । बर्हिः । सुप्रऽअयनतमम् ॥
उत्तानऽहस्तः । युवऽयुः । ववन्द ।
आ । वाम् । नक्षन्तः । अद्रयः । आञ्जन् ॥३॥

३१९ अन्वयः– वां अन्धसः वरीमन् अकारि, सुप्रायणतमं बर्हिः अस्तारि; युवयुः उत्तानहस्तः आ ववन्द, अद्रयः वां नक्षन्तः आञ्जन् ॥ ३ ॥

३१९ अर्थ– (वां) तुम दोनोंके लिए (अन्धसः वरीमन् अकारि) सोमको निचोड रखना अत्युत्कृष्ट स्थानमें किया गया है, (सुप्रायणतमं बर्हिः) अत्यन्त कोमल कुशासन तुम्हारे लिये (अस्तारि) फैलाकर रखा है; (युवयुः उत्तानहस्तः) तुम दोनोंको चाहनेवाला हाथ ऊपर उठाकर (आ ववन्द) नमन कर रहा है, (अद्रयः) पत्थर (वां नक्षन्तः) तुम दोनोंको रसपान करानेकी इच्छा करते हुए (आञ्जन्) सोमरसको निकाल चुके हैं। अर्थात् सोमवल्लीसे रस निकाल दिया है ॥

क्रोध है (तत् तपुः अघं) वह तापक दुःख, हे अदितिके पुत्रो ! वसुओ ! रुद्रके पुत्रो ! तथा द्यावापृथिवी ! (रक्षो युजे) राक्षसोंके साथ रहनेवालेके लिए (दधात) रख दो, अर्थात् हमें उससे कोई कष्ट न मिले ॥

३१३ भावार्थ— दुष्टोंका नाश करनेके लियेही क्रोध करना योग्य है ।

[३१४]

३१४ य ई राजानावृतुथा विदधद्रजसो मित्रो वरुणश्चिकेतत् ।
गम्भीराय रक्षसे हेतिमस्य द्रोघाय चिद् वचस आनवाय ॥९॥

३१४ यः । ईम् । राजानौ । ऋतुऽथा । विऽदधत् ।
रजसः । मित्रः । वरुणः । चिकेतत् ॥
गम्भीराय । रक्षसे । हेतिम् । अस्य ।
द्रोघाय । चित् । वचसे । आनवाय ॥९॥

३१४ अन्वयः— यः ईं रजसः राजानौ ऋतुथा विदधत्, मित्रः वरुणः चिकेतत्, अस्य हेतिं द्रोघाय आनवाय वचसे चित् गंभीराय रक्षसे ॥९॥

३१४ अर्थ— (यः ईं) जो इन (रजसः राजानौ) लोकोंके अधिपति अग्निदेवोंकी (ऋतुथा विदधत्) समयानुसार सेवा करता है, उसके उस कार्यको मित्र और वरुण (चिकेतत्) पहचानते हैं और वह (अस्य हेतिं) इसके आयुधको (द्रोघाय आनवाय वचसे चित्) द्रोह करनेवाले मानवके नाशके लिए और (गंभीराय रक्षसे) प्रबल राक्षसके लिए भी उपयोगमें लाता है ॥

३१४ भावार्थ— ईश्वरके भक्तका हथियार विद्रोही दुष्ट मानवके अथवा राक्षसके नाशके लिये बर्ता जाय ।

३१४ टिप्पणी-ऋतुथा = ऋतुके अनुकूल। हेतिः = हथियार। आनवः (अनु. = प्राणी तत्व) = प्राणी, मानव, असंस्कृत मानव ।

[३१५]

३१५ अन्तरैश्चक्रैस्तनयाय वर्तिर्द्युमता यातं नृवता रथेन।
सनुत्येन त्यजसा मर्त्यस्य वनुष्यतामपि शीर्षा ववृक्तम् ॥१०॥

३१५ अन्तरैः । चक्रैः । तनयाय । वर्तिः ।
 द्युऽमता । आ । यातम् । नृऽवता । रथेन ॥
 सनुत्येन । त्यजसा । मर्त्यस्य ।
 वनुष्यताम् । अपि । शीर्षा । ववृक्तम् ॥१०॥

३१५ अन्वयः- अन्तरैः चक्रैः द्युमता नृवता रथेन तनयाय वर्तिः आ यातं; मर्त्यस्य वनुष्यतां शीर्षा सनुत्येन त्यजसा अपि ववृक्तम् ॥ १० ॥

३१५ अर्थ— (अन्तरैः चक्रैः) दूरतक जानेवाले पहियोंसे युक्त (द्युमता) प्रकाशमान (नृवता रथेन) मानवी वीरोंको ले जानेवाले रथपरसे (तनयाय) संतानको सुख देनेके लिए (वर्तिः आ यातं) घर आजाओ (मर्त्यस्य वनुष्यतां) मानवोंको कष्ट देनेवालेको (शीर्षा) सर (सनुत्येन त्यजसा) तिरस्करणीय क्रोधपूर्वक (अपि ववृक्तं) अलग कर डालो ॥

३१५ भावार्थ— मानवोंको दुःख देनेवालेको दूर करो। घरका पालन करो।

[३१६]

३१६ आ परमाभिरुत मध्यमाभिर्नियुद्भिर्यातमवमाभिरर्वाक् ।
 दृळ्हस्य चिद् गोमतो वि व्रजस्य दुरो वर्तं गृणते
ती/ चित्रराती ॥११॥

३१६ आ । परमाभिः । उत । मध्यमाभिः ।
 नियुत्ऽभिः । यातम् । अवमाभिः । अर्वाक् ॥
 दृळ्हस्य । चित् । गोऽमतः । वि । व्रजस्य ।
 दुरः । वर्तम् । गृणते । चित्रराती इति चित्रऽराती ॥११

३१६ अन्वयः- परमाभि. मध्यमाभिः उत अवमाभिः नियुद्भिः अर्वाक् आ यात; गृणते चित्रराती गोमतः व्रजस्य दृळ्हस्य चित् दुरः वि वर्तम् ॥११॥

३१६ अर्थ— (परमाभिः) अत्यन्त श्रेष्ठ, (मध्यमाभिः) मँझले दर्जेके (उत अवमाभिः) और निम्न श्रेणीके (नियुद्भिः) वाहनोंके साथ (अर्वाक् आ यातं) हमारे समीप आओ। (गृणते चित्रराती) स्तोताके लिए विचित्र दान देनेवाले तुम दोनों (दृळ्हस्य चित् गोमतः व्रजस्य) गौओंसे युक्त सुदृढ बाडेके (दुरः वि वर्तं) द्वार खोल दो ॥

[११०]

३२० ऊर्ध्वो वामग्निरध्वरेष्वस्थात्प्र रातिरेति जूर्णिनी घृताची ।
प्र होता गूर्तमना उराणोऽयुक्त यो नासत्या हवीमन् ॥४

३२० ऊर्ध्वः । वाम् । अग्निः । अध्वरेषु । अस्थात् ।
प्र । रातिः । एति । जूर्णिनी । घृताची ॥
प्र । होता । गूर्तऽमनाः । उराणः ।
अयुक्त । यः । नासत्या । हवीमन् ॥४॥

११० अन्वयः— अध्वरेषु अग्निः वां ऊर्ध्वः अस्थात्; जूर्णिनी घृताची रातिः प्र एति । यः हवीमन् नासत्या अयुक्त प्र होता गूर्तमनाः उराणः ॥ ४ ॥

११० अर्थ— (अध्वरेषु) हिंसारहित कार्योंमें अग्नि (वां) तुम दोनोंके लिए (ऊर्ध्वः अस्थात्) ऊँचा हो खडा है, जल रहा है, (जूर्णिनी घृताची) गमनशील और घृतसे लिप्त (राति प्र एति) देन प्रकर्षसे आगे बढ रही है, (यः हवीमन्) जो हवी लेकर (नासत्या अयुक्त) अश्विदेवोंके लिये अन्नदान करता है, वह (प्र होता) अच्छा दानी (गूर्तमनाः) खूब मन लगाकर काम करनेवाला तथा (उराणः) विशाल मात्रामें कार्य करनेवाला बनता है ॥

[१११]

३२१ अधि श्रिये दुहिता सूर्यस्य रथं तस्थौ पुरुभुजा शतोतिम् ।
प्र मायाभिर्मायिना भूतमत्र नरा नृतू जनिमन् यज्ञियानाम् ॥५॥

३२१ अधि । श्रिये । दुहिता । सूर्यस्य ।
रथम् । तस्थौ । पुरुऽभुजा । शतऽऊतिम् ॥
प्र । मायाभिः । मायिना । भूतम् । अत्र ।
नरा । नृतू इति । जनिमन् । यज्ञियानाम् ॥५॥

३२१ अन्वयः— पुरुभुजा ! शतोतिं रथं सूर्यस्य दुहिता श्रिये अधि तस्थौ । अत्र यज्ञियानां जनिमन् नृतू नरा मायिना मायाभिः प्र भूतम् ॥ ५ ॥

३२१ अर्थ— [illegible]े (पुरु-भुजा) बडे भुजावाले अश्विदेवों ! (शतोतिं रथं) सौ संरक्षणोंसे पूर्ण रथपर (सूर्यस्य दुहिता) सूर्यकी कन्या (श्रिये अधि तस्थौ) शोभाके लिए चढ गयी (अत्र यज्ञियानां जनिमन्) इधर पूजनीयोंके जन्मके अवसरपर आनन्दसे (नृतू) नृत्य करनेवाले (नरा) नेता (मायिना) कुशल अश्विदेव (मायाभिः प्रभूतं) अपनी अद्भुत शक्तियोंसे अत्यधिक प्रभावशाली बने ॥

[३२२]

३२२ युवं श्रीभिर्दर्शताभिराभिः शुभे पुष्टिमूहथुः सूर्यायाः ।
प्र वां वयो वपुषेऽनु पप्तन्नक्षद्वाणी सुष्टुता धिष्ण्या वाम्॥६

३२२ युवम् । श्रीभिः । दर्शताभिः । आभिः ।
शुभे । पुष्टिम् । ऊहथुः । सूर्यायाः ॥
प्र । वाम् । वयः । वपुषे । अनु । पप्तन् ।
नक्षत् । वाणी । सुऽस्तुता । धिष्ण्या । वाम् ॥६॥

३२२ अन्वयः— धिष्ण्या ! युवं आभिः दर्शताभिः श्रीभिः सूर्यायाः शुभे पुष्टिं ऊहथुः; वां वपुषे अनु वयः [illegible] पप्तन्, सुष्टुता वाणी वां नक्षत् ॥ ६ ॥

३२२ अर्थ— हे (धिष्ण्या) प्रशंसनीय अश्विदेवो ! (युवं) तुम दोनों (आभिः) इन (दर्शताभिः श्रीभिः) सुन्दर शोभाओंके साथ (सूर्यायाः शुभे) सूर्याके कल्याणके लिए (पुष्टिं ऊहथुः) पुष्टिको साथ रखते हो, तथा (वां वपुषे) तुम्हारे शरीरकी पुष्टिके लिये (अनु वयः प्र पप्तन्) अनुकूल अन्न तुम्हें प्राप्त होता है । और (सुष्टुता वाणी) अच्छी स्तुतिकी वाणी भी (वां नक्षत्) तुम दोनोंको प्राप्त होती है ॥

[३२३]

३२३ आ वां वयोऽश्वासो वहिष्ठा अभि प्रयो नासत्या वहन्तु ।
प्र वां रथो मनोजवा असर्जीषः पृक्ष इषिधो अनु पूर्वीः ॥७

३२३ आ । वाम् । वयः । अश्वासः । वहिष्ठाः ।
अभि । प्रयः । नासत्या । वहन्तु ॥
प्र । वाम् । रथः । मनःऽजवाः । असर्जि ।
इषः । पृक्षः । इषिधे । अनु । पूर्वीः ॥७॥

३२३ अन्वयः— नासत्या ! वहिष्ठाः वयः अश्वासः प्रयः अभि वां आ वहन्तु; वां मनोजवा रथः पूर्वीः पृक्षः इषिधः इषः अनु प्र असर्जि ॥ ७ ॥

३२३ अर्थ— (नासत्या) हे सत्यपालक अश्विदेवो ! (वहिष्ठाः वयः) अत्यन्त ढोनेवाले, गतिशील (अश्वासः) घोडे (प्रयः अभि) अन्न (वां आ वहन्तु) तुम दोनोंके समीप ले आयँ। (वां मनोजवा रथः) तुम दोनोंका मनके तुल्य वेगवान् रथ (पूर्वीः पृक्षः) बहुतसी पुष्टिकारक (इषिधः इषः) चाहनेयोग्य अन्न सामग्रियोंको (अनु प्र असर्जि) विशेष रीतिसे लाकर रखता है ॥

[३२४]

३२४ पुरु हि वां पुरुभुजा देष्णं धेनुं न इषं पिन्वतमसक्राम् ।
स्तुतश्च वां माध्वी सुष्टुतिश्च रसाश्च ये वामनु रातिमग्मन्

३२४ पुरु । हि । वाम् । पुरुऽभुजा । देष्णम् ।
धेनुम् । नः । इषम् । पिन्वतम् । असक्राम् ॥
स्तुतः । च । वाम् । माध्वी इति । सुऽस्तुतिः । च ।
रसाः । च । ये । वाम् । अनु । रातिम् । अग्मन्॥८॥

३२४ अन्वयः— पुरुभुजा ! वां देष्णं हि पुरु, नः धेनुं पिन्वतं, असक्रां इषं, माध्वी वां स्तुतः च सुष्टुतिः च रसाः च ये वां रातिं अनु अग्मन् ॥८॥

३२४ अर्थ— हे (पुरुभुजा) बडे भुजावाले अश्विदेवो ! (वां देष्णं हि) तुम दोनोंका दान तो (पुरु) बहुत होता है, तुमने (नः धेनुं) हमारे लिए गाय दी है, (असक्रां इषं पिन्वतं) दूसरेके पास न जानेवाली अन्न सामग्रीको यथेष्ट दी है। (वां) तुम दोनोंकी (स्तुतः च माध्वी सुष्टुतिः च रसाः च), अच्छी स्तुति तथा सोमरस भी तैयार रखे हैं, (ये) जो (वां रातिं) तुम दोनोंकी देनको (अनु अग्मन्) अनुकूल रहते हैं ॥

३२४ टिप्पणी–अ–सक्ता = दूसरी जगह संक्रमण न होनेवाली, एक जगह सुस्थिर रहनेवाली।

[३२५]

३२५ उत मे ऋज्रे पुरयस्य रघ्वी सुमीळ्हे शतं पेरुके च पक्वा।
शाण्डो दाद्धिरणिनः स्मद्दिष्टीन् दश वशासो अभिषाच ऋष्वान् ॥९॥

३२५ उत । मे । ऋज्रे इति । पुरयस्य । रघ्वी इति ।
सुऽमीळ्हे । शतम् । पेरुके । च । पक्वा ॥
शाण्डः । दात् । हिरणिनः । स्मत्ऽदिष्टीन् ।
दश । वशासः । अभिऽसाचः । ऋष्वान् ॥९॥

३२५ अन्वयः— उत पुरयस्य रघ्वी ऋज्रे सुमीळ्हे शतं पेरुके च पक्वा हिरणिनः स्मद्दिष्टीन् ऋष्वान् अभिसाचः दश वशासः शाण्डः मे दात् ॥ ९ ॥

३२५ अर्थ- (उत पुरयस्य) पुरयकी (रघ्वी ऋज्रे) शीघ्र जानेवाली, घोडियाँ (सुमीळ्हे शतं) सुमीळ्ह नरेशमें विद्यमान सौ गायें और (पेरुके च पक्वा) पेरुकके घर पाये जानेवाले पके फल (हिरणिनः) सुवर्णभूषण धारण करनेवाले (स्मद्दिष्टीन्) सुन्दररूपवाले, (ऋष्वान्) दर्शनीय (अभिसाचः) शत्रुके परामवकर्ता (दश वशासः) दस आज्ञानुवर्ती सेवकोंको (शाण्डः मे दात्) शांडने मुझे देदी ॥

३२५ भावार्थ- [यहां दानका वर्णन है।]

[३२६]

३२६ सं वां शता नासत्या सहस्राऽश्वानां पुरुपन्था गिरे दात्।
भरद्वाजाय वीर नू गिरे दाद्धता रक्षांसि पुरुदंससा स्युः ॥१०॥

३२६ सम् । <u>वाम्</u> । <u>शता</u> । <u>नासत्या</u> । <u>सहस्रा</u> ।
अश्वानाम् । <u>पुरुऽपन्थाः</u> । <u>गिरे</u> । <u>दात्</u> ॥
<u>भरत्ऽवाजाय</u> । <u>वीर</u> । <u>नु</u> । <u>गिरे</u> । <u>दात्</u> ।
<u>हता</u> । रक्षांसि । <u>पुरुऽदंससा</u> । <u>स्युरिति</u> स्युः ॥१०॥

३२६ अन्वयः- नासत्या ! वां गिरे पुरुपन्था अश्वानां शता सहस्रा सं दात; पुरुदंससा ! वीर ! भरद्वाजाय गिरे नु दात्, रक्षांसि हताः स्युः ॥ १० ॥

३२६ अर्थ- हे सत्यपालक अश्विदेवो ! (वां गिरे) तुम्हारे स्तोता मुझको पुरुपन्था नरेशने (अश्वानां शता सहस्रा) सैकडों हजारों घोडे (सं दात्) दिये; हे (पुरुदंससा) बहुत कार्य करनेवाले वीर अश्विदेवो (भरद्वाजाय गिरे) मुझ भरद्वाजको (नु) अभी यह दान (दात्) दिया है, अब (रक्षांसि हताः स्युः) राक्षस मारेही गये होंगे ॥

[३२७]

३२७ आ वां सुम्ने वरिमन्त्सूरिभिः ष्याम् ॥११॥

३२७ आ । <u>वाम्</u> । सुम्ने । वरिमन् । <u>सूरिऽभिः</u> । <u>स्याम्</u>॥११

३२७ अन्वयः- वां वरिमन् सुम्ने सूरिभिः आ स्याम् ।
३२७ अर्थ- तुम दोनोंके दिये श्रेष्ठ सुखमें विद्वानोंके साथ मैं रहूँ ॥

[३२८] (ऋ० ७।६७।१-१०)
(३२८-३८२) मैत्रावरुणिर्वसिष्ठः । त्रिष्टुप् ।

३२८ प्रति <u>वां</u> रथं नृपती <u>जरध्यै</u> <u>हविष्मता</u> मनसा <u>यज्ञियेन</u> ।
यो वां दूतो न धिष्ण्यावजीगरच्छा <u>सूनुर्न</u> <u>पितरा</u>
विवक्मि ॥१॥

३२८ प्रति । <u>वाम्</u> । रथम् । <u>नृपती</u> इति नृऽपती । <u>जरध्यै</u> ।
<u>हविष्मता</u> । मनसा । <u>यज्ञियेन</u> ॥
यः । <u>वाम्</u> । दूतः । न । <u>धिष्ण्यौ</u> । अजीगः ।
अच्छ । <u>सूनुः</u> । न । <u>पितरा</u> । <u>विवक्मि</u> ॥१॥

३१८ अन्वयः— नृपती धिष्ण्यौ ! यज्ञियेन हविष्मता मनसा वां रथं प्रति जरध्यै; यः वां दूतः न अजीगः, सूनुः पितरा न अच्छ विवक्मि ॥ १ ॥

३१८ अर्थ- हे (नृपती धिष्ण्यौ) जनताके पालक एवं बुद्धिमान् अश्विदेवो ! (यज्ञियेन) पवित्र तथा (हविष्मता मनसा) अन्नके साथ मननपूर्वक आनेवाले (वां रथं प्रति) तुम्हारे रथकी (जरध्यै) स्तुति करनेके लिए, (यः) जो (वां) तुम्हें (दूतः न) दूतके समान (अजीगः) जगा चुका है ऐसा मैं, (सूनुः पितरा न) पुत्र मातापिताके सामने जैसे खडा रहता है, उसी प्रकार, (अच्छ विवक्मि) तुम्हारे सम्मुख विशेष रीतिसे भाषण करता हूँ ॥

[३१९]

३१९ अशो॑च्य॒ग्निः स॑मिधा॒नो अ॒स्मे उपो॑ अदृश्र॒न्तम॑सश्चि॒दन्ताः॑ ।
अचे॑ति के॒तुरु॒षसः॑ पु॒रस्ता॑च्छ्रि॒ये दि॒वो दु॑हि॒तुर्जाय॑मानः ॥२

३१९ अशो॑चि । अ॒ग्निः । स॒म्ऽइ॒धा॒नः । अ॒स्मे इति॑ ।
उपो॒ इति॑ । अ॒दृ॒श्र॒न् । तम॑सः । चि॒त् । अन्ताः॑ ॥
अचे॑ति । के॒तुः । उ॒षसः॑ । पु॒रस्ता॑त् ।
श्रि॒ये । दि॒वः । दु॒हि॒तुः । जाय॑मानः ॥२॥

३१९ अन्वयः— अस्मे समिधानः अग्निः अशोचि, तमसः अन्ताः चित् उप अदृश्रन्; दिवः दुहितुः उषसः पुरस्तात् जायमानः केतुः श्रिये अचेति ॥२॥

३१९ अर्थ- (अस्मे समिधानः) हमारे लिए भलीभाँति प्रज्वलित होता हुआ (अग्निः अशोचि) अग्नि जगमगा रहा है, (तमसः अन्ताः चित्) अंधकारके अंतिम विभाग भी (उप अदृश्रन्) दिखाई देने लगे हैं; अर्थात् अन्धकार नष्ट हो रहा है, (दिवः दुहितुः उषसः) द्युलोककी कन्या उषाके (पुरस्तात्) सामने (जायमानः) प्रकट होता हुआ (केतुः) ध्वजरूप सूर्य (श्रिये अचेति) शोभाके लिए प्रकटरूपसे ज्ञात हुआ है ।

३१९ भावार्थ— अग्नि प्रदीप्त हो गया है, इसके प्रकाशसे अन्धकार नष्ट होता है, उषा प्रकट हो गयी है, उसका सूर्यरूपी ध्वज फहरने लगा है ।

[३३०]

३३० अभि वां नूनमश्विना सुहोता स्तोमैः सिषक्ति नासत्या
विवक्वान् । पूर्वीभिर्यातं पथ्याभिरर्वाक्स्वर्विदा वसुमता
रथेन ॥३॥

३३० अभि । वाम् । नूनम् । अश्विना । सुऽहोता ।
स्तोमैः । सिसक्ति । नासत्या । विवक्वान् ॥
पूर्वीभिः । यातम् । पथ्याभिः । अर्वाक् ।
स्वःऽविदा । वसुऽमता । रथेन ॥३॥

३३० अन्वयः- नासत्या अश्विना ! विवक्वान् सुहोता वां अभि नूनं स्तोमैः सिसक्ति, वसुमता स्वः विदा रथेन पूर्वीभिः पथ्याभि· यातम् ॥३॥

३३० अर्थ- हे सत्यपालक अश्विदेवो ! (विवक्वान् सुहोता) विशेष ढंगसे बुलानेवाला (वां अभि) तुम्हारे सामने (नूनं स्तोमैः सिसक्ति) अब यज्ञोंसे सेवा करता है, (वसुमता स्वःविदा रथेन) धनसे युक्त और प्रकाशको देनेवाले रथपरसे (पूर्वीभिः पथ्याभिः) पहलेसे विख्यात मार्गोंसेही (यातं) तुम आगे बढो ॥

३३० भावार्थ- यज्ञोंसे जनताकी सेवा करो। धनका बंटवारा करते [illegible] प्रसिद्ध प्राचीन यज्ञके मार्गोंसे उन्नतिके पथपर आक्रमण करो।

[३३१]

३३१ अवोर्वां नूनमश्विना युवाकुर्हुवे यद् वां सुते माध्वी
वसूयुः । आ वां वहन्तु स्थविरासो अश्वाः पिबाथो
अस्मे सुषुता मधूनि ॥४॥

३३१ अवोः । वाम् । नूनम् । अश्विना । युवाकुः ।
हुवे । यत् । वाम् । सुते । माध्वी इति । वसुऽयुः ॥
आ । वाम् । वहन्तु । स्थविरासः । अश्वाः ।
पिबाथः । अस्मे इति । सुऽसुता । मधूनि ॥४॥

३३१ अन्वयः- माध्वी अश्विना ! नूनं अवोः वां युजाकुः, यत् वसूयुः सुते वां हुवे स्थविरासः अश्वाः वां आ वहन्तु, अस्मे सुसुता मधूनि पिबाथः ॥ ४ ॥

३३१ अर्थ- हे (माध्वी अश्विना) मधुरभाषी अश्विदेवो ! (नूनं अवोः वां) सचमुच तुम रक्षणकर्ताओंके साथ (युजाकुः) संबंध रखनेवाला मैं (यत्) अब (वसूयुः) धनकी कामना करता हुआ (सुते वां हुवे) इस सोमयागमें तुम्हें बुलाता हूं, तुम्हारे (स्थविरासः अश्वाः) वृद्ध घोडे (वां आ वहन्तु) तुम्हें इधर ले आयें, और (अस्मे) हमारे बनाये (सुसुताः मधूनि पिबाथः) भलीभाँति निचोडे हुए मीठे सोमरसोंका पान करो ॥

३३१ भावार्थ— मधुर भाषण करो । संरक्षण करनेवालोंके साथ रहो और धनको प्राप्त करनेका यत्न करो । मीठा सोमरस पीओ ।

[३३२]

३३२ प्राचीमु देवाऽश्विना धियं मेऽमृध्रां सातये कृतं वसूयुम् ।
विश्वा अविष्टं वाज आ पुरंधीस्ता नः शक्तं शचीपती शचीभिः ॥५॥

३३२ प्राचीम् । ऊँ इति । देवा । अश्विना । धियम् । मे । अमृध्राम् । सातये । कृतम् । वसुऽयुम् ॥
विश्वाः । अविष्टम् । वाजे । आ । पुरम्ऽधीः । ता । नः । शक्तम् । शचीपती इति शचीऽपती । शचीभिः ॥५॥

३३२ -अन्वयः- शचीपती देवा अश्विना ! मे वसूयुं अमृध्रां प्राचीं धियं सातये कृतं, वाजे विश्वाः पुरन्धीः आ अविष्टं, ता शचीभिः नः शक्तम् ॥ ५ ॥

३३२ अर्थ- हे (शचीपती) शक्तियोंके अधिपति (देवा) देवो ! (मे वसूयुं) मेरी धनकी कामना करनेहारी (अमृध्रां प्राचीं धियं) *अहिंसित सरल बुद्धिको (सातये) धनप्राप्तिके लिए योग्य (कृतं) बना दो,* (वाजे) युद्धमें (विश्वाः पुरन्धीः) सभी बुद्धियोंका (आ अविष्टं) पूर्णतया पालन करो, (ता) तुम दोनों (शचीभिः) अपनी शक्तियोंसे (नः शक्तं) हमें सामर्थ्यवान् बना दो ॥

३३२ भावार्थ- अपनी शक्ति बढाओ । धन प्राप्त करो, बुद्धिको बढाओ, युद्धमें अपनी सुरक्षाकी शक्ति प्राप्त करो । अपनी शक्तियां बढाकर सामर्थ्यवान् बनो ।

[३३३]

३३३ अविष्टं धीष्वश्विना न आसु प्रजावद्रेतो अह्रयं नो अस्तु ।
आ वां तोके तनये तूतुजानाः सुरत्नासो देववीतिं गमेम॥

३३३ अविष्टम् । धीषु । अश्विना । नः । आसु ।
प्रजाऽवत् । रेतः । अह्रयम् । नः । अस्तु ॥
आ । वाम् । तोके । तनये । तूतुजानाः ।
सुऽरत्नासः । देवऽवीतिम् । गमेम ॥६॥

३३३ अन्वयः- अश्विना ! आसु धीषु नः अविष्टं, नः प्रजावत् रेतः अह्रयं अस्तु, वां तोके तनये तूतुजानाः सुरत्नासः देववीतिं आ गमेम ॥ ६ ॥

३३३ अर्थ- हे अश्विदेवो ! (आसु धीषु) इन बुद्धियोंमें या कर्मोंमें (नः अविष्टं) हमें सुरक्षित रखो, (नः प्रजावत् रेतः) हमारा सुसन्तान उत्पन्न करनेमें समर्थ-वीर्य (अह्रयं अस्तु) अक्षीण रहे; (वां) तुम्हें (तोके तनये तूतुजानाः) पुत्रपौत्रोंके सुखसंवर्धनके बारेमें त्वरा करनेके लिए प्रवृत्त करते हुए (सुरत्नासः) अच्छे रत्न धारण करके हम (देववीतिं आ गमेम) देवोंकी पवित्रताको प्राप्त करें ॥

३३३ भावार्थ— शुभ कर्मोंको करते हुए हम सुरक्षित रहें । सुसन्तान उत्पन्न करनेवाला वीर्य हमारे अन्दर बढे । पुत्रपौत्रोंका हित करनेकी त्वरा करो । हम अच्छे वस्त्रालंकार धारण करके देवोंके समीप पहुंचें ।

३३३ मानवधर्म- शुभ कर्म करो और अपनी सुरक्षा करनेकी शक्ति प्राप्त करो । अपना वीर्य ऐसा शुभ सत्कारसंपन्न करो कि जिससे उत्तम संतान उत्पन्न हो सकें । पुत्रपौत्रोंको शुभ संस्कारसंपन्न करो । अच्छे वस्त्रालंकार धारण करके दिव्य विबुधोंके पास जाकर उनके जैसे दिव्य भाव धारण करो ।

[३३४]

३३४ एष स्य वां पूर्वगत्वेव सख्ये निधिर्हितो माध्वी रातो अस्मे ।
अहेळता मनसा यातमर्वागश्नन्ता हव्यं मानुषीषु विक्षु॥७

३३४ एषः । स्यः । वाम् । पूर्वगत्वाऽइव । सखये ।
निऽधिः । हितः । माध्वी इति । रातः । अस्मे इति ॥
अहेळता । मनसा । आ । यातम् । अर्वाक् ।
अश्नन्ता । हव्यम् । मानुषीषु । विक्षु ॥७॥

३३४ अन्वयः- माध्वी ! अस्मे रातः एषः स्यः निधिः वां सख्ये पूर्वगत्वा इव निहितः; मानुषीषु विक्षु हव्यं अश्नन्ता अहेळता मनसा अर्वाक् आ यातम् ॥ ७ ॥

३३४ अर्थ- हे (माध्वी) मधुर भाषणकर्ता अश्विदेवों ! (अस्मे रातः) हमने दिया हुआ (एषः स्यः निधिः) यह वह भाण्डार (वां सख्ये) तुम्हारी मित्रताके लिए (पूर्वगत्वा इव हितः) अग्रगन्ताके समान आगे रखा है, (मानुषीषु विक्षु) मानवी प्रजाओंमें (हव्यं अश्नन्ता) अन्नभागका सेवन करते हुए तुम (अहेळता मनसा) क्रोधरहित मनसे (अर्वाक् आ यातम्) हमारे पास आओ ॥

[३३५]

३३५ एकस्मिन् योगे भुरणा समाने परि वां सप्त स्रवतो रथो गात् । न वायन्ति सुभ्वो देवयुक्ता ये वां धूर्षु तरणयो वहन्ति ॥८॥

३३५ एकस्मिन् । योगे । भुरणा । समाने ।
परि । वाम् । सप्त । स्रवतः । रथः । गात् ॥
न । वायन्ति । सुऽभ्वः । देवऽयुक्ताः ।
ये । वाम् । धूःऽसु । तरणयः । वहन्ति ॥८॥

३३५ अन्वयः— भुरणा ! एकस्मिन् समाने योगे वां रथः सप्त स्रवतः परि गात्; ये तरणयः धूर्षु वां वहन्ति सुभ्वः देवयुक्ताः न वायन्ति ॥ ८ ॥

३३५ अर्थ- हे (भुरणा) भरण करनेवाले अश्विदेवों ! (एकस्मिन् समाने योगे) एक समान अवसरपर (वां रथः) तुम्हारा रथ (सप्त स्रवतः) सात बहनेवाले स्रोतोंके भी (परि गात्) आगे बढ जाता है, (ये तरणयः) जो तारण करनेवाले घोडे (धूर्षु वां वहन्ति) धुराओंमें तुम्हें ढोते हैं, वे (सुभ्वः) उत्कृष्ट ढंगसे उत्पन्न (देवयुक्ताः) देवोंके जोते हुए होनेके कारण (न वायन्ति) नहीं थकते हैं ॥

*

[३३६]

३३६ अस॒श्चता॑ म॒घव॑द्भ्यो॒ हि भू॒तं ये रा॒या म॑घ॒देयं॑ जु॒नन्ति॑ ।
प्र ये बन्धुं॑ सू॒नृता॑भिस्ति॒रन्ते॒ गव्या॑ पृ॒ञ्चन्तो॒ अश्व्या॑
म॒घानि॑ ॥९॥

३३६ अस॒श्चता॑ । म॒घव॑त्ऽभ्यः । हि । भू॒तम् ।
ये । रा॒या । म॒घ॒ऽदेय॑म् । जु॒नन्ति॑ ॥
प्र । ये । बन्धु॑म् । सू॒नृता॑भिः । ति॒रन्ते॑ ।
गव्या॑ । पृ॒ञ्चन्तः॑ । अश्व्या॑ । म॒घानि॑ ॥९॥

३३६ अन्वयः- ये गव्या अश्व्या मघानि पृञ्चन्तः बन्धुं सूनृताभिः प्र तिरन्ते राया मघदेयं जुनन्ति, मघवद्भ्यः असश्चता हि भूतम् ॥ ९ ॥

३३६ अर्थ— (ये) जो (गव्या अश्व्या) गायों तथा घोडोंसे पूर्ण (मघानि पृञ्चन्तः) ऐश्वर्योंका दान करते हुए (बन्धुं) बन्धुको (सूनृताभिः प्र तिरन्ते) सच्ची वाणियोंसे दान देते हैं और (राया) धनसे युक्त होकर (मघदेयं जुनन्ति) धनके देनेको प्रेरित करते हैं, ऐसे उन (मघवद्भ्य.) वैभवशाली लोगोंके लिए (असश्चता हि भूतं) दूसरी जगह न जानेवाले बनो ॥

३३६ भावार्थ— गायों, घोडों और धनोंका दान करो। धनोंका दान करते हुए शुभ भाषण करो। योग्य रीतिसे दान करनेवाले दाताओंके पासही पहुंचो।

[३३७]

३३७ नू मे॒ हव॒मा शृ॑णुतं युवाना यासि॒ष्टं व॒र्तिर॑श्विना॒विरा॑वत् ।
ध॒त्तं रत्ना॑नि॒ जर॑तं च सू॒रीन्यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभिः॒ सदा॑ नः ॥

३३७ नु । मे॒ । हव॑म् । आ । शृ॒णु॒त॒म् । यु॒वा॒ना॒ ।
या॒सि॒ष्टम् । व॒र्तिः । अ॒श्वि॒नौ॒ । इरा॑ऽवत् ॥
ध॒त्तम् । रत्ना॑नि । जर॑तम् । च॒ । सू॒रीन् ।
यू॒यम् । पा॒त॒ । स्व॒स्तिऽभिः॑ । सदा॑ । नः॒ ॥१०॥

३३७ अन्वयः- युवाना अश्विना! मे हवं नु आ श्रृणुतं, इरावत् वर्तिः यासिष्टं, रत्नानि धत्तं सूरीन् जरतं च, स्वस्तिभिः यूयं नः सदा पात ॥ १० ॥

३३७ अर्थ- हे (युवाना अश्विना) युवक अश्विदेवों! (मे हवं) मेरी पुकार (नु आ श्रृणुतं) अब सुन लो, (इरावत् वर्तिः यासिष्टं) अन्नयुक्त घरतक चले जाओ, (रत्नानि धत्तं) रत्नोंको अपने पास धारण करो, (सूरीन् जरतं च) विद्वानोंकी सराहना करो, (स्वस्तिभिः यूयं) हितकारक उपायोंसे तुम (नः सदा पात) हमें हमेशा सुरक्षित रखो ॥

३३७ भावार्थ— जो पुकार करता है उसकी बातको सुनो। जिस घरमें पर्याप्त अन्न है और जो दाता है, वहीं जाओ। स्वयं रत्नोंका धारण करो और रत्नोंका दान करो। सच्चे ज्ञानियोंकीही प्रशंसा करो। कल्याणकारक साधनोंसे सबकी सुरक्षा करो।

[३३८] (ऋ. ७।६८।१—९) विराट्, ८–९ त्रिष्टुप्।

३३८ आ शुभ्रा यातमश्विना स्वश्वा गिरो दस्रा जुजुषाणा युवाकोः। हव्यानि च प्रतिभृता वीतं नः ॥१॥

३३८ आ। शुभ्रा। यातम्। अश्विना। सुऽअश्वा।
गिरः। दस्रा। जुजुषाणा। युवाकोः॥
हव्यानि। च। प्रतिऽभृता। वीतम्। नः ॥१॥

३३८ अन्वयः- शुभ्रा! स्वश्वा! दस्रा अश्विना! युवाकोः गिरः जुजुषाणा आ यातं, नः प्रतिभृता हव्यानि च वीतम्। ॥ १ ॥

३३८ अर्थ— हे (शुभ्रा! स्वश्वा) श्वेतवर्णवाले और अच्छे घोडे रखनेवाले (दस्रा) शत्रुविनाशक अश्विदेवों! (युवाकोः गिरः) तुम्हारी सेवा करनेवालेके भाषणोंको (जुजुषाणा) आदरपूर्वक स्वीकार करते हुए (आ यातं) आओ, (नः प्रतिभृता) हमारे इकट्ठे किये हुए (हव्यानि च वीत) हविर्भागोंका सेवन करो॥

[३३९]

३३९ प्र वामन्धांसि मद्यान्यस्थुररं गन्तं हविषो वीतये मे। तिरो अर्यो हवनानि श्रुतं नः ॥२॥

३३९ प्र । वाम् । अन्धांसि । मद्यानि । अस्थुः ।
अरम् । गन्तम् । हविषः । वीतये । मे ॥
तिरः । अर्यः । हवनानि । श्रुतम् । नः ॥२॥

३३९ अन्वयः— वां मद्यानि अन्धांसि प्र अस्थुः, मे हविषः वीतये अरं गन्तं, अर्यः तिरः नः हवनानि श्रुतम् ॥ २ ॥

३३९ अर्थ— (वां मद्यानि) तुम्हारे लिए आनन्ददायक (अन्धांसि प्र अस्थुः) अन्न रखे गये हैं । (मे हविषः वीतये) मेरे हविके आस्वादनके लिए (अरं गन्तं) सीधे यहां आगमन करो, (अर्यः तिरः) शत्रुओंको हटाकर, (नः हवनानि श्रुतं) हमारे बुलावोंको सुन लो ॥

३३९ भावार्थ— हर्षवर्धक अन्नोंका सेवन करो और शत्रुओंको हटा दो ।

[३४०]

३४० प्र वां रथो मनोजवा इयर्ति तिरो रजांस्यश्विना शतोतिः ।
अस्मभ्यं सूर्यावसू इयानः ॥३॥

३४० प्र । वाम् । रथः । मनःऽजवाः । इयर्ति ।
तिरः । रजांसि । अश्विना । शतऽऊतिः ॥
अस्मभ्यम् । सूर्यावसू इति । इयानः ॥३॥

३४० अन्वयः— सूर्यावसू अश्विना ! वां मनोजवाः रथः शतोतिः अस्मभ्यं इयानः रजांसि तिरः प्र इयर्ति ॥ ३ ॥

३४० अर्थ— हे (सूर्यावसू) सूर्याको बसानेवाले अश्विदेवो !, (वां) तुम्हारा (मनोजवाः) मनके तुल्य वेगवान् रथ (शतोतिः) सैकडों संरक्षणोंसे सुरक्षित होकर (अस्मभ्यं इयानः) हमारे पास आता हुआ (रजांसि तिरः प्र इयर्ति) धूलिके प्रदेशोंको पार करके प्रकर्षसे समीप आता है ॥

३४० भावार्थ— वेगवान् रथमें विराजो और उसकी सुरक्षा सैकडों प्रकारोंसे करो ।

[३४१]

३४१ अयं ह यद्वां देवया उ अद्रिरूर्ध्वो विवक्ति सोमसुद् युवभ्याम् । आ वल्गू विप्रो ववृतीत हव्यैः ॥४॥

३४१ अयम् । ह । यत् । वाम् । देवऽया । ऊँ इति । अद्रिः ।
ऊर्ध्वः । विवक्ति । सोमऽसुत् । युवऽभ्याम् ॥
आ । वल्गू इति । विप्रः । ववृतीत । हव्यैः ॥४॥

३४१ अन्वयः— अयं सोमसुत् अद्रिः ह यत् ऊर्ध्वः देवया वां उ युवभ्यां विवक्ति, विप्रः वल्गू हव्यैः आ ववृतीत ॥ ४ ॥

३४१अर्थ— (अयं सोमसुत्) यह सोमरस निचोडनेवाला (अद्रिः ह) पत्थर (यत्) जब (ऊर्ध्वः देवया) ऊँचे पदपर [सोमपर] आरूढ होकर देवोंकी ओर प्रवृत्त हो (वां उ) तुम दोनोंकोही लक्ष्यमें रखकर (युवभ्यां विवक्ति) तुम दोनोंका ध्यान आकर्षित करनेके लिए विशेष रूपसे [सोम कूटनेका] शब्द करता है, तब (विप्रः) ज्ञानी याजक, (वल्गू) सुन्दर रूपवाले तुम्हें (हव्यैः आ ववृतीत) हवनीय अन्नोंसे अपनी ओर आकर्षित करता है ॥

३४१ भावार्थ- सोम कूटनेका पत्थर सोमपर चढकर जो कूटनेका शब्द करता है, वह शब्द तुम्हें यज्ञके लिये बुलानेके लियेही होता है।

[३४२]

३४२ चित्रं ह यद् वां भोजनं न्वस्ति न्यत्रये महिष्वन्तं
युयोतम् । यो वामोमानं दधते प्रियः सन् ॥५॥

३४२ चित्रम् । ह । यत् । वाम् । भोजनम् । नु । अस्ति ।
नि । अत्रये । महिष्वन्तम् । युयोतम् ॥
यः । वाम् । ओमानम् । दधते । प्रियः । सन् ॥५॥

३४२ अन्वयः— यत् वां चित्रं भोजनं नु अस्ति हः अत्रये महिष्वन्तं नि युयोतं, यः प्रियः सन् वां ओमानं दधते ॥ ५ ॥

३४२ अर्थ- (यत् वां चित्रं) जो तुम दोनोंका विलक्षण (भोजनं नु अस्ति ह) अन्नरूपी दान है जो (अत्रये) ऋषि अत्रिके लिए (महिष्वन्तं नि युयोतं) शक्ति बढानेके लिये तुमने दिया, क्योंकि (यः प्रियः सन्) जो तुम्हारा प्यारा होनेके कारण (वां ओमानं दधते) तुम्हारे सुखदायक आश्रयको धारण करता है ॥

३४१ भावार्थ— अश्विदेवोंके पास उत्तम पुष्टिकारक अन्न है, वह उन्होंने अत्रिको शक्ति बढानेके लिये दिया था। क्योंकि वह उनका प्रिय भक्त है अत उसको सुरक्षासे वह सदा रहता है।

३४० मामयधर्म— कृशको पुष्ट करनेके लिये ऐसा अन्न देना चाहिये कि जो शीघ्रही उसे पुष्ट बलवान् और सुदृढ बना सके।

[३४३]

३४३ उत त्यद् वां जुरते अश्विना भूच्च्यवानाय प्रतीत्यं
हविर्दे । अधि यद् वर्प इतऊति धत्थः ॥६॥

३४३ उत । त्यत् । वाम् । जुरते । अश्विना । भूत् ।
च्यवानाय । प्रतीत्यम् । हविःऽदे ॥
अधि । यत् । वर्पः । इतःऽऊति । धत्थः ॥६॥

३४३ अन्वय – उत अश्विना ! हविर्दे जुरते च्यवानाय वां त्यत् प्रतीत्यं भूत् यत् इतऊति वर्पः अधि धत्थ ॥ ६ ॥

३४३ अर्थ- (उत अश्विना) और हे अश्विदेवो! (हविर्दे) हविका दान करनेवाले (जुरते च्यवानाय) वृद्ध च्यवानके लिए (वां त्यत्) तुम्हारा वह उनके पास (प्रतीत्य भूत्) वापस जाना हितकारक सिद्ध हुआ, (यत्) जोकि (इतऊति वर्पः) इस मृत्युसे सरक्षण देनेवाला रूप (अधि धत्थः) तुम दोनोंने उसे दे दिया ॥

३४३ भावार्थ- च्यवन ऋषि अतिवृद्ध हुआ था, उसके पास अश्विदेव गये और उसको तरुण जैसा रूप दिया, उनकी उस ऋषिपर बडी कृपा हुई।

[३४४]

३४४ उत त्यं भुज्युमश्विना सखायो मध्ये जहुर्दुरेवासः
समुद्रे । निरीं पर्षदरावा यो युवाकुः ॥७॥

३४४ उत । त्यम् । भुज्युम् । अश्विना । सखायः ।
मध्ये । जहुः । दुःऽएवासः । समुद्रे ॥
निः । ईम् । पर्षत् । अरावा । यः । युवाकुः ॥७॥

३४४ अन्वयः— उत अश्विना ! त्यं भुज्युं दुरेवासः सखायः समुद्रे मध्ये जहुः यः युवाकुः अरावा ईं निः पर्षत् ॥ ७ ॥

३४४ अर्थ— (उत अश्विना) और हे अश्विदेवो ! (त्यं भुज्युं) उस भुज्युको (दुरेवासः सखायः) बुरी चालवाले मित्र (समुद्रे मध्ये जहुः) समुन्दरके मध्य छोड चुके, (यः युवाकुः) जो तुम्हारी भक्ति करता हुआ (अरावा) तुम्हारे समीप सहायतार्थ आने लगा था, (ईं निः पर्षत्) उसे तुम पूर्णतया पार ले चले ॥

३४४ भावार्थ— राजपुत्र भुज्यु समुद्रमें डूबता था, उसको अश्विदेवोंने उठाया और समुद्रपार करके घर पहुंचाया ।

[३४५]

३४५ वृकाय चिज्जसमानाय शक्तमुत श्रुतं शयवे हूयमाना ।
यावघ्न्यामपिन्वतमपो न स्तर्यं चिच्छक्त्यश्विना शचीभिः ॥

३४५ वृकाय । चित् । जसमानाय । शक्तम् ।
उत । श्रुतम् । शयवे । हूयमाना ॥
यौ । अघ्न्याम् । अपिन्वतम् । अपः । न ।
स्तर्यम् । चित् । शक्ती । अश्विना । शचीभिः ॥८॥

३४५ अन्वयः— अश्विना ! जसमानाय वृकाय चित् शक्तं उत हूयमाना शयवे श्रुतं; यौ शचीभिः शक्ती स्तर्यं चित् अघ्न्यां अपः न अपिन्वतम् ॥ ८ ॥

३४५ अर्थ— हे अश्विदेवो ! (जसमानाय वृकाय चित्) क्षीण होनेवाले वृकके भी हितके लिए (शक्तं) तुम दान दे चुके, (उत) और (हूयमाना शयवे श्रुतं) बुलावा आनेपर शयुका हित हो इसलिए तुम उसके कथनकी ओर ध्यान दे चुके । (यौ) जो तुम दोनों (शचीभिः) कर्मोंसे (शक्ती) सामर्थ्यसे (स्तर्यं चित् अघ्न्यां) वन्ध्या गायको भी (अपः न) जलसमूहकी न्याईं (अपिन्वतं) तुम दुधारू बना चुके ॥

३४५ भावार्थ— अश्विदेवोंने वृकके लिये सहायतार्थ दान दिया, शयुकी पुकार सुन ली, वन्ध्या गौको उसके लिये दुधारू बनाया ।

३४६ एष स्य कारुर्जरते सूक्तैरग्रे बुधान उषसां सुमन्मा ।
इषा तं वर्धदघ्न्या पयोभिर्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥९

३४६ एषः । स्यः । कारुः । जरते । सुऽउक्तैः ।
अग्रे । बुधानः । उषसाम् । सुऽमन्मा ॥
इषा । तम् । वर्धत् । अघ्न्या । पयःऽभिः ।
यूयम् । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥९॥

३४६ अन्वयः- स्यः एषः सुमन्मा कारुः उषसां अग्रे बुधानः सूक्तैः जरते, अघ्न्या पयोभिः इषा तं वर्धत, यूयं नः स्वस्तिभिः सदा पात ॥ ९ ॥

३४६ अर्थ- (स्यः एषः) वही यह (सुमन्मा) उत्तम बुद्धिवाला (कारुः) कर्मकुशल पुरुष (उषसां अग्रे) उषाओंके पहले (बुधानः) जागृत होता हुआ, (सूक्तैः जरते) सूक्तोंसे प्रशंसा करता है; (अघ्न्या पयोभिः इषा) अवध्य गाय दूधसे और अन्नसे (तं वर्धत) उसे बढावे, (यूयं नः) तुम हमें (स्वस्तिभिः सदा पात) हितकारक साधनोंसे हमेशा सुरक्षित रखो ॥

३४६ भावार्थः— उषःकालमें भक्त उठे और इष्टदेवताकी स्तुति करे। जो क्षीण होते हैं उनकी पुष्टि गौ अपने दूधरूपी अन्नसे करती है। इस तरह तुम हम सबका संरक्षण करो।

[३४७] (ऋ० ७।६९।१-८) त्रिष्टुप् ।

३४७ आ वां रथो रोदसी बद्बधानो हिरण्ययो वृषभिर्यात्वश्वैः।
घृतवर्तनिः पविभी रुचान इषां वोळ्हा नृपतिर्वाजिनीवान्॥

३४७ आ । वाम् । रथः । रोदसी इति । बद्बधानः ।
हिरण्ययः । वृषऽभिः । यातु । अश्वैः ॥
घृतऽवर्तनिः । पविऽभिः । रुचानः ।
इषाम् । वोळ्हा । नृऽपतिः । वाजिनीऽवान् ॥१॥

३४७ अन्वयः– वां हिरण्ययः, घृतवर्तनिः पविभिः रुचानः, इषां वोळ्हा वाजिनीवान् नृपतिः, रोदसी बद्बधानः रथः वृषभिः अश्वैः आ यातु ॥ १ ॥

३४७ अर्थ– (वां हिरण्ययः) तुम्हारा सुवर्णमय, (घृतवर्तनिः) मार्गमें घृतको देनेवाला, (पविभिः रुचानः) आरोंसे जगमगाता हुआ (इषां वोळ्हा) अन्नोंको उचित स्थानपर पहुँचानेवाला, (वाजिनीवान् नृपतिः) सेनासे युक्त मानों नरेश जैसा (रोदसी बद्बधानः) द्युलोक और भूलोकको गर्जनासे प्रतिध्वनित करता हुआ रथ (वृषभिः अश्वैः) बलिष्ठ घोडोंसे युक्त होकर (आ यातु) इधर आजाए॥

[३४८]

३४८ स प॑प्रथा॒नो अ॒भि पञ्च॒ भूमा॑ त्रिवन्धु॒रो मन॑सा यातु यु॒क्तः।
वि॒शो॒ येन॒ गच्छ॑थो देव॒यन्ती॑ः कुत्रा॑ चि॒द् याम॑मश्विना॒ दधा॑ना ॥२॥

३४८ सः । प॒प्र॒थानः॑ । अ॒भि । पञ्च॑ । भूम॑ ।
त्रि॒ऽव॒न्धु॒रः । मन॑सा । आ । या॒तु॒ । यु॒क्तः ॥
विश॑ः । येन॑ । गच्छ॑थः । दे॒व॒ऽयन्ती॑ः ।
कुत्र॑ । चि॒त् । याम॑म् । अ॒श्वि॒ना॒ । दधा॑ना ॥२॥

३४८ अन्वयः– अश्विना ! कुत्रचित् यामं दधाना येन देवयन्तीः विशः गच्छथः सः त्रिवन्धुरः पञ्च भूमा पप्रथानः मनसा युक्तः अभि यातु ॥ २ ॥

३४८ अर्थ– हे अश्विदेवो ! (कुत्रचित् यामं दधाना) कहीं भी यात्राका प्रारंभ करते हुए (येन देवयन्तीः विशः गच्छथ) जिसपरसे तुम देवोंकी कामना करनेवाली प्रजाओंके समीप जाते हो, (सः त्रिवन्धुरः) वह तीन सुन्दर काष्ठोंसे युक्त और (पञ्च भूमा पप्रथानः) पाचोंको विस्तारित करता हुआ रथ (मनसा युक्तः अभि यातु) इशारेसेही जोता हुआ संचार करे ॥

[३४९]

३४९ स्वश्वा॑ य॒शसा॒ यात॑म॒र्वाग्दस्रा॑ नि॒धिं मधु॑मन्तं पिबाथः ।
वि वां॒ रथो॑ व॒ध्वा॒३॒॑ याद॑मा॒नोऽन्ता॑न् दि॒वो बा॑धते
वर्त॒निभ्या॑म् ॥३॥

३४९ सुऽअश्वा । युशसा । आ । यातम् । अर्वाक् ।
दस्रा । निऽधिम् । मधुऽमन्तम् । पिबाथः ॥
वि । वाम् । रथः । वध्वा । यादमानः ।
अन्तान् । दिवः । बाधते । वर्तनिऽभ्याम् ॥३॥

३४९ अन्वयः- दस्रा ! स्वश्वा यशसा अर्वाक् आ यातं मधुमन्तं निधिं पिबाथः, वां रथः वध्वा यादमानः वर्तनिभ्यां दिवः अन्तान् वि बाधते ॥ ३ ॥

३४९ अर्थ— हे (दस्रा) शत्रुविनाशक देवों ! (स्वश्वा यशसा) अच्छे घोडों और यशस्वी कार्यसे युक्त होकर (अर्वाक् आ यातं) हमारे पास आओ और (मधुमन्तं निधिं पिबाथः) मिठाससे पूर्ण इस रसके भाण्डारको पी जाओ; (वां रथः) तुम्हारा रथ (वध्वा यादमानः) वधूके साथ आगे बढता हुआ (वर्तनिभ्या) पहियोंसे (दिवः अन्तान् वि बाधते) द्युलोकके अन्तिम विभागोंको विशेष रूपसे आन्दोलित करता है ॥

[३५०]

३५० युवोः श्रियं परि योषाऽवृणीत सूरो दुहिता परितक्म्यायाम्।
यद् देवयन्तमवथः शचीभिः परि घ्रंसमोमना वां वयो
गात् ॥४॥

३५० युवोः । श्रियम् । परि । योषा । अवृणीत ।
सूरः । दुहिता । परिऽतक्म्यायाम् ॥
यत् । देवऽयन्तम् । अवथः । शचीभिः ।
परि । घ्रंसम् । ओमना । वाम् । वयः । गात् ॥४॥

३५० अन्वयः- सूरः दुहिता योषा परितक्म्यायां युवोः श्रियं परि अवृणीत यत् देवयन्तं शचीभिः अवथः, वां ओमना घ्रंसं वयः परि गात् ॥ ४ ॥

३५० अर्थ- (सूरः दुहिता) सूर्यकी कन्या (योषा) युवती सदा (परितक्म्यायां) रात्रीके अवसरपर (युवोः श्रियं परि अवृणीत) तुम्हारी शोभा बढानेवाले रथका स्वीकार कर चुकी, (यत्) जब (देवयन्तं शचीभिः

अवथः) देवोंको चाहनेवालेको शक्तियोंसे तुम सुरक्षित रखते हो, जब (वां शोमना) तुम्हारी रक्षाके कारण (प्रसं वयः) दीप्त अन्न (परि गात्) चारों ओर फैल चुका होता है ॥

३५० भावार्थ- सूर्यपुत्री उषा रात्रीके समय आती है, और प्रकाशती है, तथा वह अश्विदेवोंकी शोभा बढाती है। जो यज्ञकर्म करनेवाले हैं उनकी सुरक्षा अश्विदेव करते हैं और उस समय यज्ञमें चारों ओर अन्नदान होता रहता है।

[३५१]

३५१ यो ह स्य वां रथिरा वस्त उस्रा रथो युजानः परियाति वर्तिः । तेन नः शं योरुषसो व्युष्टौ न्यश्विना वहतं यज्ञे अस्मिन् ॥५॥

३५१ यः । ह । स्यः । वाम् । रथिरा । वस्ते । उस्राः ।
रथः । युजानः । परिऽयाति । वर्तिः ॥
तेन । नः । शम् । योः । उषसः । विऽउष्टौ ।
नि । अश्विना । वहतम् । यज्ञे । अस्मिन् ॥५॥

३५१ अन्वयः— रथिरा ! यः वां स्यः रथः युजानः वर्तिः परि याति, उस्राः वस्ते तेन अश्विना। उषसः व्युष्टौ अस्मिन् यज्ञे नः शं योः नि वहतम्॥५

३५१ अर्थ— हे (रथिरा) रथवाले देवों ! (यः वां) जो तुम्हारा (स्यः रथः) वह रथ (युजानः) घोडोंसे युक्त होनेपर (वर्तिः परि याति) घर चला जाता है, और (उस्राः वस्ते) तेजस्वी किरणोंसे विश्वको आच्छादित रहता है, (तेन) उसी रथसे हे अश्विदेवो ! (उषसः व्युष्टौ) उषाके प्रकट होनेपर (अस्मिन् यज्ञे) इस यज्ञमें (नः शं योः) हमारे लिए शान्तिकी प्राप्ति तथा दुःखोंका हटाना (नि वहतं) करो ॥

[३५२]

३५२ नरा गौरेव विद्युतं तृषाणाऽस्माकमद्य सवनोप यातम् ।
पुरुत्रा हि वां मतिभिर्हवन्ते मा वामन्ये नि यमन्देवयन्तः ॥

३५२ नरा । गौराऽइव । विद्युतम् । तृषाणा ।
अस्माकम् । अद्य । सवना । उप । यातम् ॥
पुरुऽत्रा । हि । वाम् । मतिऽभिः । हवन्ते ।
मा । वाम् । अन्ये । नि । यमन् । देवऽयन्तः ॥६॥

३५२ अन्वय – नरा ! अद्य अस्माकं सवना उप यात, तृषाणा विद्युतं गौरा इव, वां पुरुत्रा हि मतिभिः हवन्ते, अन्ये देवयन्तः वां मा नि यमन् ॥ ६ ॥

३५२ अर्थ– हे (नरा) नेता अश्विदेवो ! (अद्य अस्माकं सवना) आज हमारे सवनोंके (उप यात) समीप आओ, (तृषाणा) प्यासे तुम दोनों (विद्युतं गौरा इव) चमकनेवाले सोमरसके प्रति गौरमृगीके तुल्य जल्द जाओ और पीओ। (वां) तुम्हें (पुरुत्रा हि) अनेक स्थानोंमें सचमुच (मतिभिः हवन्ते) बुद्धिपूर्वक तैयार किये स्तोत्रोंसे (हवन्ते) लोग बुलाते हैं, (अन्ये देवयन्तः) दूसरे लोग जो देवोंकी कामना करते हैं। वे (वां मा नि यमन्) तुम्हें न रोक रखें ॥

[३५३]

३५३ युवं भुज्युमवविद्धं समुद्र उदूहथुरर्णसो अस्रिधानैः ।
पतत्रिभिरश्रमैरव्यथिभिर्दंसनाभिरश्विना पारयन्ता ॥७॥

३५३ युवम् । भुज्युम् । अवऽविद्धम् । समुद्रे ।
उत् । ऊहथुः । अर्णसः । अस्रिधानैः ॥
पतत्रिऽभिः । अश्रमैः । अव्यथिऽभिः ।
दंसनाभिः । अश्विना । पारयन्ता ॥७॥

३५३ अन्वय – अश्विना ! समुद्रे अवविद्धं भुज्युं युवं अस्रिधानैः अश्रमैः अव्यथिभिः पतत्रिभिः, दंसनाभिः पारयन्ता अर्णसः उत् ऊहथुः ॥७॥

३५३ अर्थ— हे अश्विदेवो ! (समुद्रे अवविद्धं भुज्युं) समुन्दरमें गिरे हुए भुज्युको (युवं) तुम दोनों (अस्रिधानैः) क्षीण न होनेवाले (अश्रमैः अव्यथिभिः) न थकनेवाले, व्यथासे रहित (पतत्रिभिः) पक्षीके तुल्य उड़ने वाले वाहनोंसे और (दंसनाभिः) क्रियाओंसे (पारयन्ता) पार ले चलते हुए (अर्णसः उत् ऊहथुः) समुद्रजलमेसे ऊपर उठाकर दूर पहुँचा चुके ॥

३५३ भावार्थ- भुज्यु समुद्रमें गिरा था। अश्विदेवोंने उसे उठाया, अपने वाहनोंमें, पक्षीसदृश विमानोंमें, उसको लिया और समुद्रके पार ले जाकर उसको घर पहुंचा दिया।

[३५४]

३५४ नू मे हव॒मा शृ॑णुतं युवाना यासि॒ष्टं व॒र्तिर॑श्विना॒विरा॑वत्।
ध॒त्तं रत्ना॑नि॒ जर॑तं च सू॒रीन् यू॒यं पा॑त स्व॒स्तिभि॒ः सदा॑ नः॥

३५४ नु। मे। हव॑म्। आ। शृणुतम्। युवाना।
यासिष्टम्। वर्तिः। अश्विना। इरा॑ऽवत्॥
धत्तम्। रत्ना॑नि। जर॑तम्। च। सूरीन्।
यूयम्। पात। स्वस्तिऽभिः। सदा॑। नः॥८॥

३५४ [यह मंत्र ३३७ में देखिये]

[३५५] (ऋ० ७।७०।१-७)

३५५ आ वि॑श्ववाराऽश्विना गतं नः प्र तत् स्थान॑मवाचि वां
पृथि॒व्याम्। अश्वो॒ न वा॒जी शु॒नपृ॑ष्ठो अस्था॒दा यत्
से॒दथु॑र्ध्रु॒वसे॒ न योनि॑म् ॥१॥

३५५ आ। विश्वऽवारा। अश्विना। गतम्। नः।
प्र। तत्। स्थान॑म्। अवाचि। वाम्। पृथिव्याम्॥
अश्वः। न। वाजी। शुनऽपृष्ठः। अस्थात्।
आ। यत्। सेदथुः। ध्रुवसे। न। योनि॑म् ॥१॥

३५५ अन्वयः— विश्ववारा अश्विना! पृथिव्यां वां तत् स्थानं प्र अवाचि, नः आगतं, यत् ध्रुवसे योनिं न आ सेदथुः शुनपृष्ठः वाजी अश्वः न अस्थात्॥१॥

३५५ अर्थ— हे (विश्ववारा अश्विना) सबसे वरणीय अश्विदेवों! (पृथिव्यां वां तत् स्थानं) भूमिमें तुम दोनोंका वह स्थान (प्र अवाचि) विशेष ढंगसे वर्णित किया जा चुका है, वहांसे (नः आ गतं) हमारे समीप

आओ, और (यत्र ध्रुवसे योनिं न अश्वा सेदथुः) जिसपर स्थिर बैठनेके लिए अपने निज स्थानपर बैठनेके समानही तुम बैठो, वह स्थान (शुनपृष्ठः वाजी अश्व. न) जिसकी पीठपर बैठना सुखकारक हो, ऐसे बलिष्ठ घोडेके समान यहां (अस्थात्) रखा है ॥

[३५६]

३५६ सिर्षक्ति सा वां सुमतिश्चनिष्ठाऽतापि घुर्मो मनुंषो दुरोणे।
यो वां समुद्रान्त्सुरितः पिपुर्त्येतंग्वा चिन्न सुयुजां युजानः॥

३५६ सिसंक्ति। सा। वाम्। सुऽमतिः। चनिंष्ठा।
अतापि। घुर्मः। मनुंषः। दुरोणे॥
यः। वाम्। समुद्रान्। सुरितः पिर्पर्ति।
एतंऽग्वा। चित्। न। सुऽयुजां। युजानः॥२॥

३५६ अन्वय – सा चनिष्ठा सुमतिः वां सिसक्ति, मनुषः दुरोणे घर्मः अतापि, यः सुयुजा युजानः एतग्वा चित् न, वां समुद्रान् सरितः पिपर्ति ॥२॥

३५६ अर्थ– (सा चनिष्ठा सुमतिः) वह अत्यन्त वर्णनीय अच्छी बुद्धि (वां सिसक्ति) तुम्हारी सेवा करती है, (मनुषः दुरोणे) मानवके घरमें (घर्म. अतापि) अग्नि प्रदीप्त है (यः) जो (सुयुजा युजानः) उत्तम जोते जानेवाले (एतग्वा चित् न) घोडेके तुल्य (वां) तुम्हारे समीप आता है और (समुद्रान् सरित पिपर्ति) समुन्दरों तथा नदियोंको पूर्ण करता है ॥

३५६ भावार्थ-- हमारी बुद्धि अश्विदेवोंकी स्तुतिद्वारा सेवा करती है। अब यहां याजकके घरमें अग्नि प्रदीप्त हुआ है, यज्ञ शुरू हुआ है। वह अश्विदेवोंके समीप हवि पहुचाता है और वृष्टिद्वारा नदियों और समुद्रोंको जलसे भर देता है।

[३५७]

३५७ यानि स्थानान्यश्विना दुधार्थे दिवो युह्वीष्वोर्षधीषु विक्षु।
नि पर्वतस्य मूर्धनि सदुन्तेषुं जनाय दाशुषे वहन्ता॥३॥

३५७ यानि । स्थानानि । अश्विना । दधाथे इति ।
दिवः । यह्वीषु । ओषधीषु । विक्षु ॥
नि । पर्वतस्य । मूर्धनि । सदन्ता ।
इषम् । जनाय । दाशुषे । वहन्ता ॥३॥

३५७ अन्वयः— अश्विना ! दाशुषे जनाय इषं वहन्ता, पर्वतस्य मूर्धनि नि सदन्ता दिवः यह्वीषु ओषधीषु विक्षु यानि स्थानानि दधाथे ॥ ३ ॥

३५७ अर्थ- हे अश्विदेवों ! (दाशुषे जनाय) दानी पुरुषके लिए तुम (इषं वहन्ता) अन्न पहुँचाते हैं, (पर्वतस्य मूर्धनि) पहाडके शिखरपर (नि सदन्ता) बैठते हैं, (दिवः) द्युलोककी (यह्वीषु ओषधीषु) बडी बडी सोमआदि वनस्पतियोंमें तथा (विक्षु) प्रजाओंमें (यानि स्थानानि दधाथे) जो यज्ञस्थान हैं उनका धारण करते हैं ॥

३५७ भावार्थ- अश्विदेव दाता पुरुषके लिये अन्न देते हैं, पर्वतके शिखरपर बैठते हैं, वहांकी सोमादि औषधियां लाकर जो प्रजाजन यज्ञ करते हैं, उनकी सुरक्षा करते हैं।

[३५८]

३५८ चनिष्टं देवा ओषधीष्वप्सु यद्योग्या अश्नवैथे ऋषीणाम् ।
पुरूणि रत्ना दधतौ न्य१स्मे अनु पूर्वाणि चख्यथुर्युगानि ४

३५८ चनिष्टम् । देवा । ओषधीषु । अप्ऽसु ।
यत् । योग्याः । अश्नवैथे इति । ऋषीणाम् ॥
पुरूणि । रत्ना । दधतौ । नि । अस्मे इति ।
अनु । पूर्वाणि । चख्यथुः । युगानि ॥४॥

३५८ अन्वयः- देवा ! यत् ऋषीणां योग्याः अश्नवैथे, ओषधीषु अप्सु चनिष्टं, अस्मे पुरूणि रत्नानि दधतौ पूर्वाणि युगानि अनु चख्यथुः ॥ ४ ॥

३५८ अर्थ— हे (देवा) दानी अश्विदेवों ! (यत् ऋषीणां योग्याः) जो ऋषियोंके योग्य अन्न (अश्नवैथे) तुम प्राप्त करते हो, वह (ओषधीषु) वनस्पतियोंमें (अप्सु) जलोंमें (चनिष्टं) सेवनीय अन्न (अस्मे) हमें दो,

और (पुरूणि रत्नानि) अनेक रत्न भी हमें (नि यच्छतो) दो, तथा (पूर्वाणि युगानि) पूर्व युगोंके समानही (अनु-चक्रथुः) इन युगोंको प्रकट करो ॥

३५८ भावार्थ— ऋषियोंके योग्य पवित्र अन्न तुम औषधियोंसे और जलोंसे प्राप्त करते हो और भक्तको बहुत रत्न भी देते हो, इसलिये जैसे तुम पूर्व समयमें भक्की सहायता करते रहे, वैसीही सहायता अब भी करते जाओ।

३५८ टिप्पणी– यहांका अन्न औषधि और जलसे उत्पन्न होनेवाला है। शाकभोजनही है। मांस नहीं है। यहां 'पूर्वयुग' कहे हैं। इससे 'नये युग' जाने जाते हैं।

[३५९]

३५९ शुश्रुवांसा चिदश्विना पुरूण्यभि ब्रह्माणि चक्षाथे ऋषीणाम्।
प्रति प्र यातं वरमा जनायास्मे वामस्तु सुमतिश्चनिष्ठा॥५॥

३५९ शुश्रुऽवांसा। चित्। अश्विना। पुरूणि।
अभि। ब्रह्माणि। चक्षाथे इति। ऋषीणाम्॥
प्रति। प्र। यातम्। वरम्। आ। जनाय।
अस्मे इति। वाम्। अस्तु। सुऽमतिः। चनिष्ठा॥५॥

३५९ अन्वयः– अश्विनौ! ऋषीणां पुरूणि ब्रह्माणि शुश्रुवांसा चित् अभि चक्षाथे, वरं प्रति आ प्र यातं, अस्मे जनाय वां सुमतिः चनिष्ठा अस्तु॥५॥

३५९ अर्थ– हे अश्विदेवों! (ऋषीणां) ऋषियोंके (पुरूणि) बहुतसे (ब्रह्माणि) स्तोत्र (शुश्रुवांसा चित्) सुनते हुएही (अभि चक्षाथे) तुम सबका निरीक्षण करते हो, तथा (वरं प्रति) श्रेष्ठके प्रति (आ प्र यातं) आते हो, (अस्मे जनाय) हम लोगोंके लिए (वां सुमतिः) तुम्हारी अच्छी बुद्धि (चनिष्ठा अस्तु) अन्न देनेवाली हो जाए। सहायक बन जाय॥

[३६०]

३६० यो वां यज्ञो नासत्या हविष्मान्कृतब्रह्मा समर्यो३ भवाति।
उप प्र यातं वरमा वसिष्ठमिमा ब्रह्माण्यृच्यन्ते युवभ्याम्

३६० यः । वाम् । युज्ञः । नासत्या । हुविष्मान् ।
कृतऽब्रह्मा । सुऽमुर्यः । भवाति ॥
उप । प्र । यातम् । वरम् । आ । वसिष्ठम् ।
इमा । ब्रह्माणि । ऋच्यन्ते । युवऽभ्याम् ॥६॥

३६० अन्वयः— नासत्या ! वां यः यज्ञ हविष्मान् कृत-ब्रह्मा समर्यः भवाति; वरं वसिष्ठं उप आ प्र यातं, युवभ्यां इमा ब्रह्माणि ऋच्यन्ते ॥ ६ ॥

३६० अर्थ- हे सत्य-पालक अश्विदेवों ! (वां यः यज्ञः) तुम्हारा जो यज्ञ (हविष्मान्) हविसे युक्त, (कृत-ब्रह्मा) जिसमें स्तोत्र निर्माण पूर्ण हो चुका ऐसा, (समर्यः भवाति) मानवोंसे युक्त होता है, उस (वरं वसिष्ठं) श्रेष्ठ जनोंको बसानेहारे यज्ञ-कार्यके (उप) समीप तुम (आ प्र यातं) आ जाओ, क्योंकि (युवभ्यां) तुम्हारे लिएही (इमा ब्रह्माणि ऋच्यन्ते) ये सब स्तोत्र किये जाते हैं ॥

३६० भावार्थ— यज्ञ किये जाते हैं, उनमें अनेक जनसमुदाय सम्मिलित होते हैं, उन मानवोंको सुखसे बसानेका कार्य होता है। यह यज्ञका मुख्य स्वरूप है।

[३६१]

३६१ इयं मनीषा इयमश्विना गीरिमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम् ।
इमा ब्रह्माणि युवयून्यग्मन्यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः॥७

३६१ इयम् । मनीषा । इयम् । अश्विना । गीः ।
इमाम् । सुऽवृक्तिम् । वृषणा । जुषेथाम् ॥
इमा । ब्रह्माणि । युवऽयूनि । अग्मन् ।
यूयम् । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥७॥

३६१ अन्वयः- वृषणा अश्विना ! इयं मनीषा, इयं गीः, इमां सुवृक्तिं जुषेथां, युवयूनि इमा ब्रह्माणि अग्मन्, नः सदा यूयं स्वस्तिभिः पात ॥ ७ ॥

३६१ अर्थ- हे (वृषणा) बलवान् अश्विदेवों ! (इयं मनीषा) यह हमारी इच्छा है, (इयं गीः) यह हमारा भाषण है, हमारी (इमां सुवृक्ति

जुषेथां) इस सुन्दर स्तुतिका स्वीकार करो, क्योंकि (युव-यूनि) तुम्हारी कामना पूर्ण करनेवाले (इमा ब्रह्माणि) ये स्तोत्र अब (अग्मन्) प्रचलित हुए हैं, (नः सदा) हमें हमेशा (यूयं) तुम लोग (स्वस्तिभिः पात) हितकारक साधनोंसे सुरक्षित रखो ॥

[३६२] (ऋ० ७।७१।१-६)

३६२ अप॒ स्वसु॑रु॒षसो॒ नग्जि॑हीते रि॒णक्ति॑ कृ॒ष्णीर॑रु॒षाय॒ पन्था॑म् ।
अश्वा॑मघा॒ गोम॑घा वां हुवेम॒ दिवा॒ नक्तं॒ शरु॑म॒स्मद्
यु॑योतम् ॥१॥

३६२ अप॑ । स्वसुः॑ । उ॒षसः॑ । नक् । जि॒ही॒ते॒ ।
रि॒णक्ति॑ । कृ॒ष्णीः । अ॒रु॒षाय॑ । पन्था॑म् ॥
अश्व॑ऽमघा । गोऽम॑घा । वा॒म् । हु॒वे॒म॒ ।
दिवा॑ । नक्त॑म् । शरु॑म् । अ॒स्मत् । यु॒यो॒त॒म् ॥१॥

३६२ अन्वयः— नक् स्वसुः उषसः अप जिहीते, अरुषाय कृष्णीः पन्थां रिणक्ति, अश्वामघा गोमघा वां हुवेम, अस्मत् दिवा नक्तं शरुं युयोतम् ॥ १ ॥

३६२ अर्थ— (नक्) रात (स्वसुः उषसः) बहन उषासे (अप जिहीते) दूर हटती है; (अरुषाय) लाल रंगवाले सूर्यके लिये (कृष्णीः) काली रात (पन्थां रिणक्ति) मार्ग खुला करती है, (अश्वामघा गोमघा) घोडों तथा गायोंको वैभवके स्वरूपमें देनेवाले (वां हुवेम) तुम दोनोंको बुलाते हैं, (अस्मद्) हमसे (दिवा नक्तं) दिन तथा रात (शरुं युयोतं) हिंसा करनेवालेको दूर करदो ॥

३६२ भावार्थ— रात्री उषासे दूर हो रही है, और वह सूर्यके उदयके लिये मार्ग दे रही है। इसी तरह तेजस्वी वीरोंको उन्नतिका मार्ग खुला कर देना चाहिये। वीरोंको उचित है कि वे घातपात करनेवाले समाजके शत्रुओंको दूर करें और जनताको सुरक्षित रखें।

[३६३]

३६३ उ॒पाया॑तं दा॒शुषे॒ मर्त्या॑य॒ रथे॑न वा॒मम॑श्विना॒ वह॑न्ता ।
यु॒यु॒तम॒स्मदनि॑रा॒ममी॑वां॒ दिवा॒ नक्तं॑ माध्वी॒ त्रासी॑थां नः ॥२

३६३ उपऽआयातम् । दाशुषे । मर्त्याय ।
रथेन । वामम् । अश्विना । वहन्ता ॥
युयुतम् । अस्मत् । अनिराम् । अमीवाम् ।
दिवा । नक्तम् । माध्वी इति । त्रासीथाम् । नः ॥२॥

३६३ अन्वयः— माध्वी अश्विना ! रथेन वामं वहन्ता दाशुषे मर्त्याय उप आयातं; अस्मत् अनिरां अमीवां युयुतं; नः दिवा नक्तं त्रासीथाम् ॥ २ ॥

३६३ अर्थ- हे (माध्वी) मीठे स्वभाववाले अश्विदेवों ! (रथेन वामं वहन्ता) रथपर सुन्दर अन्न लेकर (दाशुषे मर्त्याय उप-आयातं) दानी मानवके समीप आओ; (अस्मत्) हमसे (अनिरां=अन्-इरां) अन्नके अभावको और (अमीवां युयुतं) रोगको दूर कर दो, (नः) हमें (दिवा नक्तं दिन-रात (त्रासीथां) सुरक्षित रखो ॥

३६३ भावार्थ— अश्विदेव अपने रथपर उत्तम अन्न रखें और हमारेपास आकर हमें दें। अकाल और रोग हमसे दूर हों और सदा हमारी सुरक्षा हो।

३६३ मानवधर्म— जनताको उत्तम अन्न मिले, उनसे अकाल और रोग दूर किये जाय और प्रजाकी सदा सुरक्षा होती रहे।

[३६४]

३६४ आ वां रथमवमस्यां व्युष्टौ सुम्नायवो वृषणो वर्तयन्तु ।
स्यूमगभस्तिमृतयुग्भिरश्वैराश्विना वसुमन्तं वहेथाम् ॥३॥

३६४ आ । वाम् । रथम् । अवमस्याम् । विऽउष्टौ ।
सुम्नऽयवः । वृषणः । वर्तयन्तु ॥
स्यूमऽगभस्तिम् । ऋतयुक्ऽभिः । अश्वैः ।
आ । अश्विना । वसुऽमन्तम् । वहेथाम् ॥३॥

३६४ अन्वयः— अवमस्यां व्युष्टौ वृषणः सुम्नायवः वां रथं आ वर्तयन्तु; अश्विना ! ऋतयुग्भिः अश्वैः स्यूम-गभस्तिं वसुमन्तं; आ वहेथाम् ॥ ३ ॥

३६४ अर्थ— (अवमस्यां व्युष्टौ) समीपकी उषाके उदय होनेपर (वृषणः सुम्नायवः) बलवान् सुखपूर्वक जानेवाले घोडे (वां रथं) तुम्हारे

रथको (आ वर्तयन्तु) इधर ले आयें, हे अश्विदेवों ! (ऋतयुग्भिः) सरलता-पूर्वक जोते जानेवाले (अश्वैः स्यूमगभस्तिं) घोडोंसे सुखदायक किरणवाले (वसुमन्तं आ वहेथां)धनयुक्त रथको इधर ले आओ ॥

३६४ भावार्थ— उषःकालमें उठो, बलवान् और उत्तम गतिवाले घोडे अपने रथको जोतो और उस रथको जनताके रहनेके स्थानोंमें ले जाओ (और उनकी स्थिति देखो) ।

[३६५]

३६५ यो वां रथो नृपती अस्ति वोळ्हा त्रिवन्धुरो वसुमाँ उस्रयामा । आ न एना नासत्योप यातमभि यद्वां विश्वप्स्न्यो जिगाति ॥४॥

३६५ यः । वाम् । रथः । नृपती इति नृऽपती । अस्ति । वोळ्हा । त्रिऽवन्धुरः । वसुऽमान् । उस्रऽयामा ॥
आ । नः । एना । नासत्या । उप । यातम् ।
अभि । यत् । वाम् । विश्वऽप्स्न्यः । जिगाति ॥४॥

३६५ अन्वय — नृपती नासत्या ! वां यः रथः वसुमान् उस्रयामा त्रिवन्धुरः वोळ्हा अस्ति, एना नः उप आ यातं, यत् विश्वप्स्न्यः वां जिगाति॥४॥

३६५ अर्थ— हे (नृपती नासत्या) मानवोंके रक्षक और सत्य-पालक अश्वि-देवों ! (वां यः रथः) तुम्हारा जो रथ (वसुमान् उस्रयामा) धनयुक्त एवं प्रातःकालमें जानेवाला, (त्रिवन्धुरः वोळ्हा अस्ति) तीन बंधनोंवाला तथा स्थानपर शीघ्र पहुँचानेवाला है, (एना) उससे (नः उप आ यातं) हमारे समीप आओ, (यत्) चूँकि (विश्वप्स्न्यः) सर्वत्र जानेवाला रथ (वां जिगाति) तुम्हें शीघ्र लाता है ॥

३६५ भावार्थ— मानवोंकी सुरक्षा करनेवाले अश्विदेव हैं, उनका रथ अनेक धनोंसे युक्त है, उसमें तीन बैठनेके स्थान हैं और वह शीघ्र पहुँचाने-वाला है, वह सब स्थानोंमें जा सकता है, उस रथमें बैठकर वे हमारेपास आजाय ।

[३६६]

३६६ युवं च्यवानं जरसोऽमुमुक्तं नि पेदव ऊहथुराशुमश्वम् ।
निरंहसस्तमसः स्पर्तमत्रिं नि जाहुषं शिथिरे धातमन्तः ॥५

३६६ युवम् । च्यवानम् । जरसः । अमुमुक्तम् ।
नि । पेदवे । ऊहथुः । आशुम् । अश्वम् ॥
निः । अंहसः । तमसः । स्पर्तम् । अत्रिम् ।
नि । जाहुषम् । शिथिरे । धातम् । अन्तरिति ॥५॥

३६६ अन्वयः- जरसः च्यवानं अमुमुक्तं, युवं आशुं अश्वं पेदवे नि ऊहथुः, अत्रिं तमसः अंहसः निस्पर्तं, जाहुषं शिथिरे अन्तः नि धातम् ॥ ५ ॥

३६६ अर्थ- (जरसः) बुढापेसे च्यवनको तुमने (अमुमुक्तं) छुडा दिया, (युवं आशुं अश्वं) तुमने शीघ्रगामी घोडेको (पेदवे नि ऊहथुः) पेदु नरेशके पास पहुँचा दिया, (अत्रिं तमसः अंहसः) अत्रिको अँधेरेसे और कष्टसे (निस्पर्तं) पूर्णतया पार किया और (जाहुषं शिथिरे अन्तः) नरेश जाहुषको भ्रष्ट हुए उसके राज्यमें पुनः (नि धातं) तुमने बिठला दिया ॥

[३६७]

३६७ इयं मनीषा इयमश्विना गीरिमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम् ।
इमा ब्रह्माणि युवयून्यग्मन् यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥६॥

३६७ इयम् । मनीषा । इयम् । अश्विना । गीः ।
इमाम् । सुऽवृक्तिम् । वृषणा । जुषेथाम् ॥
इमा । ब्रह्माणि । युवऽयूनि । अग्मन् ।
यूयम् । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥६॥

३६७ [यह मंत्र ३६१ पर देखो ।]

[३६८] (ऋ० ७।७२।१-५)

३६८ आ गोमता नासत्या रथेनाश्वावता पुरुश्चन्द्रेण यातम् ।
अभि वां विश्वा नियुतः सचन्ते स्पार्हया श्रिया तन्वा
शुभाना ॥१॥

३६८ आ । गोऽमता । नासत्या । रथेन ।
अश्वऽवता । पुरुऽचन्द्रेण । यातम् ॥
अभि । वाम् । विश्वाः । निऽयुतः । सचन्ते ।
स्पार्हया । श्रिया । तन्वा । शुभाना ॥१॥

३६८ अन्वयः— नासत्या ! गोमता अश्वावता पुरुश्चन्द्रेण रथेन आ यातं; स्पार्हया श्रिया तन्वा शुभाना वां अभि विश्वाः नियुतः सचन्ते ॥ १ ॥

३६८ अर्थ— हे सत्य-पालक अश्विदेवो ! (गोमता अश्वावता) गायों और अश्वोंसे युक्त (पुरुश्चन्द्रेण रथेन) विविध आल्हादप्रदायक धनसे पूर्ण रथपरसे (आ यातं) आओ; (स्पार्हया श्रिया) स्पृहणीय शोभासे तथा (तन्वा शुभाना)शरीरसे शोभायमान होते हुए (वां अभि) तुम्हें (विश्वाः नियुतः सचन्ते) सभी घोडे सेवा करते हैं ॥

• ३६८ भावार्थ— अश्विदेव सत्यके पालक हैं, गौवें और घोडे तथा सुन्दर रथ उनके पास है। वे सुन्दर और सुशोभित है। घोडोंको रथमें जोतकर वे आते हैं।

[३६९]

३६९ आ नो देवेभिरुप यातमर्वाक् सजोषसा नासत्या रथेन ।
युवोर्हि नः सख्या पित्र्याणि समानो बन्धुरुत तस्य
वित्तम् ॥२॥

३६९ आ । नः । देवेभिः । उप । यातम् । अर्वाक् ।
सऽजोषसा । नासत्या । रथेन ॥
युवोः । हि । नः । सख्या । पित्र्याणि ।
समानः । बन्धुः । उत । तस्य । वित्तम् ॥२॥

३६९ अन्वयः— नासत्या ! देवेभिः सजोषसा नः अर्वाक् रथेन उप आयातम्। नः युवोः हि सख्या पित्र्याणि उत बन्धुः समानः तस्य वित्तम् ॥२॥

३६९ अर्थ– हे सत्यके पालक अश्विदेवों ! (देवेभिः सजोषसा) देवताओंके साथ तुम दोनों (नः अर्वाक्) हमारे समीप (रथेन उप आयातं) अपने रथपर बैठकर आजाओ क्योंकि (नः युवोः हि) हमारी तुम्हारे साथ (सख्या पित्र्याणि) मित्रता पितृपरंपरागत है, (उत बन्धुः समानः) और तुम्हारा बंधुभाव भी समान है। (तस्य वित्तं) इस बातको तुम जानतेही हो ॥

३६९ टिप्पणी– इस मंत्रमें (नः युवोः पित्र्याणि सख्या) कहा है। अर्थात् 'हमारी तुम्हारे साथ मित्रता पितृपरंपरासे चली आयी है' इससे यह सिद्ध हो रहा है कि अश्विदेवोंकी उपासना इस वसिष्ठ ऋषिके कुलमें पितृपिता-महसे चली आती रही है।

[३७०]

३७० उदु स्तोमा॑सो अ॒श्विनो॑रबुध्रञ्जा॒मि ब्रह्मा॑ण्यु॒षस॑श्च दे॒वीः ।
आ॒विवा॑स॒न् रोद॑सी॒ धिष्ण्ये॒मे अच्छा॒ विप्रो॒ नास॑त्या विवक्ति ॥३॥

३७० उत् । ऊँ इति॑ । स्तोमा॑सः । अ॒श्विनोः॑ । अ॒बु॒ध्र॒न् । जा॒मि । ब्रह्मा॑णि । उ॒षसः॑ । च॒ । दे॒वीः ॥
आ॒ऽविवा॑सन् । रोद॑सी॒ इति॑ । धिष्ण्ये॒ इति॑ । इ॒मे इति॑ । अच्छ॑ । विप्रः॑ । नास॑त्या । वि॒व॒क्ति॒ ॥३॥

३७० अन्वयः– अश्विनोः स्तोमासः देवीः उषसः जामि ब्रह्माणि च उत् अबुध्रन्; इमे धिष्ण्ये रोदसी आविवासन् विप्रः नासत्या अच्छ विवक्ति ॥३॥

३७० अर्थ– (अश्विनोः स्तोमासः) अश्विदेवोंके स्तोत्र (देवीः उषसः) तेजस्वी उषाओंको (जामि ब्रह्माणि च) बन्धुवत् स्तोत्रोंको भी (उत् अबुध्रन्) जागृत कर चुके हैं। (इमे धिष्ण्ये रोदसी) इन स्तुत्य द्यावापृथिवीको (आविवासन् विप्रः) परिचर्या करता हुआ ज्ञानी पुरुष (नासत्या अच्छ विवक्ति) सत्य-पालक अश्विदेवोंका वर्णन करता है, स्तुति करता है ॥

३७० भावार्थ– अश्विदेवोंके स्तोत्र उषःकालमेंही गाये जाते हैं, जिससे सब बन्धु-बान्धव जाग्रत होते हैं। द्युलोक और पृथ्वीकी स्तुति करता हुआ भक्त साथ साथ अश्विदेवोंके भी स्तोत्र गाता है।

[३७१]

३७१ वि चेदुच्छन्त्यश्विना उषासः प्र वां ब्रह्माणि कारवो भरन्ते । ऊर्ध्वं भानुं सविता देवो अश्रेद् बृहदग्नयः समिधा जरन्ते ॥४॥

३७१ वि । च । इत् । उच्छन्ति । अश्विना । उषसः ।
प्र । वाम् । ब्रह्माणि । कारवः । भरन्ते ॥
ऊर्ध्वम् । भानुम् । सविता । देवः । अश्रेत् ।
बृहत् । अग्नयः । सम्ऽइधा । जरन्ते ॥४॥

३७१ अन्वयः– अश्विनौ ! उषासः वि उच्छन्ति चेत् वां कारवः ब्रह्माणि प्र भरन्ते; देवः सविता ऊर्ध्वं भानुं अश्रेत् समिधा अग्नयः बृहत् जरन्ते ॥४॥

३७१ अर्थ— हे अश्विदेवों ! (उषासः) उषाएँ (वि उच्छन्ति चेत्) अँधेरा हटा दें तो (वां) तुम्हें (कारवः) कार्यकर्ता लोग (ब्रह्माणि प्र भरन्ते) स्तोत्र भर देते या पूर्ण करते या गाते हैं, (देवः सविता) सविता देव (ऊर्ध्वं भानुं अश्रेत्) ऊँचे प्रकाशका आश्रय लेता है, अर्थात् सूर्य भगवान् अपने तेजस्वी किरणोंसे जगमगाने लगा है, तब (समिधा) समिधासे (अग्नयः) (बृहत् जरन्ते) बहुत प्रशंसित होते हैं ॥

[३७२]

३७२ आ पश्चातान्नासत्या पुरस्तादाश्विना यातमधरादुदक्तात्। आ विश्वतः पाञ्चजन्येन राया यूयं पात स्वस्तिभिः सदा नः ॥५॥

३७२ आ । पश्चातात् । नासत्या । आ । पुरस्तात् ।
आ । अश्विना । यातम् । अधरात् । उदक्तात् ॥
आ । विश्वतः । पाञ्चऽजन्येन । राया ।
यूयम् । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥५॥

३७२ अन्वयः- नासत्या अश्विना ! अधरात् उदक्तात् पश्चातात् पुरस्तात् आ यातम्; पाञ्चजन्येन राया विश्वतः आ (यातं) यूयं नः स्वस्तिभिः सदा पात ॥ ५ ॥

३७२ अर्थ— हे सत्यपालक अश्विदेवों ! (अधरात्) नीचेसे (उदक्तात्) ऊपरसे (पश्चातात्) पीछेसे और (पुरस्तात्) आगेसे (आ यातं) तुम आओ; (पाञ्चजन्येन राया) पाँचों प्रकारके लोगोंके हितकारी धनके साथ (विश्वतः) चारों ओरसे (आयातं) तुम आओ, और (यूयं नः) तुम लोग हमें (स्वस्तिभिः) कल्याणोंसे (सदा पात) हमेशा सुरक्षित रखो ॥

[३७३] (ऋ. ७।७३।१-५)

३७३ अतारिष्म तमसस्पारमस्य प्रति स्तोमं देवयन्तो दधानाः।
पुरुदंसा पुरुतमा पुराजाऽमर्त्या हवते अश्विना गीः ॥१॥

३७३ अतारिष्म । तमसः । पारम् । अस्य ।
प्रति । स्तोमम् । देवऽयन्तः । दधानाः ॥
पुरुऽदंसा । पुरुऽतमा । पुराऽजा ।
अमर्त्या । हवते । अश्विना । गीः ॥१॥

३७३ अन्वयः— देवयन्तः स्तोमं प्रति दधानाः अस्य तमसः पारं अतारिष्म; गीः पुरुदंसा पुरुतमा पुराजा अमर्त्या अश्विना हवते ॥ १ ॥

३७३ अर्थ— (देवयन्तः) देवोंकी कामना करते हुए (स्तोमं प्रति दधानाः) स्तोत्रको धारण करते हुए (अस्य तमसः पारं अतारिष्म) इस अँधेरेके पार हम चले गये । (गीः) वाणी (पुरुदंसा) अनेक कार्यवाले, (पुरुतमा) अत्यन्त विशाल (पुराजा अमर्त्या अश्विना) पूर्वकालसे सुप्रसिद्ध अमर अश्विदेवोंको (हवते) बुलाती है, उनकी स्तुति गाती है ॥

३७३ भावार्थ— देवोंकी स्तुति करते करते अंधेरी रात्र समाप्त हुई, तथापि अश्विदेवोंकी स्तुति चलही रही है ।

[३७४]

३७४ न्यु प्रियो मनुषः सादि होता नासत्या यो यजते वन्दते च । अश्नीतं मध्वो अश्विना उपाक आ वां वोचे विदथेषु प्रयस्वान् ॥२॥

३७४ नि । ऊँ इति । प्रियः । मनुषः । सादि । होता ।
नासत्या । यः । यजते । वन्दते । च ॥
अश्नीतम् । मध्वः । अश्विना । उपाके ।
आ । वाम् । वोचे । विदथेषु । प्रयस्वान् ॥२॥

३७४ अन्वयः– नासत्या अश्विना ! यः यजते वन्दते च, होता मनुषः प्रियः नि सादि; उपाके मध्वः अश्नीतं, विदथेषु प्रयस्वान् वां आ वोचे ॥२ ॥

३७४ अर्थ– हे सत्यपालक अश्विदेवों ! (यः यजते) जो यज्ञ करता है, (वन्दते च) और प्रणाम करता है, ऐसा यह (होता मनुषः प्रियः) दानी और मानवका प्यारा यहां (नि सादि) बैठ गया है, तुम दोनों (उपाके मध्वः अश्नीतं) समीप आकर मधुररसका पान करो, (विदथेषु प्रयस्वान्) यज्ञोंमें अन्न साथ लेकर मैं (वां आ वोचे) तुम्हारी स्तुति करता हूं ॥

३७४ भावार्थ— मैं अश्विदेवोंके लिये यजन करता हूं, उनको प्रणाम करता हूं, मैं उनका प्रिय भक्त यहां बैठा हूं, अश्विदेव यहां आयें और मधुर सोमरसका पान करें । मैंने इन यज्ञोंमें उत्तम अन्न सिद्ध किया है और उसके साथ मैं तुम्हारी स्तुति करता हूं ।

[३७५]

३७५ अहेम यज्ञं पथामुराणा इमां सुवृक्तिं वृषणा जुषेथाम् ।
श्रुष्टीवेव प्रेषितो वामबोधि प्रति स्तोमैर्जरमाणो वसिष्ठः ॥३

३७५ अहेम । यज्ञम् । पथाम् । उराणाः ।
इमाम् । सुऽवृक्तिम् । वृषणा । जुषेथाम् ॥
श्रुष्टीवाऽइव । प्रऽइषितः । वाम् । अबोधि ।
प्रति । स्तोमैः । जरमाणः । वसिष्ठः ॥३॥

३७५ अन्वयः– वृषणा ! इमां सुवृक्तिं जुषेथां, वां प्रति प्रेषितः जरमाणः वसिष्ठः श्रुष्टीवा इव स्तोमैः अबोधि । पथां उराणाः यज्ञं अहेम ॥ ३ ॥

३७५ अर्थ– हे (वृषणा) बलिष्ठ अश्विदेवों ! तुम (इमां सुवृक्तिं जुषेथां) इस अच्छी स्तुतिका सेवन करो, (वां प्रति प्रेषितः) तुम्हारी ओर भेजा

हुआ (जरमाणः वसिष्ठः) स्तुति करता हुआ वसिष्ठ (क्षुदीवा इव) शीघ्रगामी दूतके तुल्य तुम्हें (स्तोमैः अबोधि) स्तुति स्तोत्रोंसे जागृत कर चुका है। (यथां इवानाः) यज्ञमार्गोंका अनुसरण करनेवाले हम सब तुम्हारे लिये (यज्ञं ऋदेम) यज्ञको सम्पन्न करते हैं ॥

३७५ भावार्थ— जिसका मन देवतापरही लगा है ऐसा एकाग्र भक्त यह वसिष्ठ है, वह तुम्हारे स्तोत्र गा रहा है। यज्ञमार्गका अनुसरण करनेवाले हम सब तुम्हारे लियेही ये यज्ञ कर रहे हैं। (एकाग्रतासे स्तुति करनी चाहिये और अपना सब कर्म प्रभुको समर्पण करना चाहिये।)

[३७६]

३७६ उप॑ त्या वह्नी॑ गमतो॒ विशं॑ नो रक्षो॒हणा॒ संभृ॑ता वी॒ळुपा॑णी। सम॒न्धांस्य॑ग्मत मत्स॒राणि॒ मा नो॑ मर्धिष्ट॒मा ग॑तं शि॒वेन॑ ॥४॥

३७६ उप॑। त्या। वह्नी॒ इति॑। ग॒म॒तः। विश॑म्। नः॒। र॒क्षः॒ऽहना॑। सम्ऽभृ॑ता। वी॒ळुपा॑णी॒ इति॑ वी॒ळुऽपा॑णी॥ सम्। अन्धां॑सि। अ॒ग्म॒त॒। म॒त्स॒राणि॑। मा। नः॒। म॒र्धि॒ष्ट॒म्। आ। ग॒त॒म्। शि॒वेन॑ ॥४॥

३७६ अन्वयः— त्या वह्नी वीळुपाणी रक्षोहणा संभृता नः विशं उप गमतः, मत्सराणि अन्धांसि सं अग्मत, नः मा मर्धिष्टं शिवेन आ गतम् ॥ ४ ॥

३७६ अर्थ— (त्या वह्नी) वे ढोनेवाले, (वीळुपाणी) दृढ हाथोंसे युक्त, (रक्षोहणा संभृता) राक्षसोंका वध करनेवाले और संभारयुक्त अश्विदेव (नः विशं उप गमतः) हमारी प्रजाके समीप आते हैं, (मत्सराणि अन्धांसि सं अग्मत) आनन्द देनेवाले अन्न इकट्ठे हो चुके, (नः मा मर्धिष्टं) हमें कष्ट न दो, और (शिवेन आ गतं) हितकारक ढंगसे इधर आओ ॥

३७६ भावार्थ— अपने हाथोंमें बल बढाओ, दुष्टोंका वध करो, सब संभार एकत्र करो, प्रजाजनोंके पास जाओ, आनन्ददायक अन्न इकट्ठे करो, किसीको कष्ट न दो, शुभभावसे इधर आओ। (शुभभावसे गमन करो।)

[३७७]

३७७ आ पश्चातान्नासत्या पुरस्तादाश्विना यातमधरादुदक्तात् ।
आ विश्वतः पाञ्चजन्येन राया यूयं पात स्वस्तिभिः
सदा नः ॥५॥

३७७ आ । पश्चातात् । नासत्या । आ । पुरस्तात् ।
आ । अश्विना । यातम् । अधरात् । उदक्तात् ॥
आ । विश्वतः । पाञ्चऽजन्येन । राया ।
यूयम् । पात । स्वस्तिऽभिः । सदा । नः ॥५॥

३७७ [यह मंत्र ३७१ पर देखो]

[३७८]

(ऋ. ७।७४।१-६) प्रगाथः= (विषमा बृहती+समा सतोबृहती)

३७८ इमा उं वां दिविंष्टय उस्रा हंवन्ते आश्विना ।
अयं वामह्वेऽवसे शचीवसू विशंविशं हि गच्छथः ॥१॥

३७८ इमाः । ॐ इति । वाम् । दिविंष्टयः ।
उस्रा । हवन्ते । अश्विना ।
अयम् । वाम् । अह्वे । अवसे । शचीवसू इति शचीऽवसू ।
विशम्ऽविशम् । हि । गच्छथः ॥१॥

३७८ अन्वयः— शचीवसू ! उस्रा अश्विना ! इमाः दिविष्टयः वां उ हवन्ते, अवसे अयं वां अह्वे, विशंविशं हि गच्छथः ॥ १ ॥

३७८ अर्थ— हे (शचीवसू) शक्तिरूपी धनसे युक्त और (उस्रा) प्रकाशने हारे अश्विदेवों ! (इमाः दिविष्टयः) ये द्युलोककी प्राप्तिकी इच्छा करनेवाले (वां उ) तुम्हेंही (हवन्ते) बुलाते हैं। (अवसे) रक्षाके लिए (अयं वां अह्वे) यह मैं तुम्हें बुलाता हूं, क्योंकि (विशंविशं हि गच्छथः) तुम हर प्रजाके समीप जाते हो ॥

३७८ भावार्थ— अश्विदेव शक्तिसे संपन्न हैं, ये भक्त उनकी प्रार्थना करते हैं, सुरक्षाके लिये मैं भी उनकीही स्तुति करता हूं, क्योंकि अश्विदेव प्रत्येक मनुष्यके पास जाते हैं। (और उनकी सहायता करते हैं।)

[३७९]

३७९ युवं चित्रं दंदथुर्भोजनं नरा चोदेथां सूनृतावते ।
अर्वाग्रथं समनसा नि यच्छतं पिबतं सोम्यं मधु ॥२॥

३७९ युवम् । चित्रम् । दुदथुः । भोजनम् । नरा ।
चोदेथाम् । सूनृताऽवते ॥
अर्वाक् । रथम् । सऽमनसा । यच्छतम् ।
पिबतम् । सोम्यम् । मधु ॥२॥

३७९ अन्वयः- नरा ! युवं चित्रं भोजनं ददथुः, सूनृतावते चोदेथां, समनसा रथं अर्वाक् नि यच्छतं सोम्यं मधु पिबतम् ॥२॥

३७९ अर्थ— हे (नरा) नेता अश्विदेवों ! (युवं चित्रं भोजनं) तुम दोनों विविध प्रकारका भोजन (ददथुः) दे चुके हो, और उसे (सूनृतावते चोदेथां) सच्ची वाणीसे युक्त मनुष्यको प्रेरित करो; (समनसा रथं) एक विचारवाले होकर रथको (अर्वाक् नि यच्छतं) हमारे सम्मुख रोके रखो और (सोम्यं मधु पिबतं) सोमसे युक्त मीठे रसका पान करो ॥

३७९ भावार्थ— मानवोंके नेता अश्विदेव विविध प्रकारका भोजन भक्तोंको देते हैं, मनुष्योंको सत्कर्मकी ओर प्रेरणा करते हैं, अतः वे शुभ मनोभावनासे हमारेपास आजांय और मधुर सोमरस पीयें ।

[३८०]

३८० आ यातमुप भूषतं मध्वः पिबतमश्विना ।
दुग्धं पयो वृषणा जेन्यावसू मा नो मर्धिष्टमा गतम् ॥३

३८० आ । यातम् । उप । भूषतम् ।
मध्वः । पिबतम् । अश्विना ॥
दुग्धम् । पयः । वृषणा । जेन्यावसू इति ।
मा । नः । मर्धिष्टम् । आ । गतम् ॥३॥

३८० अन्वयः— जेन्या-वसू वृषणा अश्विना आयातं, उप भूषतं मध्वः पिबतं, नः मा मर्धिष्टं आ गतं पयः दुग्धम् ॥ ३ ॥

३८० अर्थ— हे (जेन्या-वसू) धनोंको जीतनेवाले (वृषणा) बलिष्ठ अश्विदेवों ! (आ यातं) आओ, (उप भूषतं) अलंकृत करो, (मध्वः पिबतं) मधुररसका पान करो, (नः मा मर्धिष्टं) हमें न हिंसित करो, (आगतं) आओ और (पयः दुग्धं) दुग्धका दोहन किया है ॥

[३८१]

३८१ अश्वा॑सो॒ ये वा॒मुप॑ दा॒शुषो॑ गृ॒हं यु॒वां दीय॑न्ति॒ बिभ्र॑तः ।
म॒क्षु॒युभि॑र्नरा॒ हये॑भिरश्विना ऽऽदे॑वा यातमस्म॒यू ॥४॥

३८१ अश्वा॑सः । ये । वा॒म् । उप॑ । दा॒शुषः॑ । गृ॒हम् ।
यु॒वाम् । दीय॑न्ति । बिभ्र॑तः ॥
म॒क्षु॒युऽभिः॑ । न॒रा॒ । हये॑भिः । अ॒श्वि॒ना॒ ।
आ । दे॒वा॒ । या॒त॒म् । अ॒स्म॒यू इत्य॑स्म॒ऽयू ॥४॥

३८१ अन्वयः— वां ये अश्वासः बिभ्रतः युवां दाशुषः गृहं उप दीयन्ति; नरा अश्विना ! देवा ! अस्मयू मक्षुयुभिः हयेभिः आ यातम् ॥ ४ ॥

३८१ अर्थ— (वां ये अश्वासः) तुम्हारे जो घोडे (बिभ्रतः युवां) धारण करनेवाले तुम्हें (दाशुषः गृहं) दानी पुरुषके घरतक (उप दीयन्ति) पहुँचा देते हैं, हे (नरा) नेता अश्विदेवों ! तथा (देवा) देवतारूपी तुम (अस्मयू) हमसे मिलनेकी चाह रखनेवाले होकर (मक्षुयुभिः हयेभिः) शीघ्रगामी घोडोंसे (आ यात) आ जाओ ॥

[३८२]

३८२ अधा॑ ह॒ यन्तो॑ अ॒श्विना॒ पृक्षः॑ सचन्त सू॒रयः॑ ।
ता यं॑सतो म॒घव॑द्भ्यो ध्रु॒वं यशश्छ॒र्दिर॒स्मभ्यं॒ नास॑त्या ॥५

३८२ अध॑ । ह॒ । यन्तः॑ । अ॒श्विना॑ ।
पृक्षः॑ । स॒च॒न्त॒ । सू॒रयः॑ ॥
ता । यं॒स॒तः॒ । म॒घव॑त्ऽभ्यः । ध्रु॒वम् । यशः॑ ।
छ॒र्दिः । अ॒स्मभ्य॑म् । नास॑त्या ॥५॥

३८२ अन्वयः— नासत्या अश्विना ! अधा सूरयः यन्तः पृक्षः सचन्त, मघवद्‌भ्यः अस्मभ्यं ता छर्दिः ध्रुवं यशः यंसतः ॥ ५ ॥

३८२ अर्थ- हे सत्यपालक अश्विदेवों ! (अधा सूरयः) अब विद्वान् लोग (यन्तः) यत्न करनेपर (पृक्षः सचन्त हि) अन्न प्राप्त करते हैं, (मघवद्‌भ्यः अस्मभ्यं) धनिक हम लोगोंको (ता) प्रसिद्ध तुम दोनों (छर्दिः) घर और (ध्रुवं यशः यंसतः) स्थिर यश देदो ॥

३८२ भावार्थ- विद्वान् लोग प्रयत्न करके अन्न प्राप्त करते हैं । उस अन्नका वे यज्ञ करते हैं, जिससे उत्तम घर और स्थिर यश मिलता है ।

३८२ मानवधर्म- मनुष्य सत्यका पालन करें, विद्वान् बनकर प्रयत्नसे विविध अन्न प्राप्त करें, उसका यज्ञ करें, (सबकी भलाईके लिये उसका समर्पण करें,) और इससे अनेकोंको आश्रय देनेवाला घर और स्थायी यश कमावें ।

[१८३]

३८३ प्र ये ययुरवृकासो रथाइव नृपातारो जनानाम् ।
उत स्वेन शवसा शूशुवुर्नर उत क्षियन्ति सुक्षितिम्॥६॥

३८३ प्र । ये । ययुः । अवृकासः । रथाःऽइव ।
नृऽपातारः । जनानाम् ॥
उत । स्वेन । शवसा । शूशुवुः । नरः ।
उत । क्षियन्ति । सुऽक्षितिम् ॥६॥

३८३ अन्वयः— ये जनानां नृपातारः अवृकासः रथा-इव प्र ययुः, उत नरः स्वेन शवसा शूशुवुः उत सुक्षितिं क्षियन्ति ॥ ६ ॥

३८३ अर्थ— (ये जनानां) जो लोगोंके (नृपातारः) पालक (अ-वृकासः) भेडियेके गुणोंको अर्थात् क्रूरताको छोडकर (रथाः इव प्र ययुः) रथोंके समान आगे बढते हैं, (उत नरः) तथा वे नेता (स्वेन शवसा) अपने निजी बलसे (शूशुवुः) बढ गये और (उत सुक्षितिं क्षियन्ति) वैसेही अच्छे स्थानमें रहते हैं ॥

३८३ भावार्थ— सब लोगोंकी सुरक्षा करो, क्रूर न बनो, आगे बढकर प्रगति करो, अपना बल बढाकर समर्थ बनो और उत्तम भूमिमें उत्तम ढंगसे रहो ।

अश्विनौ दे० ३७

[३८४] (ऋ. ८।५।१—३७)

(३८४-४१०) ब्रह्मातिथिः काण्वः । (३७ पूर्वार्धस्य) । गायत्री; ३७ बृहती।

३८४ दूरादिहेव यत् सत्यरुणप्सुरशिश्वितत् ।
वि भानुं विश्वधातनत् ॥१॥

३८४ दूरात् । इहऽइव । यत् । सती ।
अरुणऽप्सुः । अशिश्वितत् ॥
वि । भानुम् । विश्वधा । अतनत् ॥१॥

३८४ अन्वयः- यत् अरुणप्सुः दूरात् इह इव सती अशिश्वितत्, भानुं विश्वधा वि अतनत् ॥ १ ॥

३८४ अर्थ- (यत्) जब (अरुणप्सुः) लाल रंगवाली उषा (दूरात् इह इव सती) दूरसेही मानों इधरही आती हुई सी (अशिश्वितत्) क्रमशः श्वेत वर्णवाली हुई, तब (भानुं) सूर्यको (विश्वधा) सभी प्रकारसे (वि अतनत्) फैला चुकी है ॥

३८४ भावार्थ- जब लाल रंगवाली उषा श्वेत वर्णवाली बनने लगी तब विशेष प्रकाश हुआ और सूर्य भी चमकने लगा ।

[३८५]

३८५ नृवद् दस्रा मनोयुजा रथेन पृथुपाजसा ।
सचेथे अश्विनोषसम् ॥२॥

३८५ नृऽवत् । दस्रा । मनःऽयुजा ।
रथेन । पृथुऽपाजसा ॥
सचेथे इति । अश्विना । उषसम् ॥२॥

३८५ अन्वयः— दस्रा अश्विना ! नृवत् मनोयुजा पृथुपाजसा रथेन उषसं सचेथे ॥२॥

३८५ अर्थ— हे (दस्रा) शत्रुविनाशक अश्विदेवो ! (नृवत्) तुम नेताके समान हो और (मनो-युजा) मनमें इच्छा करतेही आते हैं, और (पृथु-पाजसा रथेन) बडे विशाल बल या भारवाले रथसे (उषसं सचेथे) उषाके साथ साथ चलने लगते हो ॥

[३८६]

३८६ युवाभ्यां वाजिनीवसू प्रति स्तोमा अदृक्षत ।
वाचं दूतो यथोहिषे ॥३॥

३८६ युवाभ्याम् । वाजिनीवसू इति वाजिनीऽवसू ।
प्रति । स्तोमाः । अदृक्षत ॥
वाचम् । दूतः । यथा । ओहिषे ॥३॥

३८६ अन्वयः— वाजिनीवसू ! युवाभ्यां प्रति स्तोमाः अदृक्षत, दूतः यथा वाचं ओहिषे ॥३॥

३८६ अर्थ— हे (वाजिनी-वसू) धनको बसानेवाले अश्विदेवों ! (युवाभ्यां प्रति) तुम्हारी ओर (स्तोमाः अदृक्षत) स्तोत्र आते हुए दीख पडते हैं, (दूतः यथा) दूत जैसे करता है, वैसेही (वाचं ओहिषे) वाणीको मैं तुम्हारेतक पहुँचाता हूं ॥

३८६ भावार्थ— अश्विदेव धनको देते हैं, इसलिये उनके स्तोत्र गाये जाते हैं, और सेवकके समान उनके विषयमें वर्णन करते हैं ।

[३८७]

३८७ पुरुप्रिया ण ऊतये पुरुमन्द्रा पुरूवसू ।
स्तुषे कण्वासो अश्विना ॥४॥

३८७ पुरुऽप्रिया । नः । ऊतये ।
पुरुऽमन्द्रा । पुरूवसू इति पुरुऽवसू ॥
स्तुषे । कण्वासः । अश्विना ॥४॥

३८७ अन्वयः— नः ऊतये पुरुप्रिया पुरुमन्द्रा पुरूवसू अश्विना कण्वासः स्तुषे ॥ ४ ॥

३८७ अर्थ— (नः ऊतये) हमारी सुरक्षाके लिये (पुरुप्रिया) बहुतोंके प्यारे (पुरुमन्द्रा) बहुतोंको अत्यन्त हर्षित करनेवाले (पुरुवसू) अधिक धन देनेवाले अश्विदेवोंकी (कण्वासः स्तुषे) कण्व परिवारका मैं स्तुति करता हूं ॥

३८७ टिप्पणी — यहां 'कण्वासः' पद कण्व कुलके अनेक ऋषियोंका वाचक है ।

*

[३८८]

३८८ मंहिष्ठा वाजसातमेषयन्ता शुभस्पती ।
गन्तारा दाशुषो गृहम् ॥५॥

३८८ मंहिष्ठा । वाजऽसातमा ।
इषयन्ता । शुभः । पती इति ॥
गन्तारा । दाशुषः । गृहम् ॥५॥

३८८ अन्वयः– मंहिष्ठा वाजसातमा शुभस्पती इषयन्ता, दाशुषः गृहं गन्तारा ॥ ५ ॥

३८८ अर्थ— (मंहिष्ठा) अत्यन्त महनीय, (वाजसातमा) यथेष्ट अन्न, बल देनेहारे (शुभस्पती) शुभ कार्योंके पालनकर्ता (इषयन्ता) अन्न प्रदान करनेहारे और (दाशुषः गृहं) दानी पुरुषके घरपर (गन्तारा) जानेवाले अश्विदेव हैं ॥

३८८ भावार्थ–बडे, अन्नदान करनेवाले, शुभ कार्य करनेवाले, अन्न प्रदान करनेवाले, दाताकी सहायतार्थ उसके घर जानेवाले अश्विदेव हैं। (वैसे-ही मनुष्य बनें)।

[३८९]

३८९ ता सुदेवाय दाशुषे सुमेधामवितारिणीम् ।
घृतैर्गव्यूतिमुक्षतम् ॥६॥

३८९ ता । सुऽदेवाय । दाशुषे ।
सुऽमेधाम् । अविऽतारिणीम् ॥
घृतैः । गव्यूतिम् । उक्षतम् ॥६॥

३८९ अन्वयः— सुदेवाय दाशुषे ता अवितारिणीं सुमेधां गव्यूतिं घृतैः उक्षतम् ॥ ६ ॥

३८९ अर्थ— (सुदेवाय) अच्छे तेजस्वी (दाशुषे) दानीके लिये (ता) वे विख्यात तुम दोनों अश्विदेव (अवितारिणीं) नष्ट न होनेवाली (सुमेधां) अच्छी बुद्धि तथा (गव्यूतिं घृतैः उक्षतं) गौओंकी सुरक्षा करनेवाली शक्तिको घृतोंसे सींच देवें ॥

३८९ भावार्थ- अच्छे दाताको तारक और गोरक्षक-बुद्धिको और संरक्षक-शक्तिको अश्विदेव घृतादिसे अधिक समर्थ बनायें।

३८९ मानवधर्म- घृतादि पदार्थोंका सेवन करके अपनी तारक-शक्ति, सुबुद्धि और गोरक्षणकी शक्ति बढावें।

[३९०]

३९० आ नः स्तोममुप द्रवत् तूयं श्येनेभिराशुभिः।
यातमश्वेभिरश्विना ॥७॥

३९० आ। नः। स्तोमम्। उप। द्रवत्।
तूयम्। श्येनेभिः। आशुऽभिः॥
यातम्। अश्वेभिः। अश्विना ॥७॥

३९० अन्वयः- अश्विना! श्येनेभिः आशुभिः अश्वेभिः नः स्तोमं उप तूयं द्रवत् आ यातम् ॥ ७ ॥

३९० अर्थ- हे अश्विदेवो! (श्येनेभिः) श्येनपक्षीके समान (आशुभिः अश्वेभिः) शीघ्रगामी घोडोंसे (नः स्तोमं उप) हमारे यज्ञके समीप (तूयं द्रवत्) जल्द और दौडते दौडते (आ यातं) आओ ॥

[३९१]

३९१ येभिस्तिस्रः परावतो दिवो विश्वानि रोचना।
त्रीँरक्तून् परिदीयथः ॥८॥

३९१ येभिः। तिस्रः। पराऽवतः।
दिवः। विश्वानि। रोचना॥
त्रीन्। अक्तून्। परिऽदीयथः ॥८॥

३९१ अन्वयः- तिस्रः दिवः त्रीन् अक्तून् परावतः येभिः विश्वानि रोचना परिदीयथः ॥ ८ ॥

३९१ अर्थ- (तिस्रः दिवः) तीन दिन और (त्रीन् अक्तून्) तीन रातों-तक (परावतः) दूर देशसे (येभिः) जिन यानोंकी सहायतासे (विश्वानि रोचना) सभी जगमगाते तेजो-गोलोंके (परि-दीयथः) इर्दगिर्द तुम संचार करते हो उन्हींपर बैठकर इधर आओ ॥

३९१ टिप्पणी— अश्विदेवोंके यान श्येनपक्षीके सदृश आकाशमें तीन दिन और तीन रातोंतक अविकल रूपसे संचार करते थे ।

[३९२]

३९२ उत नो गोमतीरिष उत सातीरहर्विदा ।
विपथः सातये सितम् ॥९॥

३९२ उत । नः । गोऽमतीः । इषः ।
उत । सातीः । अहःऽविदा ॥
वि । पथः । सातये । सितम् ॥९॥

३९२ अन्वय – अहर्विदा ! उत नः गोमतीः इषः उत सातीः, सातये पथः वि सितम् ॥ ९ ॥

३९२ अर्थ– हे (अहर्विदा) दिनको जतलानेहारे ! (उत) और एक बात है कि (नः गोमतीः इषः) हमें गायोंसे युक्त अन्न (उत सातीः) और बाँटनेयोग्य सम्पत्तियाँ देदो, (सातये) ठीक दान करनेके लिये (पथः वि सितम्) मार्ग बतला दो ॥

[३९३]

३९३ आ नो गोमन्तमश्विना सुवीरं सुरथं रयिम् ।
वोळ्हमश्वावतीरिषः ॥१०॥

३९३ आ । नः । गोऽमन्तम् । अश्विना ।
सुऽवीरम् । सुऽरथम् । रयिम् ॥
वोळ्हम् । अश्वऽवतीः । इषः ॥१०॥

३९३ अन्वयः– अश्विना ! नः अश्वावतीः इषः गोमन्तं सुरथं सुवीरं रयिं आ वोळ्हम् ॥ १० ॥

३९३ अर्थ– हे अश्विदेवो ! (नः) हमें (अश्वावतीः इषः) घोडोंसे पूर्ण अन्न (सुरथं सुवीरं रयिं) अच्छे रथ तथा वीर सन्तानसे युक्त धन (आ वोळ्हम्) पहुँचा दो ॥

[३९४]

३९४ यावृधाना शुभस्पती दस्रा हिरण्यवर्तनी ।
पिबतं सोम्यं मधु ॥११॥

३९४ वृधाना । शुभः । पती इति ।
दस्रा । हिरण्यवर्तनी इति हिरण्यऽवर्तनी ॥
पिबेतम् । सोम्यम् । मधु ॥११॥

३९४ अन्वयः— शुभस्पती ! दस्रा ! हिरण्यवर्तनी ! वावृधाना सोम्यं मधु पिबतम् ॥ ११ ॥

३९४ अर्थ— हे (शुभः-पती) शुभ कार्योंके अधिपति ! (दस्रा) शत्रु-विनाशक ! (हिरण्यवर्तनी) स्वर्णमय रथवाले अश्विदेवो ! (वावृधाना) बढते हुए तुम दोनों (सोम्यं मधु पिबतं) सोमरससे मिलाये शहदका पान करो ॥

[३९५]

३९५ अस्मभ्यं वाजिनीवसू मघवद्भ्यश्च सप्रथः ।
छर्दिर्यन्तमदाभ्यम् ॥१२॥

३९५ अस्मभ्यम् । वाजिनीवसू इति वाजिनीऽवसू ।
मघवत्ऽभ्यः । च । सऽप्रथः ॥
छर्दिः । यन्तम् । अदाभ्यम् ॥१२॥

३९५ अन्वयः— वाजिनी-वसू ! अस्मभ्यं मघवद्भ्यः च सप्रथः अदाभ्यं छर्दिः यन्तम् ॥ १२ ॥

३९५ अर्थ— हे (वाजिनी-वसू) सेनारूपी धनवाले ! (अस्मभ्यं) हमें (मघवद्भ्यः च) और धनिकोंको (सप्रथः) अत्यन्त विस्तीर्ण (अदाभ्यं छर्दिः यन्तं) दबानेमें असंभव याने सुदृढ घर देदो ॥

[३९६]

३९६ नि षु ब्रह्म जनानां याविष्टं तूयमा गतम् ।
मो ष्वन्याँ उपारतम् ॥१३॥

३९६ नि । सु । ब्रह्म । जनानाम् ।
या । अविष्टम् । तूयम् । आ । गतम् ॥
मो इति । सु । अन्यान् । उप । अरतम् ॥१३॥

३९६ अन्वयः- या जनानां मह्न सु नि अविष्टं, तूयं आगतं, अन्यान् मो षु उपारतम् ॥ १३ ॥

३९६ अर्थ- (या) जो तुम दोनों (जनानां मह्न) जनताके ज्ञानको (सु नि अविष्टं) भली भाँति खूब सुरक्षित रख चुके, ऐसे तुम (तूयं आगतं) बहुत जल्द आओ (अन्यान्) दूसरोंके (उप) समीप (मो षु आरतं) कभी न जाओ ॥

[३९७]

३९७ अस्य पिबतमश्विना युवं मदस्य चारुणः ।
मध्वो रातस्य धिष्ण्या ॥१४॥

३९७ अस्य । पिबतम् । अश्विना ।
युवम् । मदस्य । चारुणः ॥
मध्वः । रातस्य । धिष्ण्या ॥१४॥

३९७ अन्वयः- धिष्ण्या अश्विना ! अस्य चारुणः मदस्य मध्वः रातस्य पिबतम् ॥ १४ ॥

३९७ अर्थ—हे (धिष्ण्या) पूजनीय अश्विदेवो ! (अस्य चारुणः) इस सुन्दर (मदस्य मध्वः) हर्षजनक, मीठे सोमको जोकि (रातस्य) दान दिया जा चुका है (पिबतं) तुम पीजाओ ॥

[३९८]

३९८ अस्मे आ वहतं रयिं शतवन्तं सहस्रिणम् ।
पुरुक्षुं विश्वधायसम् ॥१५॥

३९८ अस्मे इति । आ । वहतम् । रयिम् ।
शतऽवन्तम् । सहस्रिणम् ॥
पुरुऽक्षुम् । विश्वऽधायसम् ॥१५॥

३९८ अन्वयः- पुरुक्षुं विश्वधायसं शतवन्तं सहस्रिणं रयिं अस्मे आ वहतम् ॥ १५ ॥

३९८ अर्थ— हे अश्विदेवो ! (पुरुक्षुं) बहुतोंको निवास देनेवाले (विश्वधायसं) सभीका धारण करनेहारे (शतवन्तं सहस्रिणं रयिं) सैकडों हजारों संख्यावाले धनको (अस्मे आ वहतम्) हमें पहुँचादो ॥

[३९९]

३९९ पुरुत्रा चिद्धि वां नरा विह्वयन्ते मनीषिणः ।
वाघद्भिरश्विना गतम् ॥१६॥

३९९ पुरुऽत्रा । चित् । हि । वाम् । नरा ।
विऽह्वयन्ते । मनीषिणः ॥
वाघत्ऽभिः । अश्विना । आ । गतम् ॥१६॥

३९९ अन्वयः– अश्विना ! मनीषिणः नराः वां पुरुत्रा चित् हि वि-ह्वयन्ते; वाघद्भिः आ गतम् ॥ १६ ॥

३९९ अर्थ– (मनीषिणः नराः) मननशील नेता (वां) तुम्हें (पुरुत्रा चित् हि) सभी स्थानोंमें जरूर (वि-ह्वयन्ते) विशेष रूपसे बुलाते हैं, इसलिए (वाघद्भिः आ गतं) वाहनोंसे आओ ॥

[४००]

४०० जनासो वृक्तबर्हिषो हविष्मन्तो अरंकृतः ।
युवां हवन्ते अश्विना ॥१७॥

४०० जनासः । वृक्तऽबर्हिषः ।
हविष्मन्तः । अरम्ऽकृतः ॥
युवाम् । हवन्ते । अश्विना ॥१७॥

४०० अन्वयः— अश्विना ! वृक्तबर्हिषः हविष्मन्तः अरंकृतः जनासः युवां हवन्ते ॥ १७ ॥

४०० अर्थ— (वृक्तबर्हिषः) कुशासन फैलाये हुए (हविष्मन्तः अरंकृतः) हविवाले, अलंकृत (जनासः) लोग (युवां हवन्ते) तुम्हें बुलाते हैं।

[४०१]

४०१ अस्माकमद्य वामयं स्तोमो वाहिष्ठो अन्तमः ।
युवाभ्यां भूत्वश्विना ॥१८॥

४०१ अस्माकम् । अद्य । वाम् । अयम् ।
स्तोमः । वाहिष्ठः । अन्तमः ॥
युवाभ्याम् । भूतु । अश्विना ॥१८॥

४०१ अन्वयः- अद्य अश्विना ! अस्माकं अयं वां वाहिष्ठः स्तोमः युवाभ्यां अन्तमः भूतु ॥ १८ ॥

४०१ अर्थ- (अद्य) आज हे अश्विदेवों ! (अस्माकं अयं) हमारा यह (वां वाहिष्ठः) तुम्हारे प्रति अत्यन्त आतुरतासे जानेवाला (स्तोमः) स्तोत्र (युवाभ्यां अन्तमः भूतु) तुम्हारे अतीव निकट चला जाए ॥

[४०२]

४०२ यो ह॑ वां॒ मधु॑नो॒ दृति॒राहि॑तो रथ॒चर्ष॑णे ।
तत॑ः पिबतमश्विना ॥१९॥

४०२ यः । ह॒ । वा॒म् । मधु॑नः । दृति॑ः ।
आऽहि॑तः । र॒थ॒ऽचर्ष॑णे ॥
तत॑ः । पि॒ब॒त॒म् । अ॒श्वि॒ना॒ ॥१९॥

४०२ अन्वयः- अश्विना ! वां रथचर्षणे यः मधुनः दृतिः आहितः ह ततः पिबतम् ॥ १९ ॥

४०२ अर्थ— हे अश्विदेवों ! (वां रथचर्षणे) तुम्हारे रथके देखनेयोग्य भागमें (यः मधुनः दृतिः) जो मधुका बर्तन (आहितः ह) रखा हुआ है, (ततः पिबतं) उससे पान करो ॥

[४०३]

४०३ तेन॑ नो वाजिनीवसू पश्वे॑ तो॒काय॒ शं गवे॑ ।
वह॑त॒ं पीव॑री॒रिष॑ः ॥२०॥

४०३ तेन॑ । नः॒ । वा॒जि॒नी॒व॒सू॒ इति॑ वाजिनीऽवसू ।
पश्वे॑ । तो॒काय॑ । शम् । गवे॑ ॥
वह॑तम् । पीव॑रीः । इष॑ः ॥२०॥

४०३ अन्वयः — वाजिनी-वसू ! नः पश्वे तोकाय गवे शं पीवरीः इषः तेन वहतम् ॥ २० ॥

४०३ अर्थ- हे (वाजिनी—वसू) यज्ञक्रियाको धन माननेवाले अश्विदेवों ! (नः पश्वे तोकाय) हमारे पशु तथा संतान और (गवे) गौके लिए (शं) सुखकारक हो इस ढंगसे (पीवरीः इषः) पुष्ट अन्नसामग्रियाँ (तेन वहतं) उस रथसे इधर आओ ॥

[४०४]

४०४ उत नो दिव्या इष उत सिन्धूँरहर्विदा ।
अप द्वारेव वर्षथः ॥२१॥

४०४ उत । नः । दिव्याः । इषः ।
उत । सिन्धून् । अहःऽविदा ॥
अप । द्वाराऽइव । वर्षथः ॥२१॥

४०४ अन्वयः– अहर्विदा ! उत नः दिव्याः इषः उत सिन्धून् द्वारा इव अप वर्षथः ॥ २१ ॥

४०४ अर्थ– हे (अहः विदा) दिनको जतलानेहारे ! (उत) और (नः) हमें (दिव्याः इषः) उच्चकोटिकी अन्नसामग्रियाँ (उत सिन्धून्) तथा बहनेवाले जलसमूहोंको, (द्वारा इव) मार्गसे जल जैसे छोडे जाते हैं वैसेही, (अप वर्षथः) तुम वारिश लगातार कर देते रहो ॥

[४०५]

४०५ कदा वां तौग्र्यो विधत् समुद्रे जहितो नरा ।
यद् वां रथो विभिष्पतात् ॥२२॥

४०५ कदा । वाम् । तौग्र्यः । विधत् ।
समुद्रे । जहितः । नरा ॥
यत् । वाम् । रथः । विऽभिः । पतात् ॥२२॥

४०५ अन्वयः — नरा ! समुद्रे जहितः तौग्र्यः वां कदा विधत् ? वां रथः यत् विभिः पतात् ॥२२॥

४०५ अर्थ– हे (नरा) नेता अश्विदेवों ! (समुद्रे जहितः तौग्र्यः) समुन्दरमें फेंका हुआ तुग्रका पुत्र (वां कदा विधत्) तुम्हारी स्तुति भला कब करचुका ? (वां रथः) तुम्हारा रथ (यत् विभिः पतात्) ,जब पक्षी जैसा उडते हुए आगया था ॥

⊛

[४०६]

४०६ युवं कण्वाय नासत्याऽपिरिप्ताय हर्म्ये ।
शश्वदूतीर्दशस्यथः ॥२३॥

४०६ युवम् । कण्वाय । नासत्या ।
अपिऽरिप्ताय । हर्म्ये ॥
शश्वत् । ऊतीः । दशस्यथः ॥२३॥

४०६ अन्वयः— नासत्या ! अपिरिप्ताय कण्वाय युवं शश्वत् हर्म्ये ऊतीः दशस्यथः ॥ २३ ॥

४०६ अर्थ— हे सत्यपालक अश्विदेवो ! (अपिरिप्ताय कण्वाय) दुःखी कण्वको (युवं) तुम (शश्वत्) हमेशा (हर्म्ये) ऊँचे महलमें (ऊतीः दशस्यथः) अनेक संरक्षण देते हो ॥

[४०७]

४०७ ताभिरा यातमूतिभिर्नव्यसीभिः सुशस्तिभिः ।
यद् वां वृषण्वसू हुवे ॥२४॥

४०७ ताभिः । आ । यातम् । ऊतिऽभिः ।
नव्यसीभिः । सुशस्तिऽभिः ॥
यत् । वाम् । वृषण्वसू इति वृषण्ऽवसू । हुवे ॥२४॥

४०७ अन्वयः- वृषण्वसू ! यत् वां हुवे, नव्यसीभिः सुशस्तिभिः ताभि ऊतिभिः आ यातम् ॥२४॥

४०७ अर्थ- हे (वृषण्वसू !) धनकी वर्षा करनेहारे अश्विदेवो ! (यत् वां हुवे) चूँकि मैं तुम्हें बुला रहा हूँ इसलिए (नव्यसीभिः सुशस्तिभिः) नई भलीभाँति प्रशंसनीय बातोंसे और (ताभिः ऊतिभिः) उन संरक्षणोंसे युक्त होकर (आ यातं) इधर आओ ॥

[४०८]

४०८ यथा चित् कण्वमावतं प्रियमेधमुपस्तुतम् ।
अत्रिं शिञ्जारमश्विना ॥२५॥

४०८ यथा । चित् । कण्वम् । आवतम् ।
प्रियऽमेधम् । उपऽस्तुतम् ॥
अत्रिम् । शिञ्जारम् । अश्विना ॥२५॥

४०८ अन्वयः– अश्विना ! यथा शिञ्जारं अत्रिं उपस्तुतं प्रियमेधं कण्वं चित् आवतम् ॥२५॥

४०८ अर्थ– हे अश्विदेवों ! (यथा शिञ्जारं अत्रिं) जैसे शिंजारको, अत्रिको, (उपस्तुतं प्रियमेधं कण्वं चित्) उपस्तुतको, प्रियमेधको और कण्वको भी (आवतं) तुमने सुरक्षित किया ॥

[४०९]

४०९ यथोत कृत्व्ये धनेंऽशुं गोष्वगस्त्यम् ।
यथा वाजेषु सोभरिम् ॥२६॥

४०९ यथा । उत । कृत्व्ये । धने ।
अंशुम् । गोषु । अगस्त्यम् ॥
यथा । वाजेषु । सोभरिम् ॥२६॥

४०९ अन्वयः– उत यथा कृत्व्ये धने अंशुं गोषु अगस्त्यं, यथा सोभरिं वाजेषु ॥२६॥

४०९ अर्थ– (उत) और (यथा कृत्व्ये धने) जैसे संपादन करनेयोग्य धनको पानेमें (अंशुं) अंशुको (गोषु अगस्त्यं) गौओंकी प्राप्तिमें अगस्त्यको (यथा सोभरिं वाजेषु) जैसे सोभरिको युद्धोंमें तुमने बचाया था ॥

[४१०]

४१० एतावद् वां वृषण्वसू अतो वा भूयो अश्विना ।
गृणन्तः सुम्नमीमहे ॥२७॥

४१० एतावत् । वाम् । वृषण्वसू इति वृषण्ऽवसू ।
अतः । वा । भूयः । अश्विना ॥
गृणन्तः । सुम्नम् । ईमहे ॥२७॥

४१० अन्वयः— वृषण्वसू अश्विना ! गृणन्तः वां एतावत् अतः भूयः वा सुम्नं ईमहे ॥२७॥

४१० अर्थ— वैसेही हे (वृषण्वसू) धनकी वर्षा करनेहारे अश्विदेवो ! (वां गृणन्तः) तुम्हारी सराहना करते हुए (एतावत्) इतना (अतः भूयः वा) या इससे भी अधिक (सुम्नं ईमहे) सुखकी याचना हम करते हैं ॥

[४११]

४११ रथं हिरण्यवन्धुरं हिरण्याभीशुमश्विना ।
आ हि स्थाथो दिविस्पृशम् ॥२८॥

४११ रथम् । हिरण्यऽवन्धुरम् ।
हिरण्यऽअभीशुम् । अश्विना ॥
आ । हि । स्थाथः । दिविऽस्पृशम् ॥२८॥

४११ अन्वयः— अश्विना ! हिरण्यवन्धुरं हिरण्य-अभीशुं दिवि स्पृशं रथं आस्थाथः हि ॥ २८ ॥

४११ अर्थ— हे अश्विदेवो ! (हिरण्यवन्धुरं) सुवर्णमय बन्धुवाले (हिरण्य-अभीशुं) सुनहरे चाबुक या लगामवाले (दिवि-स्पृशं) द्युलोकको छूनेवाले (रथं आ स्थाथः हि) रथपर तुम अवश्य चढ जाते हो ॥

[४१२]

४१२ हिरण्ययी वां रभिरीषा अक्षो हिरण्ययः ।
उभा चक्रा हिरण्यया ॥२९॥

४१२ हिरण्ययी । वाम् । रभिः ।
ईषा । अक्षः । हिरण्ययः ॥
उभा । चक्रा । हिरण्यया ॥२९॥

४१२ अन्वयः— वां रभिः ईषा हिरण्ययी अक्षः हिरण्ययः उभा चक्रा हिरण्यया ॥२९॥

४१२ अर्थ— (वां रभिः ईषा हिरण्ययी) तुम्हारी आलंबन देनेवाली लकड़ी सुनहली है, (अक्षः हिरण्ययः) पहियेकी धुरी सुवर्णमय है (उभा चक्रा हिरण्यया) दोनों पहिये भी सुवर्णके बने हुए हैं ॥

[४१३]

४१३ तेन नो वाजिनीवसू परावतश्चिदा गतम् ।
उपेमां सुष्टुतिं मम ॥२०॥

४१३ तेन । नः । वाजिनीवसू इति वाजिनीऽवसू ।
पराऽवतः । चित् । आ । गतम् ॥
उप । इमाम् । सुऽस्तुतिम् । मम ॥२०॥

४१३ अन्वयः— वाजिनी-वसू ! तेन इमां मम सुष्टुतिं नः परावतः चित् उप आ गतम् ॥२०॥

४१३ अर्थ— हे (वाजिनी-वसू) बलको धन समझनेवाले ! (तेन) उस रथसे (इमां मम सुष्टुतिं) इस मेरी अच्छी स्तुतिको सुननेके लिये (नः) हमारे पास (परावतः चित्) दूर देशसे भी (उप आ गतं) समीप आओ ॥

[४१४]

४१४ आ यद्देथे पराकात् पूर्वीरश्नन्तावश्विना ।
इषो दासीरमर्त्या ॥२१॥

४१४ आ । यद्देथे इति । पराकात् ।
पूर्वीः । अश्नन्तौ । अश्विना ॥
इषः । दासीः । अमर्त्या ॥२१॥

४१४ अन्वयः— अमर्त्या अश्विना ! पूर्वीः दासीः इषः अश्नन्तौ पराकात् आ यद्देथे ॥ २१ ॥

४१४ अर्थ— हे (अमर्त्या) अ-मरणशील अश्विदेवो ! (पूर्वीः दासीः इषः) बहुतसी दासोंकी अन्नसामग्रियाँ (अश्नन्तौ) प्राप्त करते हुए (पराकात् आ यद्देथे) सुदूर देशसे इधर आ पहुँचते हो ॥

[४१५]

४१५ आ नो द्युम्नैरा श्रवोभिरा राया यातमश्विना ।
पुरुश्चन्द्रा नासत्या ॥२२॥

४१५ आ । नः । द्युम्नैः । आ । श्रवःऽभिः ।
आ । राया । यातम् । अश्विना ॥
पुरुऽचन्द्रा । नासत्या ॥ ३२ ॥

४१५अन्वयः— पुरु-चन्द्रा । नासत्या अश्विना ! नः द्युम्नैः श्रवोभिः राया आ यातम् ॥ ३२ ॥

४१५ अर्थ— हे (पुरु-चन्द्रा) बहुतोंको आनन्द देनेवाले एवं सत्यपूर्ण अश्विदेवो ! (नः) हमारे समीप (द्युम्नैः श्रवोभिः राया) धनों, अन्नों तथा वैभवसे युक्त होकर (आ यातं) आओ ॥

[४१६]

४१६ एह वां प्रुषितप्सवो वयो वहन्तु पर्णिनः ।
अच्छा स्वध्वरं जनम् ॥३३॥

४१६ आ । इह । वाम् । प्रुषितऽप्सवः ।
वयः । वहन्तु । पर्णिनः ॥
अच्छ । सुऽअध्वरम् । जनम् ॥ ३३ ॥

४१६ अन्वयः— इह पर्णिनः प्रुषित-प्सवः वयः स्वध्वरं जनं अच्छ वां आ वहन्तु ॥ ३३ ॥

४१६ अर्थ— (इह) इधर (पर्णिनः) पंखवाले (प्रुषितप्सवः वयः) स्निग्धरूपवाले एवं गतिशील पक्षी जैसे घोडे (स्वध्वरं जनं अच्छ) अच्छे अहिंसक कार्य करनेवाले लोगोंके प्रति (वां आ वहन्तु) तुम्हें ले आवें ॥

[४१७]

४१७ रथं वामनुगायसं य इषा वर्तते सह ।
न चक्रमभि बाधते ॥३४॥

४१७ रथम् । वाम् । अनुऽगायसम् ।
यः । इषा । वर्तते । सह ॥
न । चक्रम् । अभि । बाधते ॥३४॥

४१७ अन्वयः– यः द्रुपा सह वर्तते (तं) वां अनुगायसं रथं चक्रं न अभि बाधते ॥ ३४ ॥

४१७ अर्थ– (यः द्रुपा सह वर्तते) जो भवके साथ रहता है उस (वां अनुगायसं रथं) तुम्हारे रथको जिसके पीछे स्तुति करनेवाले लोग रहते हैं (चक्रं न अभि बाधते) शत्रुसैन्य कष्ट नहीं पहुँचाता है ॥

[४१८]

४१८ हिरण्ययेन रथेन द्रुवत्पाणिभिरश्वैः ।
धीजवना नासत्या ॥३५॥

४१८ हिरण्ययेन । रथेन ।
द्रुवत्पाणिऽभिः । अश्वैः ॥
धीऽजवना । नासत्या ॥३५॥

४१८ अन्वयः— धीजवना नासत्या ! द्रुवत्पाणिभिः अश्वैः हिरण्ययेन रथेन (आ यातम्) ॥ ३५ ॥

४१८ अर्थ— हे (धी-जवना) बुद्धिके तुल्य वेगवाले सत्यपूर्ण अश्विदेवों ! (द्रवत्-पाणिभिः अश्वैः) दौडते हुए घोडोंसे और (हिरण्ययेन रथेन) सुवर्णमय रथसे आओ ॥

[४१९]

४१९ युवं मृगं जागृवांसं स्वदथो वा वृषण्वसू ।
ता नः पृङ्क्तमिषा रयिम् ॥३६॥

४१९ युवम् । मृगम् । जागृऽवांसम् ।
स्वदथः । वा । वृषण्वसू इति वृषण्ऽवसू ॥
ता । नः । पृङ्क्तम् । इषा । रयिम् ॥३६॥

४१९ अन्वयः— वृषण्वसू ! युवं वा जागृवांसं मृगं स्वदथः, ता नः रयिं इषा पृङ्क्तम् ॥ ३६ ॥

४१९ अर्थ— हे (वृषण्वसू) धनकी वर्षा करनेहारे ! (युवं सा) तुम तो (जागृवांसे सुतं स्वदथः) जागृत एवं ढूँढनेयोग्य सोमका सेवन करते हो, ऐसे (ता) वे दोनों (नः रार्य) हमारे धनको (इषा युङ्क्तं) अन्नसे जोड दो ॥

[४२०]

४२० ता मे अश्विना सनीनां विद्यातं नवानाम् ॥३७॥

४२० ता । मे । अश्विना । सनीनाम् ।
विद्यातम् । नवानाम् ॥३७॥

४२० अन्वयः— अश्विना ! ता मे नवानां सनीनां विद्यातम् ॥ ३७ ॥

४२० अर्थ— हे अश्विदेवों! ऐसे तुम विख्यात (ता) वे दोनों (मे) मेरेलिए (नवानां सनीनां विद्यातं) नये प्रदानोंको ज्ञान करो ॥

॥४२१॥ (ऋ. ८।८।१-२३)

(४२१-४४३) सध्वंसः काण्वः । अनुष्टुप् ।

४२१ आ नो विश्वाभिरूतिभिरश्विना गच्छतं युवम् ।
दस्रा हिरण्यवर्तनी पिबतं सोम्यं मधु ॥१॥

४२१ आ । नः । विश्वाभिः । ऊतिऽभिः ।
अश्विना । गच्छतम् । युवम् ॥
दस्रा । हिरण्यवर्तनी इति हिरण्यऽवर्तनी ।
पिबतम् । सोम्यम् । मधु ॥१॥

४२१ अन्वय — अश्विना ! दस्रा ! हिरण्यवर्तनी ! युवं विश्वाभिः ऊतिभिः नः आगच्छतं, सोम्यं मधु पिबतम् ॥ १ ॥

४२१ अर्थ— हे अश्विदेवों ! हे (दस्रा) शत्रुविध्वंसक ! हे (हिरण्यवर्तनी) सुवर्णमय रथवाले ! (युवं) तुम दोनों (विश्वाभिः ऊतिभिः) सभी संरक्षण आयोजनाओंके साथ (नः आगच्छतं) हमारे समीप आओ और (सोम्यं मधु पिबतं) सोमरसरूपी मीठे रसका पान करो ॥

[४२२]

४२२ आ नूनं यातमश्विना रथेन सूर्यत्वचा ।
भुजी हिरण्यपेशसा कवी गम्भीरचेतसा ॥२॥

४२२ आ । नूनम् । यातम् । अश्विना ।
रथेन । सूर्यऽत्वचा ॥
भुजी इति । हिरण्यऽपेशसा ।
कवी इति । गम्भीरऽचेतसा ॥२॥

४२२ अन्वयः– भुजी ! हिरण्यपेशसा ! कवी ! गंभीरचेतसा अश्विना ! नूनं सूर्यत्वचा रथेन आ यातम् ॥ २ ॥

४२२ अर्थ– हे (भुजी) भोगयोग्य साधनोंसे पूर्ण ! हे (हिरण्यपेशसा) सुवर्णके बने अलंकार धारण करनेहारे ! हे (कवी गंभीरचेतसा) क्रांतदर्शी विशाल मनवाले अश्विदेवों ! (नूनं) अब सचमुच (सूर्यत्वचा रथेन आ यातं) सूर्यसदृश कांतिवाले रथपर चढकर इधर पधारो ॥

[४२३]

४२३ आ यातं नहुषस्पर्यान्तरिक्षात् सुवृक्तिभिः ।
पिबाथो अश्विना मधु कण्वानां सवने सुतम् ॥३॥

४२३ आ । यातम् । नहुषः । परि । आ ।
अन्तरिक्षात् । सुवृक्तिऽभिः ॥
पिबाथः । अश्विना । मधु ।
कण्वानाम् । सवने । सुतम् ॥३॥

४२३ अन्वयः– अश्विना ! सुवृक्तिभिः अन्तरिक्षात् नहुषः परि आ यातं; कण्वानां सवने सुतं मधु पिबाथः ॥ ३ ॥

४२३ अर्थ— हे अश्विदेवों ! (सुवृक्तिभिः) सुन्दर स्तुतियोंके कारण आकर्षित होकर (अन्तरिक्षात् नहुषः परि) अन्तरिक्षमेंसे या मानवी लोकमेंसे भी (आ यातं) आओ और कण्वोंके (सवने सुतं) यज्ञमें निष्पादित (मधु पिबाथः) मीठे सोमरसको पी जाओ ॥

*

[४२४]

४२४ आ नो यातं दिवस्पर्योऽन्तरिक्षादधप्रिया ।
पुत्रः कण्वस्य वामिह सुषाव सोम्यं मधु ॥४॥

४२४ आ । नः । यातम् । दिवः । परि । आ ।
अन्तरिक्षात् । अधऽप्रिया ॥
पुत्रः । कण्वस्य । वाम् । इह ।
सुसाव । सोम्यम् । मधु ॥४॥

४२४ अन्वयः— दिवः परि आ अन्तरिक्षात् नः आ यातं, अधप्रिया ! कण्वस्य पुत्रः इह वां सोम्यं मधु सुषाव ॥ ४ ॥

४२४ अर्थ— (दिवः परि) द्युलोकसे तथा (आ अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्षसे भी (नः आ यातं) हमारे समीप आओ, हे (अधप्रिया) अधोभाग अर्थात् भूलोकको चाहनेवालो ! (कण्वस्य पुत्रः) कण्वके पुत्रने (इह) इस जगह (वां) तुम्हारे लिए (सोम्यं मधु सुषाव) सोमसे युक्त शहदका सृजन किया है ॥

[४२५]

४२५ आ नो यातमुपश्रुत्यश्विना सोमपीतये ।
स्वाहा स्तोमस्य वर्धना प्र कवी धीतिभिर्नरा ॥५॥

४२५ आ । नः । यातम् । उपऽश्रुति ।
अश्विना । सोमऽपीतये ॥
स्वाहा । स्तोमस्य । वर्धना ।
प्र । कवी इति । धीतिऽभिः । नरा ॥५॥

४२५ अन्वयः— नरा ! कवी ! अश्विना ! स्वाहा स्तोमस्य प्र वर्धना नः उपश्रुति धीतिभिः सोमपीतये आ यातम् ॥ ५ ॥

४२५ अर्थ— हे (नरा ! कवी !) नेता और क्रान्तदर्शी अश्विदेवो ! तुम (स्वाहा स्तोमस्य प्र वर्धना) सर्वस्व त्यागद्वारा स्तोत्रके बढानेहारे हो, इसलिए (नः उपश्रुति) हमारे यज्ञमें (धीतिभि सोम-पीतये आ यातं) कर्मोंके साथ किये जानेवाले सोमपानके लिए आओ ॥

[४२६]

४२६ यच्चिद्धि वां पुर ऋषयो जुहूरेऽवसे नरा ।
आ यातमश्विना गतमुपेमां सुष्टुतिं मम ॥६॥

४२६ यत् । चित् । हि । वाम् । पुरा । ऋषयः ।
जुहूरे । अवसे । नरा ॥
आ । यातम् । अश्विना । आ । गतम् ।
उप । इमाम् । सुऽस्तुतिम् । मम ॥६॥

४२६ अन्वयः— नरा अश्विना ! पुरा ऋषयः यत् चित् अवसे वां हि जुहूरे, आ यातं; मम इमां सुष्टुतिं उप आ गतम् ॥ ६ ॥

४२६ अर्थ— हे (नरा) नेता अश्विदेवों ! (पुरा ऋषयः) पहले ऋषियोंने (यत् चित्) जब कभी (अवसे) रक्षाके लिए (वां हि जुहूरे) तुम्हेंही पुकारा था तब तुमने उसे सुन लिया था, इसलिए अब भी (आ यातं) आओ; (मम इमां सुष्टुतिं) मेरी इस अच्छी स्तुतिको सुनकर (उप आ गतं) समीप आजाओ ॥

[४२७]

४२७ दिवश्चिद् रोचनादध्या नो गन्तं स्वर्विदा ।
धीभिर्वत्सप्रचेतसा स्तोमेभिर्हवनश्रुता ॥७॥

४२७ दिवः । चित् । रोचनात् । अधि ।
आ । नः । गन्तम् । स्वःऽविदा ॥
धीभिः । वत्सऽप्रचेतसा ।
स्तोमेभिः । हवनऽश्रुता ॥७॥

४२७ अन्वयः—स्वः-विदा ! हवन-श्रुता ! वत्स-प्रचेतसा ! स्तोमेभिः धीभिः रोचनात् दिवः चित् नः अधि आ गन्तम् ॥ ७ ॥

४२७ अर्थ– (स्वः-विदा) हे स्वकीय शक्तिको जाननेवाले ! (हवन-श्रुता) हमारी पुकारको सुननेवालो ! (वत्स-प्रचेतसा) पुत्रपर करनेयोग्य प्रेम करनेवाले ! (स्तोमेभिः धीभिः) स्तोत्रोंसे और कर्मोंसे (रोचनात् दिवः चित्) जगमगाते द्युलोकसे भी (नः अधि आ गन्तम्) हमारे समीप आओ ॥

[४२८]

४२८ किमन्ये पर्यासतेऽस्मत् स्तोमेभिरश्विना ।
पुत्रः कण्वस्य वामृषिर्गीर्भिर्वत्सो अवीवृधत् ॥८॥

४२८ किम् । अन्ये । परि । आसते ।
अस्मत् । स्तोमेभिः । अश्विना ॥
पुत्रः । कण्वस्य । वाम् । ऋषिः ।
गीःऽभिः । वत्सः । अवीवृधत् ॥८॥

४२८ अन्वयः— अस्मत् अन्ये किं स्तोमेभिः अश्विना परि आसते ? कण्वस्य पुत्रः ऋषिः वत्सः वां गीर्भिः अवीवृधत् ॥ ८ ॥

४२८ अर्थ-(अस्मत् अन्ये) हमें छोडकर दूसरे लोग (किं स्तोमेभिः) क्या स्तोत्रोंसे (अश्विना परि आसते) अश्विदेवोंके चारों ओर प्रार्थना करनेके लिए बैठते हैं ? कण्वके पुत्र वत्स ऋषिने (वां) तुम्हें (गीर्भिः अवीवृधत) स्तुतिसे खूब बढाया है— प्रोत्साहित किया है ॥

[४२९]

४२९ आ वां विप्र इहावसेऽह्वत् स्तोमेभिरश्विना ।
अरिप्रा वृत्रहन्तमा ता नो भूतं मयोभुवा ॥९॥

४२९ आ । वाम् । विप्रः । इह । अवसे ।
अह्वत् । स्तोमेभिः । अश्विना ॥
अरिप्रा । वृत्रहन्ऽतमा ।
ता । नः । भूतम् । मयःऽभुवा ॥९॥

४२९ अन्वयः— अरिप्रा वृत्रहन्तमा अश्विना ! इह अवसे विप्रः वां आ अह्वत्; ता नः मयोभुवा भूतम् ॥ ९ ॥

४२९ अर्थ- हे (अ-रिप्रा) दोषरहित तथा (वृत्रहन्तमा) वृत्रके आवश्य विनाशकर्ता अश्विदेवों ! (इह अवसे) इधर रक्षाके लिए (विप्रः) ज्ञानी पुरुष (वां आ अह्वत) तुम्हें बुलाता है (ता) वे विख्यात तुम दोनों (नः मयोभुवा भूतं) हमारे लिए सुखदायक बनो ॥

[४३०]

४३० आ यद् वां योषणा रथमतिष्ठद्वाजिनीवसू ।
विश्वान्यश्विना युवं प्र धीतान्यगच्छतम् ॥१०॥

४३० आ । यत् । वाम् । योषणा । रथम् ।
अतिष्ठत् । वाजिनीवसू इति वाजिनीऽवसू ॥
विश्वानि । अश्विना । युवम् ।
प्र । धीतानि । अगच्छतम् ॥१०॥

४३० अन्वयः— वाजिनी-वसू ! अश्विनौ ! यत् वां रथं योषणा आ अतिष्ठत् युवं विश्वानि धीतानि प्र अगच्छतम् ॥ १० ॥

४३० अर्थ— हे (वाजिनी-वसू) पराक्रमकी धनवाले अश्विदेवों ! (यद् वां रथं) जब तुम्हारे रथपर (योषणा आ अतिष्ठद्) महिला पूर्णतया चढ गयी थी, तब (युवं) तुम दोनों (विश्वानि धीतानि.) सभी ध्यानमें रखे हुए विषयोंके समीप (प्र अगच्छतं) प्रकर्षसे चले गये थे ॥

[४३१]

४३१ अतः सहस्रनिर्णिजा रथेना यातमश्विना ।
वत्सो वां मधुमद्वचोऽशंसीत् काव्यः कविः॥११॥

४३१ अतः । सहस्रऽनिर्निजा ।
रथेन । आ । यातम् । अश्विना ॥
वत्सः । वाम् । मधुऽमत् । वचः ।
अशंसीत् । काव्यः । कविः ॥११॥

४३१ अन्वयः— कविः काव्यः वत्सः वां मधुमत् वचः अशंसीत् अत अश्विना ! सहस्र-निर्णिजा रथेन आ यातम् ॥ ११ ॥

४३१ अर्थ–(कविः) विद्वान् (काव्यः वत्सः) कविका पुत्र ऋषि वत्स (वां) तुम दोनोंके लिए (मधुमद् वचः अशंसीत्) मधुर भाषण कह चुका, (अतः) इसलिए हे अश्विदेवों ! (सहस्र—निर्णिजा रथेन आ यातं) सहस्र प्रकारसे तेजस्वी रथपर चढकर आओ ॥

[४३२]

४३२ पुरुमन्द्रा पुरुवसू मनोतरा रयीणाम् ।
स्तोमं मे अश्विनाविममभि वह्नी अनूषाताम् ॥१२॥

४३२ पुरुऽमन्द्रा । पुरुवसू इति पुरुऽवसू ।
मनोतरा । रयीणाम् ॥
स्तोमम् । मे । अश्विनौ । इमम् ।
अभि । वह्नी इति । अनूषाताम् ॥१२॥

४३२ अन्वय — रयीणां मनोतरा ! पुरुमन्द्रा ! पुरुवसू अश्विना ! वह्नी मे इम स्तोम अभि अनूषाताम् ॥ १२ ॥

४३२ अर्थ— हे (रयीणां मनोतरा) धनसंपदाओंके मनःपूर्वक देनेवाले ! (पुरुमन्द्रा) बहुत आनन्द देनेवाले ! (पुरुवसू) अधिक धनवाले अश्विदेवो ! तुम (वह्नी) ढोनेवाले हो और (मे इम स्तोमं) मेरे इस स्तोत्रको (अभि अनूषातां) सुनकर प्रशंसित करो ॥

[४३३]

४३३ आ नो विश्वान्यश्विना धत्तं राधांस्यह्रया ।
कृतं न ऋत्वियावतो मा नो रीरधतं निदे॥१३॥

४३३ आ । नः । विश्वानि । अश्विना ।
धत्तम् । राधांसि । अह्रया ॥
कृतम् । नः । ऋत्वियऽवतः ।
मा । नः । रीरधतम् । निदे ॥१३॥

४३३ अन्वय – अश्विना ! नः विश्वानि अह्रया राधांसि आ धत्त नः ऋत्वियावत. कृत, निदे ॥ मा रीरधतम् ॥ १३ ॥

४३३ अर्थ— हे अश्विदेवो ! (नः) हमें (विश्वानि अह्रया राधांसि) सभी प्रकारके लज्जा न करनेवाले धन (आ धत्त) लादो, (नः ऋत्वियावतः कृतं) हमें समयके अनुकूल कार्य करनेवाले बना दो और (निदे) निन्दकके लिए (न मा रीरधत) हमें न दे डालो [अर्थात् हम निन्दकसे कोसों दूर रह सकें ऐसा प्रबंध कर डालो] ॥

[४३४]

४३४ यन्नासत्या परावति यद्वा स्थो अध्यम्बरे ।
अतः सहस्रनिर्णिजा रथेना यातमश्विना ॥१४॥

४३४ यत् । नासत्या । पराऽवति ।
यत् । वा । स्थः । अधि । अम्बरे ॥
अतः । सहस्रऽनिर्निजा ।
रथेन । आ । यातम् । अश्विना ॥१४॥

४३४ अन्वयः— नासत्या अश्विना ! यत् परावति स्थः यत् वा अंबरे अधि (स्थः) अतः सहस्रनिर्णिजा रथेन आ यातम् ॥१४॥

४३४ अर्थ- हे सत्ययुक्त अश्विदेवों ! (यत् परावति स्थः) जो तुम सुदूर देशमें हो (यत् वा) या तो (अम्बरे अधि स्थः) समीपही कहीं विद्यमान हो, (अतः) उस स्थानसे (सहस्रनिर्णिजा रथेन) सहस्रों शोभावाले रथपरसे (आ यातं) आओ ॥

[४३५]

४३५ यो वां नासत्यावृषिर्गीर्भिर्वत्सो अवीवृधत् ।
तस्मै सहस्रनिर्णिजमिषं धत्तं घृतश्चुतम् ॥१५॥

४३५ यः । वाम् । नासत्यौ । ऋषिः ।
गीःऽभिः । वत्सः । अवीवृधत् ॥
तस्मै । सहस्रऽनिर्निजम् ।
इषम् । धत्तम् । घृतऽश्चुतम् ॥१५॥

४३५ अन्वयः— नासत्यौ ! यः वत्सः ऋषिः वां गीर्भिः अवीवृधत् तस्मै घृतश्चुतं सहस्रनिर्णिजं इषं धत्तम् ॥ १५॥

४३५ अर्थ— हे सत्यनिष्ठ अश्विदेवों ! (यः वत्सः ऋषिः) जो ऋषि वत्स (वां गीर्भिः अवीवृधत्) तुम्हें अपने भाषणोंसे वृद्धिंगत-प्रशंसित-कर चुका है, (तस्मै) (उसे घृतश्चुतं) घी टपकानेवाले (सहस्रनिर्णिजं इषं धत्तं) सहस्र शोभा देनेवाले अन्नको दे डालो ॥

[४३६]

४३६ प्रास्मा ऊर्जं घृतश्चुतमश्विना यच्छतं युवम् ।
यो वां सुम्नाय तुष्टवद्वसूयाद्दानुनस्पती ॥१६॥

४३६ प्र । अस्मै । ऊर्जम् । घृतऽश्चुतम् ।
अश्विना । यच्छतम् । युवम् ॥
यः । वाम् । सुम्नाय । तुस्तवत् ।
वसुऽयात् । दानुनः । पती इति ॥१६॥

४३६ अन्वयः— दानुनःपती अश्विना ! यः सुम्नाय वां तुष्टवत्, वसु-यात् अस्मै युवं घृतश्चुतं ऊर्जं प्र यच्छतम् ॥ १६ ॥

४३६ अर्थ– हे (दानुनःपती) दानके अधिपति अश्विदेवों ! (यः सुम्नाय) जो सुखके लिए (वां तुष्टवत्) तुम्हारी स्तुति कर चुका है और (वसु-यात्) धनकी कामना करने लगे, (अस्मै) इसके लिए (युवं) तुम दोनों (घृतश्चुतं ऊर्जं प्र यच्छतं) घी टपकानेवाले बलकारी अन्न देओ ॥

[४३७]

४३७ आ नो गन्तं रिशादसेमं स्तोमं पुरुभुजा ।
कृतं नः सुश्रियो नरेमा दातमभिष्टये ॥१७॥

४३७ आ । नः । गन्तम् । रिशादसा ।
इमम् । स्तोमम् । पुरुऽभुजा ॥
कृतम् । नः । सुऽश्रियः । नरा ।
इमा । दातम् । अभिष्टये ॥१७॥

४३७ अन्वयः– नरा ! रिशादसा पुरुभुजा ! नः इमं स्तोमं आ गन्तं, नः सुश्रियः कृतं, अभिष्टये इमा दातम् ॥ १७ ॥

४३७ अर्थ— हे (नरा) नेता ! (रिशादसा पुरुभुजा) हिंसकोंके विनाशकर्ता और बहुत भोगवाले ! (नः इमं स्तोमं) हमारे इस स्तोत्रको सुनकर (आ गन्त) आओ, (नः सुश्रियः कृतं) हमें सुन्दर शोभासे युक्त करो और (अभिष्टये इमा दातं) सुखकी प्राप्तिके लिए इन आवश्यक वस्तुओंको देओ ॥

[४३८]

४३८ आ वां विश्वाभिरूतिभिः प्रियमेधा अहूषत ।
राजन्तावध्वराणामश्विना यामहूतिषु ॥१८॥

४३८ आ । वाम् । विश्वाभिः । ऊतिऽभिः ।
प्रियऽमेधाः । अहूषत ॥
राजन्तौ । अध्वराणाम् ।
अश्विना । यामऽहूतिषु ॥१८॥

४३८ अन्वयः— अश्विना ! अध्वराणां राजन्तौ वां याम-हूतिषु विश्वाभिः ऊतिभिः प्रियमेधाः आ अहूषत ॥ १८ ॥

४३८ अर्थ— हे अश्विदेवो ! (अध्वराणां राजन्तौ वां) हिंसारहित कार्योंमें विराजमान तुम्हें (याम-हूतिषु) यात्राओंमें सम्मिलित होनेके लिए किये जानेवाले स्तोत्रपाठोंमें (विश्वाभिः ऊतिभिः) सभी संरक्षण आयोजनाओंके साथ आनेके लिये (प्रियमेधाः आ अहूषत) प्रियमेध लोगोंने पूर्णतया तुम्हें बुलाया है ॥

[४३९]

४३९ आ नो गन्तं मयोभुवाऽश्विना शंभुवा युवम् ।
यो वां विपन्यू धीतिभिर्गीर्भिर्वत्सो अवीवृधत् ॥१९॥

४३९ आ । नः । गन्तम् । मयःऽभुवा ।
अश्विना । शम्ऽभुवा । युवम् ॥
यः । वाम् । विपन्यू इति । धीतिऽभिः ।
गीःऽभिः । वत्सः । अवीवृधत् ॥१९॥

४३९ अन्वयः— विपन्यू अश्विना ! युवं नः आ गन्तं; यः वत्सः मयो-भुवा शंभुवा वां धीतिभिः गीर्भिः अवीवृधत् ॥ १९ ॥

४३९ अर्थ- हे (विपन्यू) प्रशंसनीय अश्विदेवो ! (युवं नः आ गन्तं) तुम दोनों हमारे समीप आओ; (यः वत्सः) जो वह वत्स ऋषि (मयो-भुवा शंभुवा वां) सुखदायक एवं शान्तिदायक तुम्हें (धीतिभिः गीर्भिः अवीवृधत्) कर्मोंसे तथा भाषणोंसे प्रशंसित करता है ॥

*

४४० याभिः कण्वं मेधातिथिं याभिर्वशं दशव्रजम् ।
याभिर्गोशर्यमावतं ताभिर्नोऽवतं नरा ॥२०॥

४४० याभिः । कण्वम् । मेधऽअतिथिम् ।
याभिः । वशम् । दशऽव्रजम् ॥
याभिः । गोऽशर्यम् । आवतम् ।
ताभिः । नः । अवतम् । नरा ॥२०॥

४४० अन्वयः— नरा ! याभिः मेधातिथिं कण्वं, याभिः दश-व्रजं वशं, याभिः गो-शर्यं आवतं ताभिः नः अवतम् ॥ २० ॥

४४० अर्थ— हे (नरा) नेता अश्विदेवों ! (याभिः) जिनकी सहायतासे मेधातिथि कण्वकी (याभिः दशव्रज वशं) जिनसे दस बाडे रखनेवाले वश की और (याभिः गो शर्यं आवत) जिनसे जीर्णशीर्ण गायें रखनेवालेकी रक्षा की थी, (ताभिः नः अवतं) उनसे हमें बचाओ ॥

४४१ याभिर्नरा त्रसदस्युमावतं कृत्व्ये धने ।
ताभिः ष्वस्माँ अश्विना प्रावतं वाजसातये ॥२१॥

४४१ याभिः । नरा । त्रसदस्युम् ।
आवतम् । कृत्व्ये । धने ॥
ताभिः । सु । अस्मान् । अश्विना ।
प्र । अवतम् । वाजऽसातये ॥२१॥

४४१ अन्वय — नरा अश्विना ! कृत्व्ये धने याभिः त्रसदस्युं आवतं ताभिः अस्मान् वाजसातये सु प्र अवतम् ॥२१॥

४४१ अर्थ– (कृत्व्ये धने) निष्पादनीय धनके बारेमें जिनसे त्रसदस्युकी (आवतं) रक्षा की थी, (ताभिः) उनसे (अस्मान्) हमें (वाजसातये) धनका बँटवारा करनेके लिए (सु प्र अवतं) भलीभाँति सुरक्षित रखो ॥

[४४२]

४४२ प्र वां स्तोमाः सुवृक्तयो गिरो वर्धन्त्वश्विना ।
पुरुत्रा वृत्रहन्तमा ता नो भूतं पुरुस्पृहा ॥२२॥

४४२ प्र । वाम् । स्तोमाः । सुऽवृक्तयः ।
गिरः । वर्धन्तु । अश्विना ॥
पुरुऽत्रा । वृत्रहन्ऽतमा ।
ता । नः । भूतम् । पुरुऽस्पृहा ॥२२॥

४४२ अन्वयः- पुरुत्रा ! वृत्रहन्तमा अश्विना ! वां सुवृक्तयः गिरः स्तोमाः प्र वर्धन्तु, ता नः पुरुस्पृहा भूतम् ॥ २२ ॥

४४२ अर्थ— हे (पुरुत्रा) बहुत लोगोंके त्राणकर्ता और (वृत्रहन्तमा) वृत्रके अत्यन्त विनाशकर्ता अश्विदेवों ! (वां सुवृक्तयः गिरः) तुम दोनोंको भलीभाँति रचे हुए भाषण और (स्तोमाः प्र वर्धन्तु) स्तोत्र खूब बढावें, (ता) वे विख्यात तुम दोनों (नः पुरुस्पृहा भूतं) हमारे लिए अत्यन्त स्पृहणीय बनो ॥

[४४३]

४४३ त्रीणि पदान्यश्विनोराविः सान्ति गुहा परः ।
कवी ऋतस्य पत्मभिरर्वाग् जीवेभ्यस्परि ॥२३॥

४४३ त्रीणि । पदानि । अश्विनोः ।
आविः । सन्ति । गुहा । परः ॥
कवी इति । ऋतस्य । पत्मऽभिः ।
अर्वाक् । जीवेभ्यः । परि ॥२३॥

४४३ अन्वयः— अश्विनोः गुहा त्रीणि पदानि परः आविः सन्ति, ऋतस्य पत्मभिः कवी जीवेभ्यः अर्वाक् परि ॥ २३ ॥

४४३ अर्थ- अश्विदेवोंके (गुहा) गुहामें रखे हुए (त्रीणि पदानि) तीन पद (परः आविः सन्ति) परले स्थानमें प्रकट हुए हैं; (ऋतस्य पत्मभिः) ऋतके मार्गोंसे (कवी) विद्वान् अश्विदेव (जीवेभ्यः अर्वाक्) जीवोंके लिए अभिमुख होकर (परि) ऊपरसे आते हैं ॥

[४४४] (ऋ. ८।९।१-२१)

(४४४-४६४) शशकर्णः काण्वः। अनुष्टुप्; १,४,६,१४-१५, बृहती; २-३,२०-२१ गायत्री; ५ ककुप्; १० त्रिष्टुप्; ११ विराट्, १२ जगती।

४४४ आ नूनमश्विना युवं वत्सस्य गन्तमवसे ।
प्रास्मै यच्छतमवृकं पृथु च्छर्दिर्युयुतं या अरातयः ॥१॥

४४४ आ । नूनम् । अश्विना । युवम् ।
वत्सस्य । गन्तम् । अवसे ॥
प्र । अस्मै । यच्छतम् । अवृकम् । पृथु । छर्दिः ।
युयुतम् । याः । अरातयः ॥१॥

४४४ अन्वयः— अश्विना ! युवं नूनं वात्सस्य अवसे आ गन्तं, अस्मै पृथु अवृकं छर्दिः प्र यच्छतं, याः अरातयः युयुतम् ॥ १ ॥

४४४ अर्थ— हे अश्विदेवो ! (युवं) तुम दोनों (नूनं) अब सचमुच (वात्सस्य अवसे आगतं) वत्सकी रक्षाके लिए आओ (अस्मै) इसे (पृथुं) विस्तीर्ण (अवृकं छर्दिः प्र यच्छतं) वृक-भेडिये जैसे क्रोधी लोगोंसे रहित घर देदो; पश्चात् (याः अरातयः युयुतं) जो शत्रु हैं, उन्हें दूर कर दो ॥

[४४५]

४४५ यदुन्तरिक्षे यद् दिवि यत् पञ्च मानुषाँ अनु ।
नृम्णं तद् धत्तमश्विना ॥२॥

४४५ यत् । अन्तरिक्षे । यत् । दिवि ।
यत् । पञ्च । मानुषान् । अनु ॥
नृम्णम् । तत् । धत्तम् । अश्विना ॥२॥

४४५ अन्वयः— अश्विना ! यत् नृम्णं अन्तरिक्षे, यत् दिवि, यत् पञ्च मानुषान् अनु तत् धत्तम् ॥ २ ॥

४४५ अर्थ— हे अश्विदेवो ! (यत् नृम्णं) जो धन अन्तरिक्षमें (यत् दिवि) जो द्युलोकमें (यत् पञ्च मानुषान् अनु) जो पांच तरहके मानव-वर्गोंके पास पाया जाता है, (तत् धत्तं) उसे हमारे लिए भर दो ॥

[४४६]

४४६ ये <u>वां</u> दंसाँस्यश्विना विप्रा॑सः परिमामृशुः ।
एवेत् काण्वस्य॑ बोधतम् ॥३॥

४४६ ये । वाम् । दंसाँसि । अश्विना ।
विप्रा॑सः । परिऽमामृशुः ॥
एव । इत् । काण्वस्य॑ । बोधतम् ॥३॥

४४६ अन्वयः— अश्विना ! ये विप्रासः वां दंसांसि परि ममृशुः एव इत् काण्वस्य बोधतम् ॥ ३ ॥

४४६ अर्थ— हे अश्विदेवों ! (ये विप्रासः) जो ज्ञानी (वां दंसांसि तुम्हारे कर्मोंको (परि ममृशुः) पूर्णतया सोच चुके हैं, (एव इत्) उसी प्रकार (काण्वस्य बोधतं) कण्व पुत्रकी प्रार्थनाको जान लो ॥

[४४७]

४४७ अयं वां घर्मो अ॑श्विना स्तोमे॑न परि॑ षिच्यते ।
अयं सोमो॒ मधु॑मान् वाजिनीवसू येन॑ वृत्रं चिके॑तथः॥४॥

४४७ अयम् । वाम् । घर्मः । अश्विना ।
स्तोमे॑न । परि॑ । सिच्यते ॥
अयम् । सोमः । मधु॑ऽमान् । वाजिनीवसू इति॑ वाजिनीऽवसू ।
येन॑ । वृत्रम् । चिके॑तथः ॥४॥

४४७ अन्वयः— वाजिनी-वसू अश्विना ! वां अयं घर्मः स्तोमेन परि षिच्यते, मधुमान् अयं सोमः येन वृत्रं चिकेतथः ॥ ४ ॥

४४७ अर्थ— हे (वाजिनी-वसू) सेनारूपी धनवाले ! (वां) तुम्हारेलिए (अयं घर्मः) यह यज्ञ (स्तोमेन) स्तोत्रपाठके साथ (परि सिच्यते) पूर्णतया सींचा जाता है; (मधुमान् अयं सोमः) मधुरिमामय यह सोम है (येन) जिससे, तुम (वृत्रं चिकेतथः) वृत्रको पहचान लेते हो ॥

[४४८]

४४८ यदुप्सु यद्वनस्पतौ यदोषधीषु पुरुदंससा कृतम्।
तेने माऽविष्टमश्विना ॥५॥

४४८ यत् । अप्ऽसु । यत् । वनस्पतौ ।
यत् । ओषधीषु । पुरुऽदंससा । कृतम् ॥
तेने । मा । अविष्टम् । अश्विना ॥५॥

४४८ अन्वयः— पुरुदंससा अश्विना ! यत् ओषधीषु यत् वनस्पतौ यत् अप्सु कृतं तेन मा अविष्टम् ॥ ५ ॥

४४८ अर्थ— हे (पुरु-दंससा) विविध कार्यवाले ! (यत् ओषधीषु) जो औषधियोंमें (यत् वनस्पतौ) जो बडे भारी पेडमें तथा (यत् अप्सु) जो जलोंमें (कृतं) तुमने कार्य किया है, (तेन) उसीसे (मा अविष्टं) मेरी भी रक्षा करो ॥

[४४९]

४४९ यन्नासत्या भुरण्यथो यद् वा देवा भिषुज्यथः ।
अयं वां वत्सो मतिभिर्न विन्धते हुविष्मन्तं हि गच्छथः॥

४४९ यत् । नासत्या । भुरण्यथः ।
यत् । वा । देवा । भिषुज्यथः ॥
अयम् । वाम् । वत्सः । मतिऽभिः । न । विन्धते ।
हुविष्मन्तम् । हि । गच्छथः ॥६॥

४४९ अन्वयः— देवा नासत्या ! यत् भुरण्यथः यत् वा भिषज्यथः अयं वत्सः वां मतिभिः न विन्धते, हविष्मन्तं हि गच्छथः ॥ ६ ॥

४४९ अर्थ— हे (देवा) दानी या तेजस्वी सत्यपूर्ण अश्विदेवो ! (यत् भुरण्यथः) जो तुम भरणका कार्य करते हो, (यत् वा) या जो तुम (भिषज्यथः) औषध देकर वैद्यका कार्य करते हो, (अयं वत्सः) यह वत्स (वां) तुम्हें (मतिभिः न विन्धते) बुद्धियोंसे नहीं पाता है, क्योंकि तुम (हविष्मन्तं हि गच्छथः) हवि साथ रखनेवालेके पासही जाते हो ॥

[४५०]

४५० आ नूनमश्विनोर्ऋषिः स्तोमं चिकेत वामया ।
आ सोमं मधुमत्तमं घर्मं सिञ्चादथर्वणि ॥७॥

४५० आ । नूनम् । अश्विनोः । ऋषिः ।
स्तोमम् । चिकेत । वामया ॥
आ । सोमम् । मधुमत्ऽतमम् ।
घर्मम् । सिञ्चात् । अथर्वणि ॥७॥

४५० अन्वयः– नूनं ऋषिः अश्विनोः स्तोमं वामया आ चिकेत, मधुमत्तमं सोमं घर्मं अथर्वणि आ सिञ्चात् ॥७॥

४५० अर्थ– (नूनं) सचमुच ऋषि (अश्विनोः स्तोमं) अश्विदेवोंके स्तोत्रको (वामया आ चिकेत) उत्कृष्ट बुद्धिसे पूर्णतया पहचाना है (मधुमत्तमं सोमं घर्मं) अत्यन्त मीठे सोमको तथा घर्मको (अथर्वणि आ सिंचत्) अथर्वामें सींच चुका है ॥

[४५१]

४५१ आ नूनं रघुवर्तनिं रथं तिष्ठाथो अश्विना ।
आ वां स्तोमा इमे मम नभो न चुच्यवीरत ॥८॥

४५१ आ । नूनम् । रघुऽवर्तनिम् ।
रथम् । तिष्ठाथः । अश्विना ॥
आ । वाम् । स्तोमाः । इमे । मम ।
नभः । न । चुच्यवीरत ॥८॥

४५१ अन्वयः– नूनं रघुवर्तनिं रथं अश्विना। आ तिष्ठाथः, मम इमे स्तोमाः नभः न वां आ चुच्यवीरत ॥८॥

४५१ अर्थ– (नूनं) सचमुच (रघुवर्तनिं रथं) शीघ्रगामी रथपर [ ] अश्विदेवों। (आ तिष्ठाथः) तुम चढते हो; (मम इमे स्तोमाः) मेरे ये स्तोत्र (नभः न) आकाशकी तरह विशाल (वां) तुम्हारे (आ चुच्यवीरत) पास पहुँचे हैं ॥

[४५२]

४५२ यद्द्य वां नासत्योक्थैराचुच्युवीमहि ।
यद् वा वाणीभिरश्विनेवेत् काण्वस्य बोधतम् ॥९॥

४५२ यत् । अद्य । वाम् । नासत्या ।
उक्थैः । आऽचुच्युवीमहि ॥
यत् । वा । वाणीभिः । अश्विना ।
एव । इत् । काण्वस्य । बोधतम् ॥९॥

४५२ अन्वयः-- नासत्या अश्विना ! यत् उक्थैः अद्य वां आचुच्युवीमहि यत् वा वाणीभिः, काण्वस्य एव इत् बोधतम् ॥९॥

४५२ अर्थ— हे नासत्यसे रहित अश्विदेवो ! (यत्) जब (उक्थैः) स्तोत्रोंसे (अद्य वां) आज दिन हम तुम्हें (आचुच्युवीमहि) अपनी ओर प्रवृत्त करते हैं, (यत् वा वाणीभिः) या साधारण भाषणोंसे ऐसा करते हैं, तो (काण्वस्य एव इत् बोधतं) निश्चय जानो कि यह कण्वपुत्रकाही कार्य है ॥

[४५३]

४५३ यद् वां कक्षीवाँ उत यद् व्यश्व ऋषिर्यद् वां दीर्घतमा जुहाव । पृथी यद् वां वैन्यः सादनेष्वेवेदतो अश्विना चेतयेथाम् ॥१०॥

४५३ यत् । वाम् । कक्षीवान् । उत । यत् । विऽअश्वः ।
ऋषिः । यत् । वाम् । दीर्घऽतमाः । जुहाव ॥
पृथी । यत् । वाम् । वैन्यः । सदनेषु ।
एव । इत् । अतः । अश्विना । चेतयेथाम् ॥१०॥

४५३ अन्वयः— अश्विना ! वां यत् कक्षीवान् उत यत् व्यश्वः, यत् वां दीर्घतमाः जुहाव, सदनेषु यत् वैन्यः पृथी वां, अतः एव चेतयेथाम् ॥१०॥

४५३ अर्थ– हे अश्विदेवो ! (वां यत्) तुम्हें जब कक्षीवान्‌ने (उत यत्) और जब च्यवनने तथा (यत् वां दीर्घतमाः जुहाव) जिस समय तुम्हें दीर्घतमाने बुलाया था; (सदनेषु यत्) घरोंमें जबकि वेनपुत्र पृथीने (वां) तुम्हें पुकारा था, तब तुमने उधर ध्यान दिया, (अतः एव) इसीलिए अबकी बार भी (चेतयेथां) हमारी पुकारको पहचान लो ॥

[४५४]

४५४ यातं छर्दिष्पा उत नः परस्पा भूतं जगत्पा उत नस्तनूपा।
वर्तिस्तोकाय तनयाय यातम् ॥११॥

४५४ यातम् । छर्दिःऽपौ । उत । नः । परःऽपा ।
भूतम् । जगत्ऽपौ । उत । नः । तनूऽपा ॥
वर्तिः । तोकाय । तनयाय । यातम् ॥११॥

४५४ अन्वयः– छर्दिःपौ ! यातं, उत नः परःपा भूतम्, जगत्-पौ उत नः तनूपा, तोकाय तनयाय वर्तिः यातम् ॥११॥

४५४ अर्थ— हे (छर्दिःपौ) घरके संरक्षक ! (यातं) जाओ (उत) और (नः परःपा भूतं) हमारे अत्यन्त उच्च कोटिके रक्षक बनो, तथा (जगत्-पौ) गतिशीलके रक्षक (उत नः तनूपाः) एवं हमारे शरीरके संरक्षक हो जाओ, (तोकाय तनयाय) पुत्रपौत्रके हितके लिए (वर्तिः यातं) घरपर आया करो ॥

[४५५]

४५५ यदिन्द्रेण सरथं याथो अश्विना यद्वा वायुना भवथः समोकसा। यदादित्येभिर्ऋभुभिः सजोषसा यद् वा विष्णोर्विक्रमणेषु तिष्ठथः ॥१२॥

४५५ यत् । इन्द्रेण । सऽरथम् । याथः । अश्विना ।
यत् । वा । वायुना । भवथः । समऽओकसा ॥
यत् । आदित्येभिः । ऋभुऽभिः । सऽजोषसा ।
यत् । वा । विष्णोः । विऽक्रमणेषु । तिष्ठथः ॥१२॥

४५५ अन्वयः– अश्विना ! यत् इन्द्रेण सरथं याथः, यत् वा वायुना समोकसा भवथः, यत् आदित्येभिः ऋभुभिः सजोषसा यत् वा विष्णोः विक्रमणेषु तिष्ठथः ॥१२॥

४५५ अर्थ– हे अश्विदेवो ! (यत् इन्द्रेण) जो तुम इन्द्रके साथ (सरथं याथः) एक रथपर बैठकर चले जाते हो, (यत् वा) अथवा (वायुना समोकसा भवथः) वायुके साथ एकही घरमें रहते हो, (यत्) या जब (आदित्येभिः ऋभुभिः) अदितिके पुत्रों या ऋभु–संज्ञक कारीगरोंके (सजोषसा) साथ प्रेमपूर्वक निवास करते हो, (यत् वा) किंवा जब (विष्णोः विक्रमणेषु तिष्ठथः) विष्णुके विशेष संचारोंमें तुम उपस्थित होते हो, [पर हमारे समीप अवश्य आओ] ॥

[४५६]

४५६ यद॒द्याश्विना॑व॒हं हु॒वेय॒ वाज॑सातये ।
यत् पृ॒त्सु तु॒र्वणे॒ सह॒स्तच्छ्रेष्ठ॑म॒श्विनो॒रवः॑ ॥१३॥

४५६ यत् । अ॒द्य । अ॒श्विनौ॑ । अ॒हम् ।
हु॒वेय॑ । वाज॑ऽसातये ॥
यत् । पृ॒त्ऽसु । तु॒र्वणे॑ । सहः॑ ।
तत् । श्रेष्ठ॑म् । अ॒श्विनोः॑ । अवः॑ ॥१३॥

४५६ अन्वयः– अद्य यत् वाजसातये अहं अश्विनौ हुवेय, अश्विनोः तत् अवः श्रेष्ठं यत् पृत्सु तुर्वणे सहः ॥१३॥

४५६ अर्थ– (अद्य यत्) आज जबकि (वाजसातये) अन्नका बँटवारा करनेके लिए (अहं अश्विनौ हुवेय) मैं अश्विदेवोंको बुलाऊँ तो वे अवश्य आयेंगे, क्योंकि (अश्विनो तत् अवः) अश्विदेवोंका वह संरक्षण (श्रेष्ठं यत् पृत्सु) उत्कृष्ट है, जो युद्धोंमें (तुर्वणे सहः) शत्रुवध करनेमें पूर्ण क्षमता रखता है ॥

[४५७]

४५७ आ नू॒नं या॑तमश्वि॒नेमा ह॒व्यानि॑ वां हि॒ता ।
इ॒मे सोमा॑सो॒ अधि॑ तु॒र्वशे॒ यदा॑वि॒मे कण्वे॑षु वा॒मथ॑ ॥१४॥

४५७ आ । नूनम् । यातम् । अश्विना ।
इमा । हुव्यानि । वाम् । हिता ॥
इमे । सोमासः । अधि । तुर्वशे । यदौ ।
इमे । कण्वेषु । वाम् । अथ ॥१४॥

४५७ अन्वयः — अश्विना ! नूनं आ यातं, वां इमा हव्यानि हिता; इमे सोमासः तुर्वशे यदौ अधि, इमे कण्वेषु अथ वाम् ॥१४॥

४५७ अर्थ– हे अश्विदेवों ! (नूनं) अवश्य (आ यातं) आओ, (वां इमा हव्यानि हितं) तुम दोनोंके लिए ये हविर्भाग रखे हुए हैं, (इमे सोमासः) ये सोम (तुर्वशे यदौ अधि) तुर्वश एवं यदुके घरपर पाये जाते हैं, (इमे कण्वेषु) ये कण्वोंके मकानपर विद्यमान हैं (अथ वां) और अब ये तुम्हारे लिए रखे हैं ॥

[४५८]

४५८ यन्नासत्या पराके अर्वाके अस्ति भेषजम् ।
तेन नूनं विमदाय प्रचेतसा छर्दिर्वत्साय यच्छतम्॥१५॥

४५८ यत् । नासत्या । पराके ।
अर्वाके । अस्ति । भेषजम् ॥
तेन । नूनम् । विऽमदाय । प्रऽचेतसा ।
छर्दिः । वत्साय । यच्छतम् ॥१५॥

४५८ अन्वयः– प्रचेतसा नासत्या ! यत् पराके अर्वाके भेषजं अस्ति, तेन विमदाय वत्साय नूनं छर्दिः यच्छतम् ॥१५॥

४५८ अर्थ– हे (प्रचेतसा नासत्या) उत्कृष्ट मनवाले तथा असत्यसे दूर रहनेवाले अश्विदेवों ! (यत् पराके) जो दूर देशमें (अर्वाके) समीप भी (भेषजं अस्ति) औषध विद्यमान है, (तेन) उससे (विमदाय वत्साय) मदसे रहित ऋषि वत्सके लिए (नूनं) निश्चयसे (छर्दिः यच्छतं) घर दे डालो ॥

[४५९]

४५९ अबु॑त्स्यु॒ प्र दे॒व्या सा॒कं वा॒चाहम॒श्विनोः॑ ।
व्या॑वर्दे॒व्या म॒तिं वि रा॒तिं मर्त्ये॑भ्यः ॥१६॥

४५९ अबु॑त्सि । ऊँ इति॑ । प्र । दे॒व्या ।
सा॒कम् । वा॒चा । अ॒हम् । अ॒श्विनोः॑ ॥
वि । आ॒वः॒ । दे॒वि॒ । आ । म॒तिम् ।
वि । रा॒तिम् । मर्त्ये॑भ्यः ॥१६॥

४५९ अन्वय - अहं अश्विनोः देव्या वाचा साकं प्र अबुत्सि, देवि ! मर्त्येभ्यः मतिं रातिं वि आवः ॥१६॥

४५९ अर्थ— (अहं) मैं (अश्विनोः) अश्विदेवोंकी (देव्या वाचा साकं) दिव्यगुणसम्पन्न वाणीके साथ (प्र अबुत्सि) विशेष रीतिसे जागृत हो चुका हूँ, इसलिए हे (देवि) द्योतमान उषे ! (मर्त्येभ्यः) मानवोंको (मतिं रातिं) बुद्धि तथा देनको (वि आवः) अँधेरा हटाकर स्पष्ट करो ॥

[४६०]

४६० प्र बो॑धयोषो अ॒श्विना॒ प्र दे॑वि सूनृते महि ।
प्र य॑ज्ञहोतरानु॒षक् प्र मदा॑य॒ श्रवो॑ बृ॒हत् ॥१७॥

४६० प्र । बो॒धय॒ । उ॒षः॒ । अ॒श्विना॑ ।
प्र । दे॒वि॒ । सू॒नृ॒ते॒ । म॒हि॒ ।
प्र । य॒ज्ञ॒ऽहो॒तः॒ । आ॒नु॒षक् ।
प्र । मदा॑य । श्रवः॑ । बृ॒हत् ॥१७॥

४६० अन्वय - देवि ! सूनृते ! महि उषः ! अश्विना प्र बोधय हे यज्ञहोतः आनुषक् मदाय बृहत् श्रवः प्र (बोधय) ॥ १७ ॥

४६० अर्थ— हे द्योतमान ! (सूनृते) भलीभाँति ले चलनेवाली (महि) पूजनीय उषः ! तू अश्विदेवोंको (प्र बोधय) जागृत कर, हे (यज्ञहोतः) यज्ञमें हवन करनेवाले ! (आनुषक्) सततरूपसे (मदाय) हर्ष उत्पन्न करनेके लिए (बृहत् श्रवः) बडे भारी अन्नको भी दे दो ॥

[४६१]

४६१ यदुषो यासि भानुना सं सूर्येण रोचसे ।
आ हायमश्विनो रथो वर्तिर्याति नृपाय्यम् ॥१८॥

४६१ यत् । उषः । यासि । भानुना ।
सम् । सूर्येण । रोचसे ॥
आ । ह । अयम् । अश्विनोः । रथः ।
वर्तिः । याति । नृऽपाय्यम् ॥१८॥

४६१ अन्वयः— उषः ! यत् भानुना यासि, सूर्येण सं रोचसे, अश्विनोः अयं रथः ह नृपाय्यं वर्तिः आ याति ॥ १८ ॥

४६१ अर्थ— हे उषे ! (यत् भानुना यासि) जो तू किरणसे युक्त हो चली जाती है, और (सूर्येण सं रोचसे) सूर्यके साथ अत्यन्त जगमगाती है उसी समय (अश्विनोः अयं रथः ह) अश्विदेवोंका यह रथ निश्चयसे (नृपाय्यं वर्तिः आ याति) मानवोंके पालन करनेयोग्य घर चला आता है ॥

[४६१]

४६२ यदापीतासो अंशवो गावो न दुह्र ऊधभिः ।
यद् वा वाणीरनूषत प्र देवयन्तो अश्विना॥१९॥

४६२ यत् । आऽपीतासः । अंशवः ।
गावः । न । दुह्रे । ऊधऽभिः ॥
यत् । वा । वाणीः । अनूषत ।
प्र । देवऽयन्तः । अश्विना ॥१९॥

४६१ अन्वयः— ऊधभिः गावः न यत् आपीतासः अंशवः दुह्रे, यत् वा देवयन्तः वाणीः अश्विना प्र अनूषत ॥ १९ ॥

४६१ अर्थ— (ऊधभिः गावः न) ऐनोंसे गायें जिस प्रकार दूध देती हैं वैसेही (यत्) जब (आपीतासः अंशवः) पीये [illegible] सोमरस (दुह्रे) दोहन करते हैं, (यत् वा) या जब (देवयन्तः) देवोंकी कामना करनेहारे (वाणीः) वाणियोंसे (अश्विना प्र अनूषत) अश्विदेवोंकी खूब स्तुति करते हैं ॥

[४६३]

४६३ प्र द्युम्नाय प्र शवसे प्र नृपाह्याय शर्मणे ।
प्र दक्षाय प्रचेतसा ॥२०॥

४६३ प्र । द्युम्नाय । प्र । शवसे ।
प्र । नृऽसह्याय । शर्मणे ॥
प्र । दक्षाय । प्रऽचेतसा ॥२०॥

४६३ अन्वयः- प्रचेतसा ! द्युम्नाय, शवसे, नृपाह्याय, शर्मणे, दक्षाय प्र ॥ २० ॥

४६३ अर्थ- हे (प्रचेतसा) उत्कृष्ट ज्ञानवाले अश्विदेवों ! (द्युम्नाय) धनके लिए, (शवसे) बलके लिए, (नृ-साह्याय शर्मणे) जिससे मानवोंमें सहनशक्ति बढे ऐसे सुखके लिए (दक्षाय) दक्षताके लिए (प्र) खूब आयोजना करो ॥

[४६४]

४६४ यन्नूनं धीभिरश्विना पितुर्योना निषीदथः ।
यद् वा सुम्नेभिरुक्थ्या ॥२१॥

४६४ यत् । नूनम् । धीभिः । अश्विना ।
पितुः । योना । निऽसीदथः ॥
यत् । वा । सुम्नेभिः । उक्थ्या ॥२१॥

४६४ अन्वयः— उक्थ्या अश्विना ! नून यत् पितुः योना धीभिः यत् वा सुम्नेभिः नि सीदथः ॥ २१ ॥

४६४ अर्थ— (उक्थ्या अश्विना !) हे प्रशंसनीय अश्विदेवों ! (नूनं यत्) सचमुच जब (पितुः योना) पिताके स्थानमें (धीभिः यत् वा सुम्नेभि.) कार्योंसे अथवा सुखोंसे (नि-सीदथः) बैठ जाते हो ॥

[४६५] (ऋ. ८।१०।१-६)

(४६५-४७०) प्रगाथो (घौरः) काण्वः । १ बृहती, २ मध्ये ज्योतिः,
३ अनुष्टुप् (पिंगलमतेन-शंकुमती), ४ आस्तारपंक्तिः,
५-६ प्रगाथः= (५ बृहती+ ६ सतोबृहती

४६५ यत् स्थो दीर्घप्रसद्मनि यद् वादो रोचने दिवः ।
यद् वा समुद्रे अध्याकृते गृहेऽत आ यातमश्विना ॥१॥

४६५ यत् । स्थः । दीर्घऽप्रसद्मनि ।
यत् । वा । अदः । रोचने । दिवः ॥
यत् । वा । समुद्रे । अधि । आऽकृते । गृहे ।
अतः । आ । यातम् । अश्विना ॥१॥

४६५ अन्वयः— अश्विना ! यत् दीर्घ-प्रसद्मनि यत् वा अदः दिवः रोचने स्थः, यत् वा आकृते गृहे समुद्रे अधि अतः आ यातम् ॥ १ ॥

४६५ अर्थ— हे अश्विदेवों ! (यत्) जो तुम (दीर्घप्रसद्मनि) लंबे घरोंसे युक्त लोकमें (यत् वा) अथवा (अदः दिवः रोचने) उस द्युलोकके जगमगाते स्थानमें (स्थः) रहते हो, (यत् वा) या (आकृते गृहे) चारों ओर ठीक बनाये घरमें, (समुद्रे अधि) समुन्दरमें रहो, परन्तु (अतः) वहाँसे (आ यातम्) इधर आओ ॥

[४६६]

४६६ यद् वां यज्ञं मनवे संमिमिक्षथुरेवेत् काण्वस्य बोधतम् ।
बृहस्पतिं विश्वान् देवाँ अहं हुव इन्द्राविष्णू
अश्विनावाशुहेषसा ॥२॥

४६६ यत् । वा । यज्ञम् । मनवे । सम्ऽमिमिक्षथुः ।
एव । इत् । काण्वस्य । बोधतम् ॥
बृहस्पतिम् । विश्वान् । देवान् । अहम् । हुवे ।
इन्द्राविष्णू इति । अश्विनौ । आशुऽहेषसा ॥२॥

४६६ अन्वयः— मनवे यज्ञं यत् वा संमिमिक्षथुः काण्वस्य एव इत् बोधतं; अहं बृहस्पतिं विश्वान् देवान् इन्द्राविष्णू आशुहेषसा अश्विनौ हुवे ॥ १ ॥

४६६ अर्थ— (मनवे यज्ञं) मनुके लिए यज्ञको (यत् वा संमिमिक्षथुः) जिस ढंगसे तुमने ठीक तरह सिक्त किया था, (काण्वस्य एव इत्) कण्वपुत्रके यज्ञको भी उसी तरह (बोधतं) समझ लो; (अहं) मैं बृहस्पतिको (विश्वान् देवान्) सभी देवोंको, इन्द्र एवं विष्णुको तथा (आशुहेषसा अश्विनौ हुवे) शीघ्रगामी घोडोंसे युक्त अश्विदेवोंको बुलाता हूँ ॥

[४६७]

४६७ त्या न्व१श्विना हुवे सुदंससा गृभे कृता ।
यय़ोरस्ति प्र णः सख्यं देवेष्वध्याप्यम् ॥२॥

४६७ त्या । नु । अश्विना । हुवे ।
सुऽदंससा । गृभे । कृता ॥
ययोः । अस्ति । प्र । नः । सख्यम् ।
देवेषु । अधि । आप्यम् ॥२॥

४६७ अन्वयः— त्या सुदंससा गृभे कृता अश्विना, ययोः नः सख्यं देवेषु अधि आप्यं प्र अस्ति, नु हुवे ॥ २ ॥

४६७ अर्थ— (त्या) उन दोनों (सुदंससा) अच्छे कर्म करनेवाले (गृभे कृता अश्विना) ग्रहण करनेके लिए उत्पन्न हुए अश्विदेवोंको, (ययोः) जिनकी (नः सख्यं) हमसे मित्रता (देवेषु अधि आप्यं) देवोंमें प्राप्त करने-योग्य (प्र अस्ति) उच्च कोटिकी है, (नु हुवे) अभी बुलाता हूँ ॥

[४६८]

४६८ ययोरधि प्र यज्ञा असूरे सन्ति सूरयः ।
ता यज्ञस्याध्वरस्य प्रचेतसा स्वधाभिर्या पिबतः सोम्यं मधु ॥४॥

४६८ ययोः । अधि । प्र । यज्ञाः ।
असूरे । सन्ति । सूरयः ॥
ता । यज्ञस्य । अध्वरस्य । प्रऽचेतसा ।
स्वधाभिः । या । पिबतः । सोम्यम् । मधु ॥४॥

४६८ अन्वयः— ययोः अधि यज्ञाः प्र (सन्ति), असूरे सूरयः, ता अध्वरस्य यज्ञस्य प्रचेतसा या स्वधाभिः सोम्यं मधु पिबतः ॥ ४ ॥

४६८ अर्थ- (ययोः अधि) जिन दोनोंके यज्ञ प्र (सन्ति) प्रकर्षसे होते हैं, जो (असूरे सूरयः) अविद्वानोंमें विद्वान् बनकर कार्य करते हैं, (ता) वे दोनों (अध्वरस्य यज्ञस्य) हिंसारहित यज्ञके (प्रचेतसा) अच्छे ज्ञाता हैं, तथा (या) जो (स्वधाभिः) अपनी धारक शक्तियोंसे (सोम्यं मधु पिबतः) सोमयुक्त मधु पी लेते हैं ॥

[४६९]

४६९ यदुद्याश्विनावपागयत्प्राक्स्थो वाजिनीवसू ।
यद्द्रुह्यव्यनवि तुर्वशे यदौ हुवे वामथ माऽऽ गतम् ॥५॥

४६९ यत् । अद्य । अश्विनौ । अपाक् ।
यत् । प्राक् । स्थः । वाजिनीवसू इति वाजिनीऽवसू ।
यत् । द्रुह्यवि । अनवि । तुर्वशे । यदौ ।
हुवे । वाम् । अथ । मा । आ । गतम् ॥५॥

४६९ अन्वयः— वाजिनीवसू अश्विनौ ! अद्य यत् अपाक् यत् प्राक् स्थः यत् द्रुह्यवि अनवि तुर्वशे यदौ (स्थः) वां हुवे, अथ मा आ गतम् ॥ ५ ॥

४६९ अर्थ- हे (वाजिनीवसू) सेनारूपी धनवाले अश्विदेवो ! (अद्य यत्), आज जो तुम (अपाक्) पश्चिम दिशामें (यत् प्राक्) या पूर्वदिशामें (स्थः) रहो, (यत्) जो तुम द्रुह्यु, अनु, तुर्वश यदुके पास रहो, पर (वां हुवे) मैं तुम्हें बुलाता हूं (अथ) अच्छा अब (मा आ गतम्) मेरे निकट आओ ॥

[४७०]

४७० यदुन्तरिक्षे पतथः पुरुभुजा यद्वेमे रोदसी अनु ।
यद्वा स्वधाभिरधितिष्ठथो रथमत आ यातमश्विना ॥६॥

४७० यत् । अन्तरिक्षे । पतथः । पुरुऽभुजा ।
यत् । वा । इमे इति । रोदसी इति । अनु ॥
यत् । वा । स्वधाभिः । अधिऽतिष्ठथः । रथम् ।
अतः । आ । यातम् । अश्विना ॥६॥

४७० अन्वयः— पुरुभुजा अश्विना ! यत् अन्तरिक्षे पतथः, यत् वा इमे रोदसी अनु (पतथः), यत् वा रथं स्वधाभिः अधि-तिष्ठथः, अतः आ यातम्॥६॥

४७० अर्थ- हे (पुरुभुजा) बहुत बडी भुजावाले अश्विदेवों ! (यत्) जो तुम (अन्तरिक्षे पतथः) अन्तरिक्षमें उड्डान करते हो, (यत् वा इमे रोदसी अनु) अथवा इन दो द्युलोक या भूलोकके बीच चले जाते हो, (यत् वा) या कभी (रथं स्वधाभिः अधितिष्ठथः) रथपर अपनी धारक शक्तियोंसे चढ जाते हो, (अतः आ यात) उधरसे इधर आओ ॥

[४७१] (ऋ. ८।९।८)
(४७१) शशिकर्णः काण्वः । उष्णिक् ।

४७१ उत त्या दैव्या भिषजा शं नः करतो अश्विना ।
युयुयातामितो रपो अप स्रिधः ॥८॥

४७१ उत । त्या । दैव्या । भिषजा ।
शम् । नः । करतः । अश्विना ॥
युयुयाताम् । इतः । रपः । अप । स्रिधः ॥८॥

४७१ अन्वय – उत त्या दैव्या भिषजा अश्विना नः शं करतः इतः स्रिधः अप रपः युयुयाताम् ॥ ८ ॥

४७१ अर्थ— (उत) और (त्या) वे दोनों (दैव्या भिषजा) दिव्य वैद्य अश्विदेव (नः शं करतः) हमारे लिए सुख देते हैं, तथा (इतः) यहाँसे (स्रिधः अप) शत्रुओंको हटाकर (रपः युयुयातां) दोषको दूर भगायें ॥

४७१ भावार्थ— वैद्य अपने चिकित्सा-कर्ममें प्रवीण हों, और जनताका सुख बढावें और दोषों और रोगोंको दूर करें ।

[४७२] (ऋ० ८।२२।१-१८)

(४७२-४८९) सोभरिः काण्वः। १-६ प्रगाथः = (विषमा बृहती+समा सतोबृहती), ७ बृहती, ८ अनुष्टुप्, ११ ककुप्, १२ मध्ये ज्योतिः, प्रगाथः = (९,१३,१५,१७, ककुप्, १०,१४,१६,१८ सतोबृहती)

४७२ ओ त्यमह्व आ रथमद्या दंसिष्ठमूतये।
यमश्विना सुहवा रुद्रवर्तनी आ सूर्यायै तस्थथुः॥१॥

४७२ ओ इति। त्यम्। अह्वे। आ। रथम्।
अद्य। दंसिष्ठम्। ऊतये॥
यम्। अश्विना। सुऽहवा। रुद्रवर्तनी इति रुद्रऽवर्तनी।
आ। सूर्यायै। तस्थथुः॥१॥

४७२ अन्वयः— ओ, अद्य त्यं दंसिष्ठं रथं, यं सुहवा रुद्रवर्तनी अश्विना सूर्यायै आ तस्थथुः, ऊतये आ अह्वे॥ १॥

४७२ अर्थ— (ओ) आह, (अद्य) आज (त्यं) उस (दंसिष्ठं रथं) अत्यन्त दर्शनीय रथको, (यं) जिसपर (सुहवा) सुखपूर्वक बुलानेयोग्य (रुद्रवर्तनी) दुःखको दूर करनेके मार्गसे जानेहारे अश्विदेव (सूर्यायै आ तस्थथुः) सूर्याके लिए चढ चुके थे, (ऊतये आ अह्वे) संरक्षणके लिए मैं उनको बुलाता हूँ॥

४७२ टिप्पणी— रुद्र (रुद्-र) = रोनेको दूर करनेवाले, दुःखको दूर करनेवाले।

[४७३]

४७३ पूर्वापुषं सुहवं पुरुस्पृहं भुज्युं वाजेषु पूर्व्यम्।
सचनावन्तं सुमतिभिः सोभरे विद्वेषसमनेहसम्॥२॥

४७३ पूर्वऽआपुषम्। सुऽहवम्। पुरुऽस्पृहम्।
भुज्युम्। वाजेषु। पूर्व्यम्॥
सचनाऽवन्तम्। सुमतिऽभिः। सोभरे।
विऽद्वेषसम्। अनेहसम्॥२॥

४७३ अन्वयः-- सोभरे ! पूर्वा-पुषं, सुहवं, पुरु-स्पृहं, भुज्युं, वाजेषु पूर्व्यं, सचनावन्तं, विद्वेषसं अनेहसं [रथं] सुमतिभिः ॥ १ ॥

४७३ अर्थ- हे (सोभरे) सोभरी ऋषि! (पूर्वा-पुषं) पहले आनेवाले स्तोताओंके पोषणकर्ता, (सुहवं) सुगमतापूर्वक बुलानेयोग्य, (पुरु-स्पृहं) बहुतसे लोग जिसकी इच्छा करते हैं ऐसे, (भुज्युं) भुज्युको, भोजन देनेवाले, (वाजेषु पूर्व्यं) युद्धोंमें सबसे पहले जाकर खडे होनेवाले, (सचनावन्तं) साथी लोगोंसे युक्त, (वि-द्वेषसं) शत्रुओंका विशेष रूपसे द्वेष करनेवाले एवं (अनेहसं) त्रुटिरहित अश्विदेवोंके रथको तू (सुमतिभिः) अच्छी मननीय स्तुतियोंसे प्रशंसित कर ॥

[४७४]

४७४ इह त्या पुरुभूतमा देवा नमोभिरश्विना ।
अर्वाचीना स्ववसे करामहे गन्तारा दाशुषो गृहम् ॥२॥

४७४ इह । त्या । पुरुऽभूतमा ।
देवा । नमःऽभिः । अश्विना ॥
अर्वाचीना । सु । अवसे । करामहे ।
गन्तारा । दाशुषः । गृहम् ॥२॥

४७४ अन्वयः— त्या दाशुषः गृहं गन्तारा, देवा पुरुभूतमा अश्विना इह नमोभिः स्ववसे अर्वाचीना करामहे ॥ २ ॥

४७४ अर्थ—(त्या) वे दोनों (दाशुषः गृहं गन्तारा) दानी पुरुषके घर जानेवाले, (देवा) तेजस्वी और (पुरु-भूतमा) बहुत अधिक मात्रामें उपस्थित होनेवाले अश्विदेवोंको (इह) इधर (नमोभिः) नमनपूर्वक (स्वसे) भलीभाँति रक्षा करनेके लिए (अर्वाचीना करामहे) हमारे अभिमुख करते हैं ॥

[४७५]

४७५ युवो रथस्य परि चक्रमीयत ईर्मान्यद्वामिषण्यति ।
अस्माँ अच्छा सुमतिर्वां शुभस्पती आ धेनुरिव धावतु॥३॥

४७५ युवोः । रथस्य । परि । चक्रम् । ईयते ।
ईर्मा । अन्यत् । वाम् । इषण्यति ॥
अस्मान् । अच्छ । सुऽमतिः । वाम् । शुभः । पती इति ।
आ । धेनुःऽइव । धावतु ॥४॥

४७५ अन्वयः— युवोः रथस्य चक्रं परि ईयते, अन्यत ईर्मा वां इषण्यति शुभस्पती ! वां सुमतिः, धेनुः इव, अस्मान् अच्छ आ धावतु ॥ ४ ॥

४७५ अर्थ— (युवोः रथस्य चक्रं) तुम्हारे रथका चक्र (परि ईयते) चारों ओर चला जाता है और (अन्यत्) दूसरा पहिया (ईर्मा वां इषण्यति) प्रेरणकर्ता तुम्हें प्राप्त होता है इसलिए हे (शुभस्पती) शुभके अधिपति ! (वां सुमतिः) तुम्हारी अच्छी बुद्धि, (धेनुः इव) गायके तुल्य जोकि अपने बछड़ेके समीप दौड़ी चली जाती है, (अस्मान् अच्छ आ धावतु) हमारे समीप जल्द दौड़ती आजाय ॥

[४७६]

४७६ रथो यो वां त्रिवन्धुरो हिरण्याभीशुरश्विना ।
परि द्यावापृथिवी भूषति श्रुतस्तेन नासत्या गतम् ॥५॥

४७६ रथः । यः । वाम् । त्रिऽवन्धुरः ।
हिरण्यऽअभीशुः । अश्विना ॥
परि । द्यावापृथिवी इति । भूषति । श्रुतः ।
तेन । नासत्या । आ । गतम् ॥५॥

४७६ अन्वयः— नासत्या अश्विना ! वां यः त्रिवन्धुरः हिरण्य-अभीशुः रथः श्रुतः द्यावा-पृथिवी परि भूषति तेन आ गतम् ॥५॥

४७६ अर्थ— हे सत्यमय अश्विदेवो ! (वां यः) तुम दोनोंका जो (त्रि-वन्धुरः हिरण्य-अभीशुः) तीन स्थानोंमें सुन्दर प्रतीत होनेवाला और सुवर्णमय चाबुकसे युक्त रथ (श्रुतः) विख्यात है तथा (द्यावा-पृथिवी परि भूषति) द्युलोक एवं भूलोकको अलंकृत करता है (तेन आ गतं) उससे इधर पधारो ॥

[४७७]

४७७ दुशस्यन्ता मनवे पूर्व्यं दिवि यवं वृकेण कर्षथः ।
ता वामद्य सुमतिभिः शुभस्पती अश्विना प्र स्तुवीमहि॥६

४७७ दुशस्यन्ता । मनवे । पूर्व्यम् । दिवि ।
यवम् । वृकेण । कर्षथः ॥
ता । वाम् । अद्य । सुमतिऽभिः । शुभः । पती इति ।
अश्विना । प्र । स्तुवीमहि ॥६॥

४७७ अन्वयः- मनवे पूर्व्यं दिवि दशस्यन्ता वृकेण यवं कर्षथः; शुभस्पती अश्विना ! अद्य ता वां सुमतिभिः प्र स्तुवीमहि ॥६॥

४७७ अर्थ- हे (शुभस्पती) शुभके पालनकर्ता अश्विदेवो ! (मनवे पूर्व्यं) मनुको पहले विद्यमान धन आदि (दिवि दशस्यन्ता) द्युलोकमें देते हुए तुम (वृकेण यवं कर्षथः) हलसे जौको भूमिपर खींचते हो अर्थात् कृषिकर्म करते हो (अद्य) आज (ता वां) ऐसे विख्यात तुम दोनोंको (सुमतिभिः) अच्छी प्रसन्न बुद्धियोंसे (प्र स्तुवीमहि) खूब प्रशंसित करते हैं ॥

[४७८]

४७८ उप नो वाजिनीवसू यातमृतस्य पथिभिः ।
येभिस्तृक्षिं वृषणा त्रासदस्यवं मुहे क्षुत्राय जिन्वथः॥७॥

४७८ उप । नः । वाजिनीवसू इति वाजिनीऽवसू ।
यातम् । ऋतस्य । पथिऽभिः ॥
येभिः । तृक्षिम् । वृषणा । त्रासदस्यवम् ।
मुहे । क्षुत्राय । जिन्वथः ॥७॥

४७८ अन्वय.— वाजिनी-वसू ! वृषणा ! येभिः ऋतस्य पथिभिः त्रासदस्यवं तृक्षिं महे क्षत्राय जिन्वथः, नः उप यातम् ॥७॥

४७८ अर्थ— हे (वाजिनी-वसू) अन्न या सेनारूपी धनवाले और (वृषणा) बलिष्ठ अश्विदेवो ! (येभिः ऋतस्य पथिभिः) जिन ऋतके मार्गोंसे त्रसदस्युके पुत्र तृक्षिको (महे क्षत्राय) बडेभारी क्षत्रियोचित वीरताके लिए (जिन्वथः) प्रेरित करने जाते हो उन्हीं मार्गोंसे (नः उप यातं) हमारे समीप आओ ॥

[४७९]

४७९ अयं वामद्रिभिः सुतः सोमो नरा वृषण्वसू ।
आ यातं सोमपीतये पिबतं दाशुषो गृहे ॥८॥

४७९ अयम् । वाम् । अद्रिऽभिः । सुतः ।
सोमः । नरा । वृषण्वसू इति वृषण्ऽवसू ॥
आ । यातम् । सोमऽपीतये ।
पिबतम् । दाशुषः । गृहे ॥८॥

४७९ अन्वयः— नरा ! वृषण्वसू ! अयं सोमः वां अद्रिभिः सुतः सोमपीतये आ यातं, दाशुषः गृहे पिबतम् ॥ ८ ॥

४७९ अर्थ— हे (नरा) नेता एवं (वृषण्वसू) धनकी वर्षा करनेहारे अश्विदेवों ! (अयं सोमः) यह सोमरस (वां) तुम दोनोंके लिए (अद्रिभिः सुतः) पत्थरोंसे कूटकर निचोडा गया है; (सोमपीतये आ यातं) सोमपानके लिए आजाओ और (दाशुषः गृहे पिबतं) दानीके घर इसका पान करो ॥

[४८०]

४८० आ हि रुहतमश्विना रथे कोशे हिरण्यये वृषण्वसू ।
युञ्जाथां पीवरीरिषः ॥९॥

४८० आ । हि । रुहतम् । अश्विना ।
रथे । कोशे । हिरण्यये ॥
वृषण्वसू इति वृषण्ऽवसू ।
युञ्जाथाम् । पीवरीः । इषः ॥९॥

४८० अन्वयः— वृषण्वसू अश्विना ! हिरण्यये कोशे रथे आ रुहतं हि, पीवरीः इषः युञ्जाथाम् ॥ ९ ॥

४८० अर्थ— हे (वृषण्वसू) धनकी वर्षा करनेहारे अश्विदेवों ! (हिरण्यये कोशे रथे) सुवर्णमय भांडारवत् रथपर (आ रुहतं हि) चढकर बैठो और (पीवरीः इषः युञ्जाथां) पुष्ट करनेवाली सुसमृद्ध अन्नसामग्रियोंका संयोग करदो ॥

[४८१]

४८१ याभिः पक्थमवथो याभिरध्रिगुं याभिर्बभ्रुं विजोषसम् ।
ताभिर्नो मक्षू तूयमश्विना गतं भिषज्यतं यदातुरम् ॥१०

४८१ याभिः । पक्थम् । अवथः । याभिः । अध्रिऽगुम् ।
याभिः । बभ्रुम् । विऽजोषसम् ॥
ताभिः । नः । मक्षु । तूयम् । अश्विना । आ । गतम् ।
भिषज्यतम् । यत् । आतुरम् ॥१०॥

४८१ अन्वयः- अश्विना ! याभिः पक्थं अवथः, याभिः अध्रि-गुं, याभिः विजोषसं बभ्रुं, ताभिः नः तूयं मक्षु आ गतं यत् आतुरं भिषज्यतम् ॥ १० ॥

४८१ अर्थ- हे अश्विदेवों ! (याभिः) जिन शक्तियोंसे (पक्थं अवथः) पक्थ नरेशकी रक्षा करते हो, (याभिः अध्रिगुं) जिनसे ऐसे नरेशको बचाते कि जिसकी गतिमें कोई रुकावट न डाल सकता हो और (याभिः वि-जोषसं बभ्रुं) जिनकी मददसे विशेष सेवा करनेवाले बभ्रु नरेशकी सेवा करते हो, (ताभिः) उनसे युक्त होकर (नः तूयं) हमारे समीप शीघ्र (मक्षु आ गतं) तुरन्त आओ तथा (यत् आतुरं) जो कोई बीमार दीख पडे उसकी (भिषज्यतं) औषधादिद्वारा चिकित्सा करो ॥

[४८१]

४८२ यदध्रिगावो अध्रिगू इदा चिदह्नो अश्विना हवामहे ।
वयं गीर्भिर्विपन्यवः ॥११॥

४८२ यत् । अध्रिऽगावः । अध्रिगू इत्यध्रिऽगू ।
इदा । चित् । अह्नः । अश्विना । हवामहे ॥
वयम् । गीःऽभिः । विपन्यवः ॥११॥

४८१ अन्वयः— यत् विपन्यवः अध्रिगावः वयं गीर्भिः अह्नः इदा चित् अध्रिगू अश्विना हवामहे ॥ ११ ॥

४८२ अर्थ- (यत्) जबकि (विपन्यवः) बुद्धिमान्, (अध्रिगावः वयं) रुकावटका अनुभव न करते हुए हम (गीर्भिः) भाषणोंसे (अह्नः इदा चित्) दिनके इस समय भी (अध्रिगू अश्विना) अप्रतिहत गतिवाले अश्विदेवोंको (हवामहे) बुलाते हैं तो वे अवश्यही आयेंगे ॥

४८२ टिप्पणी— अध्रि-गु:, अध्रि-गावः=जिनकी गौवें आगे बढती हैं, जिनकी गौओंको कोई रोक नहीं सकता ।

[४८३]

४८३ ताभि॒रा या॑तं वृषणोप॑ मे॒ हवं॑ वि॒श्वप्सुं॑ वि॒श्ववा॑र्यम् ।
इ॒षा मंहि॑ष्ठा पुरु॒भूत॑मा न॒रा याभिः॒ क्रिविं॑ वावृ॒धुस्ताभि॒रा ग॑तम् ॥१२॥

४८३ ताभिः । आ । या॒तम् । वृ॒ष॒णा । उप॑ । मे॒ । हव॑म् ।
वि॒श्वऽप्सु॑म् । वि॒श्वऽवा॑र्यम् ॥
इ॒षा । मंहि॑ष्ठा । पु॒रु॒ऽभूत॑मा । न॒रा॒ ।
याभिः॑ । क्रिवि॑म् । व॒वृ॒धुः । ताभिः॑ । आ । ग॒त॒म् ॥१२॥

४८३ अन्वयः- वृषणा ! मे विश्वप्सुं विश्ववार्यं हवं आ ताभिः उप यातम् । पुरुभूतमा मंहिष्ठा नरा ! याभिः क्रिविं वावृधुः ताभिः इषा आ गतम् ॥१२॥

४८३ अर्थ- हे (वृषणा) बलवालो ! (मे) मेरी (विश्वप्सुं) सभी रूप धारण करनेवाली एवं (विश्ववार्यं हवं) सबने स्वीकरणीय पुकारको सुनकर (आ) हमारे अभिमुख होकर (ताभिः उप यातं) उन शक्ति या युक्तियोंसे सज्ज हो समीप आओ, हे (पुरु-भूतमा) अधिकतया उपस्थित होनेवाले ! (मंहिष्ठा नरा) अतिशय दान देनेवाले एवं नेता अश्विदेवों ! (याभिः क्रिविं वावृधुः) जिन शक्तियोंसे तुमने कुएँको जलपूर्ण कर दिया (ताभिः इषा आ गतम्) उनसे और अन्नसे युक्त हो इधर आओ ॥

[४८४]

४८४ ता॒वि॒दा चि॒दहा॑नां ता॒व॒श्विना॒ वन्द॑मान॒ उप॑ ब्रुवे ।
ता ऊ॒ नमो॑भिरीमहे ॥१३॥

४८४ तौ । इदा । चित् । अहानाम् ।
तौ । अश्विना । वन्दमानः । उप । ब्रुवे ॥
तौ । ऊँ इति । नमःऽभिः । ईमहे ॥१३॥

४८४ अन्वयः- अहानां इदा चित् तौ अश्विना वन्दमानः तौ उप ब्रुवे, नमोभिः तौ उ ईमहे ॥ १३ ॥

४८४ अर्थ—(अहानां इदा चित्) दिनोंके इस अवसरपरही (तौ) उन दोनों अश्विदेवोंको (वन्दमानः) नमन करता हुआ, (तौ उप ब्रुवे) उनके समीप जाकर मैं अपना वक्तव्य कहता हूँ, (नमोभिः) नमनपूर्वक (तौ उ ईमहे) उन्हींको हम चाहते हैं ॥

[४८५]

४८५ ताविद् दोषा ता उषसि शुभस्पती ता यामन् रुद्रवर्तनी ।
मा नो मर्ताय रिपवे वाजिनीवसू परो रुद्रावति ख्यतम् ॥

४८५ तौ । इत् । दोषा । तौ । उषसि । शुभः । पती इति ।
ता । यामन् । रुद्रवर्तनी इति रुद्रऽवर्तनी ॥
मा । नः । मर्ताय । रिपवे । वाजिनीवसू इति
वाजिनीऽवसू ।
परः । रुद्रौ । अति । ख्यतम् ॥१४॥

४८५ अन्वयः- तौ शुभस्पती दोषा इत्, तौ उषसि ता रुद्रवर्तनी यामन् (हवामहे), वाजिनीवसू रुद्रौ ! नः रिपवे मर्ताय मा परः अति ख्यतम् ॥१४॥

४८५ अर्थ- (तौ शुभस्पती) उन दो अच्छोंके पालक अश्विदेवोंको (दोषा इत्) रात्रीके मौकेपर भी, (तौ उषसि) उन्हें प्रातःकाल भी, (ता रुद्रवर्तनी) उन दो वीरमार्गके पथपर चलनेवाले अश्विदेवोंको (यामन्) यात्रा करते समय हम बुलाते हैं। हे (वाजिनी-वसू रुद्रौ) बलरूपी धनवाले ! शत्रुको रुलानेवाले ! (नः) हमें (रिपवे मर्ताय) शत्रुभूत मानवके लिए (मा परः अति ख्यतं) न कभी आगे कह दो। शत्रुको हमारा पता न लगे ॥

४८५ भावार्थ— शुभका पालन करो, वीरोंके मार्गसे गमन करो, मलको मत मानो, शत्रुको अपना पता न दो, अपना स्थान सुरक्षित रखो।

[४८६]

४८६ आ सुग्म्याय सुग्म्यं प्राता रथेनाश्विना वा सक्षणी।
हुवे पितेव सोभरी ॥१५॥

४८६ आ। सुग्म्याय। सुग्म्यम्।
प्रातरिति। रथेन। अश्विना। वा। सक्षणी इति॥
हुवे। पिताऽइव। सोभरी ॥१५॥

४८६ अन्वयः— सोभरी पिता इव हुवे, सक्षणी अश्विना सुग्म्याय प्रातः रथेन वा सुग्म्यं आ ॥ १५ ॥

४८६ अर्थ— मैं सोभरी (पिता इव हुवे) पिता जिस तरह पुत्रोंको बुलाता है वैसेही बुलाता हूँ; (सक्षणी) सेवनीय अश्विदेवों (सुग्म्याय) सुख पानेकी योग्यता रखनेवालेको (प्रातः) सुबह (रथेन वा) चाहे तो रथपरसे (सुग्म्यं आ) सुख पहुँचानेके लिए आओ ॥

[४८७]

४८७ मनोजवसा वृषणा मदच्युता मक्षुंगमाभिरूतिभिः।
आराच्चाचिद् भूतमस्मे अवसे पूर्वीभिः पुरुभोजसा॥१६॥

४८७ मनःऽजवसा। वृषणा। मदऽच्युता।
मक्षुम्ऽगमाभिः। ऊतिऽभिः॥
आरात्तात्। चित्। भूतम्। अस्मे इति। अवसे।
पूर्वीभिः। पुरुऽभोजसा ॥१६॥

४८७ अन्वयः— मनो-जवसा! वृषणा पुरु-भोजसा! मदच्युता! अस्मे अवसे पूर्वीभिः मक्षुंगमाभिः ऊतिभिः आरात्तात् चित् भूतम् ॥ १६ ॥

४८७ अर्थ- हे (मनो-जवसा) मनवत् वेगसे जानेवाले ! (वृषणा) बलवान् ! (पुरु-भोजसा) बहुत लोगोंको भोगके साधन देनेवाले !(मद-च्युता) शत्रुके मदको हटानेवाले ! अश्विदेवों ! (अस्मे अवसे) हमारी रक्षाके लिए (पूर्वीभिः) बहुतसी तथा (मक्षु-गमाभिः ऊतिभिः) शीघ्र गतिवाली रक्षणकी शक्तिसे युक्त होकर (आरात्तात् चित्) समीपही (भूतं) तुम रहने लगो ॥

[४८८]

४८८ आ नो अश्वावदश्विना वर्तिर्यासिष्टं मधुपातमा नरा।
गोमद् दस्रा हिरण्यवत् ॥ १७ ॥

४८८ आ । नः । अश्वऽवत् । अश्विना ।
वर्तिः । यासिष्टम् । मधुऽपातमा । नरा ॥
गोऽमत् । दस्रा । हिरण्यऽवत् ॥१७॥

४८८ अन्वयः- मधुपातमा ! दस्रा ! नरा अश्विना ! नः गोमत् अश्वावत् हिरण्यवत् वर्तिः आ यासिष्टम् ॥ १७ ॥

४८८ अर्थ- हे (मधु-पातमा) अत्यन्त मधुर सोमरस पीनेहारे ! (दस्रा) शत्रुविनाशक ! (नरा) नेता अश्विदेवों ! (नः गोमत् अश्वावत्) हमारे गोधन एवं वाजिधनसे पूर्ण (हिरण्यवत् वर्तिः आ यासिष्टं) सुवर्णयुक्त निवास-स्थलमें आओ ॥

[४८९]

४८९ सुप्रावर्गं सुवीर्यं सुष्ठु वार्यमनाधृष्टं रक्षस्विना।
अस्मिन्ना वामायाने वाजिनीवसू विश्वा वामानि धीमहि॥

४८९ सुऽप्रावर्गम् । सुऽवीर्यम् । सुष्ठु । वार्यम् ।
अनाधृष्टम् । रक्षस्विना ॥
अस्मिन् । आ । वाम् । आऽयाने । वाजिनीवसू इति वाजिनीऽवसू ।
विश्वा । वामानि । धीमहि ॥१८॥

४८९ अन्वयः— वाजिनी-वसू ! रक्षस्विना अनाधृष्टं, सुप्रावर्गं, सुवीर्यं सुष्ठु वार्यं, वां अस्मिन् आयाने विश्वा वामानि आ धीमहि ॥ १८ ॥

४८९ अर्थ— हे (वाजिनी-वसू) बलरूपी धनवाले ! रक्षस्विना अनाधृष्टं) रक्षणशक्तिसे युक्त पुरुषके द्वारा भी जिसपर हमला करना असंभव हुआ हो, (सुप्रावर्गं) सुगमतासे प्रदान करनेयोग्य और (सुवीर्यं सुष्ठु वार्यं) अच्छी वीरतासे युक्त अतः भलीभाँति स्वीकरणीय ऐसे गुणोंसे युक्त (विश्वा वामानि) सभी धनोंको (वां अस्मिन् आयाने) तुम दोनोंके इस आगमनसे (आ धीमहि) हम धारण करते हैं ॥

[४९०] (ऋ. ८।२६।१-१९)

(४९०—५०८) विश्वमना वैयश्वः; व्यश्वो वाऽङ्गिरसः। उष्णिक्, १६-१९ गायत्री।

४९० युवोरु षू रथं हुवे सधस्तुत्याय सूरिषु।
अतूर्तदक्षा वृषणा वृषण्वसू ॥१॥

४९० युवोः । ऊँ इति । सु । रथम् । हुवे ।
सधऽस्तुत्याय । सूरिषु ।
अतूर्तऽदक्षा । वृषणा । वृषण्वसू इति वृषण्ऽवसू ॥१॥

४९० अन्वयः— अतूर्तदक्षा ! वृषणा ! वृषण्वसू ! सूरिषु सधस्तुत्याय युवोः रथं उ सु हुवे ॥ १ ॥

४९० अर्थ— हे (अतूर्त-दक्षा) ऐसे बल धारण करनेवाले कि जिसे दूसरा कोई नष्ट न कर सके और (वृषणा) बलवान् तथा (वृषण्वसू) धनकी वर्षा करनेहारे अश्विदेवों ! (सूरिषु) विद्वानोंमें (सधस्तुत्याय) एकही साथ प्रशंसा करनेके लिए (युवोः रथं उ) तुम्हारे रथकोही (सु हुवे) भलीभाँति बुलाता हूँ ॥

[४९१]

४९१ युवं वरो सुषाम्णे महे तने नासत्या।
अवोभिर्याथो वृषणा वृषण्वसू ॥२॥

४९१ युवम् । वरो इति । सुऽसाम्ने ।
मुहे । तने । नासत्या ॥
अवःऽभिः । याथः । वृषणा । वृषण्वसू इति
वृषण्ऽवसू ॥२॥

४९१ अन्वयः– नासत्या ! वृषणा ! वृषण्वसू ! युवं सु-साम्ने महे तने अवोभिः याथः; वरो ॥ २ ॥

४९१ अर्थ— हे असत्यसे दूर रहनेवाले ! (वृषणा) बलिष्ठ तथा (वृषण्वसू) धनकी वृष्टि करनेवाले अश्विदेवों ! (युवं) तुम (सुसाम्ने महे तने) सुसामन्के लिए बडा धन मिले इस इच्छासे (अवोभिः याथः) संरक्षणोंसे युक्त होकर यात्रा करते हो उसी तरह मेरेलिए भी प्रयत्न करो, ऐसी प्रार्थना (वरो) हे वर नरेश ! तू कर ॥

[४९२]

४९२ ता वामद्य हवामहे हव्येभिर्वाजिनीवसू ।
पूर्वीरिष इषयन्तावति क्षपः ॥३॥

४९२ ता । वाम् । अद्य । हवामहे ।
हव्येभिः । वाजिनीवसू इति वाजिनीऽवसू ॥
पूर्वीः । इषः । इषयन्तौ । अति । क्षपः ॥३॥

४९२ अन्वय.— वाजिनी-वसू ! क्षपः अति अद्य ता वां पूर्वीः इषः इषयन्तौ हव्येभिः हवामहे ॥ ३ ॥

४९२ अर्थ– हे (वाजिनी-वसू) बलयुक्त धनवाले अश्विदेवों ! (क्षपः अति) रात्रीके बीत जानेपर (अद्य ता वां) आज उन विख्यात तुम्हें जोकि (पूर्वीः इषः इषयन्तौ) बहुतसी अन्नसामग्रियोंको चाहते हो (हव्येभिः हवामहे) हवनीय वस्तुओंके प्रदानके साथ हम बुलाते हैं ॥

[४९३]

४९३ आ वां वाहिष्ठो अश्विना रथो यातु श्रुतो नरा ।
उप स्तोमान् तुरस्य दर्शथः श्रिये ॥४॥

४९३ आ । वाम् । वाहिष्ठः । अश्विना ।
रथः । यातु । श्रुतः । नरा ॥
उप । स्तोमान् । तुरस्य । दर्शथः । श्रिये ॥४॥

४९३ अन्वयः— नरा अश्विना ! वां वाहिष्ठः श्रुतः रथः आ यातु, तुरस्य स्तोमान् श्रिये उप दर्शथः ॥ ४ ॥

४९३ अर्थ- हे (नरा) नेता अश्विदेवों ! (वां वाहिष्ठः) तुम्हें खूब जगह जगह पहुँचानेवाला और (श्रुतः) विख्यात रथ (आ यातु) इधर चला आये; पश्चात् (तुरस्य स्तोमान्) शीघ्रतया कार्य करनेवालेके स्तोत्रोंको, (श्रिये) शोभाके लिए (उप दर्शथः) समीप आकर दर्शन लो ॥

[४९४]

४९४ जुहुराणा चिदश्विनाऽऽ मन्येथां वृषण्वसू ।
युवं हि रुद्रा पर्षथो अति द्विषः ॥५॥

४९४ जुहुराणा । चित् । अश्विना ।
आ । मन्येथाम् । वृषण्वसू इति वृषण्ऽवसू ॥
युवम् । हि । रुद्रा । पर्षथः । अति । द्विषः ॥५॥

४९४ अन्वयः— वृषण्वसू अश्विना ! जुहुराणा चित् आ मन्येथां युवं रुद्रा हि द्विषः अति पर्षथः ॥ ५ ॥

४९४ अर्थ- हे (वृषण्वसू) धनकी वर्षा करनेहारे अश्विदेवों ! (जुहुराणा चित् आ मन्येथां) कुटिल प्रकृतिके लोगोंको भी मान्यता देदो क्योंकि (युवं रुद्रा हि) तुम तो शत्रुको रुलानेवाले हो और (द्विषः अति पर्षथः) द्वेष करनेवाले शत्रुओंको पार करके आगे बढते हो ॥

[४९५]

४९५ दस्रा हि विश्वमानुषङ्मक्षूभिः परिदीयथः ।
धियंजिन्वा मधुवर्णा शुभस्पती ॥६॥

४९५ दस्रा । हि । विश्वम् । आनुषक् ।
मक्षुऽभिः । परिऽदीयथः ॥
धियम्ऽजिन्वा । मधुऽवर्णा । शुभः । पती इति ॥६॥

४९५ अन्वयः— दस्रा ! मधुवर्णा ! धियं-जिन्वा ! शुभस्पती ! मक्षुभिः विश्वं आनुषक् परिदीयथः हि ॥ ६ ॥

४९५ अर्थ— हे (दस्रा) दर्शनीय ! (मधु-वर्णा) मधुर वर्णवाले ! (धियं-जिन्वा) बुद्धि या कर्मोंका ठीक पालन प्रीणन-करनेवाले ! (शुभः पती) शुभ चीजोंके अधिपति ! अश्विदेवों ! (मक्षुभिः) शीघ्रगामी घोडोंके साथ (विश्वं आनुषक्) सबके समीप लगातार (परि दीयथः) चतुर्दिक् चले जाते हो इसमें संशय नहीं है ॥

[४९६]

४९६ उप नो यातमश्विना राया विश्वपुषा सह ।
मघवाना सुवीरावनपच्युता ॥७॥

४९६ उप । नः । यातम् । अश्विना ।
राया । विश्वऽपुषा । सह ॥
मघऽवाना । सुऽवीरौ । अनपऽच्युता ॥७॥

४९६ अन्वयः— मघवाना ! अनपच्युता ! सुवीरौ अश्विना ! नः विश्वपुषा राया सह उप यातम् ॥ ७ ॥

४९६ अर्थ— हे (मघवाना !) ऐश्वर्यसंपन्न ! (अन्-अपच्युता) न पदभ्रष्ट हुए (सुवीरौ) अच्छे वीर अश्विदेवों ! (नः) हमारे समीप (विश्व-पुषा राया सह) सबकी पुष्टि करनेहारे धनसे युक्त होकर (उप यातं) आओ ॥

[४९७]

४९७ आ मे अस्य प्रतीव्यमिन्द्रनासत्या गतम् ।
देवा देवेभिरद्य सचनस्तमा ॥८॥

४९७ आ । मे । अस्य । प्रतीव्यम् ।
इन्द्रनासत्या । गतम् ॥
देवा । देवेभिः । अद्य । सचनःऽतमा ॥८॥

४९७ अन्वयः— इन्द्र-नासत्या ! देवा देवेभिः सचनस्तमा अद्य मे अस्य प्रतीव्यं आ गतम् ॥ ८ ॥

४९७ अर्थ— हे इन्द्र एवं सत्यभक्त अश्विदेवो ! तुम (देवा) दानी और (देवेभिः सचनः तमा) विद्वानोंसे अत्यन्त अधिक मात्रामें युक्त होनेवाले हो, अतः (अद्य मे अस्य प्रतीव्यं) आज मेरे इस स्तोत्रके प्रत्युत्तरके रूपमें (आ गतं) इधर पधारो ॥

[४९८]

४९८ व॒यं हि वां॑ हवा॑मह उक्ष॒ण्यन्तो॑ व्यश्व॒वत् ।
सु॒म॒तिभि॒रुप॑ विप्रावि॒हा ग॑तम् ॥९॥

४९८ व॒यम् । हि । वा॒म् । हवा॑महे ।
उ॒क्ष॒ण्यन्तः॑ । व्य॒श्व॒ऽवत् ॥
सु॒म॒तिऽभिः॑ । उप॑ । वि॒प्रौ॒ । इ॒ह । आ । ग॒त॒म् ॥९॥

४९८ अन्वयः— विप्रौ ! वयं व्यश्ववत् उक्षण्यन्तः वां हि हवामहे; सुमतिभिः इह उप आ गतम् ॥ ९ ॥

४९८ अर्थ— हे (विप्रौ) ज्ञानी अश्विदेवो ! (वयं व्यश्ववत्) हम व्यश्वके समानही, (उक्षण्यन्तः) इच्छा करते हुए (वां हि हवामहे) तुम्हेंही बुलाते हैं, इसलिए (सुमतिभिः इह) अच्छी बुद्धियों एवं विचारोंसे युक्त होकर इधर (उप आ गतं) समीप आओ ॥

[४९९]

४९९ अ॒श्विना॒ स्वृ॑षे स्तुहि कु॒वित् ते॒ श्रव॑तो॒ हव॑म् ।
नेदी॑यसः कूळयातः प॒णीँरु॒त ॥१०॥

४९९ अ॒श्विना॑ । सु । ऋ॒षे॒ । स्तु॒हि॒ ।
कु॒वित् । ते॒ । श्रव॑तः । हव॑म् ॥
नेदी॑यसः । कू॒ळ॒या॒तः॒ । प॒णीन् । उ॒त ॥१०॥

४९९ अन्वयः— ऋषे ! अश्विनौ सु स्तुहि, ते हवं कुवित् श्रवतः उत पणीन् नेदीयसः कूळयातः ॥ १० ॥

●

४९९ अर्थ— हे ऋषिवर ! तू अश्विदेवोंकी (सु स्तुहि) भलीभाँति सराहना कर, क्योंकि वे दोनों (ते हवं) तेरी पुकारको (कुवित् श्रवतः) बहुतबार सुन लेते हैं, (उत) और (पणीन्) स्वार्थी व्यापारियोंको एवं (नेदीयसः) समीप पहुँचे हुए शत्रुओंको (कूळयातः) विनष्ट कर डालते हैं ॥

[५००]

५०० वैयश्वस्य श्रुतं नरोतो मे अस्य वेदथः ।
सजोषसा वरुणो मित्रो अर्यमा ॥११॥

५०० वैयश्वस्य । श्रुतम् । नरा ।
उतो इति । मे । अस्य । वेदथः ॥
सऽजोषसा । वरुणः । मित्रः । अर्यमा ॥११॥

५०० अन्वयः— नरा ! वैयश्वस्य श्रुतं उत अस्य मे वेदथः; वरुणः मित्रः अर्यमा सजोषसा ॥ ११ ॥

५०० अर्थ— हे (नरा) नेता अश्विदेवो ! (वैयश्वस्य श्रुतं) व्यश्वके पुत्रके कथनको सुन लो (उत) और (अस्य मे वेदथः) इस मेरे भाषणको ठीक तरह जान लो; वरुण, मित्र एवं अर्यमा (सजोषसा) इकट्ठे हो इधर आजायँ ॥

[५०१]

५०१ युवादत्तस्य धिष्ण्या युवानीतस्य सूरिभिः ।
अहरहर्वृषणा मह्यं शिक्षतम् ॥१२॥

५०१ युवाऽदत्तस्य । धिष्ण्या ।
युवाऽनीतस्य । सूरिऽभिः ॥
अहःऽअहः । वृषणा । मह्यम् । शिक्षतम् ॥१२॥

५०१ अन्वयः— धिष्ण्या वृषणा ! सूरिभिः युवानीतस्य युवादत्तस्य अहः अहः मह्यं शिक्षतम् ॥ १२ ॥

५०१ अर्थ— हे (धिष्ण्या वृषणा !) प्रशंसाई एवं इच्छापूर्ति करनेहारे अश्विदेवो ! (सूरिभिः) विद्वानोंको (युवानीतस्य युवा दत्तस्य) तुम लाकर जो धन दे चुके हो उसे (अहः अहः) हरदिन (मह्यं शिक्षत) मुझे दे डालो ॥

[५०१]

५०२ यो वां यज्ञेभिरावृतोऽधिवस्त्रा वधूरिव ।
सपर्यन्ता शुभे चक्राते अश्विना ॥१३॥

५०२ यः । वाम् । यज्ञेभिः । आऽवृतः ।
अधिऽवस्त्रा । वधूःऽइव ॥
सपर्यन्ता । शुभे । चक्राते इति । अश्विना ॥१३॥

५०१ अन्वयः— अधिवस्त्रा वधूः इव यः वां यज्ञेभिः आवृतः, सपर्यन्ता अश्विना शुभे चक्राते ॥ १३ ॥

५०१ अर्थ- (अधि-वस्त्रा वधूः इव) कपडे ओढी हुई नववधूके समान (यः) जो मानव (वां यज्ञेभिः आवृतः) तुम्हारे यज्ञोंसे पूर्णतया ढका हुआ हो, उसे (सपर्यन्ता) अभीष्ट चीजोंके प्रदानसे पूजित करते हुए अश्विदेव (शुभे चक्राते) अच्छी दशामें वह रहे ऐसा प्रबन्ध कर देते हैं ॥

५०१ टिप्पणी— 'अधिवस्त्रा वधूः आवृता' इस मंत्रभागसे ऐसा दीखता है कि वधू-नवविवाहित स्त्री-शरीरपर पहने वस्त्रसे भी अधिक ओढती थी। आजकल पंजाबमें यह प्रथा है ॥

[५०३]

५०३ यो वामुरुव्यचस्तमं चिकेतति नृपाय्यम् ।
वर्तिरश्विना परि यातमस्मयू ॥१४॥

५०३ यः । वाम् । उरुव्यचःऽतमम् ।
चिकेतति । नृऽपाय्यम् ॥
वर्तिः । अश्विना । परि । यातम् । अस्मऽयू इत्यस्मऽयू ॥

५०३ अन्वयः— अश्विना ! यः उरुव्यचस्तमं नृपाय्यं वां चिकेतति, वर्तिः अस्मयू परि यातम् ॥ १४ ॥

५०३ अर्थ— हे अश्विदेवों ! (यः) जो (उदन्यवस्तमं) अत्यन्त विस्तीर्ण तथा (नृ-पाय्यं) नेताओंद्वारा सुरक्षित रखनेयोग्य स्थानको (वां चिकेतति) तुम्हारे लिए बतलाता है, उसके (वर्तिः) घरतक (अस्मयू) हमारी चाह रखनेवाले तुम (परि यातं) चारों ओरसे चले आओ ॥

[५०४]

५०४ अस्मभ्यं सु वृषण्वसू यातं वर्तिर्नृपाय्यम् ।
विषुद्रुहेव यज्ञमूहथुर्गिरा ॥१५॥

५०४ अस्मभ्यम् । सु । वृषण्वसू इति वृषण्ऽवसू ।
यातम् । वर्तिः । नृऽपाय्यम् ॥
विषुद्रुहाऽइव । यज्ञम् । ऊहथुः । गिरा ॥१५॥

५०४ अन्वयः- वृषण्वसू ! नृपाय्यं वर्तिः अस्मभ्यं सु यातं, गिरा यज्ञं विषुद्रुहेव ऊहथुः ॥ १५ ॥

५०४ अर्थ— हे (वृषण्वसू) धनकी वर्षा करनेहारे अश्विदेवों ! (नृपाय्यं वर्तिः) नेताओंसे रक्षणीय घरको (अस्मभ्यं) हमारे हितके लिए (सु यातं) भलीभाँति जाओ, क्योंकि तुम (गिरा यज्ञं) भाषणसे यज्ञको (वि-षु-द्रुहा इव ऊहथुः) सभी शत्रुओंके वधकर्ता बाणकी तरह उठा ले गये ॥

[५०५]

५०५ वाहिष्ठो वां हवानां स्तोमो दूतो हुवन्नरा ।
युवाभ्यां भूत्वश्विना ॥१६॥

५०५ वाहिष्ठः । वाम् । हवानाम् ।
स्तोमः । दूतः । हुवत् । नरा ॥
युवाभ्याम् । भूतु । अश्विना ॥१६॥

५०५ अन्वयः— नरा अश्विना ! हवानां वां वाहिष्ठः स्तोमः दूतः हुवत् युवाभ्यां भूतु ॥ १६ ॥

५०५ अर्थ— हे (नरा) नेता अश्विदेवों ! (हवानां) तुम्हें जो बुलावे भेजे जाते हैं उनमें (वां वाहिष्ठः) तुम्हें अत्यधिक मात्रामें प्राप्त होनेवाला (स्तोमः दूतः हुवत्) हमारा स्तोत्र दूत बनकर इधर बुलाए और वह (जुजोषः) तुम्हें प्रिय (भूतु) प्रतीत हो ॥

[५०६]

५०६ यदुदो दिवो अर्णव इषो वा मदथो गृहे।
श्रुतमिन्मे अमर्त्या ॥१७॥

५०६ यत् । अदः । दिवः । अर्णवे ।
इषः । वा । मदथः । गृहे ॥
श्रुतम् । इत् । मे । अमर्त्या ॥१७॥

५०६ अन्वयः— अमर्त्यौ ! यत् दिवः, अर्णवे, इषः गृहे वा मदथः मे अदः श्रुतं इत् ॥ १७ ॥

५०६ अर्थ— हे (अ-मर्त्यौ) अमर अश्विदेवों ! (यत् दिवः) जो तुम द्युलोकमें (अर्णवे) समुद्रमें (इषः गृहे वा) या अभीष्टके घरमें (मदथः) हर्षित होते हो, परन्तु (मे अदः) मेरा वह भाषण (श्रुतं इत्) तुम अवश्य सुन लेना ॥

[५०७]

५०७ उत स्या श्वेतयावरी वाहिष्ठा वां नदीनाम्।
सिन्धुर्हिरण्यवर्तनिः ॥१८॥

५०७ उत । स्या । श्वेतऽयावरी ।
वाहिष्ठा । वाम् । नदीनाम् ॥
सिन्धुः । हिरण्यऽवर्तनिः ॥१८॥

५०७ अन्वयः— उत-नदीनां वां वाहिष्ठा स्या श्वेतयावरी हिरण्य-वर्तनिः सिन्धुः ॥ १८ ॥

५०७ अर्थ- (उत) और भी (नदीनां वा वादिन्ना) नदियोंमें तुम्हें ही अधिक इष्ट स्थानपर पहुँचानेवाली (स्या श्वेतयावरी) वह शुभ—निर्मल गतिवाली (हिरण्यवर्तनिः) सुवर्णतुल्य तेजस्वी मार्गवाली (सिन्धुः) नदी है ॥

[५०८]

५०८ स्मदेतया सुकीर्त्याऽश्विना श्वेतया धिया ।
वहेथे शुभ्रयावाना ॥१९॥

५०८ स्मत् । एतया । सुऽकीर्त्या ।
अश्विना । श्वेतया । धिया ॥
वहेथे इति । शुभ्रऽयावाना ॥१९॥

५०८ अन्वयः — शुभ्र-यावाना अश्विना ! एतया सुकीर्त्या श्वेतया धिया स्मत् वहेथे ॥ १९ ॥

५०८ अर्थ- हे (शुभ्र-यावाना) निष्कलंक गतिवाले अश्विदेवो ! (एतया सुकीर्त्या) इस अच्छी कीर्तिवाली (श्वेतया धिया) सफेद—निष्कलंक बुद्धिसे तुम दोनों (स्मत् वहेथे) कल्याणकी ओर—जाते हो—शुभ एवं हित-प्रद मार्गके पथिक बनते हो ॥

[५०९] (ऋ० ८।३५।१-२४)
(५०९—५३२) श्यावाश्व आत्रेयः । उपरिष्टाज्ज्योतिः (त्रिष्टुप्),
२२,२४ पंक्तिः, २३ महाबृहती ।

५०९ अग्निनेन्द्रेण वरुणेन विष्णुनाऽऽदित्यै रुद्रैर्वसुभिः
सचाभुवा । सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं
पिबतमश्विना ॥१॥

५०९ अग्निना । इन्द्रेण । वरुणेन । विष्णुना ।
आदित्यैः । रुद्रैः । वसुऽभिः । सचाऽभुवा ॥
सऽजोषसौ । उषसा । सूर्येण । च ।
सोमम् । पिबतम् । अश्विना ॥१॥

५०९ अन्वयः— अश्विना ! अग्निना इन्द्रेण वरुणेन विष्णुना आदित्यैः वसुभिः रुद्रैः सचाभुवा उपसा सूर्येण च सजोषसा सोमं पिबतम् ॥ १ ॥

५०९ अर्थ— हे अश्विदेवों ! तुम अग्नि, इन्द्र, वरुण, विष्णु, आदित्यों वसुओं एवं रुद्रोंके संघोंसे (सचा-भुवा) युक्त होकर (उषसा सूर्येण च सजोषसा) और उषा तथा सूर्यसे मिलकर (सोमं पिबतम्) सोमरसका सेवन करो ॥

[५१०]

५१० विश्वाभिर्धीभिर्भुवनेन वाजिना दिवा पृथिव्याऽद्रिभिः
सचाभुवा । सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं
पिबतमश्विना ॥२॥

५१० विश्वाभिः । धीभिः । भुवनेन । वाजिना ।
दिवा । पृथिव्या । अद्रिऽभिः । सचाऽभुवा ॥
सऽजोषसौ । उषसा । सूर्येण । च ।
सोमम् । पिबतम् । अश्विना ॥२॥

५१० अन्वयः— वाजिना अश्विना ! दिवा, पृथिव्या, अद्रिभिः, विश्वाभिः धीभिः भुवनेन सचाभुवा, उषसः सूर्येण च सजोषसा सोमं पिबतम् ॥ २ ॥

५१० अर्थ— हे (वाजिना) बलवान् अश्विदेवों (दिवा पृथिव्या) द्युलोक एवं भूलोकवर्ती लोगोंसे, (अद्रिभिः) न दौड़नेवालोंसे, (विश्वाभिः धीभिः भुवनेन सचाभुवा) सभी बुद्धियों एवं भुवनसे युक्त हो तथा उषा और सूर्यसे सम्मिलित होकर सोमपान करो ॥

[५११]

५११ विश्वैर्देवैस्त्रिभिरेकादशैरिहाद्भिर्मरुद्भिर्भृगुभिः सचाभुवा ।
सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं पिबतमश्विना ॥३॥

५११ विश्वैः । देवैः । त्रिऽभिः । एकादशैः । इह ।
अत्ऽभिः । मरुत्ऽभिः । भृगुऽभिः । सचाऽभुवा ॥
सऽजोषसौ । उषसा । सूर्येण । च ।
सोमम् । पिबतम् । अश्विना ॥३॥

५११ अन्वयः— अश्विना ! इह त्रिभिः एकादशैः विश्वैः देवैः भृगुभिः मरुद्भिः अद्भिः सचाभुवा, उषसा सूर्येण च सजोषसा सोमं पिबतम् ॥ ३ ॥

५११ अर्थ- हे अश्विदेवों ! (इह) यहाँपर (त्रिभिः एकादशैः विश्वैः देवैः) सभी तेंतीस देवोंसे, (भृगुभिः मरुद्भिः अद्भिः) भृगुओं, वीर-मरुतों तथा जलोंसे (सचाभुवा) संगत होकर और उषा एवं सूर्यके साथ रहकर सोमपान करो ॥

[५१२]

५१२ जुषेथां यज्ञं बोधतं हवस्य मे विश्वेह देवौ सवनाव गच्छतम् । सजोषसा उषसा सूर्येण चेषं नो वोळ्हमश्विना ॥४॥

५१२ जुषेथाम् । यज्ञम् । बोधतम् । हवस्य । मे ।
विश्वा । इह । देवौ । सवना । अव । गच्छतम् ॥
सऽजोषसा । उषसा । सूर्येण । च ।
आ । इषम् । नः । वोळ्हम् । अश्विना ॥४॥

५१२ अन्वयः— अश्विना ! यज्ञं जुषेथां, मे हवस्य बोधतं, देवौ इह विश्वा सवना अव गच्छतम्; उषसा सूर्येण च सजोषसा नः इषं वोळ्हम् ॥ ४ ॥

५१२ अर्थ— हे अश्विदेवों ! (यज्ञं जुषेथां) यज्ञका सेवन करो, (मे हवस्य बोधतं) मेरी प्रार्थना जान लो, (देवौ) दानी तुम दोनों ([illegible] विश्वा सवना अव गच्छतं) इधर सभी सवनोंके निकट आपहुँचो, पश्चात् उषा एवं सूर्यके साथ (नः इषं वोळ्हं) हमें अन्न पहुँचाओ ॥

[५१३]

५१३ स्तोमं जुषेथां युवशेव कन्यनां विश्वेह देवौ सवनाव गच्छतम् । सजोषसा उषसा सूर्येण चेषं नो वोळ्हमश्विना ॥५॥

५१३ स्तोर्मम् । जुषेथाम् । युवशाऽईव । कुन्यनाम् ।
विश्वा । इह । देवौ । सवना । अवं । गच्छतम् ॥
सऽजोर्षसौ । उषसा । सूर्येण । च ।
आ । इषम् । नः । वोळ्हम् । अश्विना ॥५॥

५१३ अन्वयः— देवौ अश्विनौ ! कन्यनां युवशा इव स्तोमं जुषेथां विश्वा सवना इह अव गच्छतम्; उषसा सूर्येण च सजोषसा नः इषं वोळहम् ॥ ५ ॥

५१३ अर्थ– हे (देवौ) दानी या द्योतमान अश्विदेवों ! (कन्यनां युवशा इव) कन्या-कमनीय युवतियोंको युवक जैसे चाहते हैं वैसेही (स्तोमं जुषेथां) हमारे स्तोत्रका सेवन करो, तथा (विश्वा सवना) सभी सवनोंमें (इह अवगच्छतं) इधर आकर पहुँच जाओ; सूर्य एवं उषःवेलाके समय तुम दोनों हमें अन्न पहुँचा दो ॥

[५१४]

५१४ गिरौ जुषेथामध्वरं जुषेथां विश्वेह देवौ सवनाव गच्छतम् । सजोषसा उषसा सूर्येण चेषं नो वोळ्हमश्विना ॥६॥

५१४ गिरः । जुषेथाम् । अध्वरम् । जुषेथाम् ।
विश्वा । इह । देवौ । सवना । अवं । गच्छतम् ॥
सऽजोर्षसौ । उषसा । सूर्येण । च ।
आ । इषम् । नः । वोळ्हम् । अश्विना ॥६॥

५१४ अन्वयः— इह गिरः जुषेथां, अध्वरं जुषेथां, देवौ विश्वा सवना अव गच्छतम्; अश्विना ! उषसा सूर्येण च सजोषसा नः इषं वोळहम् ॥ ६ ॥

५१४ अर्थ—(इह गिरः जुषेथां) यहाँपर हमारे भाषणोंका स्वीकार करो, (अध्वरं जुषेथां) हिंसारहित कार्यके लिए आदरपूर्वक उपस्थित रहो (देवौ) दानी होकर तुम (विश्वा सवना अव गच्छतं) सभी सवनोंमें आओ, हे अश्विनौ ! सूर्योदय तथा उषःवेलामें हमें अन्न पहुँचा दो ॥

*

[५१५]

५१५ हारिद्रवेव पतथो वनेदुप सोमं सुतं महिषेवाव
गच्छथः । सजोषसा उषसा सूर्येण च
त्रिर्वर्तिर्यातमश्विना ॥७॥

५१५ हारिद्रवाऽइंव । पतथः । वना । इत् । उप ।
सोमम् । सुतम् । महिषाऽइव । अव । गच्छथः ॥
सऽजोषसा । उषसा । सूर्येण । च ।
त्रिः । वर्तिः । यातम् । अश्विना ॥७॥

५१५ अन्वयः— अश्विना ! सुतं सोमं महिषा इव अव गच्छथः, वना हारिद्रवा इव उप पतथः इत्, उषसा सूर्येण च सजोषसा वर्तिः त्रिः यातम् ॥७

५१५ अर्थ— हे अश्विदेवों (सुतं सोमं) निचोडकर रखे हुए सोमके प्रति (महिषा इव अव गच्छथः) भैंसोंके तुल्य-बहुत प्यासे होकर जाते हो, (वना) जलोंके समीप (हारिद्रवा इव) पंछीके तुल्य (उप पतथः इत्) चले जाते हो, उषःकाल एवं सूर्योदयके समय (वर्तिः त्रिः यातं) घरके समीप तीन बार जाओ ॥

[५१६]

५१६ हंसाविव पतथो अध्वगाविव सोमं सुतं महिषेवाव
गच्छथः । सजोषसा उषसा सूर्येण च
त्रिर्वर्तिर्यातमश्विना ॥८॥

५१६ हंसौऽइंव । पतथः । अध्वगौऽइव ।
सोमम् । सुतम् । महिषाऽइव । अव । गच्छथः ॥
सऽजोषसा । उषसा । सूर्येण । च ।
त्रिः । वर्तिः । यातम् । अश्विना ॥८॥

५१६ अन्वयः— अश्विना ! हंसौ इव अध्वगौ इव पतथः, सुतं सोमं महिषा इव अव गच्छथः, उषसा सूर्येण च सजोषसा वर्तिः त्रिः यातम् ॥ ८ ॥

५१६ अर्थ— (हंसौ इव) हंसोंकी नाईं, (अध्वगौ इव) पथिकके तुल्य (पतथः) तुम ऊपरसे आगिरते हो, निचोडकर रखे सोमको पीनेके लिए, जैसे दो भैंसे तालावके समीप जाते हैं वैसेही, तुम आते हो; उषा एवं सूर्यसे युक्त हो तीन बार घर चले जाओ ॥

[५१७]

५१७ श्येनाविव पतथो हव्यदातये सोमं सुतं महिषेवाव गच्छथः । सजोषसा उषसा सूर्येण च त्रिर्वर्तिर्यातमश्विना ॥९॥

५१७ श्येनौऽइव । पतथः । हव्यऽदातये ।
सोमम् । सुतम् । महिषाऽइव । अव । गच्छथः ॥
सऽजोषसौ । उषसा । सूर्येण । च ।
त्रिः । वर्तिः । यातम् । अश्विना ॥९॥

५१७ अन्वयः– हव्यदातये श्येनौ इव पतथः, सुतं सोमं महिषा इव अव गच्छथः ; हे अश्विना ! उषसा सूर्येण च सजोषसा वर्तिः त्रिः यातम् ॥ ९ ॥

५१७ अर्थ— (हव्य-दातये) अन्नका दान करने लिए (श्येनौ इव पतथः) बाज पंछीके समान वेगसे आते हो, तैयार सोमरसको पीनेके लिए भैंसोंके तुल्य शीघ्रगतिसे आते हो; हे अश्विदेवो ! उषःकाल एवं सूर्योदयकी वेलामें तीन बार जाओ ॥

[५१८]

५१८ पिबतं च तृष्णुतं चा च गच्छतं प्रजां च धत्तं द्रविणं च धत्तम् । सजोषसा उषसा सूर्येण चोर्जं नो धत्तमश्विना ॥१०॥

५१८ पिबतम् । च । तृष्णुतम् । च । आ । च । गच्छतम् ।
प्रऽजाम् । च । धत्तम् । द्रविणम् । च । धत्तम् ॥
सऽजोषसौ । उषसा । सूर्येण । च । ऊर्जम् । नः ।
धत्तम् । अश्विना ॥१०॥

५१८ अन्वयः- पिबतं तृप्णुतं च आ गच्छतं च, प्रजां द्रविणं च धत्तम्; अश्विना ! उपसा सूर्येण च सजोपसा नः ऊर्जं धत्तम् ॥ १० ॥

५१८ अर्थ- (पिबतं तृप्णुतं च) सोमरस पी जाओ और तृप्त बनो तथा (आ गच्छतं च) आ जाओ; (प्रजां द्रविणं च धत्तं) सन्तान एवं धनवैभवको दे डालो, हे अश्विदेवो ! सूर्य एवं उषाके साथ रहते हुए तुम (नः ऊर्जं धत्तं) हमें बल देओ ॥

[५१९]

५१९ जयंतं च प्र स्तुतं च प्र चावतं प्रजां च धत्तं द्रविणं च धत्तम् । सजोषसा उपसा सूर्येण चोर्जं नो धत्तमश्विना ॥११॥

५१९ जयतम् । च । प्र । स्तुतम् । च । प्र । च । अवतम् ।
प्रऽजाम् । च । धत्तम् । द्रविणम् । च । धत्तम्॥
सऽजोषसौ । उपसा । सूर्येण । च ।
ऊर्जम् । नः । धत्तम् । अश्विना ॥११॥

५१९ अन्वयः— अश्विना ! जयतं प्र-स्तुतं च, प्र अवतं, प्रजां द्रविणं च धत्तं; उपसा सूर्येण च सजोपसा नः ऊर्जं धत्तम् ॥ ११ ॥

५१९ अर्थ- हे अश्विदेवो ! (जयतं, प्रस्तुतं च) तुम जीत लो और प्रशंसा करो, (प्र अवतं) खूब रक्षा करो, सन्तति तथा द्रव्यका दान करो, उषा एवं सूर्यके साथ रहते हुए हमें बल देवो ॥

[५२०]

५२० हुतं च शत्रून् यतंतं च मित्रिणः प्रजां च धत्तं द्रविणं च धत्तम् । सजोषसा उपसा सूर्येण चोर्जं नो धत्तमश्विना॥

५२० हतम् । च । शत्रून् । यतंतम् । च । मित्रिणः ।
प्रऽजाम् । च । धत्तम् । द्रविणम् । च । धत्तम् ॥
सऽजोषसौ । उषसा । सूर्येण । च ॥
ऊर्जम् । नः । धत्तम् । अश्विना ॥१२॥

५२० अन्वयः— शत्रून् हतं, मित्रिणः यततं च, प्रजां द्रविणं च धत्तं अश्विना ! उषसा सूर्येण च सजोषसा नः ऊर्जं धत्तम् ॥ १२ ॥

५२० अर्थ— (शत्रून् हतं) दुश्मनोंका वध करो और (मित्रिणः यततं) मित्रोंको पानेका यत्न करो, प्रजा तथा धनका दान करो, हे अश्विदेवों ! उषा एवं सूर्यसे सम्मिलित हो हमें बल दो ॥

[५२१-५२३]

५२१ मित्रावरुणवन्ता उत धर्मवन्ता मरुत्वन्ता जरितुर्गच्छथो हवम् । सजोषसा उषसा सूर्येण चादित्यैर्यातमश्विना ॥ १३

५२२ अङ्गिरस्वन्ता उत विष्णुवन्ता मरुत्वन्ता जरितुर्गच्छथो हवम् । सजोषसा उषसा सूर्येण चादित्यैर्यातमश्विना ॥ १४

५२३ ऋभुमन्ता वृषणा वाजवन्ता मरुत्वन्ता जरितुर्गच्छथो हवम् । सजोषसा उषसा सूर्येण चादित्यैर्यातमश्विना ॥ १५

५२१ मित्रावरुणऽवन्ता । उत । धर्मऽवन्ता ।
मरुत्वन्ता । जरितुः । गच्छथः । हवम् ॥
सऽजोषसौ । उषसा । सूर्येण । च ।
आदित्यैः । यातम् । अश्विना ॥१३॥

५२२ अङ्गिरस्वन्ता । उत । विष्णुऽवन्ता ।
मरुत्वन्ता । जरितुः । गच्छथः । हवम् ॥
सऽजोषसौ । उषसा । सूर्येण । च ।
आदित्यैः । यातम् । अश्विना ॥१४॥

५२३ ऋभुऽमन्ता । वृषणा । वाजऽवन्ता ।
मरुत्वन्ता । जरितुः । गच्छथः । हवम् ॥
सऽजोषसौ । उषसा । सूर्येण । च ।
आदित्यैः । यातम् । अश्विना ॥१५॥

५२१-५२३ अन्वय — अश्विना ! मित्रावरुणवन्ता, धर्मवन्ता उत मरुत्वन्ता, अंगिरस्वन्ता उत विष्णुवन्ता, ऋभुमन्ता, वाजवन्ता वृषणा जरितुः हव गच्छथः, उषसा सूर्येण आदित्यै च सजोषसा यातम् ॥ १३ १५ ॥

५२१-५२३ अर्थ— हे अश्विदेवों ! तुम मित्र, वरुण, धर्म एवं वीर मरुत्के साथ तथा अंगिरस् और विष्णुके साथ, ऋभुओं तथा अन्नके साथ (वृषणा) बलवान् बनकर (जरितुः हवं गच्छथः) स्तोताकी पुकार सुनकर चले आते हो, उषा, सूर्य तथा अदितिके पुत्रोंके साथ (यात) तुम गमन करो ॥

[५२४-५२६]

५२४ ब्रह्म जिन्वतमुत जिन्वतं धियो हतं रक्षांसि सेधतममीवाः।
सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं सुन्वतो अश्विना ॥१६

५२५ क्षत्रं जिन्वतमुत जिन्वतं नॄन् हतं रक्षांसि सेधतममीवाः।
सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं सुन्वतो अश्विना ॥१७

५२६ धेनूर्जिन्वतमुत जिन्वतं विशो हतं रक्षांसि सेधतममीवाः।
सजोषसा उषसा सूर्येण च सोमं सुन्वतो अश्विना ॥१८॥

५२४ ब्रह्म । जिन्वतम् । उत । जिन्वतम् । धियः ।
हतम् । रक्षांसि । सेधतम् । अमीवाः ॥
सऽजोषसौ । उषसा । सूर्येण । च ।
सोमम् । सुन्वतः । अश्विना ॥१६॥

५२५ क्षत्रम् । जिन्वतम् । उत । जिन्वतम् । नॄन् ।
हतम् । रक्षांसि । सेधतम् । अमीवाः ॥
सऽजोषसौ । उषसा । सूर्येण । च ।
सोमम् । सुन्वतः । अश्विना ॥१७॥

५२६ धेनूः । जिन्वतम् । उत । जिन्वतम् । विशः ।
हतम् । रक्षांसि । सेधतम् । अमीवाः ॥
सऽजोषसौ । उषसा । सूर्येण । च ।
सोमम् । सुन्वतः । अश्विना ॥१८॥

५२४–५२६ अन्वयः– अश्विना ! रक्षांसि हतं, अमीवाः सेधतं, ब्रह्म उत धियः, क्षत्रं उत नॄन्, धेनूः उत विशः जिन्वतं; उषसा सूर्येण च सजोषसौ सोमं सुन्वतः ... ॥ १६–१८ ॥

५२४–५२६ अर्थ– हे अश्विदेवों ! (रक्षांसि हतं) राक्षसोंका वध करो (अमीवाः सेधतं) रोगोंको दूर करो (ब्रह्म उत धियः) ज्ञान, कार्य (क्षत्रं उत नॄन्) क्षात्रतेज तथा नेतृत्व गुणोंको (धेनूः उत विशः) गायों एवं प्रजाओंको (जिन्वतं) संतुष्ट रखो और उषःवेला एवं सूर्योदयके समय (सोमं सुन्वतः) सोम निचोडते हुएके समीप आकर सोमपान करो ॥

[५२७–५२९]

५२७ अत्रेरिव शृणुतं पूर्व्यस्तुतिं श्यावाश्वस्य सुन्वतो मदच्युता ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चाश्विना तिरोअह्न्यम् ॥१९॥

५२८ सर्गाँ इव सृजतं सुष्टुतीरुप श्यावाश्वस्य सुन्वतो मदच्युता ।
सजोषसा उषसा सूर्येण चाश्विना तिरोअह्न्यम् ॥२०॥

५२९ रश्मीँरिव यच्छतमध्वराँ उप श्यावाश्वस्य सुन्वतो
मदच्युता । सजोषसा उषसा सूर्येण चाश्विना
तिरोअह्न्यम् ॥२१॥

५२७ अत्रेःऽइव । शृणुतम् । पूर्व्यऽस्तुतिम् ।
श्यावऽअश्वस्य । सुन्वतः । मदऽच्युता ॥
सऽजोषसौ । उषसा । सूर्येण । च ।
अश्विना । तिरःऽअह्न्यम् ॥१९॥

५२८ सर्गान्ऽइव । सृजतम् । सुऽस्तुतीः । उप ।
श्यावऽअश्वस्य । सुन्वतः । मदऽच्युता ॥
सऽजोषसौ । उषसा । सूर्येण । च ।
अश्विना । तिरःऽअह्न्यम् ॥२०॥

५२९ रश्मीन्ऽइव । यच्छतम् । अध्वरान् । उप ।
श्यावऽअश्वस्य । सुन्वतः । मदुऽच्युता ॥
सऽजोषसौ । । उषसा । सूर्येण । च ।
अश्विना । तिरःऽअह्न्यम् ॥२१॥

५२७-५२९ अन्वयः- मदच्युता अश्विना ! सुन्वतः श्यावाश्वस्य पूर्व-स्तुतिं अत्रेः इव शृणुतं, सुष्टुतीः सर्गान् इव उपसृजतम्, रश्मीन् इव अध्वरान् उप यच्छतम्; उषसा सूर्येण च सजोषसौ तिरोअह्न्यम् ... ॥१९-२१॥

५२७-५२९ अर्थ— हे (मदच्युता) शत्रुओंके गर्व हरण करनेवाले अश्वि-देवो ! (सुन्वतः श्यावाश्वस्य) सोमरस निचोडकर तैयार करते हुए श्यावा-श्वकी (पूर्वस्तुतिं) प्रथम स्तुतिको (अत्रेः इव शृणुतं) जैसे तुम अत्रिकी प्रशंसाको सुन चुके थे, वैसेही सुन लो, (सुष्टुतीः) अच्छी स्तुतियोंके (सर्गान् इव उप सृजतं) समीप आकर देवोंके समान दान देदो और (रश्मीन् इव) किरणों या लगामोंकी नाईं (अध्वरान् उप यच्छतं) हिंसारहित कार्योंको समीपसे नियंत्रित करो, उषा एवं सूर्योदयके समय कल तैयार बनाए हुए सोमका पान करो ॥

[५३०-५३१]

५३० अर्वाग् रथं नि यच्छतं पिबतं सोम्यं मधु ।
आ यातमश्विना गतमवस्युर्वामहं हुवे धत्तं रत्नानि दाशुषे ॥२२॥

५३१ नमोवाके प्रस्थिते अध्वरे नरा विवक्षणस्य पीतये ।
आ यातमश्विना गतमवस्युर्वामहं हुवे धत्तं रत्नानि दाशुषे ॥२३॥

५३२ स्वाहाकृतस्य तृम्पतं सुतस्य देवावन्धसः ।
आ यातमश्विना गतमवस्युर्वामहं हुवे धत्तं रत्नानि दाशुषे ॥२४॥

५३० अर्वाक् । रथम् । नि । यच्छतम् ।
पिबतम् । सोम्यम् । मधु ॥
आ । यातम् । अश्विना । आ । गतम् ।
अवस्युः । वाम् । अहम् । हुवे ।
धत्तम् । रत्नानि । दाशुषे ॥२२॥

५३१ नमःऽवाके । प्रऽस्थिते । अध्वरे । नरा ।
विवक्षणस्य । पीतये ॥
आ । यातम् । अश्विना । आ । गतम् ।
अवस्युः । वाम् । अहम् । हुवे ।
धत्तम् । रत्नानि । दाशुषे ॥२३॥

५३२ स्वाहाऽकृतस्य । तृम्पतम् ।
सुतस्य । देवौ । अन्धसः ॥
आ । यातम् । अश्विना । आ । गतम् ।
अवस्युः । वाम् । अहम् । हुवे ।
धत्तम् । रत्नानि । दाशुषे ॥२४॥

५३०-५३२ अन्वयः— अश्विना ! आ यातं, आ गतं, अहं अवस्युः वां हुवे; रथं अर्वाक् नि यच्छतं, सोम्यं मधु पिबतं; विवक्षणस्य प्रस्थिते नमोवाके अध्वरे पीतये नरा आ यातं; स्वाहाकृतस्य सुतस्य अन्धसः देवौ तृम्पतं, दाशुषे रत्नानि धत्तम् ॥ २२-२४ ॥

५३०-५३२ अर्थ— हे अश्विदेवों ! (आ यातं, आ गतं) तुम आओ, चले आओ; (अहं अवस्युः) मैं रक्षणार्थी होकर (वां हुवे) तुम्हें बुलाता हूँ; (रथं अर्वाक् नि यच्छतं) रथको हमारे अभिमुख रोक लो, (सोम्यं मधु पिबतं) सोमरस मिलाये हुए मधुका पान करो (विवक्षणस्य प्रस्थिते) विशेष ढंगसे हवि होनेवालेके प्रवर्तित (नमोवाके अध्वरे) नमन एवं हिंसारहित कार्य-में (पीतये) सोम पीनेके लिए (नरा) हे नेता अश्विदेवों ! आओ

(स्वाहाकृतस्य सुतस्य अन्धसः) हवन किये तथा निचोडे हुए अन्नरसका पान करके (देवौ तृम्पतं) दानी तुम तृप्त बनो और पश्चात् (दाशुषे रत्नानि धत्तं) दानीके लिए रत्न दे डालो ॥

[५३३-५३५] (ऋ. ८।४२।४-६)

(५३३—५३५) नाभाकः काण्वः, अर्चनाना आत्रेयो वा । अनुष्टुप् ।

५३३ आ वां ग्रावा॑णो अश्विना धी॒भिर्विप्रा॑ अचुच्यवुः ।
नास॑त्या सोम॑पीतये॒ नभ॑न्तामन्य॒के स॑मे ॥४॥

५३४ यथा॑ वा॒मत्रि॑रश्विना गी॒र्भिर्विप्रो॑ अजो॑हवीत् ।
नास॑त्या सोम॑पीतये॒ नभ॑न्तामन्य॒के स॑मे ॥५॥

५३५ ए॒वा वा॑मह्व ऊ॒तये॑ यथाऽहु॑वन्त॒ मेधि॑राः ।
नास॑त्या सोम॑पीतये॒ नभ॑न्तामन्य॒के स॑मे ॥६॥

५३३ आ । वा॒म् । ग्रावा॑णः । अ॒श्वि॒ना॒ ।
धी॒भिः । विप्रा॑ः । अ॒चु॒च्य॒वुः ॥
नास॑त्या । सोम॑ऽपीतये ।
नभ॑न्ताम् । अ॒न्य॒के । स॒मे ॥४॥

५३४ यथा॑ । वा॒म् । अत्रि॑ः । अ॒श्वि॒ना॒ ।
गी॒ःऽभिः । विप्र॑ः । अजो॑हवीत् ॥
नास॑त्या । सोम॑ऽपीतये ।
नभ॑न्ताम् । अ॒न्य॒के । स॒मे ॥५॥

५३५ ए॒व । वा॒म् । अ॒ह्वे॒ । ऊ॒तये॑ ।
यथा॑ । अहु॑वन्त । मेधि॑राः ॥
नास॑त्या । सोम॑ऽपीतये ।
नभ॑न्ताम् । अ॒न्य॒के । स॒मे ॥६॥

५३३-५३५ अन्वयः— नासत्या अश्विना ! सोमपीतये वां विप्राः ग्रावाणः आ अचुच्यवुः यथा अत्रिः विप्रः वां गीर्भिः अजोहवीत् यथा मेधिराः अहुवन्त एव वां ऊतये अह्वे, अन्यके समे नभन्ताम् ॥ ४-६ ॥

५३३-५३५ अर्थ- हे सत्यके प्रवर्तक अश्विदेवों ! (सोमपीतये) सोमपानके लिए (वां) तुम दोनोंके लिए (विप्राः ग्रावाणः) ज्ञानी एवं सोम कूटनेके पत्थर (आ अचुच्यवुः) रस टपकाते रहे हैं, (यथा) जैसे ऋषि अत्रिने, जो (विप्रः) ज्ञानी था, (वां गीर्भिः अजोहवीत्) तुम्हें भाषणोंद्वारा बुलाया था, (यथा मेधिराः अहुवन्त) जैसे विद्वानोंने बुलाया था, (एव) वैसेही (वां ऊतये अह्वे) तुम्हें रक्षा करनेके लिए बुलाता हूं, (अन्यके समे नभन्तां) दूसरे छोटे रक्षक झुक जायँ ॥

[५३६] (ऋ. ८।५७। [९ वाल०] १-४)
(५३६—५३९) मेध्यः काण्वः । त्रिष्टुप् ।

५३६ युवं देवा क्रतुना पूर्व्येण युक्ता रथेन तविषं यजत्रा ।
आऽगच्छतं नासत्या शचीभिरिदं तृतीयं सवनं पिबाथः ॥

५३६ युवम् । देवा । क्रतुना । पूर्व्येण ।
युक्ता । रथेन । तविषम् । यजत्रा ॥
आ । अगच्छतम् । नासत्या । शचीभिः ।
इदम् । तृतीयम् । सवनम् । पिबाथः ॥१॥

५३६ अन्वयः— देवा ! यजत्रा नासत्या ! युवं पूर्व्येण क्रतुना युक्ता रथेन तविषं आ अगच्छतं, शचीभिः इदं तृतीयं सवनं पिबाथः ॥ १ ॥

५३६ अर्थ- हे (देवा) देवतारूपी ! (यजत्रा) हे पूजनीय ! हे सत्यके पालक ! (युवं) तुम दोनों (पूर्व्येण क्रतुना युक्ता) पूर्वकालीन कार्यसे युक्त होकर (रथेन तविषं आऽगच्छतं) रथपरसे बलपूर्वक हाँकते हुए आओ; (शचीभिः) शक्तियोंसे (इदं तृतीयं सवनं पिबाथः) इस तीसरे सवनमें सोम पीजाओ ॥

[५३७]

५३७ युवां देवास्त्रय एकादशासः सत्याः सत्यस्य ददृशे पुरस्तात् । अस्माकं यज्ञं सवनं जुषाणा पातं सोममश्विना दीद्यग्नी ॥२॥

५३७ युवाम् । देवाः । त्रयः । एकादशासः ।
सत्याः । सत्यस्य । ददृशे । पुरस्तात् ॥
अस्माकम् । यज्ञम् । सवनम् । जुषाणा ।
पातम् । सोमम् । अश्विना । दीद्यग्नी इति दीदिऽअग्नी ॥२

५३७ अन्वयः– त्रयः एकादशासः सत्याः देवाः युवां सत्यस्य पुरस्तात् ददृशे, दीद्यग्नी अश्विना ! अस्माकं यज्ञं सवनं जुषाणा सोमं पातम् ॥ २ ॥

५३७ अर्थ— (त्रयः एकादशासः) तीनगुने ग्यारह याने ३३ (सत्या देवा) सच्चे देव, (युवा) तुम दोनों (सत्यस्य पुरस्तात् ददृशे) सत्यके आगे दीख पडे, हे (दीद्यग्नी) जगमगाते अग्निके सदृश तेजस्वी अश्विदेवों ! (अस्माकं यज्ञं सवनं जुषाणा) हमारे यज्ञ तथा सवनका सेवन करते हुए (सोम पात) सोमका पान करो ॥

[५३८]

५३८ पनाय्यं तदश्विना कृतं वां वृषभो दिवो रजसः पृथिव्याः।
सहस्रं शंसा उत ये गविष्टौ सर्वाँ इत् ताँ उप याता पिबध्यै ॥३॥

५३८ पनाय्यम् । तत् । अश्विना । कृतम् । वाम् ।
वृषभः । दिवः । रजसः । पृथिव्याः ॥
सहस्रम् । शंसाः । उत । ये । गोऽइष्टौ ।
सर्वान् । इत् । तान् । उप । यात । पिबध्यै ॥३॥

५३८ अन्वय — अश्विना ! वां तत् कृतं पनाय्यं (यत्) दिवः पृथिव्याः रजसः वृषभ , ये गविष्टौ सहस्रं शंसा तान् सर्वान् इत् पिबध्यै उप यात ॥३॥

५३८ अर्थ– (अश्विना) हे अश्विदेवों ! (वां तत् कृतं) तुम्हारा वह कार्य (पनाय्य) प्रशंसनीय है, जोकि (दिवः) द्युलोकसे (पृथिव्या.) भूमण्डलके हितके लिए (रजसः वृषभः) जलकी वर्षा करनेवाला हुआ है, (ये गविष्टौ) जो गायोंके ढूंढनेमें (सहस्र शंसा) हजारों कहनेयोग्य कार्य होते हैं, (तान् सर्वान् इत्) उन सभी स्थलोंके समीप जरूर (पिबध्यै उप यात) पीनेके लिए चले जाओ ॥

[५३९]

५३९ अयं वां भागो निहितो यजत्रेमा गिरो नासत्योप यातम् ।
पिबतं सोमं मधुमन्तमस्मे प्र दाश्वांसमवतं शचीभिः ॥४॥

५३९ अयम् । वाम् । भागः । निऽहितः । यजत्रा ।
इमाः । गिरः । नासत्या । उप । यातम् ॥
पिबतम् । सोमम् । मधुऽमन्तम् । अस्मे इति ।
प्र । दाश्वांसम् । अवतम् । शचीभिः ॥४॥

५३९ अन्वयः— यजत्रा नासत्या ! वां अयं भागः निहितः, इमाः गिरः उप यातं, अस्मे मधुमन्तं सोमं पिबतं, दाश्वांसं शचीभिः प्र अवतम् ॥ ४ ॥

५३९ अर्थ– हे (यजत्रा) पूजनीय अश्विदेवों ! (वां) तुम दोनोंके लिए (अयं भागः निहितः) यह भाग या हिस्सा रखा है (इमाः गिरः उप यातं) इन भाषणोंको सुननेके लिए हमारे समीप आओ (अस्मे मधुमन्तं सोमं पिबतं) हमारे लिए मधु डाले हुए सोमका पान करो और (दाश्वांसं शचीभिः) दाताको अपनी शक्तियोंसे (प्र अवतं) यथेष्ट मात्रामें सुरक्षित रखो॥

[५४०-५४२] (ऋ. ८।७३।१-१८)
(५४०-५५७) गोपवन आत्रेयः सप्तवध्रिर्वा । गायत्री ।

५४० उदीराथामृतायते युञ्जाथामश्विना रथम् ।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥१॥

५४१ निमिषश्चिज्जवीयसा रथेना यातमश्विना ।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥२॥

५४२ उप स्तृणीतमत्रये हिमेन घर्ममश्विना ।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥३॥

५४० उत् । ईराथाम् । ऋतऽयते ।
युञ्जाथाम् । अश्विना । रथम् ॥
अन्ति । सत् । भूतु । वाम् । अवः ॥१॥

५४१ निऽमिषः । चित् । जवीयसा ।
रथेन । आ । यातम् । अश्विना ॥
अन्ति । सत् । भूतु । वाम् । अवः ॥२॥

५४२ उप । स्तृणीतम् । अत्रये ।
हिमेन । घर्मम् । अश्विना ॥
अन्ति । सत् । भूतु । वाम् । अवः ॥३॥

५४०-५४२ अन्वयः- अश्विना ! ऋतायते उदीराथां, रथं युञ्जाथां; निमिषः चित् जवीयसा रथेन आ यातं; अत्रये घर्मं हिमेन उप स्तृणीतं; वां अवः अन्ति सत् भूतु ॥ १-३ ॥

५४०-५४२ अर्थ— हे अश्विदेवों ! (ऋतायते उदीराथां) सरल मार्गसे जानेहारेके लिए तुम आजाओ, (रथं युञ्जाथां) रथको तैयार करो; (निमिषः चित् जवीयसा) पलकसे भी वेगवान् (रथेन आ यात) रथपरसे आजाओ; (अत्रये) ऋषि अत्रिके लिए (घर्मं हिमेन) गर्म अग्निको बर्फसे (उप स्तृणीतं) ढक चुके हो, (वां अवः) तुम्हारी रक्षा (अन्ति सत् भूतु) सदैव हमारे निकट विद्यमान होती रहे ॥

[५४३-५४५]

५४३ कुहं स्थः कुहं जग्मथुः कुहं श्येनेवं पेतथुः ।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥४॥

५४४ यदुद्य कर्हि चिच्छुश्रूयातमिमं हवम् ।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥५॥

५४५ अश्विना यामहूतमा नेदिष्ठं याम्याप्यम् ।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥६॥

५४३ कुहं । स्थः । कुहं । जग्मथुः ।
कुहं । श्येनाऽइव । पेतथुः ॥
अन्ति । सत् । भूतु । वाम् । अवः ॥४॥

५४४ यत् । अद्य । कर्हि । कर्हि । चित् ।
शुश्रूयातम् । इमम् । हवम् ॥
अन्ति । सत् । भूतु । वाम् । अवः ॥५॥
५४५ अश्विना । यामऽहूतमा ।
नेदिष्ठम् । यामि । आप्यम् ॥
अन्ति । सत् । भूतु । वाम् । अवः ॥६॥

५४३-५४५ अन्वयः- कुह स्थः ? कुह जग्मथुः ? श्येना इव कुह पेतथुः ? अद्य यत् कर्हि कर्हि चित् इमं हवं शुश्रूयातं, यामहूतमा अश्विना नेदिष्ठं आप्यं यामि, वां अवः अन्ति सत् भूतु ॥ ४-६ ॥

५४३-५४५ अर्थ— (कुह स्थः) भला तुम कहाँ हो ? (कुह जग्मथुः) बतलाओ तो किधर तुम जा चुके ? (श्येना इव) बाज पंछीकी न्याईं (कुह पेतथुः) भला तुम किधर गये थे ? (अद्य) आज (यत्) अगर कहीं (कर्हि कर्हि चित्) किसी भी स्थान या किसी भी कालमें (इमं हवं शुश्रूयातं) इस पुकारको तुम सुन सको तो; (यामहूतमा अश्विना) बिलकुल ठीक समय बुलानेयोग्य अश्विदेवोंको (नेदिष्ठं आप्यं यामि) अत्यन्त निकटवर्ती बान्धवके तुल्य समझकर मैं उनके पास चला आता हूँ, (वां अवः अन्ति सत् भूतु) तुम्हारा संरक्षण समीपवर्ती हो जाए ॥

[५४६-५४९]

५४६ अर्वन्तमत्रये गृहं कृणुतं युवमश्विना ।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥७॥
५४७ वरेथे अग्निमातपो वदते वल्ग्वत्रये ।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥८॥
५४८ प्र सप्तवध्रिराशसा धारामग्नेरशायत ।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥९॥
५४९ इहा गतं वृषण्वसू शृणुतं म इमं हवम् ।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥१०॥

५४६ अर्वन्तम् । अत्रये । गृहम् ।
कृणुतम् । युवम् । अश्विना ॥
अन्ति । सत् । भूतु । वाम् । अवः ॥७॥

५४७ वरेथे इति । अग्निम् । आऽतपः ।
वदते । वल्गु । अत्रये ॥
अन्ति । सत् । भूतु । वाम् । अवः ॥८॥

५४८ प्र । सप्तऽवध्रिः । आऽशसा ।
धाराम् । अग्नेः । अशायत ॥
अन्ति । सत् । भूतु । वाम् । अवः ॥९॥

५४९ इह । आ । गतम् । वृषण्वसू इति वृषण्ऽवसू ।
शृणुतम् । मे । इमम् । हवम् ॥
अन्ति । सत् । भूतु । वाम् । अवः ॥१०॥

५४६-५४९ अन्वयः— अश्विना ! युवं अत्रये अर्वन्तं गृहं कृणुतं, वल्गु वदते अत्रये आतपः अग्नि वरेथे; सप्तवध्रिः आशसा अग्नेः धारां प्र अशायत; वृषण्वसू ! मे इमं हवं शृणुतं, इह आ गत, वां अवः अन्ति सत् भूतु ॥७-१०॥

५४६-५४९ अर्थ— हे अश्विदेवो ! (युवं अत्रये) तुमने अत्रिके लिये (अर्वन्तं गृहं कृणुतं) रक्षणक्षम घर बना चुके, (वल्गु वदते अत्रये) सुन्दर ढंगसे भाषण करनेवाले अत्रिके लिये (आतपः अग्निं वरेथे) चारों ओरसे धधकते हुए अग्निको हटाते हो, सप्तवध्रिने (आशसा) आशापूर्ण प्रशंसासे (अग्नेः धारां प्र अशायत) अग्निकी ऊँची लपटको भूमितक बिछाया। हे (वृषण्वसू) धनकी वर्षा करनेवाले ! (मे इमं हवं शृणुत) मेरी इस पुकारको सुन लो (इह आ गतं) इधर आओ मेरी इच्छा है कि तुम्हारा संरक्षण समीप रहे ॥

[५५०-५५२]

५५० किमिदं वां पुराणवज्जरतोरिव शस्यते ।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥११॥

५५१ स॒मा॒नं वां॑ स॒जा॒त्यं॑ समा॒नो बन्धु॑रश्विना ।
अन्ति॒ षद्भू॑तु वा॒मवः॑ ॥१२॥

५५२ यो वां॒ रजां॑स्यश्विना॒ रथो॑ वि॒याति॒ रोद॑सी ।
अन्ति॒ षद्भू॑तु वा॒मवः॑ ॥१३॥

५५० किम् । इ॒दम् । वा॒म् । पु॒रा॒ण॒ऽवत् ।
जर॑तोःऽइव । शस्यते॒ ॥
अन्ति॑ । सत् । भू॒तु । वा॒म् । अवः॑ ॥११॥

५५१ स॒मा॒नम् । वा॒म् । स॒ऽजा॒त्य॑म् ।
स॒मा॒नः । बन्धुः॑ । अ॒श्वि॒ना॒ ॥
अन्ति॑ । सत् । भू॒तु । वा॒म् । अवः॑ ॥१२॥

५५२ यः । वा॒म् । रजां॑सि । अ॒श्वि॒ना॒ ।
रथः॑ । वि॒ऽयाति॑ । रोद॑सी॒ इति॑ ॥
अन्ति॑ । सत् । भू॒तु । वा॒म् । अवः॑ ॥१३॥

५५०-५५२ अन्वयः— वां किं इदं जरतोः पुराणवत् इव शस्यते, वां सजात्यं समानं, अश्विना ! बन्धुः समानः; अश्विना ! वां यः रथः रोदसी रजांसि वियाति; वां अवः अन्ति सत् भूतु ॥ ११-१३ ॥

५५०-५५२ अर्थ— (वां) तुम दोनोंके बारेमें (किं इदं) यह क्या (जरतोः पुराणवत् शस्यते) बूढे होनेवालोंको पुरानी बात जैसी अच्छी लगती है, वैसेही बताया जाता है; (वां सजात्यं समानं) तुम्हारा उत्पन्न होना समान है और हे अश्विदेवों ! (बन्धुः समानः) बांधव भी समान है, (वां यः रथः) तुम्हारा जो रथ (रोदसी रजांसि वियाति) द्युलोक और भूलोक एवं अन्य भुवनोंको पार कर चला जाता है, इसलिए हम चाहते हैं कि तुम्हारा संरक्षण समीप रहनेवाला होवे ॥

[५५३-५५५]

५५३ आ नो॑ ग॒व्येभि॑रश्व्यैः स॒हस्रै॒रुप॑ गच्छतम् ।
अन्ति॒ षद्भू॑तु वा॒मवः॑ ॥१४॥

५५४ मा नो गव्येभिरश्व्यैः सहस्रेभिरति ख्यतम् ।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥१५॥

५५५ अरुणप्सुरुषा अभूदकर्ज्योतिर्ऋतावरी ।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥१६॥

५५३ आ । नः । गव्येभिः । अश्व्यैः ।
सहस्रैः । उप । गच्छतम् ॥
अन्ति । सत् । भूतु । वाम् । अवः ॥१४॥

५५४ मा । नः । गव्येभिः । अश्व्यैः ।
सहस्रेभिः । अति । ख्यतम् ॥
अन्ति । सत् । भूतु । वाम् । अवः ॥१५॥

५५५ अरुणऽप्सुः । उषाः । अभूत् ।
अकः । ज्योतिः । ऋतऽवरी ॥
अन्ति । सत् । भूतु । वाम् । अवः ॥१६॥

५५३-५५५ अन्वयः— नः सहस्रैः गव्येभिः अश्व्यैः आ उप गच्छतं; नः सहस्रेभिः गव्येभिः अश्व्यैः मा अति ख्यतं; उषा अरुणप्सुः अभूत्, ऋतावरी ज्योतिः अकः; वां अवः अन्ति सत् भूतु ॥ १४-१६ ॥

५५३-५५५ अर्थ— (नः सहस्रैः) हमारे समीप हजारों (गव्येभिः अश्व्यैः) गायों और घोडोंके झुंडोंके साथ (आ उप गच्छतं) समीप आजाओ। (नः) हमें (सहस्रेभिः गव्येभिः अश्व्यैः) हजारों गौओं और घोडोंके झुंडोंसे (मा अति ख्यतं) युक्त हो छोड न जाओ। (उषा अरुणप्सुः अभूत्) उषःवेला लालिमा मयरूपवाली हुई (ऋतावरी ज्योतिः अकः) ऋतसे युक्त वह प्रकाशका सृजन कर चुकी है, इसलिए तुम्हारा संरक्षण समीप रहनेवाला होवे ॥

[५५६-५५७]

५५६ अश्विना सु विचाकशद् वृक्षं परशुमाँ इव ।
आन्ति षद्भूतु वामवः ॥१७॥

५५७ पुरं न धृष्णवा रुज कृष्णया बाधितो विशा ।
अन्ति षद्भूतु वामवः ॥१८॥

५५६ अश्विना । सु । विऽचाकशत् ।
वृक्षम् । परशुमान्ऽइव ॥
अन्ति । सत् । भूतु । वाम् । अवः ॥१७॥

५५७ पुरम् । न । धृष्णो इति । आ । रुज ।
कृष्णया । बाधितः । विशा ॥
अन्ति । सत् । भूतु । वाम् । अवः ॥१८॥

५५६-५५७ अन्वयः- अश्विना! परशुमान् वृक्षं इव सु विचाकशत्; धृष्णो! कृष्णया विशा बाधितः पुरं न रुज; वां अवः अन्ति सत् भूतु ॥ १७-१८ ॥

५५६-५५७ अर्थ— हे अश्विदेवो ! (परशुमान् वृक्षं इव) हाथमें कुल्हाडी रखनेवाला पेडको जैसे तोड डालता है, वैसेही अँधेरेको मिटाकर सूर्य ठीक प्रकाशमान होगया है । (धृष्णो) हे साहसी ! (कृष्णया विशा बाधितः) काली प्रजासे पीडित तू (पुरं न रुज) शत्रुनगरीको जैसे इन्द्रने भग्न किया, वैसेही इसे विनष्ट कर । तुम दोनोंका संरक्षण समीप रहनेवाला होवे ॥

[५५८-५६१] (ऋ० ८।८५।१-९)
(५५८-५६६) कृष्ण आङ्गिरसः । गायत्री ।

५५८ आ मे हवं नासत्याऽश्विना गच्छतं युवम् ।
मध्वः सोमस्य पीतये ॥१॥

५५९ इमं मे स्तोममश्विनेमं मे शृणुतं हवम् ।
मध्वः सोमस्य पीतये ॥२॥

५६० अयं वां कृष्णो अश्विना हवते वाजिनीवसू ।
मध्वः सोमस्य पीतये ॥३॥

५६१ शृणुतं जरितुर्हवं कृष्णस्य स्तुवतो नरा ।
मध्वः सोमस्य पीतये ॥४॥

५५८ आ । मे । हवम् । नासत्या ।
अश्विना । गच्छतम् । युवम् ॥
मध्वः । सोमस्य । पीतये ॥१॥

५५९ इमम् । मे । स्तोमम् । अश्विना ।
इमम् । मे । शृणुतम् । हवम् ॥
मध्वः । सोमस्य । पीतये ॥२॥

५६० अयम् । वाम् । कृष्णः । अश्विना ।
हवते । वाजिनीवसू इति वाजिनीऽवसू ॥
मध्वः सोमस्य । पीतये ॥३॥

५६१ शृणुतम् । जरितुः । हवम् ।
कृष्णस्य । स्तुवतः । नरा ॥
मध्वः । सोमस्य । पीतये ॥४॥

५५८ अन्वय — नासत्या अश्विना ! युवं मध्वः सोमस्य पीतये मे हवं आ गच्छतम् ।

५५९ अन्वय — अश्विना ! मध्वः सोमस्य पीतये मे इमं हवं, मे इमं स्तोमं शृणुतम् ।

५६० अन्वय — वाजिनीवसू अश्विना ! मध्वः सोमस्य पीतये अयं कृष्णः वां हवते ।

५६१ अन्वय — नरा ! जरितुः कृष्णस्य स्तुवतः हवं मध्वः सोमस्य पीतये शृणुतम् ।

५५८-५६१ अर्थ — हे (नासत्या) सत्यपालक वीरो ! (वाजिनी वसू) सेनाओंको धन समझनेवाले (नरा अश्विना) नेता अश्विदेवो ! (युवं) तुम दोनों (मध्वः सोमस्य पीतये) मधुरिमामय सोमको पीनेके लिए (मे हवं आ गच्छत) मेरी पुकारको सुनकर आओ, (मे इमं हवं) मेरी इस पुकारको (मे इमं स्तोमं) मेरे इस स्तोत्रको (शृणुत) सुन लो, (अयं कृष्णः) यह कृष्ण ऋषि (वां हवते) तुम्हें बुलाता है, (जरितुः कृष्णस्य) स्तोता कृष्णके (स्तुवतः) प्रशंसा करते समय (हवं शृणुत) उसकी पुकारको सुन लो ॥

[५६२–५६४]

५६२ छुर्दिर्यन्तमदाभ्यं विप्राय स्तुवते नरा ।
मध्वः सोमस्य पीतये ॥५॥

५६३ गच्छतं दाशुषो गृहमित्था स्तुवतो अश्विना ।
मध्वः सोमस्य पीतये ॥६॥

५६४ युञ्जाथां रासभं रथे वीड्वङ्गे वृषण्वसू ।
मध्वः सोमस्य पीतये ॥७॥

५६२ छर्दिः । यन्तम् । अदाभ्यम् ।
विप्राय । स्तुवते । नरा ॥
मध्वः । सोमस्य । पीतये ॥५॥

५६३ गच्छतम् । दाशुषः । गृहम् ।
इत्था । स्तुवतः । अश्विना ॥
मध्वः । सोमस्य । पीतये ॥६॥

५६४ युञ्जाथाम् । रासभम् । रथे ।
वीळुऽअङ्गे । वृषण्वसू इति वृषण्ऽवसू ॥
मध्वः । सोमस्य । पीतये ॥७॥

५६२ अन्वयः– नरा ! स्तुवते विप्राय अदाभ्यं छर्दिः मध्वः सोमस्य पीतये ।

५६३ अन्वयः— अश्विना ! इत्था स्तुवतः दाशुषः गृहं गच्छतम्, मध्वः०।

५६४ अन्वयः— वृषण्वसू ! वीड्वङ्गे रथे रासभं युञ्जाथां; मध्वः० ।

५६२–५६४ अर्थ— हे (नरा) नेता अश्विदेवो ! (स्तुवते विप्राय) प्रशंसा करनेवाले ज्ञानीको (अदाभ्यं छर्दि॰) न दबनेवाला घर (मध्वः सोमस्य पीतये) मीठे सोमके पानके लिए (यन्तं) देदो। (इत्था स्तुवतः) इस ढंगसे सराहना करते हुए (दाशुषः गृहं गच्छतं) दानीके घर पहुंचो। हे (वृषण्वसू) धनकी वर्षा करनेवाले ! (वीड्ड–अंगे रथे) सुदृढ रथपर (रासभं युञ्जाथां) गरजनेवाले घोडेको जोत दो ॥

[५६५-५६६]

५६५ त्रिवन्धुरेणं त्रिवृता रथेना यांतमश्विना ।
मध्वः सोमंस्य पीतयें ॥८॥

५६६ नू मे गिरों नासत्याऽश्विंना प्रावंतं युवम् ।
मध्वः सोमंस्य पीतयें ॥९॥

५६५ त्रिऽवन्धुरेणं । त्रिऽवृतां ।
रथेन । आ । यातम् । अश्विना ॥
मध्वः । सोमंस्य । पीतयें ॥८॥

५६६ नु । मे । गिरंः । नासत्या ।
अश्विंना । प्र । अवतम् । युवम् ॥
मध्वः । सोमंस्य । पीतयें ॥९॥

५६५ अन्वयः— अश्विना ! त्रिवृता त्रिवन्धुरेण रथेन मध्वः सोमस्य पीतये आ यातम् ।

५६६ अन्वयः— नासत्या अश्विना ! युवं मे गिरः नु प्र अवतं, मध्वः० ।

५६५-५६६ अर्थ- हे अश्विदेवो ! (त्रिवृता) तिकोने आकारके (त्रिवन्धुरेण रथेन) तीन कक्षोंसे युक्त रथपरसे (मध्वः सोमस्य पीतये) मीठे सोमरसके पानके लिए (आ यात) आओ ॥ हे सत्यपूर्ण अश्विदेवो ! (युवं) तुम (मे गिरः) मेरे भाषणोंको (नु प्र अवतं) प्रेमसे सुनो ॥

[५६७] (ऋ. ८।८६।१-५)

(५६७-५७१) कृष्ण आङ्गिरसः, विश्वको वा कार्ष्णिः । जगती ।

५६७ उभा हि दस्रा भिषजा मयोभुवोभा दक्षस्य वचसो
बभूवथुः । ता वां विश्वको हवते तनूकृथे मा नो वि
यौष्टं सख्या मुमोचतम् ॥१॥

५६७ उभा । हि । दस्रा । भिषजा । मयःऽभुवा ।
उभा । दक्षस्य । वचसः । बभूवथुः ॥
ता । वाम् । विश्वकः । हवते । तनूऽकृथे ।
मा । नः । वि । यौष्टम् । सख्या । मुमोचतम् ॥१॥

५६७ अन्वयः— दस्रा ! उभा हि मयोभुवा भिषजा, दक्षस्य वचसः बभूवथुः । तनूकृथे ता वां विश्वकः हवते, नः सख्या मा वि यौष्टं, मुमोचतम् ॥

५६७ अर्थ— हे (दस्रा) दर्शनीय वीरो ! (उभा हि मयोभुवा) तुम दोनोंही सुखदायक (भिषजा) वैद्य हो और (दक्षस्य वचसः) दक्षतासे किये भाषणके लिये (उभा बभूवथुः) तुम दोनों योग्य हो; (तनूकृथे ता वां) शरीरकी सुरक्षाके लिए तुम दोनोंको (विश्वकः हवते) यह विश्वक ऋषि बुलाता है (नः सख्या मा वि यौष्टं) हमें आपकी मित्रतासे दूर न करो और (मुमोचतं) हमें मुक्त करो । दुःखसे हमें मुक्त करो ॥

[५६८]

५६८ कथा नूनं वां विमना उप स्तवद्युवं धियं ददथुर्वस्यइष्टये ।
ता वां विश्वको हवते तनूकृथे मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोचतम् ॥२॥

५६८ कथा । नूनम् । वाम् । विऽमनाः । उप । स्तवत् ।
युवम् । धियम् । ददथुः । वस्यःऽइष्टये ॥
ता । वाम् । विश्वकः । हवते । तनूऽकृथे ।
मा । नः । वि । यौष्टम् । सख्या । मुमोचतम् ॥२॥

५६८ अन्वयः— विमना नूनं वां कथा उप स्तवत् ? वस्य-इष्टये युवं धियं ददथुः । विश्वकः तनूकृथे ता वां हवते, नः सख्या मा वि यौष्टं, मुमोचतम् ॥

५६८ अर्थ— (विमना नूनं) विमना ऋषिने सचमुच (वां कथा उप स्तवत्) तुम्हारी कैसे प्रशंसा की थी ? (वस्य-इष्टये) प्रशस्त धनको पानेके लिए (युवं धियं ददथुः) तुमने हमें बुद्धि दी है । (विश्वकः तनूकृथे वां हवते) विश्वक शरीरकी सुरक्षाके लिये तुम्हें बुलाता है, (नः सख्या मा वि यौष्टं) हमारी मित्रताको मत दूर करो और हमें दुःखसे (मुमोचतं) मुक्त कर दो ॥

[५६९]

५६९ युवं हि ष्मा पुरुभुजेममेधतुं विष्णाप्वे ददथुर्वस्यइष्टये ।
ता वां विश्वको हवते तनूकृथे मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोचतम् ॥३॥

अश्विनौ दे० ४८

५६९ युवम् । हि । स्थः । पुरुऽभुजा । इमम् । एधतुम् ।
विष्णाप्वे । दुदथुः । वस्यःऽइष्टये ॥
ता । वाम् । विश्वकः । हवते । तनूऽकृथे ।
मा । नः । वि । यौष्टम् । सुख्या । मुमोचतम् ॥३॥

५६९ अन्वय — पुरुभुजा ! विष्णाप्वे युवं हि स्थः इमं एधतुं वस्य इष्टये ददथुः । ता वां तनूकृथे विश्वकः हवते, नः सख्या मा वि यौष्ट, मुमोचतम् ॥

५६९ अर्थ- हे (पुरुभुजा) अनेकोंको भोजन देनेवाले वीरो ! (विष्णाप्वे) विष्णापूके लिए (युवं हि स्थः) तुम दोनोंने सचमुच (इमं एधतुं) इस समृद्धिको (वस्य-इष्टये ददथुः) धनकी इष्टिके लिए दे दिया था । (ता वां) ऐसे तुम दोनोंको (तनूकृथे) शरीरकी सुरक्षाके हेतु विश्वक (हवते) बुलाता है (नः सख्या) हमारी मित्रताको (मा वि यौष्ट) दूर न करो और हमें (मुमोचत) इस दुःखसे मुक्त करो ॥

[५७०]

५७० उत त्यं वीरं धनसामृजीषिणं दूरे चित् सन्तमवसे हवामहे । यस्य स्वादिष्ठा सुमतिः पितुर्यथा मा नो वि यौष्टं सुख्या मुमोचतम् ॥४॥

५७० उत । त्यम् । वीरम् । धनऽसाम् । ऋजीषिणम् ।
दूरे । चित् । सन्तम् । अवसे । हवामहे ॥
यस्य । स्वादिष्ठा । सुऽमतिः । पितुः । यथा ।
मा । नः । वि । यौष्टम् । सुख्या । मुमोचतम् ॥४॥

५७० अन्वय — उत त्यं धनसां ऋजीषिणं वीरं, यस्य सुमतिः यथा पितुः स्वादिष्ठा, दूरे सन्तं चित् अवसे हवामहे, सख्या नः मा वि यौष्ट, मुमोचतम् ॥

५७० अर्थ- (उत त्यं) और उस (धनसां ऋजीषिणं वीरं) धनका बँटवारा करनेवाले और सोम अपनेपास रखनेवाले वीरको, (यस्य सुमतिः) जिसकी अच्छी बुद्धि (यथा पितुः स्वादिष्ठा) पिताके समान अत्यन्त मधुर

रहती है, उसको (दूरे सन्तं चित्) दूर रहनेपर भी (अवसे हवामहे) अपनी रक्षाके लिये हम बुलाते हैं। हे वीरो! (सख्या) मित्रताके कारण (नः मा वि यौष्टं) हमें दूर न करो, (सुमोचतं) और हमें दुःखसे छुडाओ ॥

[५७१]

५७१ ऋतेर्न देवः सविता शमायत ऋतस्य शृङ्गमुर्विया वि पप्रथे । ऋतं सासाह महि चित् पृतन्यतो मा नो वि यौष्टं सख्या मुमोचतम् ॥५॥

५७१ ऋतेन । देवः । सविता । शम्ऽआयते ।
ऋतस्य । शृङ्गम् । उर्विया । वि । पप्रथे ॥
ऋतम् । ससाह । महि । चित् । पृतन्यतः ।
मा । नः । वि । यौष्टम् । सख्या । मुमोचतम्॥५॥

५७१ अन्वयः- देवः सविता ऋतेन शमायते, ऋतस्य शृङ्गं उर्विया वि पप्रथे । महि पृतन्यतः चित् ऋतं सासाह, नः मा वि यौष्टं सख्या मुमोचतम्॥

५७१ अर्थ- (देवः सविता) द्योतमान सूर्य (ऋतेन शमायते) ऋतसे सायंकालके समय शान्त होता है और (ऋतस्य शृङ्गं) ऋतके ऊँचे भागको (उर्विया वि पप्रथे) अत्यन्त विशाल रीतिसे फैलाता है; (महि पृतन्यतः चित्) बडे बडे सैनाके साथ आक्रमण करनेवालोंको भी (ऋतं सासाह) ऋत पराभूत करता है, (नः मा वि यौष्टं) हमारा तुमसे विछोह न हो और (सख्या मुमोचतं) मित्रतासे हमें कष्टसे छुटकारा दो ॥

[५७२] (ऋ. ८।८७।१-६)

(५७२-५७७) कृष्ण आङ्गिरसो वासिष्ठो वा द्युम्नीकः, प्रियमेध आङ्गिरसो वा । प्रगाथः=(विषमा बृहती+समा सतोबृहती)

५७२ द्युम्नी वां स्तोमो अश्विना क्रिविर्न सेक आ गतम् । मध्वः सुतस्य स दिवि प्रियो नरा पातं गौराविवेरिणे॥१

*

५७२ द्युम्नी । वाम् । स्तोमः । अश्विना ।
क्रिविः । न । सेके । आ । गतम् ॥
मध्वः । सुतस्य । सः । दिवि । प्रियः ।
नरा । पातम् । गौरौऽइव । इरिणे ॥१॥

५७२ अन्वयः— अश्विनौ ! सेके क्रिविः न वां स्तोमः द्युम्नी, आ गतम् । नरा ! सुतस्य मध्वः सः दिवि प्रियः, इरिणे गौरौ इव पातम् ॥

५७२ अर्थ— हे अश्विदेवों ! (सेके क्रिविः न) जल सींचनेपर कुआँ जिस प्रकार पानीसे भरा रहता है, वैसेही (वां स्तोमः द्युम्नी) तुम्हारा स्तोत्र तेजस्वी हो जाता है, (आ गतं) तुम आओ, हे (नरा) नेता वीरो ! (सुतस्य मध्वः) सोमका मधुर रस (सः दिवि प्रियः) द्युलोकमें भी प्यारा हो रहा है, (इरिणे गौरौ इव पातं) जल स्थानपर दो मृग जैसे पीते हैं वैसेही तुम भी इस रसका पान करो ॥

[५७३]

५७३ पिबतं घर्मं मधुमन्तमश्विना ऽऽबर्हिः सीदतं नरा ।
ता मन्दसाना मनुषो दुरोण आ नि पातं वेदसा वयः ॥२

५७३ पिबतम् । घर्मम् । मधुऽमन्तम् । अश्विना ।
आ । बर्हिः । सीदतम् । नरा ॥
ता । मन्दसाना । मनुषः । दुरोणे । आ ।
नि । पातम् । वेदसा । वयः ॥२॥

५७३ अन्वयः— नरा अश्विना ! मधुमन्तं घर्मं पिबतं, बर्हिः आ सीदतं; मनुषः दुरोणे मन्दसाना ता वेदसा वयः आ नि पातम् ॥

५७३ अर्थ— हे (नरा) नेता अश्विदेवों ! (मधुमन्तं घर्मं पिबतं) मीठे सोमरसका पान करो, (बर्हिः आ सीदतं) कुशासनपर आकर बैठ जाओ; (मनुषः दुरोणे) मानवके घरपर (मन्दसाना ता) हर्षित होनेवाले तुम दोनों (वेदसा वयः आ नि पातं) धनसे हमारी आयुका रक्षण करो ॥

[५७४]

५७४ आ वां विश्वाभिरूतिभिः प्रियमेधा अहूषत ।
ता वर्तिर्यातमुप वृक्तबर्हिषो जुष्टं यज्ञं दिविष्टिषु ॥३॥

५७४ आ । वाम् । विश्वाभिः । ऊतिऽभिः ।
प्रियऽमेधाः । अहूषत ॥
ता । वर्तिः । यातम् । उप । वृक्तऽबर्हिषः ।
जुष्टम् । यज्ञम् । दिविष्टिषु ॥३॥

५७४ अन्वयः— प्रियमेधाः वां विश्वाभिः ऊतिभिः अहूषत । वृक्तबर्हिषः वर्तिः ता उप यात, दिविष्टिषु यज्ञं जुष्टम् ॥

५७४ अर्थ— (प्रियमेधाः) यज्ञको प्यारभरी दृष्टिसे देखनेवाले प्रियमेध ऋषियोंने (वां विश्वाभिः ऊतिभिः अहूषत) तुम्हें सभी संरक्षणआयोजनाओंके साथ अपने पास बुलाया है । (वृक्तबर्हिषः वर्तिः) कुशासन जिसने फैला रखा है, ऐसे मानवके घर (ता उप यात) वे तुम दोनों वीर चले जाओ, (दिविष्टिषु यज्ञं जुष्टं) दिव्य स्थानमें किये जानेवाले कार्योंमें यज्ञका सेवन करो ॥

[५७५]

५७५ पिबतं सोमं मधुमन्तमश्विना ऽऽबर्हिः सीदतं सुमत् ।
ता वावृधाना उप सुष्टुतिं दिवो गन्तं गौराविवेरिणम् ॥४

५७५ पिबतम् । सोमम् । मधुऽमन्तम् । अश्विना ।
आ । बर्हिः । सीदतम् । सुऽमत् ॥
ता । ववृधाना । उप । सुऽस्तुतिम् । दिवः ।
गन्तम् । गौरौऽइव । इरिणम् ॥४॥

५७५ अन्वयः— अश्विना ! सुमत् बर्हिः आ सीदतं, मधुमन्तं सोमं पिबतं, इरिणं गौरौ इव दिवः ता वावृधाना सुष्टुतिं उप गन्तम् ॥

५७५ अर्थ— हे (अश्विना) अश्विदेवों ! (सुमत् बर्हिः आ सीदतं) सुखकारक कुशासनपर आकर बैठो । (मधुमन्तं सोमं पिबतं) मीठे सोमरसका पान करो । (हरिणे गौरौ इव) जलाशयके समीप दो हरन जैसे जाते हैं, वैसेही (दिवा ता वावृधाना) द्युलोकसे आकर तुम दोनों बढते हुए (सुष्टुतिं उप यातं) अच्छी स्तुतिके समीप बैठकर सुनो ॥

[५७६]

५७६ आ नूनं यातमश्विनाऽश्वेभिः प्रुषितप्सुभिः ।
दस्रा हिरण्यवर्तनी शुभस्पती पातं सोममृतावृधा ॥५॥

५७६ आ । नूनम् । यातम् । अश्विना ।
अश्वेभिः । प्रुषितप्सुऽभिः ॥
दस्रा । हिरण्यवर्तनी इति हिरण्यऽवर्तनी ।
शुभः । पती इति ।
पातम् । सोमम् । ऋतऽवृधा ॥५॥

५७६ अन्वयः— दस्रा ! हिरण्यवर्तनी ! शुभस्पती ! ऋतावृधा अश्विना ! नून प्रुषितप्सुभि अश्वेभिः आ यात सोमं पातम् ॥

५७६ अर्थ— हे (दस्रा) शत्रुविनाशकर्ता ! (हिरण्यवर्तनी) सुवर्णके रथसे युक्त (शुभस्पती) सत्कर्मोंके पालक ! और (ऋतावृधा अश्विना) ऋतके बढानेहारे अश्विदेवों ! (नून) सचमुच अब (प्रुषितप्सुभिः अश्वेभिः) शीघ्र स्वरूपवाले घोडोंसे (आ यात) आओ, और (सोम पातं) सोमका पान करो ॥

[५७७]

५७७ वयं हि वां हवामहे विपन्यवो विप्रासो वाजसातये ।
ता वल्गू दस्रा पुरुदंससा धियाऽश्विना श्रुष्टया गतम् ॥६

५७७ वयम् । हि । वाम् । हवामहे । विपन्यवः ।
विप्रासः । वाजऽसातये ॥
ता । वल्गू इति । दस्रा । पुरुऽदंससा । धिया ।
अश्विना । श्रुष्टी । आ । गतम् ॥६॥

५७७ अन्वयः— अश्विना ! वयं विपन्यवः विप्रासः वाजसातये वां हि हवामहे; ता वल्गू दस्रा पुरुदंससा धिया धृष्णी आ गतम् ॥

५७७ अर्थ- हे अश्विदेवों ! (वयं विपन्यवः विप्रासः) हम विद्वान्, ज्ञानी लोग (वाजसातये) अन्नका बँटवारा करनेके लिए (वां हि हवामहे) तुम्हेंही बुलाते हैं, इसलिए (ता वल्गू दस्रा) वे तुम सुन्दर रूपवाले शत्रु-विध्वंसक (पुरु-दंससा) विविध कार्योंके और (धिया) बुद्धिमान तुम दोनों (धृष्णी आ गतं) [illegible] आ जाओ ॥

[५७८] (ऋ. ८।१०१।७-८)
(५७८-५७९) जमदग्निर्भार्गवः। अश्विनौ। प्रगाथः = (विषमा बृहती+ समा सतोबृहती)।

५७८ आ मे वचांस्युद्यता द्युमत्तमानि कर्त्वा ।
उभा यातं नासत्या सजोषसा प्रति हव्यानि वीतये॥७॥

५७८ आ । मे । वचांसि । उत्ऽयता ।
द्युमत्ऽतमानि । कर्त्वा ॥
उभा । यातम् । नासत्या । सऽजोषसा ।
प्रति । हव्यानि । वीतये ॥७॥

५७८ अन्वयः— नासत्या ! उभा सजोषसा हव्यानि वीतये मे उत् यता द्युमत्तमानि कर्त्वा वचांसि प्रति आ यातम् ॥

५७८ अर्थ— हे सत्यपालक वीरो ! (उभा सजोषसा) दोनों मिलकरही (हव्यानि वीतये) हविर्भागका आस्वाद लेनेके लिए (मे) मेरे (उत्-यता द्युमत्तमानि) अत्यन्त प्रकाशमान (कर्त्वा वचांसि) कार्यकलाप और भाषणके (प्रति आ यातं) समीप आ जाओ ॥

[५७९]

५७९ रातिं यद् वामरक्षसं हवामहे युवाभ्यां वाजिनीवसू ।
प्राचीं होत्रां प्रतिरन्तावितं नरा गृणाना जमदग्निना॥८॥

५७९ रातिम् । यत् । वाम् । अरक्षसम् । हवामहे ।
युवाभ्याम् । वाजिनीवसू इति वाजिनीऽवसू ॥
प्राचीम् । होत्राम् । प्रऽतिरन्तौ । इतम् । नरा ।
गृणाना । जमदग्निना ॥८॥

५७९ अन्वयः— नरा वाजिनी-वसू ! यत् युवाभ्यां अरक्षसं रातिं हवामहे, जमदग्निना गृणाना प्राचीं होत्रां प्रतिरन्तौ इतम् ॥

५७९ अर्थ— हे नेताः तथा (वाजिनी-वसू) सेनारूपी धनवाले अश्विदेवों (यत्) जब (युवाभ्यां) तुम दोनोंसे (अरक्षसं रातिं) राक्षसोंके कष्टोंसे रहित दानको (हवामहे) हम चाहते हैं, तब (जमदग्निना गृणाना) जमदग्निसे प्रशंसित तुम दोनों (प्राचीं होत्रां प्रतिरन्तौ) पूर्वाभिमुख प्रशंसाको बढाते हुए (इतं) इधर आओ ॥

[५८०] (ऋ. १०।२४।४-६)

(५८०-५८१) ऐन्द्रो विमदः, प्राजापत्यो वा, वासुक्रो वसुकृद्वा । अनुष्टुप् ।

५८० युवं शक्रा मायाविना समीची निरमन्थतम् ।
विमदेन यदीळिता नासत्या निरमन्थतम् ॥४॥
५८१ विश्वे देवा अकृपन्त समीच्योर्निष्पतन्त्योः ।
नासत्यावब्रुवन् देवाः पुनरा वहतादिति ॥५॥

५८० युवम् । शक्रा । मायाऽविना ।
समीची इति सम्ऽईची । निः । अमन्थतम् ॥
विऽमदेन । यत् । इळिता ।
नासत्या । निःऽअमन्थतम् ॥४॥
५८१ विश्वे । देवाः । अकृपन्त ।
सम्ऽईच्योः । निःऽपतन्त्योः ॥
नासत्यौ । अब्रुवन् । देवाः ।
पुनः । आ । वहतात् । इति ॥५॥

५८० अन्वयः— शक्रा ! मायाविना ! यत् नासत्या, विमदेन ईळिता युवं समीची निः अमन्थतम् ॥ ४ ॥

५८१ अन्वयः— समीच्योः निः-मथ्यमयोः विश्वे देवाः अकृपन्त, देवाः नासत्यौ अब्रुवन् पुनः आवहतात् इति ॥ ५ ॥

५८०-५८१ अर्थ— हे (शक्रा) शक्तिसम्पन्न एवं (मायाविना) आश्चर्यकारक सामर्थ्यसे युक्त अश्विदेवों ! (यत्) जब (नासत्या विमदेन ईळिता) सत्यपालक तथा विमदद्वारा प्रशंसित (युवं) तुम दोनों (समीची) परस्पर सम्मिलित होकर (निः अमन्थतं) पूर्णरूपसे अग्निको मथकर पैदा कर चुके, उस समय (समीच्योः निः-मथ्यमानयोः) दोनों जुडे हुए काष्ठोंसे चिनगारियाँ फूट निकलती थीं, (विश्वे देवाः अकृपन्त) सभी देव स्तुति करने लगे, (देवाः नासत्यौ अब्रुवन्) देवोंने सत्यपूर्ण अश्विदेवोंसे कहा, (पुनः आवहतात् इति) लिये घोडे इन्हें फिर इधर ले आयें ॥

[५८२]

५८२ मधु॑मन्मे प॒राय॑णं॒ मधु॑म॒त् पुन॒राय॑नम् ।
ता नो॑ देवा दे॒वत॑या यु॒वं मधु॑मतस्कृतम् ॥६॥

५८२ मधु॑ऽमत् । मे॒ । प॒रा॒ऽअय॑नम् ।
मधु॑ऽमत् । पुन॒रिति॑ । आ॒ऽअय॑नम् ॥
ता । नः॒ । दे॒वा॒ । दे॒वत॑या ।
यु॒वम् । मधु॑ऽमतः । कृ॒तम् ॥६॥

५८२ अन्वयः— मे परायणं मधुमत्, पुनरायणं मधुमत्; देवा ! ता युवं नः देवतया मधुमतः कृतम् ॥ ६ ॥

५८२ अर्थ— (मे) मेरा (परायणं मधुमत्) निकल जाना मिठाससे पूर्ण हो, (पुनरायणं मधुमत्) फिर लौट आना भी मधुरिमामय बने; हे (देवा) दानी अश्विदेवों ! (ता युवं) ऐसे विख्यात वे तुम दोनों (नः देवतया) हमें, दिव्य शक्तिसे युक्त होनेके कारण (मधुमतः कृतं) मधुरिमामय बना दो ॥

[५८३] (ऋ० १०।३९।१-१४)

(५८३-५९०) काक्षीवती घोषा । जगती, १४ त्रिष्टुप् ।

५८३ यो वां परिज्मा सुवृदश्विना रथो दोषामुषासो हव्यो हविष्मता । शश्वत्तमासस्तमु वामिदं वयं पितुर्न नाम सुहवं हवामहे ॥१॥

५८३ यः । वाम् । परिऽज्मा । सुऽवृत् । अश्विना । रथः । दोषाम् । उषसः । हव्यः । हविष्मता ॥ शश्वत्ऽतमासः । तम् । ऊँ इति । वाम् । इदम् । वयम् । पितुः । न । नाम । सुऽहवम् । हवामहे ॥१॥

५८३ अन्वयः- अश्विना ! वां यः परिज्मा, सुवृत्, हविष्मता दोषां उषसः हव्यः रथः तं उ वयं, वां सुहवं, शश्वत्तमासः पितुः इदं नाम न हवामहे॥१॥

५८३ अर्थ— हे अश्विदेवों ! (वां यः) तुम दोनोंका जो (परिज्मा) चारों ओर जानेवाला, (सुवृत्) भली भाँति ढका हुआ, (हविष्मता दोषां उषसः हव्यः रथः) हवि रखनेवालेके लिए रातदिन बुलानेयोग्य रथ है, (तं उ) उसेही (वयं) हम, (वां सुहवं) तुम दोनोंके लिए सुगमतापूर्वक बुलानेयोग्य है, ऐसा समझकर (शश्वत्तमासः) हमेशाके लिए (पितुः इदं नाम न) पिताके इस नामको जिस तरह लेते हैं, उसी प्रकार (हवामहे) बुलाते हैं, अर्थात् संकटके आनेपर जैसे पिताको बुलाते हैं वैसेही आपत्तिसे घिर जानेपर तुम्हारे रथको इधर आनेकी सूचना देते हैं, अर्थात् तुम्हें बुलाते हैं ॥

[५८४]

५८४ चोदयतं सूनृताः पिन्वतं धिय उत् पुरंधीरीरयतं तदुश्मसि । यशसं भागं कृणुतं नो अश्विना सोमं न चारुं मघवत्सु नस्कृतम् ॥२॥

५८४ चोदयतम् । सूनृताः । पिन्वतम् । धियः । उत् । पुरम्ऽधीः । ईरयतम् । तत् । उश्मसि ॥ यशसम् । भागम् । कृणुतम् । नः । अश्विना । सोमम् । न । चारुम् । मघवत्ऽसु । नः । कृतम् ॥२॥

५८४ अन्वयः— अश्विना ! तत् उश्मसि, सूनृताः चोदयतं, धियः पिन्वतं, पुरंधीः उत् ईरयतं; नः भागं यशसं कृणुतं, चारुं सोमं न, मघवत्सु नः कृतम् ॥ २ ॥

५८४ अर्थ— हे अश्विदेवो ! (तत् उश्मसि) हम इस बातको चाहते हैं कि तुम (सूनृताः चोदयतं) सत्यवाणियोंको प्रेरित करो, (धियः पिन्वतं) कर्मों या बुद्धियोंको परिपुष्ट करो, (पुरं-धीः उत् ईरयतं) बहुतसे लोगोंकी धारक शक्तियोंको विकसित करो, (नः भागं) हमारे भागको (यशसं कृणुतं) यशःपूर्ण बना दो, और (चारुं सोमं न) सुन्दर सोमके तुल्य (मघवत्सु नः कृतं) धनिकोंमें हमें बना दो, हमें धनयुक्त बना दो ॥

[५८५]

५८५ अमाजुरश्चिद्भवथो युवं भगोऽनाशोश्चिदवितारापमस्य चित्।
अन्धस्य चिन्नासत्या कृशस्य चिद्युवामिदाहुर्भिषजा
रुतस्य चित् ॥३॥

५८५ अमाऽजुरः । चित् । भवथः । युवम् । भगः ।
अनाशोः । चित् । अवितारा । अपमस्य । चित् ॥
अन्धस्य । चित् । नासत्या । कृशस्य । चित् ।
युवाम् । इत् । आहुः । भिषजा । रुतस्य । चित् ॥३॥

५८५ अन्वयः— नासत्या ! युवं अमाजुरः चित् भगः भवथः, अन्धस्य चित्, अपमस्य चित्, अनाशोः चित्, कृशस्य चित् अवितारा, युवां इत् रुतस्य चित् भिषजा आहुः ॥३॥

५८५ अर्थ— हे सत्यपूर्ण अश्विदेवो ! (युवं) तुम (अमाजुरः चित्) घरमें जीर्ण होनेवाली कन्याके लिए भी (भगः भवथः) ऐश्वर्यरूपी हो जाते हो, और (अन्धस्य चित्) अन्धेके भी, (अपमस्य चित्) अत्यन्त निम्न श्रेणीके भी, (अनाशोः चित्) अनशन करनेवालेका भी (कृशस्य चित् अवितारा) दीन दुर्बलके भी रक्षणकर्ता हो, तथा (युवां इत्) तुम्हेंही (रुतस्य चित् भिषजा आहुः) टूटेफूटेके भी वैद्य कहते हैं ॥

५८५ भावार्थ— अश्विदेव घरमें रहनेवाली अविवाहित कन्याको भी सौभाग्य देते हैं, अन्धेकी आंखें ठीक करते हैं, दुर्बल, दीन, कृशको भी बल देते हैं और टूटेके अवयव जोड देते हैं।

५८५ मानवधर्म- मानव समाजमें ऐसा प्रबंध हो कि अविवाहित स्त्रीको भी सुखसे रहनेकी व्यवस्था हो, अन्धेको दृष्टि मिले, नीचको उन्नति प्राप्त हो, भोगहीनको भोग मिलें, कृश हृष्ट-पुष्ट बने, टूटे अवयव जोड दिये जांय। राजप्रबंधसे यह सब होता रहे।

[५८६]

५८६ युवं च्यवानं सनयं यथा रथं पुनर्युवानं चरथाय तक्षथुः।
निष्टौग्र्यमूहथुरद्भ्यस्परि विश्वेत्ता वां सवनेषु प्रवाच्या॥४

५८६ युवम्। च्यवानम्। सनयम्। यथा। रथम्।
पुनः। युवानम्। चरथाय। तक्षथुः॥
निः। तौग्र्यम्। ऊहथुः। अत्ऽभ्यः। परि।
विश्वा। इत्। ता। वाम्। सवनेषु। प्रऽवाच्या॥४॥

५८६ अन्वयः— युवं सनयं च्यवानं, रथं यथा, चरथाय पुनः युवानं तक्षथुः, तौग्र्यं अद्भ्यः परि निः ऊहथुः, वां ता विश्वा इत् सवनेषु प्रवाच्या॥४

५८६ अर्थ— (युवं) तुम दोनोंने (सनयं च्यवानं) बूढे च्यवानको (रथं यथा) रथको जिस तरह (चरथाय) संचार करनेके लिए फिरसे नया बना सकते हैं वैसेही (पुनः युवानं तक्षथुः) फिर एकबार युवक बना दिया। तुग्रके पुत्रको (अद्भ्यः परि) जलोंके ऊपरसे (निः ऊहथुः) पूर्णतया ले चलते हुए इष्टस्थानतक पहुँचा दिया। (वां ता विश्वा इत्) तुम्हारे वे सभी कार्य अवश्यही (सवनेषु प्रवाच्या) यज्ञोंमें प्रकर्षसे कहनेलायक हैं।

५८६ भावार्थ- बूढेको जवान बनानेका प्रबंध हो, बूढे जवान जैसे चलते फिरते रहें। जलमें डूबनेवालेको ऊपर लाकर रखा जाय। इस तरह वर्णन करनेयोग्य कार्य राज्यप्रबंधद्वारा होते रहें।

[५८७]

५८७ पुराणा वां वीर्याऽ३ प्र ब्रवा जनेऽथो हासथुर्भिषजा
मयोभुवा। ता वां नु नव्याववसे करामहेऽयं नासत्या
श्रदरिर्यथा दधत् ॥५॥

५८७ पुराणा । वाम् । वीर्या । प्र । ब्रव । जने ।
अथो इति । ह । आसथुः । भिषजा । मयःऽभुवा ॥
ता । वाम् । नु । नव्यौ । अवसे । करामहे ।
अयम् । नासत्या । श्रत् । अरिः । यथा । दधत् ॥५॥

५८७ अन्वयः- वां पुराणा वीर्या जने प्र ब्रव, अथ भिषजा मयो-भुवा ह आसथुः, अयं अरिः यथा श्रत् दधत् नासत्या ! ता वां नव्यौ नु अवसे करामहे ॥५॥

५८७ अर्थ— (वां पुराणा वीर्या) तुम दोनोंके पुराने वीरतापूर्ण कार्य, (जने प्र ब्रव) जनतामें खूब कह देता हूँ, (अथ) और तुम (भिषजा मयो-भुवा ह आसथुः) सचमुच कल्याणकारक वैद्य बने हो, (अयं अरिः) यह गमनशील पुरुष (यथा) जिस तरह (श्रत् दधत्) विश्वास रखे, वैसेही हे सत्यसे युक्त अश्विदेवो ! (ता वां) उन विख्यात तुम दोनोंको (नव्यौ नु) सचमुच नवीन जैसे (अवसे करामहे) अपनी रक्षाके लिए निर्धारित या नियुक्त कर देते हैं ॥

५८७ भावार्थ- अश्विदेव वीरतायुक्त कर्म करते हैं, वे वैद्य हैं और जनताका सुख बढाते हैं। इनको हम अपनी सुरक्षाके कार्यके लिये नियुक्त करते हैं।

५८७ मानवधर्म- सुयोग्य वैद्यको अपने कुटुम्बके स्वास्थ्यके लिये स्थायी रूपसे नियुक्त करनायोग्य है।

[५८८]

५८८ इयं वामह्वे शृणुतं मे अश्विना पुत्रायेव पितरा मह्यं शिक्षतम् । अनापिरज्ञा असजात्यामतिः पुरा तस्या अभिशस्तेरव स्पृतम् ॥६॥

५८८ इयम् । वाम् । अह्वे । शृणुतम् । मे । अश्विना ।
पुत्रायऽइव । पितरा । मह्यम् । शिक्षतम् ॥
अनापिः । अज्ञाः । असजात्या । अमतिः ।
पुरा । तस्याः । अभिऽशस्तेः । अव । स्पृतम् ॥६॥

५८८ अन्वय – अश्विना ! वां हुये अह्वे, मे शृणुत, पितरा पुत्राय इव मह्यं शिक्षत, अनापि अज्ञा असजात्या अमतिः, तस्या अभिशस्ते पुरा अव स्पृतम् ॥६॥

५८८ अर्थ— हे अश्विदेवों ! (वां) तुम्हें (हुये अह्वे) यह मैं पुकार रही हूँ, (मे शृणुत) मेरी पुकार सुन लो, और (पितरा पुत्राय इव) मातापिता पुत्रको जैसे सिखाते हैं, वैसेही (मह्य शिक्षत) मुझको शिक्षा दो, क्योंकि मैं (अन्-आपिः) बन्धुरहित (अज्ञाः) ज्ञानरहित, (अ-सजात्या) सजातीय रहित और (अ-मति) बुद्धिहीन हूँ इसलिए (तस्या अभिशस्ते पुरा) उस अभिशापके आक्रमणके पहलेही मुझको (अव स्पृत) संकटोंसे पार पहुँचा दो ॥

५८८ भावार्थ- जो स्त्री (या पुरुष भी) बन्धुरहित, अज्ञान, बुद्धिहीन, ज्ञातिवालोंसे रहित असहाय हो उसकी भी सुरक्षा और उन्नति होनेका प्रबंध होना चाहिये ।

[५८९]

५८९ युवं रथेन विमदाय शुन्ध्युवं न्यूहथुः पुरुमित्रस्य योषणाम् । युवं हवं वध्रिमत्या अगच्छतं युवं सुषुतिं चक्रथुः पुरंधये ॥७॥

५८९ युवम् । रथेन । विऽमदाय । शुन्ध्युवम् ।
नि । ऊहथुः । पुरुऽमित्रस्य । योषणाम् ॥
युवम् । हवम् । वध्रिऽमत्याः । अगच्छतम् ।
युवम् । सुऽसुतिम् । चक्रथुः । पुरम्ऽधये ॥७॥

५८९ अन्वय — युव पुरुमित्रस्य योषणां शुन्ध्युव रथेन विमदाय नि ऊहथु, वध्रिमत्या हव युव अगच्छत, युव पुरन्धये सुषुतिं चक्रथु ॥७॥

५८९ अर्थ- (युव) तुम दोनों (पुरुमित्रस्य योषणां शुन्ध्युव) पुरुमित्र की पवित्र कन्याको (रथेन) रथपरसे (विमदाय नि ऊहथुः) विमदके यहाँ पहुँचा चुके और वध्रिमतीकी (हव) पुकार सुनकर (युव अगच्छत) तुम दोनों उसके निकट जा पहुँचे, तथा (युव) तुमने (पुरन्धये) बहुतोंका धारण करनेवाली बुद्धिमती स्त्रीके लिए (सु सुतिं) भली भाँति धनोत्पादन की व्यवस्था (चक्रथु) कर चुके हो ॥

[५९०]

५९० युवं विप्रस्य जरणामुपेयुषः पुनः कलेरकृणुतं युवद्वयः ।
युवं वन्दनमृश्यदादुदूपथुर्युवं सद्यो विश्पलामेतवे कृथः॥

५९० युवम् । विप्रस्य । जरणाम् । उपऽईयुषः ।
पुनरिति । कलेः । अकृणुतम् । युवत् । वयः ॥
युवम् । वन्दनम् । ऋश्यऽदात् । उत् । ऊपथुः ।
युवम् । सद्यः । विश्पलाम् । एतवे । कृथः॥८॥

५९० अन्वयः— युवं विप्रस्य कलेः जरणां उपेयुषः वयः पुनः युवत् अकृणुतं। युवं ऋश्यदात् वन्दनं उत् ऊपथुः, युवं एतवे विश्पलां सद्यः कृथः॥८॥

५९० अर्थ— (युवं) तुमने (विप्रस्य कलेः) विद्वान् कलि नामक ऋषिकी, जोकि (जरणां उपेयुषः) बुढापेकी दशाको पहुँच चुका था, (वयः) अवस्थाको (पुनः युवत् अकृणुतं) फिर युवकवत् बना दिया, (युवं) तुमने (ऋश्यदात् वन्दनं) गहरे कुएँसे वन्दन नामक ऋषिको (उत् ऊपथुः) ऊपर उठा लिया और (युवं विश्पलां) तुमने विश्पला नामक राजकुमारीको (एतवे सद्यः कृथः) संचार करनेयोग्य तुरन्तही बना दिया ॥

[५९१]

५९१ युवं ह रेभं वृषणा गुहा हितमुदैरयतं ममृवांसमश्विना ।
युवमृबीसमुत तप्तमत्रय ओमन्वन्तं चक्रथुः सप्तवध्रये॥९

५९१ युवम् । ह । रेभम् । वृषणा । गुहा । हितम् ।
उत् । ऐरयतम् । ममृऽवांसम् । अश्विना ॥
युवम् । ऋबीसम् । उत । तप्तम् । अत्रये ।
ओमन्ऽवन्तम् । चक्रथुः । सप्तऽवध्रये ॥९॥

५९१ अन्वयः— वृषणा अश्विना ! युवं ह गुहा हितं ममृवांसं रेभं उत् ऐरयतम्, युवं उत अत्रये तप्तं ऋबीसं ओमन्वन्तं चक्रथुः, सप्तवध्रये ॥ ९ ॥

५९१ अर्थ— हे (वृषणा) इच्छाओंकी पूर्ति करनेहारे अश्विदेवो ! (युवं ह) तुमने सचमुच (गुहा हित) गुफामें रखे हुए (मम्रिवांसं रेभं) मियमाण रेभको (उत् ऐरयत) ऊपर उठा लिया था, (युवं उत) और तुमने अग्नि ऋषिके लिए (तप्त अत्रये) धधकते हुए कारागृहको (ओमन्वन्तं चक्रथुः) संरक्षणवाला सुखदायी बना दिया, तथा (सप्तवध्रये) सप्तवध्रिके लिए भी ऐसीही सहायता की थी ॥

[५९२]

५९२ युवं श्वेतं पेदवेऽश्विनाऽश्वं नवभिर्वाजैर्नवती च वाजिनम्।
चर्कृत्यं ददथुर्द्रावयत्सखं भगं न नृभ्यो हव्यं मयोभुवम् ॥

५९२ युवम् । श्वेतम् । पेदवे । अश्विना । अश्वम् ।
नवऽभिः । वाजैः । नवती । च । वाजिनम् ॥
चर्कृत्यम् । ददथुः । द्रवयत्ऽसखम् ।
भगम् । न । नृऽभ्यः । हव्यम् । मयःऽभुवम् ॥१०॥

५९२ अन्वय — अश्विना ! पेदवे युवं नवभिः नवती वाजैः च वाजिनं, द्रावयत्सखं, चर्कृत्यं श्वेतं, मयोभुवं, हव्यं, श्वेतं अश्वं, नृभ्यः भगं न, ददथुः ॥१०॥

५९२ अर्थ— हे अश्विदेवो ! (पेदवे युवं) पेदु नरेशको तुमने (नवभिः नवती वाजैः च वाजिनं) निन्यानवे बलोंसे बलिष्ठ (द्रावयत्-सखं) शत्रुओंके मित्रोंको भी भगानेवाले, (चर्कृत्यं) अत्यन्त कार्यशील (श्वेतं, मयोभुवं) सफेद रंगवाले, सुखदायक, (हव्यं अश्वं) वर्णन करनेयोग्य घोडेको, (नृभ्यः भगं न) मानवोंको ऐश्वर्यके दानके समान, (ददथुः) दे दिया था ॥

[५९३]

५९३ न तं राजानावदिते कुतश्चन नांहो अश्नोति दुरितं नकिर्भयम् । यमश्विना सुहवा रुद्रवर्तनी पुरोरथं कृणुथः पत्न्या सह ॥११॥

५९३ न । तम् । राजानौ । अदिते । कुर्तः । चन ।
न । अंहः । अश्नोति । दुःऽइतम् । नकिः । भयम् ॥
यम् । अश्विना । सुऽहवा । रुद्रवर्तनी इति रुद्रऽवर्तनी ।
पुरःऽरथम् । कृणुथः । पत्न्या । सह ॥११॥

५९३ अन्वयः— राजानौ ! रुद्रवर्तनी ! अदिते ! सुहवा अश्विना ! यं पत्न्या सह पुरोरथं कृणुथः तं न कुतश्चन अंहः, न दुरितं नकिर्भयं अश्नोति ॥ ११ ॥

५९३ अर्थ— हे (राजानौ) विराजमान (रुद्रवर्तनी) रुद्रके मार्गसे जानेवाले (अदिते) अदीन ! (सुहवा) सुखसे बुलानेयोग्य अश्विदेवों ! (यं) जिसे तुम (पत्न्या सह) पत्नीके साथ (पुरोरथं कृणुथः) रथके अग्रभागमें रख देते हो, या जिसका रथ अग्रमें रहता है ऐसा बना देते हो, (तं) उसे (न कुतश्चन) कहींसे भी नहीं (अंहः) पाप घेर लेता है (न दुरितं) नाही बुराई, तथा (न किः भयं अश्नोति) न डर भी प्राप्त होता है ॥

[५९४]

५९४ आ तेन यातं मनसो जवीयसा रथं यं वामृभवश्चक्रुरश्विना ।
यस्य योगे दुहिता जायते दिव उभे अहनी सुदिने
विवस्वतः ॥१२॥

५९४ आ । तेन । यातम् । मनसः । जवीयसा ।
रथम् । यम् । वाम् । ऋभवः । चक्रुः । अश्विना ॥
यस्य । योगे । दुहिता । जायते । दिवः ।
उभे इति । अहनी इति । सुदिने इति सुऽदिने ।
विवस्वतः ॥१२॥

५९४ अन्वयः— अश्विना ! यं रथं ऋभवः वां चक्रुः, यस्य योगे दिवः दुहिता जायते, विवस्वतः उभे अहनी सुदिने, तेन मनसः जवीयसा आ यातम् ॥ १२ ॥

अश्विनौ दे० ५०

५९४ अर्थ— हे अश्विदेवो ! (यं रथं) जिस रथको (ऋभवः वां चक्रुः) ऋभुओंने तुम्हारे लिए बनाया था, (यस्य योगे) जिससे जुट जानेपर (दिवः दुहिता जायते) उषा प्रकट होती है, तथा (विवस्वतः) विवस्वान्के (उभे अहनी सुदिने) दोनों दिन अच्छे दिन प्रतीत होते हैं, (तेन मनसः जवीयसा) उस मनसे भी अपेक्षाकृत अधिक वेगवाले रथवरसे (आ यातं) इधर आओ ॥

[५९५]

५९५ ता वर्तिर्यातं जयुषा वि पर्वतमपिन्वतं शयवे धेनुमश्विना । वृकस्य चिद्वर्तिकामन्तरास्याद्युवं शचीभिर्ग्रसिता-ममुञ्चतम् ॥१२॥

५९५ ता । वर्तिः । यातम् । जयुषा । वि । पर्वतम् । अपिन्वतम् । शयवे । धेनुम् । अश्विना ॥ वृकस्य । चित् । वर्तिकाम् । अन्तः । आस्यात् । युवम् । शचीभिः । ग्रसिताम् । अमुञ्चतम् ॥१२॥

-५९५ अन्वयः- अश्विना ! तां जयुषा पर्वतं वि वर्तिः यातं, शयवे धेनुं अपिन्वतं; युवं शचीभिः ग्रसितां वर्तिकां वृकस्य आस्यात् अन्तः चित् अमुञ्चतम् ॥ १२ ॥

५९५ अर्थ— हे अश्विदेवो ! (ता) वे प्रसिद्ध तुम दोनों (जयुषा) जयशील रथसे (पर्वतं वि) पहाडका उल्लंघनकर (वर्तिः यातं) घर चले जाओ, (शयवे) शयुके लिए (धेनुं अपिन्वतं) गायको पुष्ट तथा दूधवाली बना चुके हो; (युवं) तुम दोनों (शचीभिः) शक्तियोंसे (ग्रसितां वर्तिकां) निगली हुई चिडियाको (वृकस्य आस्यात् अन्तः चित्) भेडियेके मुँहके भीतरसे भी (अमुञ्चतं) छुडा चुके ॥

[५९६]

५९६ एतं वां स्तोममश्विनावकर्मातक्षाम भृगवो न रथम् । न्यमृक्षाम योषणां न मर्ये नित्यं न सूनुं तनयं दधानाः॥

५९६ एतम् । वाम् । स्तोमम् । अश्विनौ । अकर्म ।
अतक्षाम । भृगवः । न । रथम् ॥
नि । अमृक्षाम । योषणाम् । न । मर्ये ।
नित्यम् । न । सूनुम् । तनयम् । दधानाः ॥१४॥

५९६ अन्वयः– अश्विनौ ! भृगवः रथं न, वां एतं स्तोमं अकर्म अतक्षाम; सूनुं न, नित्यं तनयं दधानाः, मर्ये योषणां न नि अमृक्षाम ॥ १४ ॥

५९६ अर्थ– हे अश्विदेवो ! (भृगवः रथं न) भृगुवंशोत्पन्न लोग रथको जैसे ठीक ठीक बनाते हैं, उसी प्रकार (वां एतं स्तोमं) तुम्हारे लिए इस स्तोत्रको (अकर्म) बना चुके हैं, तथा (अतक्षाम) भली भाँति निर्माण किया है; (सूनुं न) औरस पुत्रके तुल्य (नित्यं) हमेशाके लिए (तनयं दधानाः) सन्तानको समीप रखते हुए (मर्ये योषणां न) मानवके घरमें स्त्रीको जैसा रखते हैं, उसी प्रकार तुम्हारे स्तोत्रको हम (नि अमृक्षाम) पूर्णतया निर्दोष कर चुके हैं ॥

[५९७] (ऋ. १०।४०।१–१४)

५९७ रथं यान्तं कुह को ह वां नरा प्रति द्युमन्तं सुविताय भूषति । प्रातर्यावाणं विभ्वं विशेविशे वस्तोर्वस्तोर्वहमानं धिया शमि ॥१॥

५९७ रथम् । यान्तम् । कुह । कः । ह । वाम् । नरा ।
प्रति । द्युऽमन्तम् । सुविताय । भूषति ॥
प्रातःऽयावानम् । विऽभ्वम् । विशेऽविशे ।
वस्तोःऽवस्तोः । वहमानम् । धिया । शमि ॥१॥

५९७ अन्वयः– नरा ! वां प्रातःयावाणं, द्युमन्तं, विभ्वं, विशेविशे वस्तोः-वस्तोः वहमानं, यान्तं रथं कुह कः ह शमि धिया सुविताय प्रति भूषति ॥१॥

*

५९७ अर्थ— हे (नरा) नेता अश्विदेवों ! (वां) तुम्हारे (प्रातः-यावाणं) सुबहही यात्राके लिए निकल पडनेवाले, (वृषन्तं) द्योतमान, (विभ्वं) प्रभावशाली, (विशेविशे) हर तरहकी जनतामें (वस्तोःवस्तोः वहमानं) प्रतिदिन धनसंपदाको पहुँचानेवाले, (यान्त) हमेशाही चलने-वाले (रथं) रथको (कुह) भला किधर (कः ह) कौनसा मनुष्य (धामि धिया) यज्ञमें बुद्धिपूर्वक (सुविताय प्रति भूषति) भलाईके लिए अलङ्कृत करता है ? रथको इधर आनेमें देरी क्यों हो रही है? ॥

[५९८]

५९८ कुहं स्विद् दोषा कुह वस्तोरश्विना कुहाभिपित्वं करतः कुहोषतुः । को वां शयुत्रा विधवेव देवरं मर्यं न योषा कृणुते सधस्थ आ ॥२॥

५९८ कुह॑ । स्वि॒त् । दो॒षा । कुह॑ । वस्तोः॑ । अ॒श्वि॒ना॒ । कुह॑ । अ॒भि॒ऽपि॒त्वम् । क॒र॒तः॒ । कुह॑ । ऊ॒ष॒तुः॒ ॥ कः । वा॒म् । श॒यु॒ऽत्रा । वि॒ध॒वाऽइ॑व । दे॒वर॑म् । मर्य॑म् । न । योषा॑ । कृ॒णु॒ते । स॒ध॒ऽस्थे॑ । आ ॥२॥

५९८ अन्वयः— अश्विना ! दोषा कुह स्वित्? वस्तोः कुह ? कुह ऊषतु ? कुह अभिपित्वं करत ? शयुत्रा वां क, देवरं वि-धवा इव, योषा मर्यं न, सधस्थे आ कृणुते ? ॥ २ ॥

५९८ अर्थ— हे अश्विदेवों ! (दोषा कुह स्वित्) रातके समय तुम कहाँ रहते हो ? (वस्तोः कुह) और दिनके समय किधर निवास करते हो ? (कुह ऊषतुः) तुम अबतक किस स्थानमें रह चुके ? (कुह अभिपित्वं करतः) किस जगह भला तुम रसपान करते हो? (शयुत्रा वां) शयुके रक्षणकर्ता तुम्हें (कः) भला कौन, (देवरं वि-धवा इव) देवरको विधवाके समान, (योषा मर्यं न) नारी मानवको जैसे आकर्षित करती है, उसी तरह (सधस्थे आ कृणुते) महान् घरमें अपनी ओर प्रवृत्त करता है ? ॥

[५९९]

५९९ प्रातर्जरेथे जरणेव कापया वस्तोर्वस्तोर्यजता गच्छथो गृहम् । कस्य ध्वस्रा भवथः कस्य वा नरा राजपुत्रेव सवनाव गच्छथः ॥३॥

५९९ प्रातः । जरेथे इति । जरणाऽइव । कापया ।
वस्तोःऽवस्तोः । यजता । गच्छथः । गृहम् ॥
कस्य । ध्वस्रा । भवथः । कस्य । वा । नरा ।
राजपुत्राऽइव । सवना । अव । गच्छथः ॥३॥

५९९ अन्वयः— नरा ! कापया जरणा इव प्रातः जरेथे, वस्तोः-वस्तोः यजता गृहं गच्छथः, कस्य ध्वस्रा भवथः ? कस्य सवना वा राजपुत्रा इव अव गच्छथः ? ॥३॥

५९९ अर्थ— हे (नरा) नेता अश्विदेवों ! (कापया जरणा इव) वैतालिककी वाणीसे वृद्ध नरेश जैसे प्रशंसित होते हैं उसी तरह तुम (प्रातः जरेथे) सुबह प्रशंसित होते हो अर्थात् स्तोता लोग तुम्हारी सराहना करते हैं क्योंकि तुम (वस्तोः वस्तोः) प्रतिदिन (यजता) पूजनीय होते हुए, (गृहं गच्छथः) लोगोंके घर चले जाते हो; (कस्य ध्वस्रा भवथः) भला किसकी बुराईका विध्वंस तुम करते हो ? (कस्य सवना वा) या भला किसके यज्ञोंमें तुम (राजपुत्रा इव) राजकुमारकी नाईं (अव गच्छथः) चले जाते हो ? ॥

[६००]

६०० युवां मृगेव वारणा मृगण्यवो दोषा वस्तोर्हविषा नि ह्वयामहे । युवं होत्रामृतुथा जुह्वते नरेषं जनाय वहथः शुभस्पती ॥४॥

६०० युवाम् । मृगाऽइव । वारणा । मृगण्यवः ।
दोषा । वस्तोः । हविषा । नि । ह्वयामहे ॥
युवम् । होत्राम् । ऋतुऽथा । जुह्वते । नरा ।
इषम् । जनाय । वहथः । शुभः । पती इति ॥४॥

६०० अन्वयः— नरा ! मृगण्यवः वारणा मृगा इव, युवां हविषा दोषा वस्तोः नि ह्वयामहे, युवं ऋतुथा होत्रां जुह्वते, शुभस्पती जनाय इषं वहथः ॥ ४ ॥

६०० अर्थ– हे (नरा) नेता अश्विदेवों ! (मृगण्यवः) मृगोंको ढूँढनेवाले (वारणा मृगा इव) हटानेयोग्य बाघसदृश पशुओंकी तरह हम (युवां) तुम्हें (हविषा) हविके साथ (दोषा वस्तोः नि ह्वयामहे) रातदिन नियमपूर्वक बुलाते हैं और (युवं) तुम्हारे लिए (ऋतुथा) विभिन्न ऋतुओंके अनुकूल (होत्रां जुह्वते) आहुतिका दान दे डालते हैं, और तुम (शुभस्पती) अच्छे कर्मोंके अधिपति होते हुए (जनाय इषं वहथः) जनताके लिए अन्न पहुँचाते रहते हो ॥

[६०१]

६०१ युवां ह घोषा पर्यश्विना यती राज्ञ ऊचे दुहिता पृच्छे वां नरा । भूतं मे अह्न उत भूतमक्तवेऽश्वावते रथिने शक्तमर्वते ॥५॥

६०१ युवाम् । ह । घोषा । परि । अश्विना । यती ।
राज्ञः । ऊचे । दुहिता । पृच्छे । वाम् । नरा ॥
भूतम् । मे । अह्ने । उत । भूतम् । अक्तवे ।
अश्वऽवते । रथिने । शक्तम् । अर्वते ॥५॥

६०१ अन्वयः– नरा ! राज्ञः दुहिता घोषा युवां ह परि यती ऊचे वां पृच्छे, मे अह्ने भूतं उत अक्तवे भूतं, अश्वावते रथिने अर्वते शक्तम् ॥ ५ ॥

६०१ अर्थ— हे (नरा) नेता अश्विदेवो ! (राज्ञः दुहिता घोषा) राजकुमारी घोषा (युवां ह) तुम्हारे संबंधमें (परि यती ऊचे) चली जाती हुई कह चुकी, (वां पृच्छे) अब तुमसे प्रश्न करता हूँ; (मे अह्ने भूतं) मेरेलिए दिनके समय इधर रहो (उत अक्तवे भूतं) और रात्रीकी वेलामें भी मेरे समीप रहो तथा (अश्वावते रथिने) घोडेवाले तथा रथवालेके लिए (अर्वते शक्तं) और घोडेके लिए हित करनेके लिये समर्थ बनो ॥

[६०२]

६०२ युवं कवी ष्ठः पर्यश्विना रथं विशो न कुत्सो जरितुर्नशायथः । युवोर्ह मक्षा पर्यश्विना मध्वासा भरत निष्कृतं न योषणा ॥६॥

६०२ युवम् । कवी इति । स्थः । परि । अश्विना । रथम् ।
विशः । न । कुत्सः । जरितुः । नशायथः ॥
युवोः । ह । मक्षा । परि । अश्विना । मधु ।
आसा । भरत । निःऽकृतम् । न । योषणा ॥६॥

६०२ अन्वयः— अश्विना ! कवी युवं रथं परि स्थः, कुत्सः न जरितुः विशः नशायथः, योषणा निष्कृतं न, युवोः मधु ह मक्षाः आसा परि भरत ॥ ६ ॥

६०२ अर्थ— हे अश्विदेवों ! (कवी युवं) विद्वान् तुम दोनों (रथं परि स्थः) रथको चारों ओरसे घेर खडे रहते हो और (कुत्सः न) कुत्सके तुल्य (जरितुः विशः नशायथः) स्तोता लोगोंके समीप जाते हो; (योषणा निष्कृतं न) नारी भली भाँति तैयार किए हुए मधुको जिस तरह इकट्ठा कर लेती है वैसेही (युवोः मधु ह) तुम्हारे मधुकोही (मक्षाः आसा) मधुमक्खियाँ मुँहसे (परि भरत) चारों ओरसे बटोरती हैं ॥

[६०३]

६०३ युवं ह भुज्युं युवमश्विना वशं युवं शिञ्जारमुशनामुपारथुः।
युवो ररावा परि सख्यमासते युवोरहमवसा सुम्नमा चके॥

६०३ युवम् । ह । भुज्युम् । युवम् । अश्विना । वशम् ।
युवम् । शिञ्जारम् । उशनाम् । उप । आरथुः ॥
युवोः । ररावा । परि । सख्यम् । आसते ।
युवोः । अहम् । अवसा । सुम्नम् । आ । चके ॥७॥

६०३ अन्वयः— अश्विना ! युवं ह भुज्युं, वशं युवं, शिञ्जारं उशनां युवं उप आरथुः; ररावा युवोः सख्यं परि आसते; अहं युवोः अवसा सुम्नं आ चके ॥ ७ ॥

६०३ अर्थ- हे अश्विदेवों! (युवं ह भुज्युं) तुम भुज्युके पास गये, (वशं युवं) तुम वशके पास भी गये (शिञ्जारं उशनां युवं) शिञ्जार तथा उशनाके (उप आरथुः) समीप तुम चले गये थे; (ररावा) दाता भक्त (युवोः सख्यं परि आसते) तुम्हारी मित्रता पानेकी प्रतीक्षा करता है, (अहं) मैं (युवोः अवसा) तुम्हारी रक्षासे (सुम्नं आ चके) सुख पाना चाहता हूँ ॥

[६०४]

६०४ युवं ह कृशं युवमश्विना शयुं युवं विधन्तं विधवामुरुष्यथः।
युवं सनिभ्यः स्तनयन्तमश्विनाप व्रजमूर्णुथः सप्तास्यम्॥

६०४ युवम् । ह । कृशम् । युवम् । अश्विना । शयुम् ।
युवम् । विधन्तम् । विधवाम् । उरुष्यथः ॥
युवम् । सनिऽभ्यः । स्तनयन्तम् । अश्विना ।
अप । व्रजम् । ऊर्णुथः । सप्तऽआस्यम् ॥८॥

६०४ अन्वयः— अश्विना ! कृशं युवं ह, शयुं युवं, विधन्तं विधवां युवं उरुष्यथः; युवं सप्तास्यं स्तनयन्तं व्रजं सनिभ्यः अप ऊर्णुथः ॥ ८ ॥

६०४ अर्थ— हे अश्विदेवो ! (कृशं युवं ह) दुर्बलको तुमही, (शयुं युवं) शयन करनेवालेको तुम, (विधन्तं विधवां) आश्रयरहित विधवाको भी (युवं उरुष्यथः) तुम बचाते हो, (युवं) तुम (सप्तास्यं स्तनयन्तं) व्रजं सात द्वारोंवाले तथा आवाज करनेवाले गौओंके बाडेको (सनिभ्यः अप ऊर्णुथः) दाताओंके लिए खोल देते हो ॥

६०४ भावार्थ— अश्विदेव कृशको पुष्ट बनाते हैं, और बिस्तरेपर सोनेवाले बीमारको रोगरहित बनाते हैं, निराश्रित विधवाकी सहायता करते हैं और दाताओंको गौवोंका दान करनेके लिये सात द्वारोंवाले और खोलनेके समय शब्द करनेवाले गौओंके बाडेको खोल देते हैं और गौओंका दान भी करते हैं।

[६०५]

६०५ जनिष्ट योषा पतयत् कनीनको वि चारुहन् वीरुधो
दंसना अनु । आऽस्मै रीयन्ते निवनेव सिन्धवोऽस्मा
अह्ने भवति तत् पतित्वनम् ॥९॥

६०५ जनिष्ट । योषा । पतयत् । कनीनकः ।
वि । च । अरुहन् । वीरुधः । दंसनाः । अनु ॥
आ । अस्मै । रीयन्ते । निवनाऽइव । सिन्धवः ।
अस्मै । अह्ने । भवति । तत् । पतिऽत्वनम् ॥९॥

६०५ अन्वयः— योषा जनिष्ट, कनीनको पतयत, दंसनाः अनु वीरुधः च वि अरुहन्, अस्मै निवना [illegible] सिन्धवः आ रीयन्ते, अह्ने अस्मै तत् पतित्वनं भवति ॥९॥

६०५ अर्थ— (योषा जनिष्ट) युवति तरुणी हो गयी है, (कनीनकः पतयत्) दृष्टि उसपर पड़ी है, (दंसनाः अनु) तुम्हारे कर्मोंके लिये (वीरुधः च वि अरुहन्) लतावनस्पतियां भी खूब बढ़ने लगें, (अस्मै) इसके लिए (निवनाः इव सिन्धवः आ रीयन्ते) ऊपरसे कूदनेवाली नदियोंके समान शोभाएँ बढ़ रही हैं ऐसे (अह्ने अस्मै) इस दिनके लिए (तत् पतित्वनं भवति) वह पतिपन होता है ॥

६०५ भावार्थ— जब कन्या तरुण होती है तब उसकी दृष्टि तरुणपर जाती है, इनके लिये विविध कर्मोंके करनेके लिये वनस्पतियाँ बढ़ती और फल-फूलवाली बनती हैं, पर्वतपरसे कूदनेवाली नदियां समुद्रको आ मिलती हैं। इस तरह तरुणीके कारण पतित्वकी सिद्धि होती है।

६०५ टिप्पणी— कन्या तरुण होती है, तब वह पतिकी कामना करती है, वनस्पतियोंसे फल उत्पन्न होनेके समान वह तरुणी अपनेको संतान होनेकी इच्छा करती है, और नदी समुद्रको मिलनेके समान वह पतिको प्राप्त करती है। इस तरह तरुणीका समागम पतिसे होता है।

[६०६]

६०६ जीवं रुदन्ति वि मयन्ते अध्वरे दीर्घामनु प्रसितिं
दीधियुर्नरः । वामं पितृभ्यो य इदं समेरिरे मयः
पतिभ्यो जनयः परिष्वजे ॥१०॥

६०६ जीवम् । रुदन्ति । वि । मयन्ते । अध्वरे ।
दीर्घाम् । अनु । प्रऽसितिम् । दीधियुः । नरः ॥
वामम् । पितृऽभ्यः । ये । इदम् । सम्ऽएरिरे ।
मयः । पतिऽभ्यः । जनयः । परिऽस्वजे ॥१०॥

६०६ अन्वयः— नरः जीवं रुदन्ति, अध्वरे वि मयन्ते, दीर्घां प्रसितिं अनु दीधियुः ये इदं वामं पितृभ्यो समेरिरे, जनयः पतिभ्यः मयः परिष्वजे ॥१०

६०६ अर्थ- (नरः) जो मनुष्य (जीवं रुदन्ति) जीवके हितके लिये रोते हैं, अर्थात् हित करनेके लिये कष्ट उठाकर अपना प्रेम व्यक्त करते हैं, वेही (अध्वरे वि मयन्ते) गृहाश्रमरूप यज्ञमें स्त्रीको विशेष सुख पहुंचाते हैं। वे (दीर्घां प्रसितिं अनु) दीर्घ बंधन (विवाहके बन्धन) के अनुकूल रहकर सबके पालनका भार स्वयं (दीधियुः) धारण करते हैं। (ये इदं वामं पितृभ्यः समेरिरे) जो इस रमणीय संतानको पितरोंके हितके लिये प्रेरित करते हैं, वेही (जनयः पतिभ्यः सचा परिष्वजे) स्त्रियाँ अपने पतियोंको सुख देनेके लिये आलिंगन देती हैं ॥

६०६ भावार्थ- जो पुरुष अपने कुटुम्बियोंका हित करनेके लिये अत्यंत कष्ट उठाते हैं, वेही हिंसारहित प्रेममय गृहाश्रममें सबको सुखी करते हैं, वेही विवाहका दीर्घ बंधन धारण करते हैं अर्थात् विवाह-विच्छेद नहीं करते। वे अपने रमणीय संतानको पितरोंके लिये उत्पन्न करते हैं। इनकी स्त्रियाँ अपने पतियोंको सुखी करनेके लिये उनको आलिंगन देती हैं।

६०६ मानवधर्म— स्वजनोंको जीवोंको सुखी करनेके लिये मनुष्य कष्ट करें, गृहस्थाश्रममें रहकर सबको सुखी करें, प्रेमसे रहें, विवाहका प्रदीर्घ बंधन धारण करें, विवाह-विच्छेद न करें। रमणीय संतानका पालन करके पितरोंको सुखी करें। ऐसे प्रेममय कुटुम्बमें स्त्री पतिका सुख बढानेके लिये पतिको आलिंगन देवें।

[६०७]

६०७ न तस्य॑ वि॒द्म तदु॒ षु प्र वो॑चत॒ युवा॑ ह॒ यद् यु॑व॒त्याः
क्षेति॒ योनि॑षु । प्रि॒योस्रि॑यस्य वृष॒भस्य॑ रे॒तिनो॑ गृ॒हं
गमे॑माश्विना॒ तदु॑श्मसि ॥११॥

६०७ न । तस्य॑ । वि॒द्म । तत् । ऊँ इति॑ । सु । प्र । वो॒च॒त॒ ।
युवा॑ । ह॒ । यत् । यु॒व॒त्याः । क्षेति॑ । योनि॑षु ॥
प्रि॒यऽउ॑स्रियस्य । वृ॒ष॒भस्य॑ । रे॒तिनः॑ ।
गृ॒हम् । ग॒मे॒म॒ । अ॒श्वि॒ना॒ । तत् । उ॒श्म॒सि॒ ॥११॥

६०७ अन्वयः– अश्विना ! तस्य न विद्म, तत् उ सु प्र वोचत उ, यत् युवा ह युवत्याः योनिषु क्षेति; तत् उश्मसि (यत्) रेतिनः प्रिय-उस्रियस्य वृषभस्य गृहं गमेम ॥ ११ ॥

६०७ अर्थ— हे (अश्विना) अश्विदेवों ! (तस्य न विद्म) उसके उस सुखको हम नहीं जानते, (तत् उ सु प्र वोचत उ) जो सुख तुम वर्णन करते हैं। (यत् युवा ह युवत्याः योनिषु क्षेति) जो सुख तरुण पुरुष तरुणीके साथ घरमें रहता हुआ प्राप्त करता है, (तत् उश्मसि) वह सुख हम चाहते हैं, (यत् रेतिनः प्रिय–उस्रियस्य वृषभस्य गृहं गमेम) जो वीर्यवान् युवतिपर प्रेम करनेवाले बैल जैसे हृष्टपुष्टके घर जायंगे और प्राप्त करेंगे ॥

६०७ भावार्थ— हे अश्विदेवो ! वह सुख अवर्णनीय है कि जो तुमने गृहस्थाश्रमियोंको प्राप्त होता है ऐसा वर्णन किया है। जो सुख तरुण तरुणीके साथ घरमें रहकर प्राप्त करता है और जिस सुखके लिये वीर्यवान् स्त्रीपर प्रेम करनेवाले बलिष्ठ तरुणके घरमें रहकर तरुण स्त्री प्राप्त करना चाहती है।

[६०८]

६०८ आ वा॒मग॑न्त्सुम॒तिर्वा॑जिनीवसू॒ न्य॑श्विना हृ॒त्सु कामा॑ अयंसत । अभू॑तं गो॒पा मि॑थु॒ना शु॑भस्पती प्रि॒या अ॑र्य॒म्णो दु॒र्याँ॑ अशीमहि ॥१२॥

६०८ आ । वा॒म् । अग॑न् । सु॒ऽम॒तिः । वा॒जि॒नी॒व॒सू॒ इति॑ वाजिनीऽवसू । नि । अ॒श्वि॒ना॒ । हृ॒त्ऽसु । कामाः॑ । अ॒यं॒स॒त॒ ॥ अभू॑तम् । गो॒पा । मि॒थु॒ना । शु॒भः॒ । प॒ती॒ इति॑ । प्रि॒याः । अ॒र्य॒म्णः । दु॒र्यान् । अ॒शी॒म॒हि॒ ॥१२॥

६०८ अन्वयः— वाजिनी-वसू अश्विना ! सुमतिः वां आ अगन्, हृत्सु कामाः नि अयंसत; शुभस्पती ! मिथुना गोपा अभूतं, प्रियाः अर्यम्णः दुर्यान् अशीमहि ॥ १२ ॥

६०८ अर्थ- हे (वाजिनी-वसू) सेनारूपी धनवाले अश्विदेवों ! (सुमतिः वां आ अग्मन्) सुबुद्धि तुम्हारे निकट आ जाए और (हृत्सु कामाः नि अयंसत) अन्तःकरणोंमें इच्छाएँ नियंत्रित हों; हे (शुभः-पती) अच्छी बातोंके पालनकर्ता अश्विदेवो ! (मिथुना गोपा अभूतं) तुम दोनों संरक्षक बनो, ताकि (प्रियाः) प्यारे होकर हम (अर्यम्णः दुर्यान् अशीमहि) अर्यमाके घरोंको पहुँच जायँ ॥

६०८ भावार्थ- हे अश्विदेवों ! हमारे पास आनेकी सुबुद्धि तुम्हारे अन्दर हो, तुम्हारे हृदयमें यही इच्छा रहे, तुम दोनों हमारे संरक्षक बनो और हम तुम्हारे प्यारे बनें और यज्ञगृहमें आनन्दसे यज्ञ करते रहें ।

[६०९]

६०९ ता मन्दसाना मनुषो दुरोण आ धत्तं रयिं सहवीरं वचस्यवे । कृतं तीर्थं सुप्रपाणं शुभस्पती स्थाणुं पथेष्ठामप दुर्मतिं हतम् ॥१३॥

६०९ ता । मन्दसाना । मनुषः । दुरोणे । आ । धत्तम् । रयिम् । सहऽवीरम् । वचस्यवे ॥ कृतम् । तीर्थम् । सुऽप्रपानम् । शुभः । पती इति । स्थाणुम् । पथेऽस्थाम् । अप । दुःऽमतिम् । हतम् ॥१३॥

६०९ अन्वयः- मन्दसाना ता मनुषः दुरोणे वचस्यवे सहवीरं रयिं आ धत्तम्; शुभस्पती ! तीर्थं सुप्रपाणं कृतं, पथेष्ठां स्थाणुं दुर्मतिं अप हतम् ॥१३॥

६०९ अर्थ- (मन्दसाना ता) हर्षित होते हुए वे प्रसिद्ध तुम दोनों (मनुषः दुरोणे) मानवके घरमें (वचस्यवे) भाषण करनेकी इच्छा करनेवालेको (सहवीरं रयिं आ धत्तं) वीरोंसे युक्त धन देदाओ; हे (शुभः पती) अच्छे कार्योंके अधिपति अश्विदेवो ! (तीर्थं सुप्रपाणं कृतं) जलतीर्थको अच्छी तरह पान करनेयोग्य बना दो और (पथे-स्थां स्थाणुं) मार्गके मध्य ठठ खडे होनेवाले वृक्ष या पत्थरको तथा (दुर्मतिं अप हतं) दुरात्मा पुरुषको मार भगाओ ॥

६०९ भावार्थ— जो यज्ञशालामें शुभविचार प्रकट करता है, उसको ऐसा धन मिले कि जिसके साथ संरक्षक वीर सदा रहते हैं। सब लोग अच्छे कर्मोंकोही करते रहें, जलस्थान पवित्र रखें, मार्गके कंकड दूर किये जाय, और दुष्ट बुद्धि मनुष्यका नाश हो।

[६१०]

६१० कुह स्विद्द्य कतमास्वश्विना विक्षु दुस्रा मादयेते शुभस्पती।
क ईं नि येमे कतमस्य जग्मतुर्विप्रस्य वा यजमानस्य वा गृहम् ॥१४॥

६१० कुह । स्वित् । अद्य । कतमासु । अश्विना ।
विक्षु । दुस्रा । मादयेते इति । शुभः । पती इति ॥
कः । ईम् । नि । येमे । कतमस्य । जग्मतुः ।
विप्रस्य । वा । यजमानस्य । वा । गृहम् ॥१४॥

६१० अन्वयः— दस्रा ! शुभस्पती अश्विना ! अद्य क्व स्वित् कतमासु विक्षु मादयेते ? ईं कः नि येमे, कतमस्य विप्रस्य वा यजमानस्य वा गृहं जग्मतुः ? ॥१४॥

६१० अर्थ— हे (दस्रा) दर्शनीय (शुभस्पती) अच्छे कर्मोंके पालक अश्विदेवो ! (अद्य क्व स्वित्) आज भला किधर (कतमासु विक्षु) कौनसी प्रजाओंमें (मादयेते) तुम हर्षित हो रहे हो ? (ईं कः नि येमे) इन्हें कौन भला अपनी ओर आकर्षित कर रखता है ? (कतमस्य विप्रस्य वा यजमानस्य वा गृहं) भला किस ब्राह्मणके या यजमानके घर (जग्मतुः) ये दोनों चले गये ?

[६११] (ऋ० १०।४१।१-३)
(६११-६१३) सुहस्त्यो घौषेयः । जगती ।

६११ समानमु त्यं पुरुहूतमुक्थ्यं१ रथं त्रिचक्रं सवना गनिग्मतम्। परिज्मानं विदथ्यं सुवृक्तिभिर्वयं व्युष्टा उषसो हवामहे ॥१॥

६११ समानम् । ऊँ इति । त्यम् । पुरुऽहूतम् । उक्थ्यम् ।
रथम् । त्रिऽचक्रम् । सवना । गनिग्मतम् ॥
परिऽज्मानम् । विदथ्यम् । सुवृक्तिऽभिः ।
वयम् । विऽउष्टौ । उषसः । हवामहे ॥१॥

६११ अन्वयः— त्यं समानं, पुरुहूतं, उक्थ्यं, त्रिचक्रं, सवना गनिग्मतं, परिज्मानं, विदथ्यं रथं वयं उषसः व्युष्टौ सुवृक्तिभिः हवामहे ॥ १ ॥

६११ अर्थ— (त्यं समानं) उस तुम दोनोंके लिए समान (पुरुहूतं) बहुतोंने बुलाये हुए (उक्थ्यं) प्रशंसनीय, (त्रिचक्रं) तीन पहियोंसे युक्त (सवना गनिग्मतं) यज्ञोंमें जानेवाले (परिज्मानं) चारों ओर गतिशील (विदथ्यं रथं) यज्ञके लिए या युद्धके लिए योग्य रथको (वयं उषसः व्युष्टौ) हम सब उषःवेलाके प्रादुर्भाव होनेपर (सुवृक्तिभिः हवामहे) अच्छी स्तुतियोंसे बुलाते हैं ॥

[६१२]

६१२ प्रातर्युजं नासत्याधि तिष्ठथः प्रातर्यावाणं मधुवाहनं
रथम् । विशो येन गच्छथो यज्वरीर्नरा कीरेश्चिद्यज्ञं
होतृमन्तमश्विना ॥२॥

६१२ प्रातःऽयुजम् । नासत्या । अधि । तिष्ठथः ।
प्रातःऽयावानम् । मधुऽवाहनम् । रथम् ॥
विशः । येन । गच्छथः । यज्वरीः । नरा ।
कीरेः । चित् । यज्ञम् । होतृऽमन्तम् । अश्विना ॥२॥

६१२ अन्वयः— नासत्या अश्विना ! नरा ! मधुवाहनं प्रातर्यावाणं प्रातः-युजं रथं अधि तिष्ठथः, येन यज्वरीः विशः, कीरेः होतृमन्तं यज्ञं चित् गच्छथः ॥ २ ॥

६१२ अर्थ— हे सत्यपूर्ण तथा (नरा) नेता अश्विदेवों ! (मधुवाहनं) मधु ढोनेवाले, (प्रातः-यावाणं) सुबहही यात्राके लिए निकलनेवाले, (प्रातः-युजं) इसलिए प्रातःकालही घोडोंसे युक्त होनेवाले रथपर (अधि तिष्ठथः) तुम चढते हो, (येन) जिस रथसे (यज्वरीः विशः) यजनशील प्रजाओंके समीप और (कीरेः होतृमन्तं यज्ञं चित् गच्छथः) स्तोताके दानी लोगोंसे युक्त यज्ञके प्रति भी तुम चले जाते हो ॥

[६१३]

६१३ अध्वर्युं वा मधुपाणिं सुहस्त्यमग्निधं वा धृतदक्षं दमूनसम्।
विप्रस्य वा यत् सवनानि गच्छथोऽत आ यातं
मधुपेयमश्विना ॥३॥

६१३ अध्वर्युम् । वा । मधुऽपाणिम् । सुऽहस्त्यम् ।
अग्निधम् । वा । धृतऽदक्षम् । दमूनसम् ॥
विप्रस्य । वा । यत् । सवनानि । गच्छथः ।
अतः । आ । यातम् । मधुऽपेयम् । अश्विना ॥३॥

६१३ अन्वयः— अश्विना ! मधुपाणिं सुहस्त्यं अध्वर्युं वा धृतदक्षं दमूनसं अग्निधं वा, यत् विप्रस्य सवनानि वा गच्छथः अतः मधुपेयं आ यातम् ॥ ३ ॥

६१३ अर्थ— हे अश्वि ! (मधुपाणिं सुहस्त्यं) हाथमें मधु धारण किये हुए और हाथोंसे अच्छे कार्य करनेवाले (अध्वर्युं वा) अध्वर्युके पास, अथवा (धृतदक्षं दमूनसं अग्निधं वा) बल धारण किये हुए दान देनेकी इच्छा करनेवाले अग्निहोत्रीके समीप, या (यत् विप्रस्य सवनानि वा) जो तुम विद्वान्के यज्ञोंमें (गच्छथः) चले जाते हो, (अतः) तो भी वहांसे (मधु-पेयं आ यातं) मधु जिसमें पीनेके लिए मिलता हो ऐसे हमारेही यज्ञमें चले आओ ॥

[६१४] (ऋ. १०।१०६।१-११)

(६१४-६२४) भूतांशः काश्यपः। त्रिष्टुप्।

६१४ उभा उ नूनं तदिदर्थयेथे वि तन्वाथे धियो वस्त्रापसेव ।
सध्रीचीना यातवे प्रेमजीगः सुदिनेव पृक्ष आ तंसयेथे॥१

६१४ उभौ । ॐ इति । नूनम् । तत् । इत् । अर्थयेथे इति ।
वि । तन्वाथे इति । धियः । वस्त्रा । अपसाऽइव ॥
सध्रीचीना । यातवे । प्र । ईम् । अजीगरिति ।
सुदिनाऽइव । पृक्षः । आ । तंसयेथे इति ॥१॥

६१४ अन्वयः— उभौ नूनं तत् इत् अर्थयेथे, धियः वि तन्वाथे, अपसा इव वस्त्रौ, ईं सध्रीचीना यातवे प्र अजीगः, सुदिना इव पृक्षः आ तंसयेथे॥१॥

६१४ अर्थ— हे अश्विनौ ! (उभौ) तुम दोनों (नूनं तत् इत्) निःसन्देह वही हमारा स्तोत्र (अर्थयेथे) चाहते हैं। और (धियः वि तन्वाथे) अपनी बुद्धियोंको हित करनेके लिए फैलाते हैं। (अपसा इव वस्त्रौ) जैसे दो जोलाहे वस्त्रोंको फैलाते हैं। (ईं सध्रीचीना यातवे प्र अजीगः) यह भक्त तुम दोनों साथ रहनेवालोंकी स्तुति अभीष्ट प्राप्तिके लिए करता है। और (सुदिना इव पृक्षः आ तंसयेथे) उत्तम दिनोंमें जिस तरह सब लोग अपनी सजावट करते हैं, वैसेही अन्नकी सजावट तुम्हारे करते हैं॥१॥

[५८७]

६१५ उष्टारेव फर्वरेषु श्रयेथे प्रायोगेव श्वात्र्या शासुरेथः ।
दूतेव हि ष्ठो यशसा जनेषु माप स्थातं महिषेवावपानात्

६१५ उष्टाराऽइव । फर्वरेषु । श्रयेथे इति ।
प्रायोगाऽइव । श्वात्र्या । शासुः । आ । इथः ॥
दूताऽइव । हि । स्थः । यशसा । जनेषु ।
मा । अप । स्थातम् । महिषाऽइव । अवऽपानात् ॥२॥

६१५ अन्वयः– उष्टारा इव फर्वरीषु श्रयेथे श्वात्र्या प्रायोगा इव शासुः आ इथः; हि जनेषु दूता इव यशसा स्थः महिषा इव अव पानात् मा अप स्थातम्॥

६१५ अर्थ— (उष्टारा इव फर्वरीषु श्रयेथे) बैल जिस तरह घासवाली भूमिका आश्रय करते हैं, (श्वात्र्या प्रायोगा इव शासुः आ इथः) धनप्राप्तिके लिये प्रयत्न करनेवाले वीर जैसे शासकके पास जाते हैं। (हि जनेषु दूता इव यशसा स्थः) जनतामें राजदूत जैसे यशस्वी होते हैं। (महिषा इव अव पानात् मा अप स्थातम्) उस तरह भैंसेके समान जलपानस्थानसे— सोमपानस्थानसे—दूर मत होओ ॥२॥

[६१६]

६१६ साकंयुजा शकुनस्येव पक्षा पश्वेव चित्रा यजुरा गमिष्टम्।
अग्निरिव देवयोर्दीदिवांसा परिज्मानेव यजथः पुरुत्रा॥३

६१६ साकम्ऽयुजा । शकुनस्यंऽइव । पक्षा ।
पश्वाऽइव । चित्रा । यजुः । आ । गमिष्टम् ॥
अग्निःऽइव । देवऽयोः । दीदिऽवांसा ।
परिज्मानाऽइव । यजथः । पुरुऽत्रा ॥३॥

६१६ अन्वयः- शकुनस्य इव पक्षा साकं युजा, चित्रा पश्वा इव यजुः आ गमिष्टम्; देवयोः अग्निः इव दीदिवांसा, परिज्माना इव पुरुत्रा यजथः ॥ ३ ॥

६१६ अर्थ- (शकुनस्य इव पक्षा साकंयुजा) शकुन्त-पक्षीके दो पंख जैसे साथ साथ जुडे रहते हैं। (चित्रा पश्वा इव यजुः आ गमिष्टं) दो विलक्षण पशु जैसे मिलकर जाते हैं। (देवयोः अग्निः इव दीदिवांसा) दिव्य अग्निके समान दीप्तिमान, तुम दोनों (परिज्माना इव पुरुत्रा यजथः) चारों ओर जानेवाले अनेक स्थानोंमें जाकर यजन करते हैं ॥

[६१७]

६१७ आपी वो अस्मे पितरेव पुत्रोग्रेव रुचा नृपतीव तुर्यै।
इर्येव पुष्ट्यै किरणेव भुज्यै श्रुष्टीवानेव हवमा गमिष्टम्॥४

६१७ आपी इति । वः । अस्मे इति । पितराऽइव । पुत्रा ।
उग्राऽइव । रुचा । नृपती इवेति नृपतीऽइव । तुर्यै ॥
इर्याऽइव । पुष्ट्यै । किरणाऽइव । भुज्यै ।
श्रुष्टीवानाऽइव । हवम् । आ । गमिष्टम् ॥४॥

६१७ अन्वयः— अस्मे वः आपी, पितरौ इव पुत्राः रुचा उग्रा इव, तुर्ये नृपती इव, पुष्ट्यै इर्यौ इव, भुज्यै किरणा इव, श्रुष्टीवाना इव हवं आ गमिष्टम् ॥ ४ ॥

६१७ अर्थ— (अस्मे वः आपी) हमारे लिये आप दोनों प्राप्त हैं। (पितरौ इव पुत्राः) पुत्रोंके लिये मातापिता जैसे (रुचा उग्रा इव) तेजसे दीप्तिमान उग्रवीरोंके समान, (तुर्ये नृपती इव) त्वरासे कार्य करनेवालेके लिये संरक्षक राजाओंके समान, (पुष्ये इर्या इव) पुष्टीके लिये भगवानोंके समान, (भुज्यै किरणा इव) भोगके लिये सूर्यकिरणोंके समान, (क्षुदीवाना इव इथं आ गमिष्टं) गतिमानोंके समान तुम दोनों यज्ञस्थानके पास जाते हैं॥

[६१८]

६१८ वंसंगेव पूषर्यां शिम्बाता मित्रेव ऋता शतरा शातपन्ता।
वाजेवोच्चा वयसा घर्म्येष्ठा मेषेवेषा सपर्या३ पुरीषा ॥५॥

६१८ वंसगाऽइव । पूषर्या । शिम्बाता ।
मित्राऽइव । ऋता । शतरा । शातपन्ता ॥
वाजाऽइव । उच्चा । वयसा । घर्म्येऽस्था ।
मेषाऽइव । इषा । सपर्या । पुरीषा ॥५॥

६१८ अन्वयः— वंसगा इव पूषर्या, शिम्बाता मित्रा इव, ऋता शतरा शातपन्ता, वाजा इव वयसा उच्चा, घर्म्ये-स्था मेषा इव इषा सपर्या पुरीषा ॥ ५ ॥

६१८ अर्थ— (वंसगा इव पूषर्या) बैलके समान पुष्ट, (शिम्बाता मित्रा इव) सुखदायी मित्रोंके समान, (ऋता शतरा शातपन्ता) सत्यकारी, सैकडों सुखोंके दाता अत एव स्तुतिके योग्य, (वाजा इव वयसा उच्चा) घोडोंके समान शरीरसे ऊंचे, (घर्म्ये-स्था मेषा इव इषा सपर्या पुरीषा) आकाशस्थित, मेंढेके समान पूजनीय और पोषक तुम हो ॥

[६१९]

६१९ सृण्येव जर्भरी तुर्फरीतू नैतोशेव तुर्फरी पर्फरीका ।
उदन्यजेव जेमना मदेरू ता मे जराय्वजरं मराय ॥६॥

६१९ सृण्याऽइव । जर्भरी इति । तुर्फरीतू इति ।
नैतोशाऽइव । तुर्फरी इति । पर्फरीका ॥
उदन्यजाऽइव । जेमना । मदेरू इति ।
ता । मे । जरायु । अजरम् । मरायु ॥६॥

६१९ अन्वयः— सृण्या इव जर्भरी तुर्फरीतू, नैतोशा इव तुर्फरी पर्फरीका, उदन्यजा इव जेमना मदेरू, ता मे जरायु मरायु अजरम् ॥ ६ ॥

६१९ अर्थ— (सृण्या इव जर्भरी तुर्फरीतू) अंकुश जिस तरह हाथीका पोषण करता और कष्ट भी देता है, (नैतोशा इव तुर्फरी पर्फरीका) घातक शस्त्रके समान नाशक और विदारक, (उदन्यजा इव जेमना मदेरू) जलमें उत्पन्न रत्नके समान तेजस्वी, जयशील और हर्षवर्धक, (ता मे जरायु मरायु अजरं) वे दोनों अश्विदेव मेरे जीर्ण होनेवाले और मरनेवाले शरीरको अजर बनावें ॥

[६२०]

६२० पज्रेव चर्चरं जारं मरायु क्षद्मेवार्थेषु तर्तरीथ उग्रा ।
ऋभू नापत् खरमज्राखरज्रुर्वायुर्न पर्फरत्क्षयद्रयीणाम् ॥७

६२० पज्राऽइव । चर्चरम् । जारम् । मरायु ।
क्षद्मऽइव । अर्थेषु । तर्तरीथः । उग्रा ।
ऋभू इति । न । आपत् । खरमज्रा । खरऽज्रुः ।
वायुः । न । पर्फरत् । क्षयत् । रयीणाम् ॥७॥

६२० अन्वयः—उग्रा ! पज्रा इव चर्चरं जारं, मरायु अर्थेषु क्षद्म इव तर्तरीथः, ऋभू न खरज्रुः खरमज्रा आपत्, वायुः न पर्फरत् रयीणां क्षयत् ॥ ७ ॥

६२० अर्थ– हे (उग्रा) वीरो ! (पज्रा इव चर्चरं जारं) शत्रुको पराजित करनेवाले वीरोंके समान तुम दोनों, मेरे जर्जर और वृद्ध होनेवाले और (मरायु) मरनेवाले शरीरको (अर्थेषु क्षद्म इव तर्तरीथः) सब प्रकारके अर्थव्यवहारोंमें अन्न जलके समान सुरक्षित करते हो । (ऋभू न खरज्रु खरमज्रा आपत्) ऋभुदेवोंके समान वेगवान् रथ तुम वेगवानोंको प्राप्त हो । वह रथ (वायुः न पर्फरत्) वायुके समान वेगसे जावे और (रयीणां क्षयत्) धनोंको प्राप्त करे ॥

[६२१]

६२१ घर्मेव मधु जठरे सनेरू भगेऽविता तुर्फरी फारिवाऽरम् ।
पतरेव चचरा चन्द्रनिर्णिङ्मनऋङ्गा मनन्या३ न जग्मी ॥

•

६२१ घर्मोऽइंव । मधुं । जठरे । सनेरू इतिं ।
भगेऽअविता । तुर्फरी इतिं । फारिवा । अरम् ॥
पुतराऽइंव । चचरा । चन्द्रऽनिर्निक् ।
मनःऽऋङ्गा । मनन्या । न । जग्मी इतिं ॥८॥

६२१ अन्वयः– घर्मा इव जठरे मधु सनेरू, भगे-अविता अरं तुर्फरी फारिवा, पतरा इव चचरा चन्द्रनिर्णिक्, मनःऋङ्गा मनन्या न जग्मी ॥ ८ ॥

६२१ अर्थ— (घर्मा इव जठरे मधु सनेरू) तपानेके पात्रमें जैसा दूध वैसा तुम अपने पेटमें मधुर सोमरस सेवन करते हो, (भगे-अविता अरं तुर्फरी फारिवा) धनके संरक्षण करनेमें समर्थ शत्रुहिंसक शस्त्र तुम धारण करते हो, (पतरा इव चचरा चन्द्रनिर्णिक्) वेगसे उडनेवाले आकाशसंचारी पक्षीके समान और चन्द्रके समान सुंदर रूपधारी, (मनःऋङ्गा मनन्या न जग्मी) मनसे शोभा बढानेवाले, मनन करनेवाले और सत्कर्मके स्थानमें जानेवाले, ये अश्विदेव हैं ॥

[६२२]

६२२ बृहन्तेव गम्भरेषु प्रतिष्ठां पादेव गाधं तरते विदाथः ।
कर्णेव शासुरनु हि स्मराथोंऽशेव नो भजतं चित्रमप्नः ॥९

६२२ बृहन्ताऽइव । गम्भरेषु । प्रतिऽस्थाम् ।
पादाऽइव । गाधम् । तरते । विदाथः ॥
कर्णाऽइव । शासुः । अनु । हि । स्मराथः ।
अंशाऽइव । नः । भजतम् । चित्रम् । अप्नः ॥९॥

६२२ अन्वयः— बृहन्ता इव गम्भरेषु प्रतिष्ठां विदाथः, तरतः पादा इव गाधं (विदाथः), कर्णा इव शासुः हि अनु स्मराथः, अंशा इव नः चित्रं अप्नः भजतम् ॥ ९ ॥

६२२ अर्थ— (वृहन्ता इव गम्भरेषु प्रतिष्ठां विदाथः) बड़े वीरोंके समान तुम कठीण गम्भीर स्थितिमें भी अपनी सुस्थिति स्थिर रखना जानते हैं। (तरत. पादा इव गाधं विदाथः) तैरनेवालेके पावोंके समान तुम जलकी गहराईको जानते हैं। (कर्णा इव शासुः हि अनु स्मराथः) कानोंके समान तुम उत्तम शासनकर्ताकी आज्ञाका अथवा भक्तकी पुकारका स्मरण रखते हैं। (अंशा इव नः चित्रं भग्नः भक्तं) भजयवोंके सहभागी होनेके समान तुम हमारे उत्तम कर्मका सेवन करते हैं ॥

[६२३]

६२३ आरङ्गरेव मध्वेरयेथे सारघेव गवि नीचीनवारे ।
कीनारेव स्वेदमासिष्विदाना क्षामेवोर्जा सुयवसात् सचेथे ॥१०॥

६२३ आरङ्गराऽइव । मधु । आ । ईरयेथे इति ।
सारघाऽइव । गवि । नीचीनऽवारे ॥
कीनाराऽइव । स्वेदम् । आऽसिस्विदाना ।
क्षामेऽइव । ऊर्जा । सुयवसऽअत् । सचेथे इति॥१०॥

६२३ अन्वयः— आरङ्गरा इव मधु आ ईरयेथे, सारघा इव नीचीन-वारे गवि; कीनारा इव स्वेदं आसिष्विदाना, क्षामा इव सुयवसात् ऊर्जा सचेथे ॥१०॥

६२३ अर्थ— (आरङ्गरा इव मधु आ ईरयेथे) पर्याप्त वर्षा करनेवाले मेघोंके समान मधुर जल तुम प्रवाहित करते हैं, (सारधा इव नीचीनवारे गवि) मधुमक्खियोंके समान तुम गौके स्तनोंमें मधुर दूध प्रेरित करते हैं। (कीनारा इव स्वेदं आसिष्विदाना) बुरे नीच मानवके समान तुम पसीना बहा देते हैं। (क्षामा इव सुयवसात् ऊर्जा सचेथे) क्षीण गौके उत्तम जौ घास खाकर पुष्ट होनेके समान तुम भक्तको बलवान् बना देते हैं ॥

[६२४]

६२४ ऋध्याम स्तोमं सनुयाम वाजमा नो मन्त्रं सरथेहोप
यातम् । यशो न पक्वं मधु गोष्वन्तरा भूतांशो
अश्विनोः काममप्राः ॥११॥

६२४ ऋध्याम । स्तोमम् । सनुयाम । वाजम् ।
आ । नः । मन्त्रम् । सऽरथा । इह । उप । यातम् ॥
यशः । न । पक्वम् । मधु । गोषु । अन्तः ।
आ । भूतऽअंशः । अश्विनोः । कामम् । अप्राः ॥११॥

६२४ अन्वयः- स्तोमं ऋध्याम, वाजं सनुयाम, सरथा इह नः मन्त्रं उप आ यातम्, गोषु अन्तः पक्वं मधु यशो न, भूतांशः अश्विनोः कामं आ अप्राः ॥ ११ ॥

६२४ अर्थ— हम (स्तोमं ऋध्याम) सत्कर्मको बढाते हैं । (वाजं सनुयाम) अन्नका दान करते हैं । (सरथा इह नः मन्त्रं उप आ यातं) रथमें बैठकर यहां हमारे मननीय स्तोत्र सुननेके लिये आओ । (गोषु अन्तः पक्वं मधु यशो न) गौके अन्दर परिपक्व मधुर अन्न तुमने रखा है । इसलिये । (भूतांशः अश्विनोः कामं आ अप्राः) भूतोंका अंशरूप ऋषि अश्विदेवोंकी भक्ति यथेच्छ तथा पूर्णरूपसे करता है ॥

[६२५] (ऋ १०।१३१।४-५)

(६२५-६२६) सुकीर्तिः काक्षीवतः । ४ अनुष्टुप्, ५ त्रिष्टुप् ।

६२५ युवं सुराममश्विना नमुचावासुरे सचा ।
विपिपाना शुभस्पती इन्द्रं कर्मस्वावतम् ॥४॥

६२५ युवम् । सुरामम् । अश्विना ।
नमुचौ । आसुरे । सचा ॥
विऽपिपाना । शुभः । पती इति ।
इन्द्रम् । कर्मऽसु । आवतम् ॥४॥

६२५ अन्वयः— शुभस्पती अश्विना ! सुरामं पिपाना युवं, सचा आसुरे नमुचौ कर्मसु इन्द्रं आवतम् ॥ ४ ॥

६२५ अर्थ— हे (शुभस्पती अश्विना) उत्तम कर्मोंके संरक्षक दोनों अश्विदेवों ! (सुरामं वि-पिपाना युवं) उत्तम रमणीय रसका पान करनेवाले तुम (सचा) साथ साथ रहनेवाले दोनों देवोंने (आसुरे नमुचौ कर्मसु इन्द्रं आवतम्) नमुची असुरके साथ होनेवाले युद्धरूप कर्मोंमें इन्द्रकी सुरक्षा की ॥

[६२६]

६२६ पुत्रमिव पितरावश्विनोभेन्द्रावथुः काव्यैर्दंसनाभिः ।
यत् सुरामं व्यपिबः शचीभिः सरस्वती त्वा
मघवन्नभिष्णक् ॥५॥

६२६ पुत्रम्ऽइव । पितरौ । अश्विना । उभा ।
इन्द्र । आवथुः । काव्यैः । दंसनाभिः ॥
यत् । सुरामम् । वि । अपिबः । शचीभिः ।
सरस्वती । त्वा । मघऽवन् । अभिष्णक् ॥५॥

६२६ अन्वयः— पितरौ पुत्रं इव उभा अश्विना काव्यैः दंसनाभिः आवथुः, सुरामं यत् शचीभिः अपिबः, मघवन् ! सरस्वती त्वा अभिष्णक् ॥ ५ ॥

६२६ अर्थ— हे इन्द्र ! (पितरौ पुत्रं इव) मातापिता पुत्रकी जैसी रक्षा करते हैं वैसे (उभा अश्विना काव्यैः दंसनाभिः आवथुः) तुम दोनों प्रशंसनीय कर्मोंसे हमारी रक्षा करते हैं । (सुरामं यत् शचीभिः अपिबः) उत्तम रमणीय रस अपनी शक्तिके अनुसार तुमने पीया है । हे (मघवन्) इन्द्र ! (सरस्वती त्वा अभिष्णक्) सरस्वती तुम्हारी सेवा करती है, वर्णन करती है ॥

[६२७] (ऋ. १०।१४३।१-६)
(६२७-६३२) अत्रिः सांख्यः । अनुष्टुप् ।

६२७ त्यं चिदत्रिमृतजुरमर्थमश्वं न यातवे ।
कक्षीवन्तं यदी पुना रथं न कृणुथो नवम् ॥१॥

६२७ त्यम् । चित् । अत्रिम् । ऋतऽजुरम् ।
अश्वम् । अश्वम् । न । यातवे ॥
कक्षीवन्तम् । यदि । पुनरिति ।
रथम् । न । कृणुथः । नवम् ॥१॥

६२७ अन्वयः— त्यं चित् ऋतजुरं अत्रिं, अश्वं न यातवे अर्थम्, यदि कक्षीवन्तं पुनः नवं रथं न कृणुथः ॥१॥

६२७ अर्थ— (त्यं चित् ऋतजुरं अत्रिं) उन असुरोंके उपद्रवसे क्षीण हुए अत्रिको (अश्वं न यातवे) घोडेके समान वेगसे जानेके लिये (अर्थं) समर्थ बनानेके अर्थ तुमने सहायता दी। (यदि कक्षीवन्तं पुनः नवं रथं न कृणुथः) वैसेही कक्षीवान् ऋषिको पुनः तरुण, रथको पुनः नया बनानेके समान, बनाया ॥

[६२८]

६२८ त्यं चिदश्वं न वाजिनमरेणवो यमत्नत ।
दृळ्हं ग्रन्थिं न वि ष्यतमत्रिं यविष्ठमा रजः ॥२॥

६२८ त्यम् । चित् । अश्वम् । न । वाजिनम् ।
अरेणवः । यम् । अत्नत ॥
दृळ्हम् । ग्रन्थिम् । न । वि । स्यतम् ।
अत्रिम् । यविष्ठम् । आ । रजः ॥२॥

६२८ अन्वयः— अरेणवः, वाजिनं अश्वं न, यं अत्नत, त्यं चित् अत्रिं यविष्ठं रजः आ वि ष्यतं दृळ्हं ग्रन्थिं न ॥२॥

६२८ अर्थ— (अरेणवः, वाजिनं अश्वं न, यं अत्नत) धूलीके समान बिखेर न रहनेवाले असुरोंने, वेगवान् अश्वके समान जिस अत्रिको बांध रखा था। (त्यं चित् अत्रिं यविष्ठं) उस अत्रिको तरुण बनाकर (रजः आ विष्यतं) इस भूलोकमें बन्धमुक्त किया। (दृळ्हं ग्रन्थिं न) जैसे कोई दृढ ग्रन्थिको छोड देता है ॥

[६२९]

६२९ नरा दंसिष्ठावत्रये शुभ्रा सिषासतं धियः ।
अथा हि वां दिवो नरा पुनः स्तोमो न विशसे ॥३॥

६२९ नरा । दंसिष्ठौ । अत्रये ।
शुभ्रा । सिसासतम् । धियः ॥
अथ । हि । वाम् । दिवः । नरा ।
पुनरिति । स्तोमः । न । विऽशसे ॥३॥

६२९ अन्वयः— नरा दंसिष्ठौ शुभ्रा ! अत्रये धियः सिषासतम्, अथ हि दिवः स्तोमः न नरा ! वां पुनः विशसे ॥ ३ ॥

६२९ अर्थ— हे (नरा दंसिष्ठौ शुभ्रा) नेता दर्शनीय सुन्दर वीरों ! (अत्रये धियः सिषासतं) अत्रिके लिये उत्तम बुद्धि और कर्मशक्तिको तुमने दिया। (अथ हि दिवः स्तोमः न) पश्चात् दिव्य स्तोत्रके समान, हे (नरा) नेता वीरो ! (वां पुनः विशसे) वही तुम वीरोंकी पुनः विशेष प्रशंसा करते रहा ॥

[६३०]

६३० चिते तद् वां सुराधसा रातिः सुमतिरश्विना ।
आ यन्नः सदने पृथौ समने पर्षथो नरा ॥४॥

६३० चिते । तत् । वाम् । सुऽराधसा ।
रातिः । सुऽमतिः । अश्विना ॥
आ । यत् । नः । सदने । पृथौ ।
समने । पर्षथः । नरा ॥४॥

६३० अन्वयः— सुराधसा अश्विना ! सुमतिः रातिः तत् वां चिते, नरा ! यत् पृथौ समने सदने नः आ पर्षथः ॥ ४ ॥

६३० अर्थ— हे (सुदानवा अश्विना) उत्तम दान देनेवाले अश्विदेवो ! (सुमतिः रातिः तत् वां चित्ते) तुम्हारी उत्तम बुद्धि और उत्तम दातृत्व-शक्ति यह सब तुम्हारे उत्तम ज्ञानका सूचक है। हे (नरा) नेताओ ! (यत् पृथौ समने सदने नः आवर्धयः) तुम विस्तृत यज्ञगृहमें हमारी सुरक्षा करते हैं। इसलिये हम तुम्हारी भक्ति करते हैं ॥

[६३१]

६३१ युवं भुज्युं समुद्र आ रजसः पार ईङ्खितम् ।
यातमच्छा पतत्रिभिर्नासत्या सातये कृतम् ॥५॥

६३१ युवम् । भुज्युम् । समुद्रे । आ ।
रजसः । पारे । ईङ्खितम् ॥
यातम् । अच्छ । पतत्रिऽभिः ।
नासत्या । सातये । कृतम् ॥५॥

६३१ अन्वयः— युवं समुद्रे, रजसः पारे ईङ्खितं भुज्युं अच्छ; पतत्रिभिः आ यातं, नासत्या ! सातये कृतम् ॥ ५ ॥

६३१ अर्थ— (युवं समुद्रे, रजसः पारे ईङ्खितं भुज्युं अच्छ) तुम दोनों समुद्रमें, रेतके प्रदेशके परे डूबनेवाले भुज्युके पास (पतत्रिभिः आ यातं) पहुँच गये। हे (नासत्या) सत्यपालको ! (सातये कृतं) यह तुमने उनकी सहायताके लिये किया ॥

[६३२]

६३२ आ वां सुम्नैः शंयू इव मंहिष्ठा विश्ववेदसा ।
समस्मे भूषतं नरोत्सं न पिप्युषीरिषः ॥६॥

६३२ आ । वाम् । सुम्नैः । शंयू इवेति शंयूऽइव ।
मंहिष्ठा । विश्वऽवेदसा ॥
सम् । अस्मे इति । भूषतम् । नरा ।
उत्सम् । न । पिप्युषीः । इषः ॥६॥

६३१ अन्वयः— विश्ववेदसा नरा ! वां यंतू इव मंहिष्ठा सुम्नैः - आ; विप्रुषी: इषः उत्सं न अस्मे सं भूषतम् ॥ ६ ॥

६३१ अर्थ— हे (विश्ववेदसा नरा) सब जाननेवाले नेता वीरों ! (वां यंतू इव मंहिष्ठा सुम्नैः आ) तुम दोनों सुखदायी राजाओंके समान सम्मान योग्य, सब सुखसाधनोंके साथ हमारे पास आते हैं । (विप्रुषी: इषः उत्सं न अस्मे सं भूषतं) पुष्ट करनेवाले धनके हौजको (गौके दुग्धाशयको) देनेके समान, हमें धन देकर सुभूषित करो ॥

॥६३३॥ (ऋ. १०।१८४।३)

(६३३) त्वष्टा गर्भकर्ता, विष्णुर्वा प्राजापत्यः । अनुष्टुप् ।

६३३ हिरण्ययी अरणी यं निर्मन्थतो अश्विना ।
तं ते गर्भं हवामहे दशमे मासि सूतवे ॥३॥

६३३ हिरण्ययी इति । अरणी इति । यम् ।
निःऽमन्थतः । अश्विना ॥
तम् । ते । गर्भम् । हवामहे ।
दशमे । मासि । सूतवे ॥३॥

६३३ अन्वयः— हिरण्ययी अरणी यं अश्विना निर्मन्थतः, तं ते गर्भं हवामहे दशमे मासि सूतवे ॥ ३ ॥

६३३ अर्थ— (हिरण्ययी अरणी) सुवर्णकी अरणियाँ (यं अश्विना निर्मन्थतः) जिसको अश्विदेव मथते हैं, (तं ते गर्भं हवामहे) हे स्त्री ! तुम्हारे लिये उस गर्भको हम आवाहन करते हैं कि वह (दशमे मासि सूतवे) दसवें महिनेमें उत्पन्न हो जाय ॥

[६३४] (वा. य. १४।१-५)

६३४ ध्रुवक्षितिर्ध्रुवयोनिर्ध्रुवासि ध्रुवं योनिमासीद साधुया ।
उख्यस्य केतुं प्रथमं जुषाणाश्विनाध्वर्यू सादयतामिह त्वा

६३४ ध्रुवक्षितिरिति ध्रुवऽक्षितिः । ध्रुवयोनिरिति ध्रुवऽयोनिः।
ध्रुवा । असि । ध्रुवम् । योनिम् । आ । सीद ।
साधुयेति साधुऽया ॥
उख्यस्य । केतुम् । प्रथमम् । जुषाणा ।
अश्विना । अध्वर्यूऽइत्यध्वर्यू । सादयताम् । इह । त्वा ॥१

६३४ अन्वयः— ध्रुवक्षितिः, ध्रुवयोनिः ध्रुवा, उख्यस्य प्रथमं केतुं जुषाणा असि, साधुया ध्रुवं योनिं आ सीद, अध्वर्यू अश्विनौ त्वा इह सादयताम् ॥१॥

६३४ अर्थ- तू (ध्रुवक्षितिः) स्थिर रहनेवाली (ध्रुवयोनिः) स्थिर जन्मस्थानमें रहनेवाली अत एव (ध्रुवा) स्थिर हो। (उख्यस्य प्रथमं केतुं जुषाणा असि) उखाके प्रथम ध्वजाकी सेवा करनेवाली है। अतः (साधुया ध्रुवं योनिं आ सीद) उत्तम पद्धतिसे स्थिर स्थानमें बैठ। (अध्वर्यू अश्विनौ त्वा इह सादयतां) अहिंसक कार्य करनेवाले दोनों अश्विदेव तुझे यहां स्थापन करें। अग्निको मथकर इस वेदीमें रखें ॥

[६३५]

६३५ कुलायिनी घृतवती पुरंन्धिः स्योने सीद सदने पृथिव्याः।
अभि त्वा रुद्रा वसवो गृणन्त्विमा ब्रह्म पीपिहि
सौभगायाश्विनोऽध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥२॥

६३५ कुलायिनी । घृतवतीति घृतऽवती । पुरन्धिरिति
पुरम्ऽधिः । स्योने । सीद । सदने । पृथिव्याः ।
अभि । त्वा । रुद्राः । वसवः । गृणन्तु ।
इमा । ब्रह्म । पीपिहि । सौभगाय ।
अश्विना । अध्वर्यूऽइत्यध्वर्यू । सादयताम् । इह । त्वा ॥२

६३५ अन्वयः— पृथिव्याः स्योने सदने सीद, कुलायिनी घृतवती पुरन्धिः वसवः रुद्राः त्वा अभि गृणन्तु, सौभगाय इमा ब्रह्म पीपिहि, अध्वर्यू अश्विनौ त्वा इह सादयताम् ॥ २ ॥

६३५ अर्थ— (पृथिव्याः स्योने सदने सीद) पृथ्वीके ऊपरके सुखदायी स्थानमें बैठ । (कुलायिनी घृतवती) घरवाली और घीसे भरपूर होकर (पुरन्धिः) नगरका धारण करनेवाली हो । (वसवः रुद्राः त्वा अभि गृणन्तु) निवास करनेवाले और शत्रुको रुलानेवाले वीर तुम्हारी प्रशंसा करें। (सौभगाय इमा ब्रह्म पीपिहि) उत्तम भाग्य प्राप्त करनेके लिये इन स्तोत्रको—इस ज्ञानकोरसमय बनाओ । (अध्वर्यू अश्विनौ त्वा इह सादयताम्) अहिंसक कार्य करनेवाले दोनों अश्विदेव तुझे यहां स्थापन करें ॥

[६३६]

६३६ स्वैर्दक्षैर्दक्षपितेह सीद देवानाᳬ सुम्ने बृहते रणाय ।
पितेवैधि सूनव आ सुशेवा स्वावेशा तन्वा
संविशस्वाश्विनाऽध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥३॥

६३६ स्वैः । दक्षैः । दक्षपितेति दक्षऽपिता । इह । सीद ।
देवानाम् । सुम्ने । बृहते । रणाय ॥
पितेवेति पिताऽइव । एधि । सूनवे । आ ।
सुशेवेति सुऽशेवा । स्वावेशेति । सुऽआवेशा ।
तन्वा । सम् । विशस्व ।
अश्विना । अध्वर्यूऽइत्यध्वर्यू । सादयताम् । इह । त्वा ॥

६३६ अन्वयः— पिता सूनवे इव दक्षपिता देवानां रणाय बृहते सुम्ने स्वैः दक्षैः इह सीद; सुशेवा एधि, स्वावेशा तन्वा संविशस्व अध्वर्यू अश्विनौ त्वा इह सादयताम् ॥ ३ ॥

६३६ अर्थ— (पिता सूनवे इव) जैसा पिता पुत्रको सहारा देता है उस तरह (दक्षपिता देवानां रणाय) बलका संरक्षण करनेवाली होकर दिव्य विबुधोंके आनंदके लिये (बृहते सुम्ने) बडे सुखके लिये (स्वैः दक्षैः इह सीद) अपने बलोंके साथ तुम यहां आकर बैठ। (सुशेवा एधि) उत्तम सेवा करने योग्य हो । (स्वावेशा तन्वा सं विशस्व) सुखसे प्रवेश करनेयोग्य उत्तम चपल शरीरसे यहां आकर रह । अध्वर्यु अश्विदेव तुझे यहां स्थापन करें ॥

[६३७]

६३७ पृथिव्याः पुरीषमस्यप्सो नाम तां त्वा विश्वे
अभि गृणन्तु देवाः ।
स्तोमपृष्ठा घृतवतीह सीद प्रजावदस्मे द्रविणाऽऽ
यजस्वाश्विनाऽध्वर्यू सादयतामिह त्वा ॥४॥

६३७ पृथिव्याः । पुरीषम् । असि । अप्सः । नाम ।
ताम् । त्वा । विश्वे । अभि । गृणन्तु । देवाः ॥
स्तोमपृष्ठेति स्तोमऽपृष्ठा । घृतवतीति घृतऽवती । इह ।
सीद । प्रजावदिति प्रजाऽवत् । अस्मेऽइत्यस्मे ।
द्रविणा । आ । यजस्व ।
अश्विना । अध्वर्यूऽइत्यध्वर्यू । सादयताम् । इह । त्वा ॥

६३७ अन्वयः— पृथिव्याः पुरीष अप्स नाम असि तां त्वा विश्वे देवाः अभि गृणन्तु, स्तोमपृष्ठा घृतवती इह सीद प्रजावत् द्रविण अस्मे आ यजस्व अध्वर्यू अश्विनौ त्वा इह सादयताम् ॥ ४ ॥

६३७ अर्थ— (पृथिव्याः पुरीष) तू पृथ्वीको पूर्ण करनेवाली, (अप्सः नाम असि) तू जलका आधार हो । (तां त्वा विश्वे देवा अभि गृणन्तु) तुम्हारी सब देव प्रशंसा करें । (स्तोमपृष्ठा घृतवती) स्तोत्रोंसे प्रशंसित और घीसे भरपूर होकर (इह सीद) यहां रह । (प्रजावत् द्रविणा अस्मे आ यजस्व) सन्तान और धन हमें दे । अध्वर्यु अश्विदेव तुम्हें यहां रखें ॥

[६३८]

६३८ अदित्यास्त्वा पृष्ठे सादयाम्यन्तरिक्षस्य धर्त्रीं विष्टम्भनीं
दिशामधिपत्नीं भुवनानाम् ।
ऊर्मिर्द्रप्सो अपामसि विश्वकर्मा त ऋषिरश्विनाऽध्वर्यू
सादयतामिह त्वा ॥५॥

६३८ अदित्याः । त्वा । पृष्ठे । सादयामि ।
अन्तरिक्षस्य । धर्त्रीम् । विष्टम्भनीम् । दिशाम् ॥
अधिपत्नीमित्यधिऽपत्नीम् । भुवनानाम् । ऊर्मिः । द्रप्सः ।
अपाम् । असि । विश्वकर्मेति विश्वऽकर्मा । ते । ऋषिः ।
अश्विना । अध्वर्यू इत्यध्वर्यू । सादयताम् । इह । त्वा ॥५

६३८ अन्वयः— अन्तरिक्षस्य धर्त्री, भुवनानां अधिपत्नीं त्वा अदित्याः पृष्ठे सादयामि, अपां द्रप्सः ऊर्मिः असि, ते ऋषिः विश्वकर्मा अध्वर्यू अश्विनौ त्वा इह सादयताम् ॥ ५ ॥

६३८ अर्थ— (अन्तरिक्षस्य धर्त्रीं) अन्तरिक्षका धारण करनेवाली, (भुवनानां अधिपत्नीं) भुवनोंका पालन करनेवाली, (त्वा अदित्याः पृष्ठे सादयामि) तुम्हें पृथ्वीके ऊपर स्थिर रूपसे स्थापित करते हैं। (अपां द्रप्सः ऊर्मिः असि) तू उदककी रसीलता हो। (ते ऋषिः विश्वकर्मा) तेरा द्रष्टा विश्वकर्मा है। अध्वर्यू अश्विदेव तुझे यहां स्थापन करें ॥

[६३९] (वा० य० ३८।१०,११)

६३९ विश्वा आशा दक्षिणसद् विश्वान् देवानयाडिह ।
स्वाहाकृतस्य घर्मस्य मधोः पिबतमश्विना॥१०॥

६३९ विश्वाः । आशाः । दक्षिणसदिति दक्षिणऽसत् ।
विश्वान् । देवान् । अयाट् । इह ॥
स्वाहाकृतस्येति स्वाहाऽकृतस्य । घर्मस्य ।
मधोः । पिबतम् । अश्विना ॥१०॥

६३९ अन्वयः— इह दक्षिणसत् विश्वाः आशाः विश्वान् देवान् अयाट्; अश्विना । स्वाहाकृतस्य मधोः घर्मस्य पिबतम् ॥ १० ॥

६३९ अर्थ— (इह दक्षिणसत्) यहां दक्षिण दिशामें रहनेवाला (विश्वाः आशाः विश्वान् देवान् अयाट्) सब दिशाओं और सब देवोंका यजन करता है। हे (अश्विना) अश्विदेवो! (स्वाहाकृतस्य मधोः घर्मस्य पिबतं) स्वाहाकारपूर्वक दिये मधुर रसका पान करो ॥

[६४०]

६४० अपातामश्विना घर्ममनु द्यावापृथिवी अमंश्साताम् ।
इहैव रातयः सन्तु ॥१३॥

६४० अपाताम् । अश्विना । घर्मम् । अनु ।
द्यावापृथिवीऽइति द्यावापृथिवी । अमंश्सातामु ॥
इह । एव । रातयः । सन्तु ॥१३॥

६४० अन्वयः— अश्विना घर्मः अपातां द्यावापृथिवी अन्वमंसातां; इह एव रातयः सन्तु ॥ १३ ॥

६४० अर्थ—(अश्विना घर्मं अपातां) अश्विदेवोंने रसका पान किया है। उसका (द्यावापृथिवी अन्वमंसातां) द्यु और पृथ्वीने अनुमोदन किया है। ([illegible] एव रातयः सन्तु) यहांही सब धन रहें ॥

[६४१] (साम० ३०५)
(६४१) अश्विनौ वैवस्वतौ । बृहती ।

६४१ कुष्ठः को वामश्विना तपानो देवा मर्त्यः ।
घ्नता वामश्मया क्षपमाणोऽंशुनेत्थमु आद्वन्यथा ॥३॥

६४१ कु-स्थः । कः । वाम् । अश्विना ।
तपानः । देवा । मर्त्यः ॥
घ्नता । वाम् । अश्मया । क्षपमाणः ।
अंशुना । इत्थम् । उ । आत् । उ ।
अन्यथा । अन् । यथा ॥३॥

६४१ अन्वयः— दे॑वा अश्विना ! कु-स्थः कः मर्त्यः वां तपानः वां अश्मया घ्नता अंशुना क्षपमाणः आद्रन् यथा इत्थं उ ॥ ३ ॥

६४१ अर्थ— हे (देवा अश्विना) प्रकाशमान अश्विदेवों! (कु-ह: क: मर्त्यः) भूमिपर रहनेवाला कौन मानव (वां सपानः) तुम्हको प्रकाश दे सकता है ? (वां अश्मया) आपको खानेके लिये देनेके अर्थ (ग्रवा अंशुना क्षयमाणः) कूटकर निकाले रसके कारण क्षीण हुआ, थका हुआ, उपासक (आद्रन् यथा) यथेच्छ भोजन करनेवालेके समान (इयं च) ही बलवान् होता है ॥

[६४२] (अथर्व. ९।११।६)
(६४२–६४५) अथर्वा । त्रिष्टुप् ।

६४२ शिवाभिष्टे हृदयं तर्पयाम्यनमीवो मोदिषीष्ठाः सुवर्चाः ।
सवासिनौ पिबतां मन्थमेतमश्विनो रूपं परिधाय मायाम्

६४२ शिवाभिः । ते । हृदयम् । तर्पयामि ।
अनमीवः । मोदिषीष्ठाः । सुऽवर्चाः ॥
सऽवासिनौ । पिबताम् । मन्थम् । एतम् ।
अश्विनोः । रूपम् । परिऽधाय । मायाम् ॥६॥

६४२ अन्वयः— शिवाभिः ते हृदयं तर्पयामि, अनमीवः सुवर्चाः मोदिषीष्ठाः, सवासिनौ अश्विनोः रूपं मायां परिधाय एतं मन्थं पिबताम् ॥६॥

६४२ अर्थ— (शिवाभिः ते हृदयं तर्पयामि) कल्याण करनेवाली विद्याओंसे मैं तेरे हृदयकी तृप्ति करता हूं । तू (अन्-अमीवः सुवर्चाः मोदिषीष्ठाः) नीरोग और उत्तम तेजस्वी होकर आनन्दप्रसन्न हो । (सवासिनौ) साथ रहनेवाले तुम दोनों (अश्विनोः रूपं) अश्विदेवोंके समान सुंदर रूपको और इनको (मायां परिधाय) कुशलतापूर्वक कर्म करनेकी शक्तिको धारण कर (एतं मन्थं पिबतं) इस मधुर रसका पान करो ॥

[६४३] (अथर्व. ६।५०।१–३)
अथर्वा (अभयकामः) । १ विराट् जगती, २–३ पथ्यापङ्क्तिः ।

६४३ हतं तुर्दं समङ्कमाखुमश्विना छिन्तं शिरो अपि पृष्टीः शृणीतम् । यवान्नेददानपि नह्यतं मुखमथाभयं कृणुतं धान्याय ॥१॥

६४३ हुतम् । तर्दम् । सम्ऽअङ्कम् । आखुम् ।
अश्विना । छिन्तम् । शिरः । अपि । पृष्टीः । शृणीतम् ॥
यवान् । न । इत् । अदान् । अपि । नह्यतम् ।
मुखम् । अथ । अभयम् । कृणुतम् । धान्याय ॥१॥

६४३ अन्वयः— अश्विनौ ! तर्दं समङ्कं आखुं हतं शिरः छिन्तं पृष्टीः अपि शृणीतम् ; यवान् न इत् अदान् मुखं अपि नह्यतं, अथ धान्याय अभयं कृणुतम् ॥ १ ॥

६४३ अर्थ— हे (अश्विनौ) अश्विदेवो ! (तर्दं समङ्कं आखुं हतं) नाश करनेवाले बिलमें रहनेवाले चूहेको मारो । (शिरः छिन्तं) उसका सिर काटो । (पृष्टीः अपि शृणीतं) उसकी पीठ तोडो । वे चूहे (यवान् न इत् अदान्) जौंको न खावें । (मुखं अपि नह्यतं) उनका मुख बंद करो । (अथ धान्याय अभयं कृणुतं) और धान्यके लिये निर्भयता करो ॥

[६४४]

६४४ तर्द है पतङ्ग है जभ्य हा उपक्वस ।
ब्रह्मेवासंस्थितं हविरनदन्त इमान्यवानहिंसन्तो अपोदित ॥

६४४ तर्द । है । पतङ्ग । है । जभ्य । है । उपऽक्वस ॥
ब्रह्माऽइव । असम्ऽस्थितम् । हविः । अनदन्तः ।
इमान् । यवान् । अहिंसन्तः । अपऽउदित ॥२॥

६४४ अन्वयः— हे तर्द ! हे पतङ्ग ! हे जभ्य उपक्वस ! ब्रह्मा इव असंस्थितं हविः इमान् यवान् अनदन्तः अहिंसन्तः अपोदित ॥ २ ॥

६४४ अर्थ— (हे तर्द) हे हिंसक ! (हे पतंग) हे पतङ्ग ! (हे जभ्य उपक्वस) हे वध्य और दुष्ट ! (ब्रह्मा इव असंस्थितं हविः) ब्रह्मा जैसा असंस्कृत हविको छोडता है, उस तरह (इमान् यवान् अनदन्तः अहिंसन्तः) इन जौंओंको न खाते और न नष्ट करते हुए (अपोदित) दूर हट जाओ ॥

[६४५]

६४५ तर्दांपते वघापते तृष्टजम्भा आ शृणोत मे ।
य आरण्या व्यद्वरा ये के च स्थ व्यद्वरास्तान्त्सर्वान्
जम्भयामसि ॥३॥

६४५ तर्दऽपते । वघाऽपते । तृष्टऽजम्भाः । आ । शृणोत । मे ।
ये । आरण्याः । विऽअद्वराः ॥
ये । के । च । स्थ । विऽअद्वराः ।
तान् । सर्वान् । जम्भयामसि ॥३॥

६४५ अन्वयः— तर्दापते, वघापते, तृष्टजम्भ ! मे आ शृणोत। ये आरण्याः व्यद्वराः ये के च व्यद्वराः स्थ तान् सर्वान् जम्भयामसि ॥ ३ ॥

६४५ अर्थ— हे (तर्दापते) महा हिंसक ! हे (वघापते) घातक ! हे (तृष्टजम्भ) तीक्ष्ण दंष्ट्रावाले ! (मे आ शृणोत) मेरा भाषण सुनो । (ये आरण्याः व्यद्वराः) जो अरण्यमें रहकर अधिक खानेवाले हैं और (ये के च व्यद्वराः स्थ) जो कोई सर्वभक्षक हैं (तान् सर्वान् जम्भयामसि) उन सबका हम नाश करते हैं ॥

[६४६] (अथर्व. २।३०।२)

(६४६) प्रजापतिः । अनुष्टुप् ।

६४६ सं चेन्नयाथो अश्विना कामिना सं च वक्षथः ।
सं वां भगासो अग्मत सं चित्तानि समु व्रता ॥२॥

६४६ सम् । च । इत् । नयाथः । अश्विना ।
कामिना । सम् । च । वक्षथः ॥
सम् । वाम् । भगासः । अग्मत ।
सम् । चित्तानि । सम् । ऊं इति । व्रता ॥२॥

६४६ अन्वयः— कामिना अश्विना ! च इतः सं नयाथः, च सं वक्षथः, वां भगासः सं अग्मत चित्तानि सं व्रतानि सम् ॥ २ ॥

*

६४६ अर्थ— हे (कामिना अश्विना) इच्छा करनेवाले अश्विदेवों ! (च इतः सं नयाथः) यहांसे मिलकर चलो, (च सं वक्षथः) और मिलकर आगे बढो। (वां भगासः सं अग्मत) तुम दोनोंके ऐश्वर्य तुम्हारे साथ रहें, (चित्तानि सं) चित्त मिले रहें, (व्रतानि सं) तुम्हारे कर्म एक हो ॥

इस मंत्रके 'कामिना अश्विना' ये पद अश्विदेवोंके समान इकट्ठे रहनेवाली पतिपत्नीके दर्शक हैं ॥

[६४७] (अथर्व. ६।१०२।१-३)
(६४७-६४९) जमदग्निः। अनुष्टुप्।

६४७ यथाऽयं वाहो अश्विना समैति सं च वर्तते ।
एवा मामभि ते मनः समैतु सं च वर्तताम् ॥१॥

६४७ यथा । अयम् । वाहः । अश्विना ।
सम्ऽएति । सम् । च । वर्तते ॥
एव । माम् । अभि । ते । मनः ।
सम्ऽएतु । सम् । च । वर्तताम् ॥१॥

६४७ अन्वयः— अश्विनौ ! यथा अयं वाहः सं एति सं वर्तते, एवा ते मनः मां अभि सं आ एतु सं वर्ततां च ॥ १ ॥

६४७ अर्थ— हे (अश्विनौ) अश्विदेवों ! (यथा अयं वाहः सं एति) जिस तरह यह घोडा साथ साथ जाता है, और (सं वर्तते) मिलकर रहता है, (एवा ते मनः मां अभि) वैसा तेरा मन मेरे पास (सं आ एतु) आकर्षित हो जावे, और (सं वर्ततां च) मेरे साथ रहे ॥

[६४८]

६४८ आऽहं खिदामि ते मनो राजाश्वः पृष्ट्यामिव ।
रेष्मच्छिन्नं यथा तृणं मयि ते वेष्टतां मनः ॥२॥

६४८ आ । अहम् । खिदामि । ते । मनः ।
राजऽअश्वः पृष्ट्याम्ऽइव ॥
रेष्मऽछिन्नम् । यथा । तृणम् ।
मयि । ते । वेष्टताम् । मनः ॥२॥

६४८ अन्वयः— अहं ते मनः आ खिद्रामि पृष्ट्यां राजाश्वः इव यथा रेष्मच्छिन्नं तृणं ते मनः मयि वेष्टताम् ॥ २ ॥

६४८ अर्थ– (अहं ते मनः आ खिद्रामि) मैं तेरा मन खींचता हूं । (पृष्ट्यां राजाश्वः इव) गाडीको श्रेष्ठ घोडा जैसा खींचता है, (यथा रेष्म–छिन्नं तृणं) जैसा छिन्नभिन्न घास एक दूसरेसे चिपकता है, वैसा (ते मनः मयि वेष्टतां) तेरा मन मेरे साथ चिपकता रहे ॥

[६४९]

६४९ आञ्जनस्य मदुघस्य कुष्ठस्य नलदस्य च ।
तुरो भगस्य हस्ताभ्यामनुरोधनमुद्भरे ॥३॥

६४९ आऽअञ्जनस्य । मदुघस्य ।
कुष्ठस्य । नलदस्य । च ॥
तुरः । भगस्य । हस्ताभ्याम् ।
अनुऽरोधनम् । उत् । भरे ॥३॥

६४९ अन्वयः— तुरः भगस्य आञ्जनस्य मदुघस्य कुष्ठस्य नलदस्य च हस्ताभ्यां अनुरोधनं उद्भरे ॥ ३ ॥

६४९ अर्थ— (तुरः भगस्य) त्वरासे प्राप्त होनेवाले भाग्यको, (आञ्जनस्य मदुघस्य) अञ्जनके समान हर्षित करनेवाले, (कुष्ठस्य नलदस्य हस्ताभ्यां) कूठ और नलदके समान हाथों द्वारा (अनुरोधनं उद्भरे) अनुकूलतासे प्राप्त करता हूं ॥

इन तीन मंत्रोंमें पतिपत्नीका परस्पर प्रेम अटल रहे यह विषय है ॥

[६५०] (अथर्व. ६।१४१।१—३)
(६५०—६५२) विश्वामित्रः । अनुष्टुप् ।

६५० वायुरेनाः समाकरत् त्वष्टा पोषाय ध्रियताम् ।
इन्द्र आभ्यो अधि ब्रवद् रुद्रो भूम्ने चिकित्सतु ॥१॥

६५० वायुः । एनाः । सम्ऽआकरत् ।
त्वष्टा । पोषाय । ध्रियताम् ॥
इन्द्रः । आभ्यः । अधि । ब्रवत् ।
रुद्रः । भूम्ने । चिकित्सतु ॥१॥

६५० अन्वयः— वायुः एनाः सं आकरत्, त्वष्टा पोषाय ध्रियतां; इन्द्रः आभ्यः अधि ब्रवत्, रुद्रः भूम्ने चिकित्सतु ॥ १ ॥

६५१ अर्थ— (वायुः एना सं आकरत्) वायु इन गौओंको इकट्ठा करे, (त्वष्टा पोषाय ध्रियतां) त्वष्टा इनको पुष्टिके लिये धरे, (इन्द्रः आभ्यः अधि ब्रवत्) इन्द्र इनको बुलावे, (रुद्रः भूम्ने चिकित्सतु) रुद्र इनकी वृद्धि करनेके लिये चिकित्सा करे ॥

[६५१]

६५१ लोहितेन स्वधितिना मिथुनं कर्णयोः कृधि ।
अकर्तामश्विना लक्ष्म तदस्तु प्रजया बहु ॥२॥

६५१ लोहितेन । स्वऽधितिना ।
मिथुनम् । कर्णयोः । कृधि ॥
अकर्ताम् । अश्विना । लक्ष्म ।
तत् । अस्तु । प्रऽजया । बहु ॥२॥

६५१ अन्वयः— लोहितेन स्वधितिना कर्णयोः मिथुनं कृधि; अश्विनौ लक्ष्म अकर्ता तद् प्रजया बहु अस्तु ॥ २ ॥

६५१ अर्थ— (लोहितेन स्वधितिना) लोहेकी शलाकासे (कर्णयोः मिथुनं कृधि) कानोंके ऊपर जोडका चिन्ह कर । (अश्विनौ लक्ष्म अकर्ता) अश्विदेव चिन्ह करें, (तत् प्रजया बहु अस्तु) वह सन्ततिके साथ बहुत हितकारी हो ॥

[६५२]

६५२ यथा चक्रुर्देवासुरा यथा मनुष्या उत ।
एवा सहस्रपोषाय कृणुतं लक्ष्माश्विना ॥३॥

६५२ यथा । चकुः । देवऽअसुराः ।
यथा । मनुष्याः । उत ॥
एव । सहस्रऽपोषाय ।
कृणुतम् । लक्ष्म । अश्विना ॥३॥

६५२ अन्वयः— यथा देवासुराः चक्रुः उत यथा मनुष्याः; अश्विना ! एवा सहस्रपोषाय लक्ष्म कृणुतम् ॥ ३ ॥

६५२ अर्थ— (यथा देवासुराः चक्रुः) जैसे देवों और असुरोंने चिन्ह किये, (उत यथा मनुष्याः) और जैसे मनुष्य भी करते हैं, हे (अश्विना) हे अश्विदेवों ! (एवा सहस्रपोषाय लक्ष्म कृणुतं) इस प्रकार सहस्रों प्रकारकी पुष्टिके लिये गौओंपर चिन्ह करो ॥

अश्विसहचारी देवगणः ।

(१) अश्विसरस्वतीन्द्राः ।

[६५३] (६५३-६६१) (वा. य. १९।३३-४१)

६५३ यस्ते रसः सम्भृत ओषधीषु सोमस्य शुष्मः सुरया सुतस्य । तेन जिन्व यजमानं मदेन सरस्वतीमश्विनाविन्द्रमग्निम् ॥३३॥

६५३ यः । ते । रसः । सम्भृत इति सम्ऽभृतः । ओषधीषु । सोमस्य । शुष्मः । सुरया । सुतस्य ॥
तेन । जिन्व । यजमानम् । मदेन ।
सरस्वतीम् । अश्विनौ । इन्द्रम् । अग्निम् ॥३३॥

६५३ अन्वयः — ओषधीषु ते यः रसः सम्भृतः, सुरया सुतस्य सोमस्य शुष्मः, तेन मदेन यजमानं सरस्वतीं अश्विनौ इन्द्रं अग्निं जिन्व ॥ ३३ ॥

६५३ अर्थ- (ओषधीषु ते यः रसः सम्भृतः) ओषधियोंमें तेरा जो रस भरपूर भरकर रहा है, (सुरया सुतस्य सोमस्य शुष्मः) जलके साथ कूटे हुए सोमरसका जो बल है, (तेन मदेन) आनन्दकारक रससे (यजमानं सरस्वतीं अश्विनौ इन्द्रं अग्निं) यजमान, सरस्वती, अश्विदेव, इन्द्र और अग्निको (जिन्व) प्रसन्न कर ॥

[६५४]

६५४ यमश्विना नमुचेरासुरादधि सरस्वत्यसुनोदिन्द्रियाय ।
इमं त॑ शुक्रं मधुमन्तमिन्दु॑ सोम॑ राजानमिह भक्षयामि

६५४ यम् । अश्विना । नमुचेः । आसुरात् । अधि ।
सरस्वती । असुनोत् । इन्द्रियाय ॥
इमम् । तम् । शुक्रम् । मधुमन्तम् । इन्दुम् ।
सोमम् । राजानम् । इह । भक्षयामि ॥३४॥

६५४ अन्वयः— अश्विना नमुचेः असुरात् अधि यं, सरस्वती इन्द्राय असुनोत्; तं इमं शुक्रं मधुमन्तं इन्दुं राजानं सोमं इह भक्षयामि ॥ ३४ ॥

६५४ अर्थ— (अश्विना नमुचेः असुरात् अधि यं) अश्विदेवोंने नमुचि-असुरसे जो सोम लाया, (सरस्वती इन्द्राय असुनोत्) सरस्वतीने इन्द्रके लिये जिसका रस निचोडा, (तं इमं शुक्रं मधुमन्तं राजानं सोमं) उसी इस शुभ्रवर्ण मधुर और आल्हाद देनेवाले दीप्तिमान सोमरसको (इह भक्षयामि) यहां इस यज्ञमें मैं भक्षण करता हूं ॥

[६५५]

६५५ यदत्र रिप्त॑ रसिनः सुतस्य यदिन्द्रो अपिबच्छचीभिः ।
अहं तदस्य मनसा शिवेन सोम॑ राजानमिह भक्षयामि॥

६५५ यत् । अत्र । रिप्तम् । रसिनः । सुतस्य ।
यत् । इन्द्रः । अपिबत् । शचीभिः ॥
अहम् । तत् । अस्य । मनसा । शिवेन ।
सोमम् । राजानम् । इह । भक्षयामि ॥३५॥

६५५ अन्वयः— रसिनः सुतस्य यत् अत्र रिप्तं शचीभिः इन्द्रः यत् अपिबत्; तत् अस्य राजानं सोमं इह शिवेन मनसा भक्षयामि ॥ ३५ ॥

६५५अर्थ— (रसिनः सुतस्य यत् अत्र रिप्तं) रसयुक्त सोमरसका जो अंश यहां लिपटा है, चिपका है, (शचीभिः इन्द्रः यत् अपिबत्) शक्तियों-समेत इन्द्र जिसे पीता है, (तत् अस्य राजानं सोमं इह शिवेन मनसा भक्षयामि) उस तेजस्वी सोमरसको यहां मैं शुभ मनोभावनाके साथ भक्षण करता हूं ॥

[६५६] (वा. य. २०।६७-६९)

६५६ अश्विना हविरिन्द्रियं नमुचेर्धिया सरस्वती ।
आ शुक्रमासुराद्वसु मघमिन्द्राय जभ्रिरे ॥६७॥

६५६ अश्विना । हविः । इन्द्रियम् ।
नमुचेः । धिया । सरस्वती ।
आ । शुक्रम् । आसुरात् । वसु ।
मघम् । इन्द्राय । जभ्रिरे ॥६७॥

६५६ अन्वयः— अश्विना सरस्वती धिया नमुचेः आसुरात्, इन्द्राय शुक्रं हविः इन्द्रियं मघं वसु जभ्रिरे ॥ ६७ ॥

६५६ अर्थ— (अश्विना सरस्वती धिया) अश्विदेव और सरस्वतीने बुद्धिपूर्वक (नमुचेः आसुरात्) नमुचि असुरसे (इन्द्राय शुक्रं हविः इन्द्रियं मघं वसु) इन्द्रको देनेके लिये बलवर्धक हविरूप इन्द्रियशक्तिवर्धक पूजनीय धन जैसा यह सोमरस (आ जभ्रिरे) लाया गया है ॥

[६५७]

६५७ यमश्विना सरस्वती हविषेन्द्रमवर्धयन् ।
स बिभेद वलं मघं नमुचावासुरे सचा ॥६८॥

६५७ यम् । अश्विना । सरस्वती ।
हविषा । इन्द्रम् । अवर्धयन् ॥
सः । बिभेद । वलम् । मघम् ।
नमुचौ । आसुरे । सचा ॥६८॥

६५७ अन्वयः— अश्विना सरस्वती यं इन्द्रं हविषा वर्धयन्, सः नमुचौ आसुरे सचा मघं बलं बिभेद ॥ ६८ ॥

६५७ अर्थ— (अश्विना सरस्वती यं इन्द्रं) अश्विदेव और सरस्वतीने जिस इन्द्रको (हविषा वर्धयन्) हवि देकर बढाया, (सः नमुचौ आसुरे सचा मघं बलं बिभेद) उस इन्द्रने नमुचि असुरको और उसके साथ बडे बल असुरको भी चूर चूर किया ॥

[६५८]

६५८ तमिन्द्रं पुशवः सचाश्विनोभा सरस्वती ।
दधाना अभ्यनूषत हुविषा युज्ञ इन्द्रियैः ॥६९॥

६५८ तम् । इन्द्रम् । पुशवः । सचा ।
अुश्विना । उुभा । सरस्वती ॥
दधानाः । अभि । अनूषत ।
हुविषा । युज्ञे । इुन्द्रियैः ॥६९॥

६५८ अन्वयः— पशवः उभा अश्विना सरस्वती सचा यज्ञे हविषा इन्द्रियैः दधानाः तं इन्द्रं अभ्यनूषत ॥ ६९ ॥

६५८ अर्थ— (पशवः उभा अश्विना सरस्वती सचा) सब पशु, दोनों अश्विदेव और सरस्वती एकत्रित होकर (यज्ञे हविषा इन्द्रियैः दधानाः) यज्ञमें हविष्यान्नसे इन्द्रिय शक्तियोंको बढाकर बल धारण करके (तं अभ्यनूषत) उस इन्द्रकी प्रशंसा की ॥

[६५९] (वा. य. २१।४८-५८)

६५९ देवं बुर्हिः सरस्वती सुदेवमिन्द्रे अुश्विना ।
तेजो न चक्षुरक्ष्योर्बुर्हिषा दधुरिन्द्रियं वसुवने
वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥४८॥

६५९ देवम् । बर्हिः । सरस्वती । सुदेवमिति सुऽदेवम् ।
इन्द्रे । अश्विना ॥ तेजः । न । चक्षुः ।
अक्ष्योः । बर्हिषा । दधुः । इन्द्रियम् ।
वसुवनऽइति वसुऽवने । वसुधेयस्येति
वसुऽधेयस्य । व्यन्तु । यज ॥४८॥

६५९ अन्वयः— सुदेवं बर्हिः देवं बर्हिषा अश्विना सरस्वती इन्द्रे तेजः न अक्ष्योः चक्षुः इन्द्रियं दधुः वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु, (होतः !) यज ॥ ४८ ॥

६५९ अर्थ—(सुदेवं बर्हिः) देवोंको प्रिय यह बर्हि है । (देवं बर्हिषा अश्विना सरस्वती) इस देवके लिये बर्हिसे अश्विदेवोंने और सरस्वतीने (इन्द्रे तेजः न अक्ष्योः चक्षुः इन्द्रियं दधुः) इन्द्रमें तेज और आंखोंमें दर्शन शक्तिरूपी इंद्रिय धारण किया । (वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु) हमें धन प्राप्त हो इसलिये धनके संग्रहसे प्राप्त होनेवाला हवि इन देवोंको प्राप्त हो । (होतः ! यज) हे हवन करनेवाले ! यजन कर ॥

[६६०]

६६० देवीर्द्वारो अश्विना भिषजेन्द्रे सरस्वती ।
प्राणं न वीर्यं नसि द्वारो दधुरिन्द्रियं वसुवने
वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥४९॥

६६० देवीः । द्वारः । अश्विना । भिषजा । इन्द्रे । सरस्वती ॥
प्राणम् । न । वीर्यम् । नसि । द्वारः । दधुः । इन्द्रियम् ।
वसुवन इति वसुऽवने । वसुधेयस्येति वसुऽधेयस्य ।
व्यन्तु । यज ॥४९॥

६६० अन्वयः— देवीः द्वारः द्वारः भिषजा अश्विना सरस्वती, इन्द्रे वीर्यं नसि प्राणं इन्द्रियं दधुः वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु, (होतः !) यज ॥ ४९ ॥

६६० अर्थ— (देवीः द्वारः) ये द्वार देवियाँ हैं । (द्वारः भिषजा अश्विना सरस्वती) ये द्वार, वैद्य अश्विदेव और सरस्वती इन्होंने मिलकर, (इन्द्रे वीर्यं नसि प्राणं इन्द्रियं दधुः) इन्द्रमें वीर्य, नासिकामें प्राणरूप इंद्रिय स्थिर रखा । हम धन मिले इसलिये धनसे प्राप्त हविष्यान्न ये देव ग्रहण करें । हे (होतः ! यज) होता ! तू यजन कर ॥

[६६१]

६६१ देवी उषासावश्विना सुत्रामेन्द्रे सरस्वती ।
बलं न वाचमास्य उषाभ्यां दधुरिन्द्रियं वसुवने
वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥५०॥

६६१ देवीऽइति देवी । उषासौ । उषसावित्युषसौ । अश्विना ।
सुत्रामेति सुऽत्रामा । इन्द्रे । सरस्वती ॥
बलम् । न । वाचम् । आस्ये । उषाभ्याम् । दधुः ।
इन्द्रियम् । वसुवनऽइति वसुऽवने । वसुधेयस्येति
वसुऽधेयस्य । व्यन्तु । यज ॥५०॥

६६१ अन्वयः— उषासा देवी सुत्रामा अश्विना सरस्वती इन्द्रे बलं आस्ये वाचं न इन्द्रियं दधुः वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु (होतः !) यज ॥ ५० ॥

६६१ अर्थ— (उषासा देवी) उषा और नक्त ये देवता हैं । (सुत्रामा अश्विना सरस्वती) उत्तम संरक्षण करनेवाले अश्विदेव और सरस्वती ये मिलकर (इन्द्रे बलं, आस्ये वाचं न इंद्रियं दधुः) इन्द्रमें बल, मुखमें वाणी-का इंद्रिय धारण करती हैं । हमें धन प्राप्त हो इसलिये धनसे प्राप्त हविष्या-न्नका स्वीकार ये देव करें । हे (होतः ! यज) होता ! तू यजन कर ॥

[६६२]

६६२ देवी जोष्ट्री सरस्वत्यश्विनेन्द्रमवर्धयन् ।
श्रोत्रं न कर्णयोर्यशो जोष्ट्रीभ्यां दधुरिन्द्रियं
वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥५१॥

६६२ देवीऽइति देवी । जोष्ट्रीऽइति जोष्ट्री । सरस्वती ।
अश्विना । इन्द्रम् । अवर्धयन् ॥
श्रोत्रम् । न । कर्णयोः । यशः । जोष्ट्रीभ्याम् ।
दधुः । इन्द्रियम् । वसुवन इति वसुऽवने । वसुधेयस्येति
वसुऽधेयस्य । व्यन्तु । यज ॥५१॥

६६१ अन्वयः— जोष्ट्री देवी जोष्ट्रीभ्यां अश्विना सरस्वती इन्द्रं अवर्धयन्, श्रोत्रं न कर्णयोः यशः इन्द्रियं दधुः वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु (होतः !) यज ॥ ५१ ॥

६६१ अर्थ— (जोष्ट्री देवी) सुख देनेवाली दो देवताएँ भू और द्यौ ये हैं । (जोष्ट्रीभ्यां अश्विना सरस्वती) इनके साथ अश्विदेव और सरस्वती ये इन्द्रमें बल और कानोंमें श्रवण इंद्रिय धारण करती हैं । इसे धन प्राप्त हो इसलिये धनसे प्राप्त हविष्यान्न के देव स्वीकारें । हे (होतः । यज) होता ! तू यजन कर ॥

[६६३]

६६३ देवी ऊर्जाहुती दुघे सुदुघेन्द्रे सरस्वत्यश्विना भिषजावतः।
शुक्रं न ज्योति स्तनयोराहुती धत्त इन्द्रियं वसुवने
वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥५२॥

६६३ देवी इति देवी । ऊर्जाहुतीऽइत्यूर्जाऽआहुती ।
दुघेऽइति दुघे । सुदुघेति सुऽदुघा । इन्द्रे । सरस्वती ।
अश्विना । भिषजा । अवतः ॥ शुक्रम् । न । ज्योतिः ।
स्तनयोः । आहुती इत्याऽहुती । धत्तः । इन्द्रियम् ।
वसुवन इति वसुऽवने । वसुधेयस्येति वसुऽधेयस्य ।
व्यन्तु । यज ॥५२॥

६६३ अन्वयः— सुदुघे दुघे च ऊर्जाहुती देवी भिषजा अश्विना सरस्वती इन्द्रे अवतः ज्योतिः धत्तः स्तनयोः आहुती शुक्रं न इन्द्रियं, वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु (होतः !) यज ॥५२॥

६६३ अर्थ—(सुदुघे दुघे न उर्णाहुती देवी) उत्तम दोहन जिनका होता है ऐसी वत्सवर्धक दूध देनेवाली दो देवियां हैं । उनके साथ अश्विदेव और सरस्वती इन्द्रका (भवतः) संरक्षण करती हैं, इन्होंने उसमें (ज्योतिः धत्तः) तेज धारण किया और (स्तनयोः शुक्रं न इंद्रियं) स्तनोंमें वर्णवर्धक इंद्रियशक्तिवर्धक दूध धारण किया है । हमें धन मिले इसलिये धनसे प्राप्त हविष्यान्न ये देव स्वीकारें । हे (होतः ! यज) होता ! तू यजन कर ॥

[६६४]

६६४ दे॒वा दे॒वानां॑ भि॒षजा॒ होता॑रा॒विन्द्र॑म॒श्विना॑ ।
व॒ष॒ट्का॒रैः सर॑स्वती॒ त्विषिं॒ न हृद॑ये म॒तिꣳ होतृ॑भ्यां
दधुरिन्द्रि॒यं व॑सु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य व्यन्तु॒ यज॑ ॥५३॥

६६४ दे॒वा । दे॒वाना॑म् । भि॒षजा॑ । होता॑रौ । इन्द्र॑म् । अ॒श्विना॑ ॥
व॒ष॒ट्का॒रैरिति॑ वषट्ऽका॒रैः । सर॑स्वती । त्विषि॑म् ।
न । हृद॑ये । म॒तिम् । होतृ॑भ्या॒मिति॒ होतृ॑ऽभ्याम् ।
द॒धुः । इ॒न्द्रि॒यम् । व॒सु॒वन॒ इति॑ वसु॒ऽवने॑ ।
व॒सु॒धेय॒स्येति॑ वसु॒ऽधेय॑स्य । व्य॒न्तु॒ । यज॑ ॥५३॥

६६४ अन्वयः– देवानां होतारौ देवा वषट्कारैः भिषजा अश्विना सरस्वती इन्द्रं त्विषिं दधुः हृदये मतिं इन्द्रियं होतृभ्यां वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु (होतः !) यज ॥ ५३ ॥

६६४ अर्थ— (देवानां होतारौ देवा) देवोंके लिये हवन करनेवाले दो देव हैं । उनके साथ तथा (वषट्कारैः भिषजा अश्विना सरस्वती) वषट्-कारोंके साथ अश्विदेव और सरस्वती मिलकर (इन्द्रं त्विषिं दधुः) इन्द्रके लिये तेजका धारण करते रहें । उसके (हृदये मतिं इंद्रियं) हृदयमें उन्होंने मतिरूप इन्द्रिय धारण किया । हमें धन मिले इसलिये द्रव्यसे प्राप्त होनेवाले हविष्यान्नका स्वीकार ये देव करें । हे (होतः ! यज) होता ! तू यजन कर ॥

[६६५]

६६५ देवीस्तिस्रस्तिस्रो देवीरश्विनेडा सरस्वती ।
शूषं न मध्ये नाभ्यामिन्द्राय दधुरिन्द्रियं वसुवने
वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥५४॥

६६५ देवीः । तिस्रः । तिस्रः । देवीः । अश्विना । इडा ।
सरस्वती ॥ शूषम् । न । मध्ये । नाभ्याम् । इन्द्राय ।
दधुः । इन्द्रियम् । वसुवन इति वसुऽवने ।
वसुधेयस्येति वसुऽधेयस्य । व्यन्तु । यज ॥५४॥

६६५ अन्वयः— तिस्रस्तिस्रः देवीः, अश्विना, इडा सरस्वती देवीः इन्द्राय नाभ्यां मध्ये शूषं न इन्द्रियं दधुः वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु (होतः !) यज ॥ ५४ ॥

६६५ अर्थ— (तिस्रः-तिस्रः देवीः) तीन देवियां हैं (अश्विनौ, इडा सरस्वती) अश्विदेव, मातृभूमि और सरस्वती (विद्या) ये देवियाँ (इन्द्राय नाभ्यां मध्ये शूषं न इंद्रियं) इन्द्रके लिये नाभिमें बलरूपी इंद्रिय (दधुः) धारण करती हैं । हमें धन मिले इसलिये मुख्यसे प्राप्त होनेवाला हविष्यान्न ये देव लें । हे (होतः ! यज) होता ! तू यजन कर ॥

[६६६]

६६६ देव इन्द्रो नराशꣳसस्त्रिवरूथः सरस्वत्याश्विभ्यामीयते रथः ।
रेतो न रूपममृतं जनित्रमिन्द्राय त्वष्टा दधदिन्द्रियाणि
वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥५५॥

६६६ देवः । इन्द्रः । नराशꣳसः । त्रिवरूथ इति त्रिऽवरूथः ॥
सरस्वत्या । अश्विभ्यामित्यश्विऽभ्याम् । ईयते । रथः ॥
रेतः । न । रूपम् । अमृतम् । जनित्रम् ।
इन्द्राय । त्वष्टा । दधत् । इन्द्रियाणि ।
वसुवन इति वसुऽवने । वसुधेयस्येति वसुऽधेयस्य ।
व्यन्तु । यज ॥५५॥

६६६ अन्वयः— रथः सरस्वती अश्विभ्यां ईयते, इन्द्रः त्रिवरूथः त्वष्टा नराशंसः देवः, रेतः रूपं अमृतं न जनित्रं इन्द्रियाणि इन्द्राय दधत, वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु (होतः !) यज ॥ ५५ ॥

६६६ अर्थ— (रथः सरस्वती अश्विभ्यां ईयते) जिसका रथ सरस्वती और दोनों अश्विदेव खींचने लगते हैं। वह (इन्द्रः त्रिवरूथः त्वष्टा नराशंसः देवः) प्रभु, तीनों स्थानोंमें जिसका घर है ऐसा त्वष्टा और नरों द्वारा प्रशंसित देव ये सब (रेतः रूपं अमृतं न जनित्रं) रेत अमृतरूप जननेन्द्रिय तथा (इंद्रियाणि इन्द्राय दधत) सब इंद्रियाँ इन्द्रके लिये धारण करते हैं। इन्हें धन मिले इसलिए धनसे प्राप्त होनेवाला हविष्यान्न ये देव लें। हे (होतः ! यज) होता ! तू यजन कर॥

[६६७]

६६७ दे॒वो दे॒वैर्वन॒स्पति॒र्हिर॑ण्यपर्णो अ॒श्विभ्या॒ꣳ सर॑स्वत्या
सु॒पि॒प्प॒ल इन्द्रा॑य पच्यते॒ मधु॑ ।
ओजो॒ न जू॒तिर्ऋ॑ष॒भो न भाम॑ं वन॒स्पति॑र्नो॒ दध॑दिन्द्रि॒याणि॑
वसु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य व्यन्तु॒ यज॑ ॥५६॥

६६७ दे॒वः । दे॒वैः । वन॒स्पतिः॑ । हिर॑ण्यपर्ण॒ऽइति॒ हिर॑ण्यऽपर्णः ।
अ॒श्विभ्या॒मित्य॒श्विऽभ्या॑म् । सर॑स्वत्या । सु॒पि॒प्प॒लऽइति॑
सु॒ऽपि॒प्प॒लः । इन्द्रा॑य । प॒च्य॒ते । मधु॑ ॥ ओजः॑ । न ।
जू॒तिः । ऋ॒ष॒भः । न । भाम॑म् । व॒न॒स्पतिः॑ । नः॒ ।
दध॑त् । इ॒न्द्रि॒याणि॑ । व॒सु॒वन॒ऽइति॑ वसु॒ऽवने॑ ।
व॒सु॒धेय॒स्येति॑ वसु॒ऽधेय॑स्य । व्य॒न्तु । यज॑ ॥५६॥

६६७ अन्वयः— वनस्पतिः इन्द्राय मधु पच्यते देवैः हिरण्यपर्णः अश्विभ्यां सरस्वत्या सुपिप्पलः ऋषभः ओजः न जूतिः भामं न इन्द्रियाणि दधत्, वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु (होतः !) यज ॥ ५६ ॥

६६७ अर्थ— (वनस्पतिः इन्द्राय मधु पच्यते) वनस्पति इन्द्रके लिये मधुर रसको परिपक्व करता है। (देवैः हिरण्यपर्णः अश्विभ्यां सरस्वत्या) देवोंकी योजनासे सुवर्णके पत्रोंसे युक्त, अश्विदेव और सरस्वतीके द्वारा (सुपिप्पलः ऋषभः) उत्तम फलफूलसे भरा ऋषभक वनस्पति, (ओजः न जूतिः भामं न इन्द्रियाणि दधत्) तेज, बल, वेग और प्रभावपूर्ण इंद्रियाँ धारण करते हैं। धन हमें प्राप्त हो इसलिये धनसे प्राप्त हविष्यान्न ये देव लें। हे (होतः ! यज) होता ! तू यजन कर ॥

[६६८]

६६८ देवं बर्हिर्वारितीनामध्वरे स्तीर्णमश्विभ्यामूर्णम्रदाः
सरस्वत्या स्योनमिन्द्र ते सदः ॥
ईशायै मन्युꣳ राजानं बर्हिषा दधुरिन्द्रियं वसुवने
वसुधेयस्य व्यन्तु यज ॥५७॥

६६८ देवम् । बर्हिः । वारितीनाम् । अध्वरे । स्तीर्णम् ।
अश्विभ्यामित्यश्विऽभ्याम् । ऊर्णम्रदाऽइत्यूर्णऽम्रदाः ॥
सरस्वत्या । स्योनम् । इन्द्र । ते । सदः ॥
ईशायै । मन्युम् । राजानम् । बर्हिषा । दधुः । इन्द्रियम् ।
वसुवन इति वसुऽवने । वसुधेयस्येति वसुऽधेयस्य ।
व्यन्तु । यज ॥५७॥

६६८ अन्वयः— इन्द्र ! देवं ऊर्णम्रदाः स्योनं वारितीनां बर्हिः अध्वरे ते सदः अश्विभ्यां सरस्वत्या स्तीर्णं ईशायै राजानं मन्युं इन्द्रियं दधुः, वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु (होतः !) यज ॥ ५७ ॥

६६८ अर्थ— हे (इन्द्र) इन्द्र ! (देवं ऊर्णम्रदाः स्योनं) प्रकाशमान, ऊनके समान मृदु, सुख देनेवाला (वारितीनां बर्हिः) जलसे उत्पन्न दर्भोंका यह बर्हि यही इस (अध्वरे ते सदः) यज्ञमें तेरा स्थान है। यह आसन (अश्विभ्यां सरस्वत्या स्तीर्णं) अश्विदेव और सरस्वतीने फैलाया है। (ईशायै राजानं मन्युं दधुः) इस स्वामीके लिये तेजस्वी उत्साहरूप इंद्रिय धारण किया है। हमें धन मिले इसलिये इस धनसे प्राप्त हविर्द्रव्य अर्पण किया है वह देव लें। हे (होतः ! यज) होता ! तू यजन कर ॥

[६६९]

६६९ दे॒वो अ॒ग्निः स्वि॑ष्ट॒कृद्दे॒वान् य॑क्षद्य॒थाय॒थꣳ
होता॑राविन्द्र॒मश्विना॑ वा॒चा वा॒चꣳ सर॑स्वतीम॒ग्निꣳ सोम॑ꣳ
स्विष्ट॒कृत् स्वि॑ष्ट॒ इन्द्रः॑ सु॒त्रामा॑ सवि॒ता वरु॑णो भि॒षगि॒ष्टो
दे॒वो वन॒स्पतिः॑ स्वि॑ष्टा दे॒वा आ॑ज्य॒पाः स्वि॑ष्टो अ॒ग्निर॒ग्निना॑
होता॑ हो॒त्रे स्वि॑ष्ट॒कृद्य॒शो न दध॑दिन्द्रि॒यमू॒र्जमप॑चितिꣳ
स्व॒धां व॑सु॒वने॑ वसु॒धेय॑स्य व्यन्तु॒ यज॑ ॥५८॥

६६९ दे॒वः । अ॒ग्निः । स्वि॒ष्ट॒कृदिति॑ स्विष्ट॒ऽकृत् । दे॒वान् ।
य॒क्ष॒त् । य॒था॒य॒थमिति॑ यथाऽय॒थम् । होता॑रौ । इन्द्र॑म् ।
अ॒श्विना॑ । वा॒चा । वाच॑म् । सर॑स्वतीम् । अ॒ग्निम् ।
सोम॑म् । स्वि॒ष्ट॒कृदिति॑ स्विष्ट॒ऽकृत् । स्वि॑ष्ट॒ऽइति॑ सुऽइ॑ष्टः ।
इन्द्रः॑ । सु॒त्रामेति॑ सु॒ऽत्रामा॑ । स॒वि॒ता । वरु॑णः । भि॒षक् ।
इ॒ष्टः । दे॒वः । वन॒स्पतिः॑ स्वि॑ष्टा॒ऽइति॑ सुऽइ॑ष्टाः । दे॒वाः ।
आ॒ज्य॒पाऽइत्या॑ज्य॒ऽपाः । स्वि॑ष्ट॒ऽइति॑ सुऽइ॑ष्टः । अ॒ग्निः ।
अ॒ग्निना॑ । होता॑ । हो॒त्रे । स्वि॒ष्ट॒कृदिति॑ स्विष्ट॒ऽकृत् ।
यशः॑ । न । दध॑त् । इ॒न्द्रि॒यम् । ऊर्ज॑म् । अप॑चिति॒मित्यप॑-
ऽचितिम् । स्व॒धाम् । व॒सु॒वन॒ इति॑ वसु॒ऽवने॑ ।
व॒सु॒धे॒यस्येति॑ वसु॒ऽधेय॑स्य । व्य॒न्तु । यज॑ ॥५८॥

६६९ अन्वयः— स्विष्टकृत् अग्निः देवः यथायथं देवान् यक्षत् होतारा इन्द्रं अश्विना वाचा वाचं सरस्वतीं अग्निं च सोमं, स्विष्टकृत् सुत्रामा इन्द्रः स्विष्टः सविता भिषक् वरुणः इष्टः देवः वनस्पतिः इष्टः आज्यपाः देवाः स्विष्टाः अग्निना अग्निः इष्टः, स्विष्टकृत् होता होत्रे यशः इन्द्रियं ऊर्जं अपचितिं न स्वधां दधत्, वसुवने वसुधेयस्य व्यन्तु (होतः !) यज ॥ ५८ ॥

६६९ अर्थ— (स्विष्टकृत् अग्निः देवः) स्विष्टकृत् अग्निदेव है, (यथायथं देवान् यक्षत्) यथायोग्य रीतिसे उसने सब देवोंका यजन किया है। (होतारा इन्द्रं अश्विना वाचा वाचं सरस्वतीं अग्निं च सोमं) होता, इन्द्र, अश्विदेव, वाणी सरस्वती, अग्नि और सोमका यजन किया है। (स्विष्टकृत् सुत्रामा इन्द्रः) स्विष्टकृत् संरक्षक इन्द्र, (स्विष्टः सविता) यजन किया गया सविता, (भिषक् वरुणः इष्टः देवः वनस्पतिः इष्टः) वैद्य वरुण देव वनस्पति, (आज्यपाः देवाः स्विष्टाः) घी पीनेवाले देवोंका यजन हुआ है। (अग्निना अग्निः इष्टः) अग्निद्वारा अग्निको यजन हुआ है। (स्विष्टकृत् होत्रे यशः इन्द्रियं ऊर्जं अपचितिं न स्वधा दधत्) हवन करनेवालेके लिये यश, इंद्रिय, बल, रस, अन्न आदिका धारण किया है। हमें धन मिले इसलिये धनसे प्राप्त हविरन्नसे वे देव प्राप्त करें। हे (होतः ! यज) होता ! तू यजन कर॥

(२) अश्विसूर्यादयः ।

[६७०] (वा० य० ३८।१२)

६७० अश्विना घर्मं पातꣳ हार्द्वानमहर्दिवाभिरूतिभिः ।
तन्त्रायिणे नमो द्यावापृथिवीभ्याम् ॥१२॥

६७० अश्विना । घर्मम् । पातम् । हार्द्वानम् ।
अहः । दिवाभिः । ऊतिभिरित्यूतिऽभिः ॥
तन्त्रायिणे । नमः । द्यावापृथिवीभ्याम् ॥१२॥

६७० अन्वयः— अश्विना ! अहर्दिवाभिः ऊतिभिः हार्द्वानं घर्मं पातं तन्त्रायिणे द्यावापृथिवीभ्यां नमः ॥ १२ ॥

६७० अर्थ— हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (अहर्दिवाभिः ऊतिभिः) सबेरे और शामको अपने संरक्षणद्वारा (हार्द्वानं घर्मं पातं) हृदयको आधार देनेवाले इस तपे दूधके पात्रकी सुरक्षा करो। (तन्त्रायिणे द्यावापृथिवीभ्यां नमः) कालक्रमचालक आदित्य, द्यु और भूमिके लिये प्रणाम है॥

(३) अश्विनौ, बृहस्पतिः ।

[६७१] (अथर्व० ५।२६।१२)

(६७१) ब्रह्मा । परातिजागतविराड् जगती चतुष्पदा गायत्री ।

६७१ अश्विना ब्रह्मणा यातमर्वाञ्चौ वषट्कारेण यज्ञं वर्धयन्तौ ।
बृहस्पते ब्रह्मणा याह्यर्वाङ् यज्ञो अयं स्वरिदं
यजमानाय स्वाहा ॥१२॥

६७१ अश्विना । ब्रह्मणा । आ । यातम् ।
अर्वाञ्चौ । वषट्ऽकारेण । यज्ञम् । वर्धयन्तौ ॥
बृहस्पते । ब्रह्मणा । आ । याहि । अर्वाङ् । यज्ञः ।
अयम् । स्वः । इदम् । यजमानाय । स्वाहा ॥ १२ ॥

६७१ अन्वयः— अश्विना ! ब्रह्मणा वषट्कारेण यज्ञं वर्धयन्तौ अर्वाञ्चौ आ यातम् । बृहस्पते ब्रह्मणा अर्वाङ् आ याहि, अयं यज्ञः यजमानाय स्वः इदं स्वाहा ॥ १२ ॥

६७१ अर्थ— हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (ब्रह्मणा वषट्कारेण यज्ञं वर्धयन्तौ) ज्ञान और दानद्वारा यज्ञको बढाते हुए (अर्वाञ्चौ आ यातं) हमारे पास आओ । हे (बृहस्पते ! ब्रह्मणा अर्वाङ् आ याहि) ज्ञानके साथ पास आओ। (अयं यज्ञ यजमानाय स्वः) यह यज्ञ यजमानका तेज बढानेवाला होवे । (स्वाहा) यज्ञमें आत्मसमर्पण हो ॥

(४) श्येनः, अश्विनौ ।

[६७२] (अथर्व० ३।३।४)

(६७२-६७८) अथर्वा । त्रिष्टुप् ।

६७२ श्येनो हव्यं नयत्वा परस्मादन्यक्षेत्रे अपरुद्धं चरन्तम् ।
अश्विना पन्थां कृणुतां सुगं त इमं सजाता
अभिसंविशध्वम् ॥४॥

६७२ श्येनः । हव्यम् । नयतु । आ । परस्मात् ।
अन्यऽक्षेत्रे । अपऽरुद्धम् । चरन्तम् ॥
अश्विना । पन्थाम् । कृणुताम् । सुऽगम् । ते ।
इमम् । सऽजाताः । अभिऽसंविशध्वम् ॥४॥

६७२ अन्वयः— अन्यक्षेत्रे अपरुद्धं चरन्तं हव्यं श्येनः परस्मात् आ नयतु। अश्विनौ ते पन्थां सुगं कृणुतां। सजाताः इमं अभिसंविशध्वम् ॥ ४ ॥

६७२ अर्थ—(अन्यक्षेत्रे अपरुद्धं चरन्तं हव्यं) अन्य प्रदेशमें छिपकर भ्रमण करनेवाले सम्मानयोग्य राजाको (श्येनः परस्मात् आ नयतु) श्येनके समान वेगसे दूसरे देशसे ले आवे। (अश्विनौ ते पन्थां सुगं कृणुतां) अश्विदेव तेरे मार्गको सुखसे चलनेयोग्य बनावें। (सजाताः इमं अभिसंविशध्वं) सजातीय लोग इस राजाको पुनः राज्यपर प्रविष्ट करावें ॥

(५) अश्विनौ, द्यौष्पिता ।

[६७३] (अथर्व० ६।४।३) त्रिपदा विराड् गायत्री ।

६७३ धियें सम॑श्विना॒ प्राव॑तं न उरु॒ष्या ण॑ उरुज्म॒न्नप्र॑युच्छन् ।
द्यौ३॒ष्पित॑र्या॒वय॑ दु॒च्छुना॒ या ॥३॥

६७३ धियें । सम् । अश्विना । प्र । अवतम् ।
नः । उरुष्य । नः । उरुऽज्मन् । अप्रऽयुच्छन् ॥
द्यौः । पितः । यवय । दुच्छुना । या ॥३॥

६७३ अन्वयः— अश्विना ! धिये नः सं प्रावतं, उरु-ज्मन् ! अप्रयुच्छन् नः उरुष्य द्यौः, पिता या दुच्छुना, यावय ॥ ३ ॥

६७३ अर्थ—हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (धिये नः सं प्रावतं) बुद्धि बढानेके लिये हमारी उत्तम सुरक्षा करो। हे (उरु-ज्मन्) विशेष गतिवाले ! (अप्रयुच्छन् नः उरुष्य) भूल न करते [illegible] तू हमारी सुरक्षा कर। हे (द्यौः पिता) द्युलोकके पिता ! (या दुच्छुना, यावय) जो दुर्गति हो उसे दूर कर ॥

(६) बृहस्पतिः, अश्विनौ ।

[६७४] (अथर्व० ६।६९।१-३) अनुष्टुप्।

६७४ गिरावरगराटेषु हिरण्ये गोषु यद्यशः ।
सुरायां सिच्यमानायां कीलाले मधु तन्मयि ॥१॥

६७४ गिरौ । अरगराटेषु ।
हिरण्ये । गोषु । यत् । यशः ॥
सुरायाम् । सिच्यमानायाम् ।
कीलाले । मधु । तत् । मयि ॥१॥

६७४ अन्वयः— गिरौ अरगराटेषु हिरण्ये गोषु यत् यशः सिच्यमानायां सुरायां कीलाले मधु तत् मयि ॥ १ ॥

६७४ अर्थ— (गिरौ अरगराटेषु हिरण्ये गोषु) पर्वत, चक्रयन्त्र, सुवर्ण और गौवोंमें (यत् यशः) जो यश है, तथा (सिच्यमानायां सुरायां) बहनेवाली पर्जन्यधारामें तथा (कीलाले मधु) जो अन्नमें मधुरता है वह सब (तत् मयि) मुझे प्राप्त हो ॥

[६७५]

६७५ अश्विना सारघेण मा मधुनाङ्क्तं शुभस्पती ।
यथा भर्गस्वतीं वाचमावदानि जनाँ अनु ॥२॥

६७५ अश्विना । सारघेण । मा ।
मधुना । अङ्क्तम् । शुभः । पती इति ॥
यथा । भर्गस्वतीम् । वाचम् ।
आऽवदानि । जनान् । अनु ॥२॥

६७५ अन्वयः— शुभस्पती अश्विनौ ! सारघेण मधुना मा अङ्क्तं, यथा भर्गस्वतीं वाचं जनान् अनु आवदानि ॥ २ ॥

६७५ अर्थ— (शुभस्पती अश्विनौ) शुभके स्वामी अश्विदेवो! (माध्वेन मधुना मा अङ्क्त) सरस मधुसे मुझे युक्त करो। (यथा भर्गस्वतीं वाचं) जिससे भाग्यवाली वाणीको (जनान् अनु आवदानि) लोगोंके प्रति मैं बोलूं, वैसा करो॥

[६७६]

६७६ म॒यि॒ वर्चो॒ अथो॑ य॒शोऽथो॑ य॒ज्ञस्य॒ यत् पयः॑।
तन्मयि॑ प्र॒जाप॑तिर्दि॒वि द्यामि॑व दृंहतु ॥२॥

६७६ मयि॑। वर्चः॑। अथो॒ इति॑। यशः॑।
अथो॒ इति॑। य॒ज्ञस्य॑। यत्। पयः॑॥
तत्। मयि॑। प्र॒जाऽप॑तिः।
दि॒वि। द्याम्ऽइ॑व। दृं॒ह॒तु॒ ॥२॥

६७६ अन्वयः— मयि वर्चः, अथो यशः अथो यज्ञस्य यत् पयः प्रजापतिः तत् मयि दृंहतु दिवि द्यां इव ॥ २ ॥

६७६ अर्थ— (मयि वर्चः) मुझे तेज मिले, (अथो यशः) और यश मिले, (अथो यज्ञस्य यत् पयः) यज्ञका जो सार है, जो दूध है, (प्रजापतिः तत् मयि दृंहतु) प्रजापति वह मुझमें रखे, मुझे देवे (दिवि द्यां इव) जैसा द्युलोकमें प्रकाश होता है वैसा मैं तेजस्वी हो जाऊं॥

(७) सांमनस्यं, अश्विनौ।

[६७७] (अथर्व० ७।५२।१-२)
१ ककुम्मत्यनुष्टुप्, २ जगती।

६७७ सं॒ज्ञानं॑ नः॒ स्वेभिः॑ सं॒ज्ञान॒मर॑णेभिः।
सं॒ज्ञान॑मश्विना यु॒वमि॒हास्मासु॒ नि य॑च्छतम् ॥१॥

६७७ स॒म्ऽज्ञान॑म्। नः॒। स्वेभिः॑।
स॒म्ऽज्ञान॑म्। अर॑णेभिः॥
स॒म्ऽज्ञान॑म्। अ॒श्वि॒ना॒। यु॒वम्।
इ॒ह। अ॒स्मासु॑। नि। य॒च्छ॒त॒म् ॥१॥

६७७ अन्वयः— अश्विनौ ! नः स्वेभिः संज्ञानं अरणेभिः संज्ञानं युवं इह अस्मासु संज्ञानं नि यच्छतम् ॥ १ ॥

६७७ अर्थ— हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (नः स्वभिः संज्ञानं) हमें स्वजनोंके साथ मिलकर रहनेका ज्ञान हो । (अरणेभिः संज्ञानं) हमें निकृष्ट लोगोंके साथ मिलकर रहनेका ज्ञान हो । (युवं इह अस्मासु) तुम यहां हममें (संज्ञानं नि यच्छत) मिलकर रहनेका ज्ञान स्थिर रखो ॥

[६७८]

६७८ सं जा॑नामहै॒ मन॑सा॒ सं चि॑कि॒त्वा मा यु॑ष्महि॒ मन॑सा॒
दैव्ये॑न । मा घोषा॒ उत्स्थु॑र्बहु॒ले वि॒निर्ह॑ते॒ मेषुः
पप्त॒दिन्द्र॒स्याह॒न्याग॑ते ॥२॥

६७८ सम् । जा॒ना॒म॒है॒ । मन॑सा । सम् । चि॒कि॒त्वा ।
मा । यु॒ष्म॒हि॒ । मन॑सा । दैव्ये॑न ॥
मा । घोषाः॑ । उत् । स्थुः॒ । ब॒हु॒ले । वि॒ऽनिर्ह॑ते ।
मा । इषुः॑ । प॒प्त॒त् । इन्द्र॑स्य । अह॑नि । आऽग॑ते ॥२॥

६७८ अन्वयः— मनसा संजानामहै चिकित्वा सं दैव्येन मनसा मा युष्महि बहुले विनिर्हते घोषाः मा उत्स्थुः, आगते अहनि इन्द्रस्य इषुः मा पप्तत् ॥ २ ॥

६७८ अर्थ— (मनसा संजानामहै) मनसे मिलकर रहनेका ज्ञान प्राप्त करें, (चिकित्वा सं) ज्ञानसे भी मिलकर रहना सीखें । (दैव्येन मनसा) मनको दिव्य करके उससे (मा युष्महि) कभी विरोध न करें, आपसमें फूट न होने दें ! (बहुले विनिर्हते) बहुतोंका नाश होनेपर (घोषा. मा उत्स्थुः) दुःखके शब्द न उठे, आपसमें विरोध न हो और उससे होनेवाला वध, हत्या आदि भी न हो । (आगते अहनि) भविष्यमें (इन्द्रस्य इषुः मा पप्तत्) इन्द्रका बाण हमपर न गिरे । इन्द्रके मनसे हम अपराधी न हों ॥

(८) घर्मः, अश्विनौ ।

[६७९] (अथर्व० ७।७३।१—५,८)
१,४ जगती, २ पथ्याबृहती, ३,५,८ त्रिष्टुप् ।

६७९ समिद्धो अग्निर्वृषणा रथी दिवस्तप्तो घर्मो दुह्यते वामिषे
मधु । वयं हि वां पुरुदमासो अश्विना हवामहे
सधमादेषु कारवः ॥१॥

६७९ सम्ऽइद्धः । अग्निः । वृषणा । रथी । दिवः ।
तप्तः । घर्मः । दुह्यते । वाम् । इषे । मधु ॥
वयम् । हि । वाम् । पुरुऽदमासः ।
अश्विना । हवामहे । सधऽमादेषु । कारवः ॥१॥

६७९ अन्वयः— वृषणौ अश्विनौ ! रथी अग्निः समिद्धः घर्मः तप्तः वां इषे मधु दुह्यते, वयं पुरुदमासः कारवः सध-मादेषु वां हवामहे ॥ १ ॥

६७९ अर्थ— हे (वृषणौ अश्विनौ) बलवान् अश्विदेवो ! (दिवः रथी अग्निः समिद्धः) प्रकाशका रथ जैसा अग्नि प्रदीप्त हुआ है । (घर्मः तप्तः) यह पात्र उष्ण हुआ है । (वां इषे मधु दुह्यते) आपके यज्ञके लिये मधुर रस निकाला जा रहा है (वयं पुरुदमासः कारवः) हम सब बडे घरवाले कुशलतासे कर्म करनेवाले लोग (सध-मादेषु वां हवामहे) साथ साथ रसपान करनेके समय आप दोनोंको बुलाते हैं ॥

[६८०]

६८० समिद्धो अग्निरश्विना तप्तो वां घर्म आ गतम् ।
दुह्यन्ते नूनं वृषणेह धेनवो दस्रा मदन्ति वेधसः ॥२॥

६८० सम्ऽइद्धः । अग्निः । अश्विना ।
तप्तः । वाम् । घर्मः । आ । गतम् ॥
दुह्यन्ते । नूनम् । वृषणा । इह ।
धेनवः । दस्रा । मदन्ति । वेधसः ॥२॥

६८० अन्वयः— वृषणौ अश्विनौ ! अग्निः समिद्धः वां घर्मः तप्तः आ गतं; नूनं इह धेनवः दुह्यन्ते, वस्रौ ! वेधसः मदन्ति ॥ २ ॥

६८० अर्थ- हे (वृषणौ अश्विनौ) बलवान् अश्विदेवो ! (अग्निः समिद्धः) अग्नि प्रदीप्त हुआ है, (वां घर्मः तप्तः) आपके लिये यह दूधका पात्र तप गया है। इसलिये (आ गतं) आओ । (नूनं इह धेनवः दुह्यन्ते) निश्चयसे यहां गौवें दुही जाती हैं। हे (वस्रौ) दर्शनीय देवो ! (वेधसः मदन्ति) ज्ञान-पूर्वक कर्म करनेवालेही आनंद प्राप्त करते हैं ॥

[६८१]

६८१ स्वाहाकृतः शुचिर्देवेषु यज्ञो यो अश्विनोश्चमसो देवपानः ।
तमु विश्वे अमृतासो जुषाणा गन्धर्वस्य प्रत्यास्ना
रिहन्ति ॥३॥

६८१ स्वाहाऽकृतः । शुचिः । देवेषु । यज्ञः ।
यः । अश्विनोः । चमसः । देवऽपानः ॥
तम् । ऊं इति । विश्वे । अमृतासः । जुषाणाः ।
गन्धर्वस्य । प्रति । आस्ना । रिहन्ति ॥३॥

६८१ अन्वयः— यः अश्विनोः देवपानः चमसः देवेषु स्वाहाकृतः शुचिः विश्वे अमृतासः तं उ जुषाणा (तं उ) गन्धर्वस्य आस्ना प्रति रिहन्ति ॥ ३ ॥

६८१ अर्थ— (यः अश्विनोः देवपानः चमसः) जो अश्विदेवोंका देवोंको रसपान करानेवाला चमस है, वह (देवेषु स्वाहाकृतः शुचिः) देवोंके लिये अर्पण होनेके कारण पवित्र है। (विश्वे अमृतासः तं उ जुषाणः) सब देव उसीका सेवन करते हैं। और (तं उ गन्धर्वस्य आस्ना प्रति रिहन्ति) उसकी गन्धर्वके मुखसे प्रशंसा करते हैं ॥

[६८२]

६८२ यदुस्रियास्वाहुतं घृतं पयोऽयं स वामश्विना भाग आ गतम् । माध्वी धर्तारा विदथस्य सत्पती तप्तं घर्मं पिबतं रोचने दिवः ॥४॥

६८२ यत् । उस्रियासु । आऽहुतम् । घृतम् । पर्यः ।
अयम् । सः । वाम् । अश्विना । भागः । आ । गतम् ॥
माध्वी इति । धर्तारा । विदथस्य ।
सत्पती इति सत्ऽपती । तप्तम् । घर्मम् । पिबतम् ।
रोचने । दिवः ॥४॥

६८२ अन्वयः— अश्विनौ ! यत् उस्रियासु आहुतं घृतं पयः अयं स वां भागः आ गतं; माध्वी विदथस्य धर्तारौ सत्पती ! दिवः रोचने तप्तं घर्मं पिबतम् ॥ ४ ॥

६८२ अर्थ— हे (अश्विनौ) अश्विदेवो ! (यत् उस्रियासु आहुतं घृतं पयः) जो गौओंमें रखा हुआ घी और दूध है, (अयं स वां भागः) यह तो आपकाही भाग है, इसके लिये तुम दोनों (आ गतं) आओ। हे (माध्वी विदथस्य धर्तारौ सत्पती) मधुर हमपर प्रेम करनेवाले, युद्धमें आधार देनेवाले उत्तम स्वामी ! (दिवः रोचने तप्तं घर्मं पिबतं) प्रकाशके होनेपर तपे दूधको पीओ ॥

[६८३]

६८३ तप्तो वां घर्मो नक्षतु स्वहोता प्र वामध्वर्युश्चरतु पयस्वान् ।
मधोर्दुग्धस्याश्विना तनाया वीतं पातं पयस उस्रियायाः ॥

६८३ तप्तः । वाम् । घर्मः । नक्षतु । स्वऽहोता ।
प्र । वाम् । अध्वर्युः । चरतु । पयस्वान् ॥
मधोः । दुग्धस्य । अश्विना । तनायाः ।
वीतम् । पातम् । पयसः । उस्रियायाः ॥५॥

६८३ अन्वयः—अश्विनौ ! तप्तः घर्मः वां नक्षतु, स्वहोता पयस्वान् अध्वर्युः वां प्र चरतु; तनायाः उस्रियायाः मधोः दुग्धस्य पयसः वीतं पातम् ॥ ५ ॥

६८३ अर्थ—हे (अश्विनौ) अश्विदेवो ! (तप्तः घर्मः [illegible] नक्षतु) तपे दूधको तुम दोनों प्राप्त करो ! (स्व होता पयस्वान् अध्वर्युः वां प्र चरतु) स्वयं हवन करनेवाला दूध लेकर आया अध्वर्यु आप दोनोंकी सेवा करे । (तनायाः उस्रियायाः मधोः दुग्धस्य पयसः) हृष्टपुष्ट गौके मधुर दूधको (वीतं पातं) प्राप्त करके पी जाओ ॥

*

[६८४]

६८४ हिङ्कृण्वती वसुपत्नी वसूनां वत्समिच्छन्ती मनसा न्यागन्।
दुहामश्विभ्यां पयो अघ्न्येयं सा वर्धतां महते सौभगाय

६८४ हिङ्ऽकृण्वती । वसुऽपत्नी । वसूनाम् ।
वत्सम् । इच्छन्ती । मनसा । निऽआगन् ॥
दुहाम् । अश्विऽभ्याम् ।पयः । अघ्न्या ।
इयम् । सा । वर्धताम् । महते । सौभगाय ॥८॥

६८४ अन्वयः— हिङ्कृण्वती वसूनां वसुपत्नी मनसा वत्सं इच्छन्ती नि-आगन्, इयं अघ्न्या अश्विभ्यां पयः दुहां सा महते सौभगाय वर्धताम् ॥ ८ ॥

६८४ अर्थ- (हिंकृण्वती वसूनां वसुपत्नी) हिंकार करनेवाली वसुओंको दूध पिलानेवाली, (मनसा वत्सं इच्छन्ती नि-आगन्) मनसे अपने बछडेको मिलनेकी इच्छा करती हुई पास आगयी हैं । (इयं अघ्न्या अश्विभ्यां पयः दुहां) यह अवध्य गौ अश्विदेवोंके लिये दूध देवे । और (सा महते सौभगाय वर्धतां) वह बडे ऐश्वर्यका संवर्धन करनेके लिये बढे ॥

(९) मधु, अश्विनौ ।

[६८५] (अथर्व. ९।१।११,१६-१७,१९)
अनुष्टुप्, १७ उपरिष्टाद्विराड् बृहती ।

६८५ यथा सोमः प्रातःसवने अश्विनोर्भवति प्रियः ।
एवा मे अश्विना वर्च आत्मनि ध्रियताम् ॥११॥

६८५ यथा । सोमः । प्रातःऽसवने ।
अश्विनोः । भवति । प्रियः ॥
एव । मे । अश्विना । वर्चः ।
आत्मनि । ध्रियताम् ॥११॥

६८५ अन्वयः— यथा सोमः प्रातःसवने अश्विनोः प्रियः भवति, अश्विना ! एवा मे आत्मनि वर्चः ध्रियताम् ॥ ११ ॥

६८५ अर्थ- (यथा सोमः प्रातःसवने) जैसा सोमरस प्रातःसवन यज्ञमें (अश्विनोः प्रियः भवति) अश्विदेवोंको प्रिय होता है, हे (अश्विना) अश्विदेवो! (एवा मे आत्मनि) वैसा मेरी आत्मामें (वर्चः ध्रियतां) तेजका धारण करो ॥

[६८६]

६८६ यथा मधु मधुकृतः संभरन्ति मधावधि ।
एवा मे अश्विना वर्च आत्मनि ध्रियताम् ॥१६॥

६८६ यथा । मधु । मधुऽकृतः ।
सम्ऽभरन्ति । मधौ । अधि ॥
एव । मे । अश्विना । वर्चः ।
आत्मनि । ध्रियताम् ॥१६॥

६८६ अन्वयः— यथा मधुकृतः मधौ अधि मधु संभरन्ति, अश्विना ! एवा मे वर्चः तेजः बलं ओजः ध्रियताम् ॥ १६ ॥

६८६ अर्थ— (यथा मधुकृतः) जैसी मधुमक्खियाँ (मधौ अधि मधु संभरन्ति) मधुकोशमें मधुको संचित करती हैं, हे (अश्विना) अश्विदेवो ! (एवा मे) ऐसा मेरेलिये (वर्चः तेजः बलं ओजः ध्रियतां) प्रभाव, तेज, बल और सामर्थ्य धारण करें ॥

[६८७]

६८७ यथा मक्षा इदं मधु न्यञ्जन्ति मधावधि ।
एवा मे अश्विना वर्चस्तेजो बलमोजश्च ध्रियताम् ॥१७॥

६८७ यथा । मक्षाः । इदम् । मधु ।
निऽअञ्जन्ति । मधौ । अधि ॥
एव । मे । अश्विना । वर्चः ।
तेजः । बलम् । ओजः । च । ध्रियताम् ॥१७॥

६८७ अन्वयः— यथा मक्षाः इदं मधु मधौ अधि न्यञ्जन्ति एवा अश्विनौ ! मे वर्चः तेजः बलं ओजः ध्रियताम् ॥ १७ ॥

६८७ अर्थ— (यथा मक्षाः) जैसी मक्खियाँ (इदं मधु) यह मधु (मधौ अधि न्यञ्जन्ति) मधुके कोशमें भर देते हैं, (एवा) इस तरह हे (अश्विनौ) अश्विदेवों ! (मे वर्चः तेजः बलं ओज ध्रियतां) मेरेमें प्रभाव, तेज और सामर्थ्य धारण करो ॥

[६८८]

६८८ अश्विना सारघेण मा मधुनाऽङ्क्तं शुभस्पती ।
यथा वर्चस्वतीं वाचमावदानि जनाँ अनु ॥१९॥

६८८ अश्विना । सारघेण । मा ।
मधुना । अङ्क्तम् । शुभः । पती इति ॥
यथा । वर्चस्वतीम् । वाचम् ।
आऽवदानि । जनान् । अनु ॥१९॥

६८८ अन्वयः- शुभस्पती अश्विनौ ! सारघेण मधुना मा सं अङ्क्तं; यथा वर्चस्वतीं वाच जनान् अनु आवदानि ॥ १९ ॥

६८८ अर्थ— हे (शुभस्पती अश्विनौ) शुभके पालक अश्विदेवो ! (सारघेण मधुना मा सं अङ्क्तं) साररूप मधुसे मुझे युक्त करो । (यथा वर्चस्वतीं वाच) जैसा तेजस्वी भाषण (जनान् अनु आवदानि) लोगोंके प्रति मैं बोल सकूं वैसा मेरा मीठा भाषण करो ॥

(१०) सिनीवालीसरस्वत्यश्विनः ।

[६८९] (ऋ. १०।१८४।२)

(६८९) त्वष्टा गर्भकर्ता, विष्णुर्वा प्राजापत्यः । अनुष्टुप् ।

६८९ गर्भं धेहि सिनीवालि गर्भं धेहि सरस्वति ।
गर्भं ते अश्विनौ देवावा धत्तां पुष्करस्रजा ॥२॥

६८९ गर्भम् । धेहि । सिनीवालि ।
गर्भम् । धेहि । सरस्वति ॥
गर्भम् । ते । अश्विनौ । देवौ ।
आ । धत्ताम् । पुष्करऽस्रजा ॥२॥

६८९ अन्वयः- सिनीवालि ! गर्भं धेहि, सरस्वति ! गर्भं धेहि, पुष्कर-स्रजा अश्विनौ देवौ ते गर्भं आ धत्ताम् ॥ २ ॥

६८९ अर्थ- हे (सिनीवालि) सिनीवाली ! (गर्भं धेहि) गर्भका धारण करो । हे (सरस्वति) सरस्वति (गर्भं धेहि) गर्भका धारण करो । हे (पुष्कर-स्रजा अश्विनौ देवौ) कमलोंकी माला धारण करनेवाले अश्विदेवो ! (ते गर्भं आ धत्तां) तेरे गर्भका धारण करो ॥

(इयर्थ)

ऋषि-सूची ।